अद्यावधि प्रकाशित 'नमन' का आवरण पृष्ठ

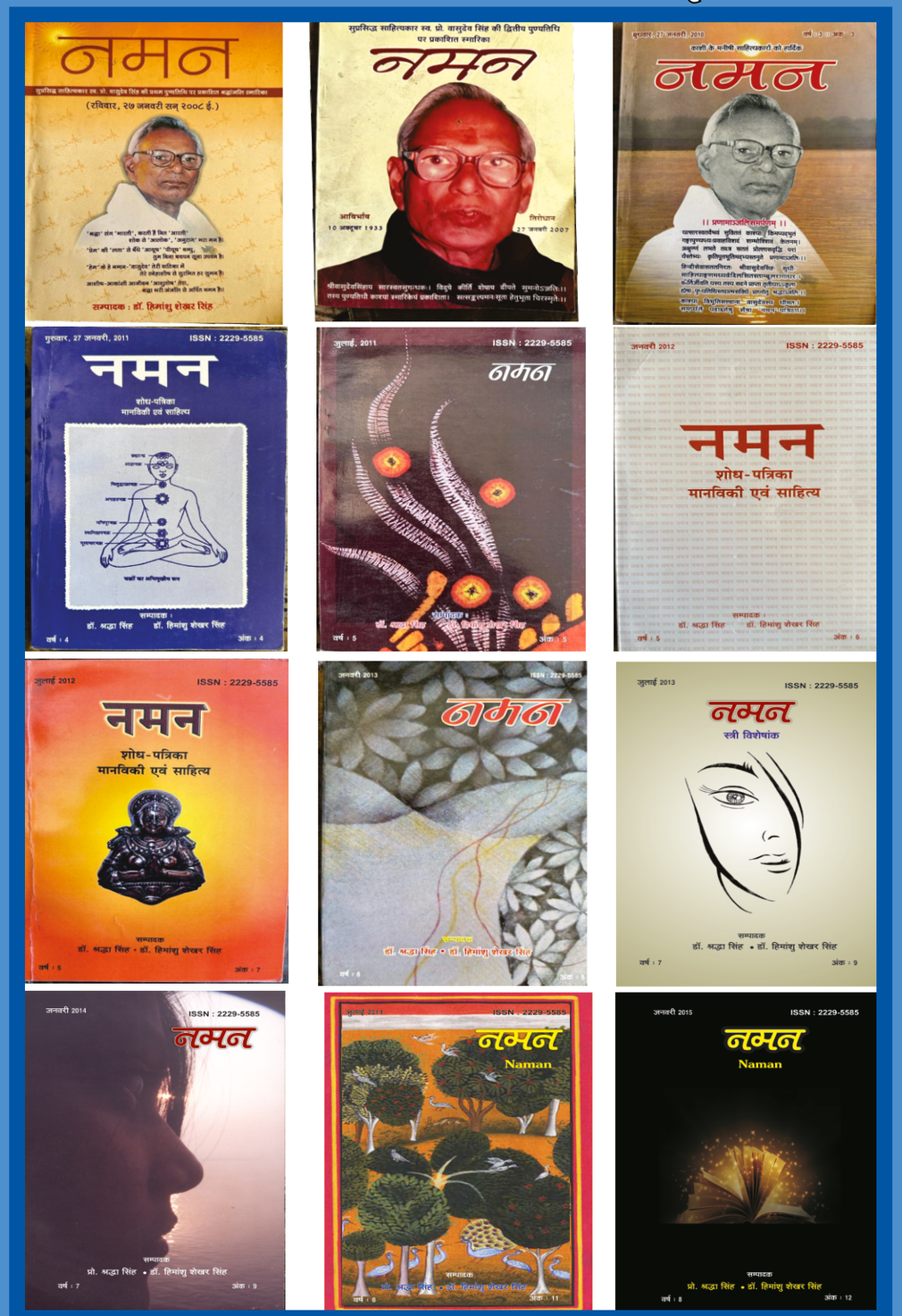

जनवरी- २०२३ ISSN : 2229-5585

वर्ष-१६ : अंक-२८ नमन Naman जनवरी-२०२३

नमन
NAMAN

यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी सूची में क्रमांक- २८ पर नामांकित
सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

सम्पादक

प्रो. श्रद्धा सिंह • डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

वर्ष : १६ अंक : २८

वर्ष-१६ : अंक-२८ ISSN : 2229-5585

यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी सूची में क्रमांक-२८ पर नामांकित
सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

नमन Naman

प्रधान संरक्षक
श्री सुधांशु शेखर सिंह (प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास)
(Secretary and CEO - Humanitarian Aid International)

परामर्श-मण्डल
प्रो. एम. विमला—हिन्दी विभाग, बंगलुरु विश्वविद्यालय, बंगलुरु, कर्नाटक
प्रो. मंजुला राणा—अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, एच.एन. बहुगुणा गढ़वाल वि.वि., उत्तराखण्ड
प्रो. डी.एस. राजपूत—पूर्व अध्यक्ष- समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि., सागर
प्रो. उमापति दीक्षित—अध्यक्ष- नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह—आचार्य-हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. रेणू सिंह—आचार्य एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि., अमरकण्टक, म.प्र.
डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र—पूर्व अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज, वाराणसी
डॉ. रामसुधार सिंह—पूर्व अध्यक्ष- हिन्दी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी
प्रो. भारती सिंह—पूर्व प्राचार्य- महामाया राजकीय महाविद्यालय, महोना, लखनऊ
प्रो. सविता भारद्वाज—प्राचार्य- राजकीय महाविद्यालय, गाजीपुर
डॉ. आशा यादव—हिन्दी विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

न्यास-मण्डल
श्री शैलेन्द्र सिंह—पूर्व प्रबन्धक, ग्रामीण बैंक, हरदोई
डॉ. भारती सिंह— एम.ए. (समाजशास्त्र— हिन्दी), पी-एच.डी.
डॉ. दिनेश कुमार सिंह— गणित विभाग (अ.प्रा.), राजकीय महाविद्यालय, लखनऊ
डॉ. पद्मजा सिंह—प्राध्यापिका, दिल्ली
श्रीमती आरती सिंह—प्राध्यापिका, वाराणसी

सम्पादकीय सम्पर्क
सम्पादक— 'नमन'
प्रेम सदन— सी. ३३/१४७-३२ ए
आचार्य नरेन्द्रदेव नगर, चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२
वार्ता-सेतु : ०९४१५९८४९८३, ०९४१५५३०५८७
shraddhahindi@gmail.com
E-mail : himanshusinghkvp@gmail.com
namanpatrika@gmail.com
Website : www.namanpatrika.com
फेसबुक : नमन (शोध-पत्रिका)

शब्द-संयोजक
श्री विमल चन्द्र मिश्र—पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१०

मुद्रक
श्री मोहित निगम— प्रिंटेक, इण्डियन प्रेस कालोनी, मलदहिया, वाराणसी

अद्यावधि प्रकाशित 'नमन' का आवरण पृष्ठ

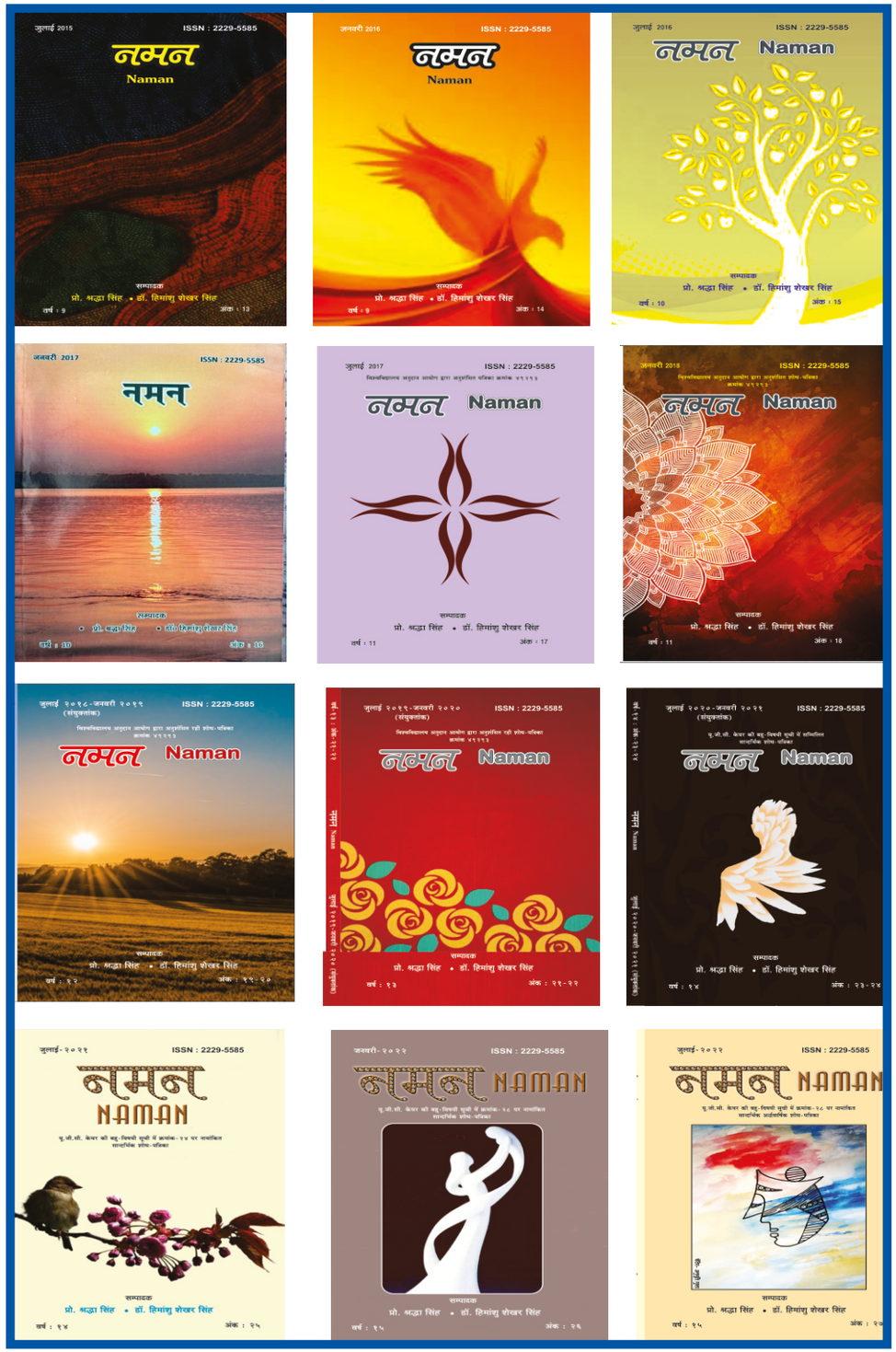

नमनं वासुदेवाय नमनं ज्ञानराशये ।
नमनं प्रीतिकीर्तिभ्यां नमनं सर्वभूतये ।।

नमन

Naman

'प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास'
द्वारा प्रकाशित
यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary)
सूची में क्रमांक-२८ पर नामांकित सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका
ISSN : 2229-5585

सम्पादक

प्रो. श्रद्धा सिंह
आचार्य– हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उ. प्र.

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह
सह आचार्य– हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय
प्रयागराज, उ. प्र.

वर्ष-१६ : अंक-२८ ISSN : 2229-5585

नमन

Naman

मानविकी एवं साहित्य

यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary) सूची में क्रमांक-२८ पर नामांकित सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

© **प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास**

सम्पादन

- अनियतकालीन, अवैतनिक तथा अव्यावसायिक
- रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं। प्रकाशित शोध-पत्रों में आए विचार लेखकों के अपने हैं। सम्पादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- रचनाओं पर कोई मानदेय / पारिश्रमिक देय नहीं होगा।
- लेखकों, सदस्यों एवं शुभचिन्तकों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
- किसी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

सदस्यता-शुल्क :

प्रति अंक	व्यक्तिगत रु. ४००/-	संस्थागत ५००/–
व्यक्तिगत आजीवन	रु. ४०००/-	संस्थागत ५०००/–
विदेश के लिए	US$ ५०	आजीवन US$ १५०

कृपया अपनी सदस्यता / सहयोग की धनराशि इस पर भेजें–
प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास
खाता संख्या-४०१६०१००००५४८९
बैंक ऑफ बड़ौदा, महमूरगंज शाखा
वाराणसी-२२१०१०
RTGS/NEFT IFSC Code : BARB0MAHMOO

सम्पादकीय

शेखर जोशी की स्मृति को नमन करते हुए

हिन्दी साहित्य की 'नयी कहानी' धारा के मूर्धन्य लेखकों में शेखर जोशी एक महत्त्वपूर्ण हस्ती हैं। अमरकान्त तथा मार्कण्डेय के साथ उनकी त्रयी ने नयी कहानी के मिजाज को नया तेवर दिया। इन तीनों लेखकों की भावभूमि एक जैसी होने के कारण इनकी नजदीकियाँ बढ़ती गयीं। इलाहाबाद की इस त्रयी की अहमियत ऐसी रही कि जहाँ अमरकान्त, मार्कण्डेय और शेखर जोशी एकत्र हो जाएँ, वहीं साहित्यिक मजमा लग जाए। जिस विषय पर ये अपने विचार रख रहे हों, उस पर आम सहमति स्वाभाविक तौर पर बन जाए। यह इसलिए भी होता रहा, क्योंकि जनता के नब्ज को ये पहचानते थे और ईमानदारी से उसे पाठक तक पहुँचाते थे। लेकिन धीरे-धीरे यह त्रयी टूट गयी। १८ मार्च, २०१० को मार्कण्डेय और १७ फरवरी, २०१४ को अमरकान्त के निधन के बाद अब ०४ अक्टूबर, २०२२ को शेखर जोशी के अलविदा कहने से इस त्रयी की अन्तिम कड़ी भी छिन्न हो गयी। 'नमन' परिवार उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए नमन करता है।

अपनी अनवरत यात्रा करते हुए यह 'नमन' का २८वाँ अंक आपके हाथ में है। अपने बहुआयामी स्वरूप को लिए हुए प्रस्तुत अंक में हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त; सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों पर, समसामयिक विषयों पर, नयी शिक्षा नीति पर तथा ज्वलन्त मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण शोध-आलेख संकलित हैं। प्रस्तुत अंक में साहित्य पर केन्द्रित शोध-आलेखों में डॉ. वासुदेव सिंह, प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल, डॉ. अशोक कुमार ज्योति, डॉ. कीर्ति विक्रम सिंह, डॉ. अनुपमा त्रिपाठी, डॉ. अभिषेक मिश्र, डॉ. माधुरी पाण्डेय गर्ग, डॉ. शबाना हबीब, डॉ. संध्या द्विवेदी, डॉ. रेणु बाला, डॉ. पूजा सिंह, डॉ. रवि कुमार गोंड़, डॉ. दीपक सरीखे सुधी अध्येताओं के आलेखों के साथ ही नवोदित शोधार्थियों के आलेख भी संकलित हैं। इस अंक में संकलित समसामयिक मुद्दों पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण आलेखों में से– अफजल जमाल (केरल) का The Amalgamation of Cultural Conflicts : A Diasporic Overview of the Inheritance of Loss (सांस्कृतिक संघर्षों का सम्मिलन : नुकसान की विरासत का एक डायस्पोरिक अवलोकन), प्रो. यशवन्त सिंह ठाकुर (सागर, म.प्र.) का Financial Measures to Acclimatize Remote Workforce Stress (दूरस्थ कार्यबल : तनाव को अनुकूलित करने के लिए वित्तीय उपाय), डॉ. तरुण कुमार शर्मा (उदयपुर) का Alzheimer's Dementia Among Elderly : Status, Challenges and Intervention (बुजुर्गों के बीच अल्जाइमर डिमेंशिया : स्थिति, चुनौतियाँ और हस्तक्षेप), नियति मिस्त्री (गाँधी नगर, गुजरात) का Constitutional Provisions and Sex Ratio : Baba Saheb Ambedkar's views (संवैधानिक प्रावधान और लिंग अनुपात : बाबा साहेब अम्बेडकर के विचार), डॉ. रवीन्द्र कुमार

(राँची, झारखण्ड) का Role of MSME's : Inclusive and Sustainable Growth of Indian Economy (एमएसएमई की भूमिका : भारतीय अर्थ-व्यवस्था के समावेशी और सतत विकास के सम्बन्ध में), डॉ. विकास तिवारी (सोनभद्र, उ.प्र.) का E-Commerce Effect on Distribution Channel for the Various Industry (विभिन्न उद्योगों के लिए वितरण चैनल पर ई-कॉमर्स का प्रभाव), डॉ. वर्षा सिंह (दिल्ली) का Tapestry of Wisdom and Ethos : The Folktales of India during Silk Routes (बुद्धि और लोकाचार की टेपेस्ट्री : सिल्क रूट्स के दौरान भारत की लोककथाएँ), शेफाली सोनी (सागर, म.प्र.) का Exploring Gond Art : Ethnic Identity and Issues (गोंड़ कला की खोज : जातीय पहचान और मुद्दे), डॉ. दीपक कुमार (झुमरी तलैया, हजारीबाग) का Employment Generation : Retrospect and Prospect [(A comparison between the self-reliant growth strategy and Neo-liberal growth) रोजगार सृजन : पुनरावलोकन और सम्भावना (आत्मनिर्भर विकास : रणनीति और नव-उदारवादी विकास के बीच तुलना)] आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त; डॉ. सुनीता (हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला), अरुण कुमार (झाँसी), डॉ. दीपक (होशियारपुर, पंजाब), डॉ. संतोष कुमार सिंह (हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय), डॉ. साधना श्रीवास्तव (उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज), डॉ. लालिमा सिंह (प्रयागराज), डॉ. देबश्री सिन्हा (असम) आदि के महत्त्वपूर्ण शोध-आलेखों का संकलन इस पत्रिका के देशव्यापी स्वरूप को दर्शाते हुए आपके हाथ में है।

सम्पूर्ण भारत के मनीषियों-शोधार्थियों के विचारों को अपने में समेटे यह संकलन भारतीयों की विचार-दृष्टि को दर्शाता है। हम सब भारतीय किन-किन मुद्दों पर सोच रहे हैं? कौन-कौन सी समस्याओं और चुनौतियों को महसूस कर रहे हैं? कैसे उन चुनौतियों से निपटा जा सकता है? इन सारे प्रश्नों के साथ यह संकलन आप सबकी प्रतिक्रिया की प्रत्याशा में हाजिर है।

–सम्पादक

अनुक्रम

सम्पादकीय iii

खण्ड-क : काव्य-चिन्तन

१. राम की कीर्ति-पताका के दण्ड : लक्ष्मण ***डॉ. वासुदेव सिंह*** १

२. मानस में गोस्वामी तुलसीदास का समाज-दर्शन ६
डॉ. कमल स्वरूप श्रीवास्तव, दीप नारायण श्रीवास्तव

३. मध्यकालीन भक्त-संतों की राजनीतिक चेतना ***डॉ. सन्तोष कुमार यादव*** १०

४. भक्ति आन्दोलन एवं शंकरदेव के अन्तर्विरोध २१
प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल

५. 'पद्मावत' का जनपदीय पाठ ***डॉ. श्रद्धा सिंह*** २८

६. मुस्लिम भक्त कवि जायसी के काव्य में स्त्री ***डॉ. रवि कुमार गोंड़*** ३३

७. सगुण-निर्गुण रामकथा के अनन्य साधक : महात्मा बनादस ३७
डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

८. काव्य-बिम्ब की अवधारणा ***डॉ. रेणु बाला*** ४२

९. आधुनिक हिन्दी कविता में नारी-चेतना ***डॉ. अनुपमा त्रिपाठी*** ४६

१०. यथार्थ के सजग प्रहरी कवि निराला ***डॉ. पूजा सिंह*** ५१

११. नागार्जुन के काव्य में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य ***डॉ. दीपक*** ५५

१२. 'रेत में आधा दबा यह पहिया' : अज्ञेय का काल-चिन्तन ६२
डॉ. माधुरी पाण्डेय गर्ग

१३. दरख्तों के साये में दुष्यन्त ***डॉ. संध्या द्विवेदी*** ६७

१४. कवि अटल बिहारी वाजपेयी के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना ७३
डॉ. कपिल देव पँवार

खण्ड-ख : गद्य-विमर्श

१५. नवजागरण का आशय ***डॉ. अभिषेक मिश्र*** ७७

१६. अंधा युग : पौराणिकता में आधुनिकता का आख्यान ८२
प्रिया तिवारी

१७. वृन्दावनलाल वर्मा के पात्रों की युगीन सार्थकता ***डॉ. शशिकला*** ८६

१८. भारतीय समाज एवं नारी ***डॉ. सुनीता*** ९१

१९. प्रताप नारायण मिश्र के साहित्य में विधवा-विवाह सम्बन्धी चिन्तन ९६
मुकेश यादव

२०. सेवासदन : स्त्री-स्वाधीनता की प्रथम पहल ***कु. प्रतिमा*** ९९

२१. भारतीय नारी और यशपाल के उपन्यासों में नारी-परिकल्पना १०२
प्रज्ञा सिंह

२२. प्रवासी कथाकार डॉ. पुष्पा सक्सेना की कहानियों में नारी और राष्ट्रीय गरिमा १०७
डॉ. अशोक कुमार ज्योति

२३. हिन्दी साहित्य में दलित महिला आत्मकथा का विवेचन ११३
नीलू सिंह, डॉ. सेंथिल कुमार
२४. दलित स्त्री-जीवन की व्यथा और वास्तविकता *डॉ. देबश्री सिन्हा* ११७
२५. दलित जीवन की दास्ताँ : 'शिकंजे का दर्द' *डॉ. शबाना हबीब* १२२
२६. ऋता शुक्ल के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों के विविध आयाम १२७
प्रीति गुप्ता
२७. नयी कहानी का रचना-संसार और प्रवृत्तियाँ १३२
अरविन्द तिवारी, डॉ. प्रेमशंकर सिंह, डॉ. जयश्री बंसल
२८. बटरोही की कहानी 'मुख्यधारा' में भारतीय राजनीति एवं मीडिया का यथार्थ १३८
गिरजेश कुमार

खण्ड-ग : शिक्षा, संस्कृति और समाज

२९. बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों की वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में प्रासंगिकता १४१
धीरेन्द्र कुमार सिंह
३०. मानव-संसाधनों के विकास में ज्ञान-तन्त्र की भूमिका १४६
डॉ. सन्तेश्वर कुमार मिश्र
३१. नयी शिक्षा नीति-२०२० : नयी सोच–नयी परिकल्पना १५१
प्रो. सरोज वर्मा, भूपेन्द्र सिंह
३२. उच्च शिक्षा : एक प्रबुद्धकारी शक्ति महिला सशक्तीकरण के सन्दर्भ में १५८
डॉ. लालिमा सिंह, अपूर्वा सिंह
३३. एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव : एक अध्ययन *डॉ. रमेन्द्र तिवारी* १६४
३४. कौशल विकास कार्यक्रम के समक्ष चुनौतियाँ *मनोज कुमार* १७०
३५. सांस्कृतिक नगरी काशी की पत्रकारिता : दशा और दिशा १७३
डॉ. साधना श्रीवास्तव
३६. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का वैचारिक दर्शन *डॉ. उमेश कुमार राय* १८१
३७. राष्ट्रऋषि भारतरत्न नानाजी देशमुख का ग्रामीण-विकास में योगदान १८६
डॉ. कीर्ति विक्रम सिंह, डॉ. रमेश चन्द्र शुक्ल
३८. २१वीं सदी में डॉ. राममनोहर लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता १९३
अरुण कुमार
३९. मानवाधिकार का दुरुपयोग : एक गम्भीर चुनौती *प्रखर पाण्डेय* १९९
४०. जल-संघर्ष और राष्ट्रीय सुरक्षा भारत-चीन के विशेष सन्दर्भ में २०७
बृजेश चन्द्र श्रीवास्तव, डॉ.शांतेष कुमार सिंह
४१. पिण्डदान : अनुष्ठान : मनो-सामाजिक परिप्रेक्ष्य २१६
पीयूष देउरकर, डॉ. नरसिंह कुमार, डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह
४२. उराँव जनजाति की स्थानिक से सार्वभौम की यात्रा *डॉ. संजय यादव* २२३
४३. कोविड-१९ महामारी के प्रति फैला मिथक एवं जागरूकता एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण *राजेश कुमार त्रिपाठी* २३०

खण्ड-घ : हिन्दीतर बहुविषयी शोध-पत्र

४४. National Security Discourses Looking Through Hindutva Perspective — ***Dr. Abhay Kumar*** — २३८

४५. Communication approaches to Public Health and Wellness in Atharvaveda — ***Dr. Nagendra Kumar Singh*** — २४४

४६. Parasocial Relations and Fan Cultures The Extent and Intent of Human Desire and Friendship — ***Dr. Rajesh Verma*** — २५४

४७. Public Life and its Choices Impact of Justice on Ethics and Morality — ***Dr. Manoj Kumar Singh*** — २६४

४८. A Study of Corporate Social Responsibility (CSR) Initiativs In Uttar Pradesh — ***Preeti Shukla*** — २७३

४९. Women's Legal and Social Safety in India An Analytical Study — ***Ms. Sonika Sharma*** — २७७

५०. Constitutional Provisions and Sex Ratio : B.R. Ambedkar's views on women's Empowerment — ***Niyati Mistry*** — २८१

५१. Analysis Of Economical Empowerment Of Women Through Mahila Arthik Vikas Mahamandal In Gadchiroli District — २८६
Mangala Durgadas Bansod* Dr. Usha Khandale

५२. A Relative Study of Motor Fitness Variables Among Tribal and Non-Tribal Scholars of High Altitude Region of Pithoragarh District — ***Pushkar Singh Bisht, Sophie Titatus*** — २९६

५३. An Analysis of Growth and Spatial Distribution of Population in Azamgarh City — ३०३
Dr. Sanjay Kumar Bharati, Ram Lakhan Yadav

५४. Role of MSMEs in Inclusive and Sustainable Growth of Indian Economy — ***Dr. Ravindra Kumar, Sunny Jaiswal*** — ३१७

५५. E-Commerce Effect on Distribution Channel For The Various Industry — ***Dr. Vikas Tiwari*** — ३२५

५६. Financial Measures to Acclimatize Remote Workforce Stress — ***Shubham Dadariya, Mohsina Bano,*** — ३३६
Swasti Singh, Prof. Yashwant Singh Thakur

५७. Employment Generation : Retrospect and Prospect (A comparison between the self-reliant growth strategy and Neo-liberal economic growth) — ***Dr. Deepak Kumar*** — ३४६

५८. Tapestry of Wisdom and Ethos The Folktales of India during Silk Routes ***Dr. Varsha Singh*** ३५२

५९. Deprivation of Communication in the Plays of Harold Pinter ३६३
Dr. Ashish Kumar Gupta

६०. Religious Tourism of Jammu & Kashmir Facilities and services at Vaishno Devi Shrine ३६८
Dr. Deep Narayan Pandey

६१. Exploring Gond Art : Ethnic Identity and Issues ३७७
Shefali Soni

६२. Amalgamation of Cultural Conflicts: A Diasporic Perusal of The Inheritance of Loss ***Afsal Jamal P*** ३८२

६३. Understanding Social Control through Roscoe Pound's theory of Social Engineering ***Dr. Priyamvada Tiwari*** ३८९

६४. Alzheimer's Dementia among Elderly Status, Challenges and Interventions ३९४
Mubina Sheikh, Dr Tarun Kumar Sharma

राम की कीर्ति-पताका के दण्ड : लक्ष्मण

डॉ. वासुदेव सिंह*

अयोध्या काण्ड का उत्तरार्द्ध भरत-चरित का आख्यान है। मानस में भरत का चरित्र अत्यन्त दिव्य एवं पुनीत रूप में अभिव्यक्त हुआ है। काव्य-समीक्षकों और भक्तों ने भी भरत की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वह धर्म की धुरी हैं, आदर्श भ्राता हैं और निष्काम भक्त भी। स्वयं राम भी उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। राम १४ वर्ष तक वन में तापस वेष में रहते हैं और भरत नन्दिग्राम में रहकर घोर तप करते हैं।

किन्तु, जिस प्रकार कवियों की दृष्टि उर्मिला तक नहीं गयी, वे उसके प्रति उदासीन रहे, उसी प्रकार साहित्यिकों तथा भक्तों की दृष्टि भरत के 'अचर-सचर चर-अचर' करने वाले दिव्य चरित्र की चकाचौंध के कारण लक्ष्मण तक नहीं गयी। एक प्रकार से लक्ष्मण के साथ न्याय नहीं हो सका है। लक्ष्मण का चरित्र भरत से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भरत भी लक्ष्मण के इस सेवानिष्ठ जीवन को ही सार्थक मानते हैं–

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारविन्द अनुरागी ।।

यही नहीं; लक्ष्मण की सुकुमारता, उनकी एकान्त-निष्ठा, सेवा-भाव और अनुपम त्याग का स्मरण करके भरत व्याकुल हो उठते हैं। वन में रात्रि में राम और सीता के शयन की व्यवस्था हो जाती है। उनके लिए कुश की ही सही, शय्या तैयार हो जाती है। किन्तु लक्ष्मण दिन में घोर परिश्रम करके श्रान्त-क्लान्त हो जाने पर भी रात्रि में जागरण करते हैं। उनकी इस स्थिति पर भरत दयार्द्र हो उठते हैं–

लालन जोगु, लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस यहि छाती ।।

गोस्वामी जी ने एक ही चौपाई में उनकी चारित्रिक गरिमा एवं महत्ता को सूत्र-रूप में रख दिया है। वह पंक्ति है–

रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जसु जाका ।।

राम के यश-ध्वज के लक्ष्मण दण्ड हैं। स्पष्ट है कि दण्ड के बिना पताका फहरा नहीं सकती। राम का जो अत्यन्त उदात्त, धीर-गम्भीर शील निरूपण हो सका है तथा वह अनेक प्रकार की कमजोरियों से बच सके हैं, उसका श्रेय लक्ष्मण को है। राम संकल्प हैं, लक्ष्मण विकल्प। वह बाल्यकाल से ही राम के प्रिय भक्त एवं अनुयायी हैं–

बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी ।।

वाल्मीकि ने भी लिखा है कि लक्ष्मण बाल्यकाल से ही राम के अनुरागी एवं सेवक थे। एक प्रकार से वह राम के लिए बाहर विचरण करने वाले दूसरे प्राण के समान थे–

* प्राक्तन आचार्य एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणोलक्ष्मिवर्धनः ।।२८।।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ।।२९।।
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः । (बालकाण्ड, १८वाँ सर्ग)

राम ही उनके सुहृद, माता-पिता, भ्राता सब कुछ हैं। एक प्रकार से राम के लिए ही उन्होंने अपने को अर्पित कर दिया है।[१] दार्शनिक दृष्टि से वह शेष के अवतार हैं। अध्यात्म रामायण में उन्हें भगवान् का बहिर्प्राण, कर्त्ता-भोक्ता एवं शरीर भी कहा गया है।[२] भरत को शंख एवं शत्रुघ्न को चक्र का अवतार बताया गया है–

जानीमस्त्वां हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा ।।१५।।
शेषाशं शंखचक्रेद्वे भरतं सानुजं तथा ।
अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुःख मोक्तुमिहार्हसि ।।१६।।

शेष का अवतार होने से वह पृथ्वी का भार हल्का करने में राम के सहायक बनते हैं। इस दृष्टि से उनके चरित्र के दो पक्ष मुख्य रूप से उभरते हैं– अपने को राम के लिए पूर्णतया अर्पित कर देना और राम की शील-पताका को अनवरत रूप से भक्तों के हृदयाकाश में फहराने में निमित्त बनना।

राम के जीवन में विशेष रूप से दो अवसर ऐसे आये हैं, जब उनके धीर-गम्भीर व्यक्तित्व को आँच लग सकती थी। वे प्रसंग हैं– वन-गमन और सीता-स्वयंवर। राज्याभिषेक की सूचना के तुरन्त बाद वन-गमन का आदेश कितना भयावह, मन में झंझावात पैदा कर देने वाला रहा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। किन्तु, राम के शील की विशेषता थी– 'प्रसन्नतां यां न अभिषेकः तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।' वह वन जाना सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु लक्ष्मण इस अन्याय को कैसे सह सकते थे? भले ही लोग उन्हें क्रोधी, पितृ-द्वेषी आदि कहें। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' उनका आदर्श है। वह शस्त्र-बल से राज्य पर अधिकार कर लेने के लिए राम को प्रोत्साहित करते हैं। उनका कहना है कि– ''यदि कैकेयी के कहने से पिता जी हमारे शत्रु बन रहे हैं, तो हमें भी ममता-मोह छोड़कर उन्हें बन्दी कर लेना चाहिये या मार डालना चाहिये, क्योंकि यदि गुरुजन भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान खो बैठें और कुमार्ग पर चलने लगें, तो उन्हें भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है–

'प्रोत्साहितोऽयं कैकेटया सन्तुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसङ्गं वध्यतां वध्यतामपि ।।१२।।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ।।१३।।

(वाल्मीकि रामायण– अयोध्याकाण्ड, २१वाँ सर्ग)

गोस्वामी जी ने वन-गमन के अवसर पर लक्ष्मण का रोष नहीं दिखाया है। वाल्मीकि और तुलसी की शैली में एक विशेष अन्तर यह दिखाई पड़ता है कि जहाँ वाल्मीकि के पात्र अधिक मुखर एवं स्पष्टवादी हैं, वहाँ तुलसी ने उनके शील-रक्षार्थ प्रायः संकेत से या कम शब्दों द्वारा काम चलाया है। वन-गमन की सूचना पाने पर लक्ष्मण रोषाविष्ट नहीं होते। वह इस समाचार से स्तब्ध रह जाते हैं। केवल एक ही प्रश्न उनके मन में उठता है कि राम मुझसे क्या कहेंगे? साथ में वन ले चलेंगे या नहीं?

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा।।

लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने राम का वन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया था। उस समय वह कड़ुवा घूँट पीकर रह गये थे। क्रोध व्यक्त नहीं हुआ था। वह अन्दर ही अन्दर उनको जला रहा था। किसी अवसर पर उसका विस्फोट होना ही था। वह अवसर तब मिला, जब सुमन्त्र शृंगवेरपुर में राम-लक्ष्मण-सीता को छोड़कर अयोध्या वापस आने लगे। उस समय लक्ष्मण का क्रोध पहली बार व्यक्त हुआ। सुमन्त्र ने आकर दशरथ को बताया कि जब हम चलने लगे, तो–'लखन कहे कछु बचन कठोरा', लेकिन राम ने शपथ दिलायी थी कि लक्ष्मण की बातों पर ध्यान न देना, न पिता से कहना। लक्ष्मण के कटु वचन वही थे, वाल्मीकि ने जिनका विस्तृत उल्लेख किया है। यहाँ गोस्वामी जी की पटुता द्रष्टव्य है। उनका मन्तव्य भी पूरा हो गया और सीधे-सीधे पुत्र द्वारा पिता का अपमान भी नहीं होने पाया।

महाकाव्य में किसी भी पात्र के चरित्र-निरूपण में यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसमें जिस भाव का उद्रेक दिखाया जाय, क्रमशः उसका विकास, ह्रास और फिर शमन भी दिखाया जाय। लक्ष्मण में शृंगवेरपुर में जिस भाव का उद्रेक होता है, चित्रकूट में उसका उत्कर्ष दिखाई पड़ता है और उत्तरकाण्ड में शमन। चित्रकूट में राम को सूचना मिली कि भरत ससैन्य आ रहे हैं। कुछ देर के लिए उन्हें भी चिन्ता हुई, मन में अन्तर्द्वन्द्व हुआ। लक्ष्मण ने देखा कि राम क्षुब्ध हैं– 'लखन लखेउ प्रभु हृदय खंभारू।' लक्ष्मण भी व्याकुल हो उठे। किन्तु राम मौन हैं, लक्ष्मण मुखर। राम की यशःपताका मौन रहने से ही ऊँची रह सकती है, वाणी की वर्षा उसे आर्द्र कर देगी। अतः लक्ष्मण का क्रोध अपने चरमोत्कर्ष रूप में व्यक्त होता है, क्योंकि–

कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे।।

अतः –

आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।।
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई।।
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करहुँ रिस पाछिल आजू।।

और यह क्रोध १४ वर्ष बीत जाने पर भी पूर्णतया समाप्त नहीं होता है, बल्कि उसका क्षोभ में पर्यवसान हो जाता है। वन से लौटने पर राम सहर्ष सभी से मिल रहे हैं। लक्ष्मण भी सभी से भेंट करते हैं। वह कैकेयी से कई बार मिलते हैं, किन्तु उनका 'क्षोभ' जाता नहीं है–

कैकेयी कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोबु न जाइ।

यहाँ लक्ष्मण के चरित्र का अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से चरित्रांकन हुआ है।

सीता-स्वयंवर के अवसर पर जनक द्वारा राजाओं की भर्त्सना और परशुराम की तीखी व्यंग्यपूर्ण वाणी का उत्तर राम न देकर लक्ष्मण देते हैं। यदि राम जनक-वाणी के प्रतिवाद में धनुष तोड़ने की तत्परता दिखाते, तो उनके गम्भीर व्यक्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग सकता था। अतः उत्तर लक्ष्मण देते हैं, राम के शीलरक्षार्थ। यहाँ तक कि वह धनुष तोड़ने तक की बात कह जाते हैं। लगता है कि कवि के मानस में धनुष-तोड़ने के फल का स्मरण नहीं रहा। अतः 'गीतावली' में उसने अधिक सावधानी से काम लिया है। गीतावली के लक्ष्मण जनक का प्रतिवाद करते हुए भी सीता के प्रति अपने मातृभाव की रक्षा करने में सफल हो सके हैं। वह कहते हैं– 'इस धनुर्भंग का परिणाम कुछ और ही है, अन्यथा प्रभु-प्रताप से इस धनुष को चढ़ाकर अभी जनक को उत्तर दे देता–

'मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस,
पन परमिति और भाँति सुनि गयी है।
नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाय चाप,
देतो पै देखाइ बल, फल पापमयी है ।।

(गीतावली– बालकाण्ड, पद ८५)

डॉ. माताप्रसाद गुप्त को लक्ष्मण के चरित्र में दो खटकने वाली बातें दिखाई पड़ती हैं– एक; परशुराम से की हुई कहा-सुनी और दूसरा; निषाद से किया हुआ दार्शनिक तत्त्व-निरूपण। उनके मत से– ''शीघ्र ही आवेश में आ जाने वाला और किञ्चित् उद्धत-चरित्र अपमानजनक शब्दों के सम्मुख भी अपने मस्तिष्क को शान्त रख सके, यह असम्भव जान पड़ता है। किन्तु परशुराम द्वारा स्वामी राम तथा अपने लिए 'शठ' और 'पापी' जैसे सम्बोधनों और विशेषणों का प्रयोग किये जाने पर भी हास्य-युक्त तथा व्यंग्य-काव्यपूर्ण भाषा में परशुराम की एक-एक उक्ति का उत्तर और वह भी लगभग १००० शब्दों के संवाद में, शेष भगवान् के इन अवतार ने दिया, यह बात लक्ष्मण के शेष चरित्र के साथ सामंजस्य रखती हुई नहीं दिखाई पड़ती है।''[२]

हमारे विचार से लक्ष्मण-परशुराम-संवाद में लक्ष्मण के चरित्र में असामञ्जस्य नहीं है। वह परशुराम को अत्यन्त तीखी और व्यंग्यपूर्ण शैली में उत्तर देते हैं। इस संवाद में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी निहित है। कवि ने परशुराम को एक वृद्ध, चिड़चिड़े, अहंकारी ब्राह्मण के रूप में चित्रित किया है और लक्ष्मण को एक साहसी, किन्तु नटखट बालक के रूप में। चिड़चिड़े व्यक्ति को चिढ़ाने में बच्चों को बड़ा आनन्द आता है। इससे अहंकारी के अहं को ठेस पहुँचती है– उसका क्रोध क्रमश: बढ़ता है और क्रोध के उत्कर्ष के साथ-ही-साथ शक्ति का ह्रास होता जाता है। परशुराम, जो सामान्य विरोध पर ही शत्रु का वध कर डालते थे, यहाँ अपने आचरण के विपरीत केवल क्रुद्ध होते हैं, झुँझलाते हैं। उनकी इस झुँझलाहट और तिलमिलाहट के मध्य लक्ष्मण के व्यंग्यबाण अत्यन्त सटीक एवं प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं।

जहाँ तक निषाद के समक्ष दार्शनिक तत्त्व-निरूपण की बात है, उसमें भी अस्वाभाविकता अथवा विरोधाभास नहीं है। लक्ष्मण सामान्य पुरुष नहीं है। वह भी भगवान् विष्णु के अंश हैं। फिर; उनकी भी शिक्षा-दीक्षा उसी परिवेश में हुई है, जिसमें राम की। यही नहीं, वह राम के द्वारा भी समय-समय पर माया, जीव, जगत् आदि की चर्चा सुनते रहते हैं। अत: संसार की नश्वरता, जीव के वास्तविक स्वरूप, माया आदि की उन्होंने निषाद से जो चर्चा की है, वे उनको सहज भाव से ज्ञात तथ्य थे। उससे लक्ष्मण के वीर रूप में भी कोई विरोध-भाव नहीं दिखाई पड़ता। शस्त्र और शास्त्र का समन्वय भारतीय चरित्र की सामान्य विशेषता रही है।

किन्तु, इसके साथ ही; लक्ष्मण के चरित्र का एक कोमल पक्ष भी है। वह नवयुवक हैं। उनका भी विवाह राम-विवाह के साथ ही हुआ है। सद्य: परिणीता पत्नी का परित्याग सहज कार्य नहीं है। राम सीता के साथ हैं, अत: उनकी स्थिति भिन्न है। सीता-हरण के बाद वह पत्नी-वियोग में अत्यन्त कातर एवं व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। किन्तु लक्ष्मण की मनोदशा कैसी रही होगी? इसकी ओर कवि का ध्यान नहीं गया। वन जाते समय वह सभी से विदाई लेते हैं, किन्तु उर्मिला के पास तक नहीं जाते। वन में उनको माता-पिता, बन्धु-बान्धवों की याद तो सताती है, किन्तु उर्मिला को जैसे एकदम भूल गये हैं। वस्तुत: इस पक्ष की उपेक्षा करके कवियों ने लक्ष्मण के साथ न्याय नहीं किया है।

विवाह के बाद राम के दाम्पत्य-जीवन का सरस उल्लेख मिलता है, किन्तु लक्ष्मण के सम्बन्ध में मानस का कवि मौन है। शायद उसे भी यह बात खटकी होगी। अत: गीतावली के एक पद में उसने लक्ष्मण-उर्मिला-प्रणय का वर्णन किया है। पद इस प्रकार है–

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिए ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने।।
सुखमासार सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूपप्रेम-परिमिति न परत कहि, विथकि रही मति मौने।।
सोभा-सील-सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनिके नयन सफल भये, तुलसीदासहूके होने।।

(गीतावली– बालकाण्ड, १०७)

चौदह वर्ष की अवधि में उर्मिला की याद न आना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। शायद मानसकार लक्ष्मण के व्रती रूप को ही उद्घाटित करने में लगा था, इसीलिए उसने इस पक्ष को छोड़ दिया। वाल्मीकि के लक्ष्मण भी माता-पिता की याद करते हैं। उनको चिन्ता है कि कौशल्या, राजा दशरथ तथा सुमित्रा आज की रात तक जीवित रहेंगे या नहीं–

'कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम,
नाशंसे यदि जीवन्ति सर्वे ते शर्वरीमिमाम्।।

(अयोध्याकाण्ड– ५१/१४)

किन्तु; उर्मिला पर क्या बीत रही होगी? वह जीवित भी होगी या नहीं? इस ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। लक्ष्मण के चरित्र में यदि कहीं खटकने वाली कोई बात है, तो केवल यही। उर्मिला के प्रति यह निष्ठुरता, लक्ष्मण के सदय स्वभाव पर महत्त्वपूर्ण प्रश्नचिह्न है। राम-कथाकारों द्वारा इस पक्ष के प्रति उदासीनता का परिमार्जन 'साकेत' में हुआ है, यह सन्तोष की बात है।

सन्दर्भ-सूची

१. अहं तावन्महाराजे पितृखं नोपलक्षये।
२. भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघव: ।। वा.रा. (२/५८/३१)
३. डॉ. माताप्रसाद गुप्त– तुलसीदास, पृष्ठ २९३

●

मानस में गोस्वामी तुलसीदास का समाज-दर्शन

डॉ. कमल स्वरूप श्रीवास्तव* दीप नारायण श्रीवास्तव**

प्रस्तावना : यद्यपि श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीराम को सामाजिक-नैतिक मूल्यों के आदर्श का जीवंत प्रतीक बना दिया, परन्तु उसमें जीवन-मूल्यों का क्षेत्र सीमित नहीं है। उसमें वैश्विक दृष्टि है। मानव मात्र के कल्याण की कामना है। जीवन-मूल्य स्थान-काल के बन्धनों से मुक्त स्वस्थ समाज एवं कल्याणकारी राजनीति की स्थापना में सहायक एवं मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। गोस्वामी जी के यहाँ भक्ति का मतलब अपनी आँखें मूँदकर भगवान् के पीछे चल देना नहीं है। इनकी भक्ति पहले भगवान् को अपनी कसौटी पर कसती है, जाँचती है, परखती है और तब अपना सर्वस्व भगवान् के चरणों में सौंपती है। तुलसी के मापदण्ड पर भगवान् भी तभी भगवान् हैं, जब वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हैं। इसीलिए गोस्वामी जी ने श्रीराम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहा है। पुरुष+उत्तम=पुरुषोत्तम, अर्थात् पुरुषों में उत्तम, श्रेष्ठ। मनुष्य को सामान्यत: तीन श्रेणियों में बाँटा गया है– उत्तम, मध्यम और अधम। इन तीनों में जो उत्तम है, वही पुरुषोत्तम है। मध्यम और अधम श्रेणियों के परिमार्जन और परित्राण के लिये ही पुरुषोत्तमों की आवश्यकता पड़ती है। भगवान् श्रीराम के सम्बन्ध में 'मर्यादा पुरुषोत्तम' शब्द उनके व्यक्तित्व का, उनके चरित्र का और उनके समूचे जीवन का पर्याय माना जा सकता है। उनके जीवन-चरित्र से, उनके जीवन की अगणित घटनाओं से यह प्रमाणित है। मानवता के पथ-प्रदर्शन के लिए संसार में बहुत से दीपक जले, पर इनमें राम-नाम का दीपक अद्‌भुत एवं दिव्य है–

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजियार।।

श्रीरामचरितमानस के माध्यम से गोस्वामी जी का मूल उद्देश्य सामाजिक जीवन में उन मान्यताओं, मर्यादाओं एवं मूल्यों को स्थापित करना है, जिनसे समाज का मंगल हो तथा वह समृद्धशाली और शक्तिशाली बने।

मानस में गोस्वामी तुलसीदास का समाज-दर्शन :

उर्दू के मशहूर शायर शम्सी मिनाई ने लिखा है–

''मैं राम पर लिखूँ मेरी हिम्मत नहीं है कुछ,
तुलसी ने, वाल्मीकि ने, छोड़ा नहीं है कुछ,
फिर ऐसा कोई खास कलम्बर नहीं हूँ मैं,
लेकिन वतन की खाक से बाहर नहीं हूँ मैं!''

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास सिर्फ कवि ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के अग्रदूत थे। अपनी कालजयी रचना 'श्रीरामचरितमानस' से उन्होंने समाज को जोड़ने का कार्य किया है। वर्तमान में भारत एक विखण्डित समाज बन गया है। इसमें ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, शासक-शासित का भेद बढ़ता ही जा रहा है। आज के विषम परिवेश में तुलसी कृत रामचरितमानस के अनुशीलन से अनेकता में एकता के तत्त्वों को पहचाना जा सकता है और विखण्डित समाज को अखण्ड भारत के आदर्श से जोड़ा जा सकता है। समाज की वर्तमान स्थिति में राम की प्रासंगिकता

* एम.ए. (समाजशास्त्र–हिन्दी), एम.एड., पी-एच.डी., प्रवक्ता– एससीईआरटी, दिल्ली-११००२४
** एम.ए. (इतिहास–शिक्षाशास्त्र), नेट

पुन: दृष्टिगत हो रही है। रामचरितमानस के माध्यम से गोस्वामी जी का मूल उद्देश्य सामाजिक जीवन में उन मान्यताओं, मर्यादाओं एवं मूल्यों को स्थापित करना है, जिनसे समाज का मंगल हो तथा वह समृद्धशाली बने। रामचरितमानस में तुलसी ने 'रामराज्य' की कल्पना की और राम के रूप में राजा का आदर्श सामने रखा। इस राम के राज्य में लोग दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्त होंगे, तभी वह 'रामराज्य' कहलाएगा। 'दाण्डी मार्च' के दौरान, २० मार्च, १९३० ई. को हिन्दी पत्रिका 'नवजीवन' में 'स्वराज्य और रामराज्य' शीर्षक से एक लेख में गाँधी जी ने कहा था– ''स्वराज्य के कितने ही अर्थ क्यों न किए जाएँ, तो भी मेरे नजदीक तो उसका त्रिकाल सत्य एक ही अर्थ है, और वह है– रामराज्य। यदि किसी को 'रामराज्य' शब्द बुरा लगे, तो मैं उसे 'धर्मराज्य' कहूँगा। रामराज्य शब्द का भावार्थ यह है कि उसमें गरीबों की सम्पूर्ण रक्षा होगी, सब कार्य धर्मपूर्वक किए जाएँगे और लोकमत का हमेशा आदर किया जाएगा। ...सच्चा चिन्तन तो वही है, जिसमें रामराज्य के लिए योग्य साधन का ही उपयोग किया गया हो। यह याद रहे कि रामराज्य स्थापित करने के लिए हमें पाण्डित्य की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस गुण की आवश्यकता है, वह तो सभी वर्गों के लोगों– स्त्री, पुरुष, बालक और बूढ़ों तथा सभी धर्मों के लोगों में आज भी मौजूद है। दु:ख मात्र इतना ही है कि सब कोई अभी उस हस्ती को पहचानते ही नहीं हैं। सत्य, अहिंसा, मर्यादा-पालन, वीरता, क्षमा, धैर्य आदि गुणों का हममें से हरेक व्यक्ति, यदि वह चाहे, तो क्या आज ही परिचय नहीं दे सकता?''

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी जी ने 'गुरु-महिमा' की महत्ता की असंख्य स्थानों पर चर्चा की है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही ईश-वन्दना के बाद वे गुरु महाराज की वन्दना करते हुए कहते हैं कि–

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ।।
श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।

हर एक मंगलकार्य पर गुरु को दान देने और आशीर्वाद लेने का वर्णन उन्होंने मानस में किया है। राजा दशरथ की गुरु के प्रति भक्ति को वर्णित करते हुए कवि कहते हैं कि–

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं।।

भारतीय समाज में गुरु-शिष्य-सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ था। समाज में उसकी स्थिति सर्वोच्च थी। अत: गोस्वामी जी ने भारतीय समाज में गुरु को प्राप्त आदरभाव, गरिमा और प्रतिष्ठा को ही मानस में प्रतिबिम्बित किया है। उन्होंने राजा की नीतिज्ञता को व्यक्तिगत हित-साधना के लिए नहीं, वरन् प्रजा के कल्याण में नियोजित करना चाहा है, क्योंकि–

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।

समाज के विभिन्न वर्गों– पुरुष, स्त्री, नपुंसक, चर-अचर– सभी जीवों को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति ही लोक-कल्याणकारी है–

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्वभाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ।।

राजा को समाज के सभी वर्गों का पालन-पोषण विवेकपूर्वक करना चाहिए–

मुखिया मुखु सो चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक ।।

रामचरितमानस में उन्होंने अपने समय के शासक या शासन पर सीधे कोई प्रहार नहीं किया, लेकिन सामान्य रूप में उन्होंने उन शासकों को कोसा है, जिनके राज्य में प्रजा दु:खी रहती है। मानस के 'अयोध्याकाण्ड' में वह लिखते हैं–

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सोई नृप अवसि नरक अधिकारी ।।

तुलसीदास ने देखा था कि अपने युग में जनता पारस्परिक कलह, ईर्ष्या, द्वेष और अधर्म में फँसी हुई है। पति-पत्नी, भाई-भाई, राजा-प्रजा, परिवार-कुटुम्ब में छोटी-मोटी बातों पर कलह, विवाद और संघर्ष हो रहे हैं। इसीलिए तुलसीदास ने रामचरितमानस में परिवार के बीच आदर्श और मर्यादा को स्थापित करने का सुन्दर प्रयास किया है। चक्रवर्ती होने वाले राम वनवासी हो जाते हैं। लक्ष्मण अपने दाम्पत्य-सुख की बलि देकर भ्रातृ-सेवा का त्याग-दीप्त जीवनमार्ग अपनाते हैं और भरत महल में प्राप्त राज लक्ष्मी को तृणवत् मानकर भाई को ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। इन सभी घटनाओं का वर्णन इतना प्रभावी है कि आ. रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं– ''यदि भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र देखना हो, तो इस समाज में देखिए। कैसी परिष्कृत भाषा में, कैसी प्रवचन-पटुता के साथ प्रस्ताव उपस्थित होते हैं। किस गम्भीरता और शिष्टता के साथ बात का उत्तर दिया जाता है। छोटे-बड़े की मर्यादा का किस सरलता के साथ पालन होता है।''

श्रीरामचरितमानस में, राम-कैकेयी-संवाद में, कैकेयी की कठोर आज्ञा पर श्रीराम मीठी वाणी एवं शिष्टता से कहते हैं–

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोष निहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।

तुलसी ने परिवार में केवल आदर्श चरित्रों को ही नहीं, अपितु यथार्थ चरित्रों को भी प्रस्तुत किया है। कैकेयी-मंथरा ऐसे ही यथार्थ पात्र हैं, जो हर कुटुम्ब में मिल जाते हैं। राम-वनवास के बाद भरत सिंहासन ग्रहण नहीं करते। भरत-राम-मिलाप की हृदयस्पर्शिता 'मानस' के पाठकों को भाव-विभोर करती है। सीता का राम के साथ वन जाना, वहीं सीता-हरण के बाद राम द्वारा व्याकुल होकर सीता को ढूँढ़ना– ये सब वृत्तान्त आदर्श कुटुम्ब की निर्मिति दर्शाते हैं। 'मानस' में रचित आदर्श परिवार आज भी समाज व परिवार के विकास के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि सोलहवीं शती में था।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामराज्य' का जो वर्णन किया है, उसमें सामाजिक व्यवस्था ही अधिक प्रकट होती है, राजनीतिक व्यवस्था बहुत कम। इस रामराज्य में श्रीराम एकछत्र सम्राट् हैं और उनका शासन 'धर्म का शासन' है। उनको अखण्ड विश्वास था कि राज्य में जब सब लोग धर्म का पालन करेंगे, धर्मानुसार आचरण करेंगे; तभी सम्पूर्ण समाज का कल्याण होगा, शान्ति और सुख का चारों ओर विस्तार होगा–

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी ।।

श्रीरामचरितमानस में जिस धर्म-परायणता और निर्द्वन्द्व तथा परिपूर्णत: सुखी समाज का चित्र उभरा है, वह भविष्यत् युगों की अभीप्सा बना रहेगा। वह निश्चय ही; आज के प्रजातन्त्रीय समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र से आगे का चरण है। उसकी वर्णव्यवस्था कर्तव्य तथा मर्यादा पर आधारित है और वहाँ ईश्वर के प्रति आस्था को मेरुदण्ड बनाकर विवेक तथा विरति (त्याग) को प्रधानता मिली है।

श्रीरामचरितमानस का प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी विशेष गुण और विशेष पवित्र आचरण की प्रतिष्ठा करता है। राम का बाल्यकाल, गुरु-गृह-गमन, विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा, सीता-स्वयंवर, वन-गमन, राक्षस-संहार, सुग्रीव व विभीषण की मैत्री, श्रीहनुमान की भक्ति, रावण-वध और अयोध्या के राजा के रूप में श्रीराम आदि विभिन्न रूपों में गोस्वामी जी पग-पग पर हमें एक श्रेष्ठ आचरण और मर्यादित जीवन की शिक्षा देते हैं। श्रीराम का अपने कनिष्ठ भ्राताओं के साथ व्यवहार, पिता की आज्ञा का पालन, माताओं की समान भाव से सेवा, मित्रों का उचित सम्मान आदि अनेक उदाहरण मर्यादित आचरण का ही प्रतिबिम्ब हैं। सीता भारतीय महिलाओं के समक्ष ऐसा आदर्श उपस्थित करती हैं, जो उन्हें युगों तक प्रकाश प्रदान करता हुआ सदाचार की शिक्षा देता रहेगा। पातिव्रत-धर्म का ऐसा उज्ज्वल उदाहरण भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर नहीं दिखाई देता। भरत का त्याग भी भारतीय संस्कृति में अभूतपूर्व है। रामचरितमानस पढ़ने के बाद किसके मन में अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उदार भावना जाग्रत नहीं होगी या कौन-सी स्त्री अपने आचरण को सीता के समान शुद्ध एवं पवित्र नहीं बनाना चाहेगी? श्रीरामचरितमानस का प्रत्येक पात्र, प्रत्येक घटना और प्रत्येक कथा किसी-न-किसी विशेष गुण और शुद्धाचरण की शिक्षा देते हैं।

साहित्यकारों ने उत्कृष्ट रचना के दो प्रमुख मानदण्ड बताएँ हैं– एक, उसके स्वरूप का और दूसरा, श्रेष्ठत्व का। स्वरूप का आधार कथावस्तु, पात्र, घटना, प्रकृति, भाव, विचार, कल्पना, अभिव्यंजना आदि के सौन्दर्य पर आश्रित है, जबकि श्रेष्ठत्व का आधार है– लोकमंगल। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस के प्रारम्भ में ही 'स्वांत: सुखाय' को अपना उद्देश्य स्वीकारते हुए भी 'सर्वात: सुखाय' का उद्घोष किया है–

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।

गोस्वामी जी भगवान् राम के अनन्य भक्त होते हुए भी एक सच्चे तथा महान् समाज-सुधारक और लोकनायक थे। उन्होंने राम के चरित्र द्वारा जनता को आत्म-कल्याण और आत्मरक्षा का अमोघ मंत्र दिया। विभिन्न पात्रों के चरित्र-चित्रण से भिन्न-भिन्न आचरणों की शिक्षा प्रदान की, जो मानव-जीवन की उन्नति के लिए परम आवश्यक है।

'तुलसीदास : आज के सन्दर्भ में' नामक पुस्तक में युगेश्वर जी ने उचित ही कहा है कि राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए जिस उदात्त चरित्र की आवश्यकता है, वह रामकथा में है। मानस एक ऐसा वाग्द्वार है, जहाँ समस्त भारतीय साधना और ज्ञान-परम्परा प्रत्यक्ष दिख पड़ती है। दूसरी ओर; देश-काल से परेशान, दु:खी और टूटे मनों का सहारा तथा सन्देश देने की उसमें अद्भुत क्षमता है। आज भी करोड़ों मनों का यह सहारा है। 'रामचरितमानस' के सन्देश को केवल भारत तक सीमित-स्वीकृत करना इस महान् ग्रन्थ के साथ अन्याय होगा। 'रामचरितमानस' युगवाणी है। विश्व का एक ऐसा विशिष्ट महाकाव्य, जो आधुनिक काल में भी ऊर्ध्वगामी जीवनदृष्टि एवं व्यवहारधर्म तथा विश्वधर्म का पैगाम देता है। 'रामचरितमानस' अनुभवजन्य ज्ञान का 'अमरकोश' है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. गोस्वामी तुलसीदास– श्रीरामचरितमानस
२. कामिल बुल्के– राम कथा
३. डॉ. आशा बिंजोला– रामचरितमानस का दार्शनिक अध्ययन
४. रमेश कुन्तल मेघ– तुलसी : आधुनिक वातायन से, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली– १९६७

●

मध्यकालीन भक्त-संतों की राजनीतिक चेतना

डॉ. सन्तोष कुमार यादव*

शोध-सारांश : सल्तनत व मुगलकालीन इतिहास लगभग फारसी स्रोतों पर निर्भर रहा है। प्राय: इन फारसी ग्रन्थों के लेखक या तो दरबारी थे या यात्री-लेखक थे, जिनमें अधिकांशत: धार्मिक दृष्टिकोण से कुछ ज्यादा प्रभावित थे, जिससे इतिहास-लेखन भी प्रभावित हुआ। साथ ही; इन दरबारी लेखकों ने राजनैतिक घटनाओं, शासक वर्ग तथा दरबार आदि की घटनाओं पर ज्यादा ध्यान दिया, जिस कारण इनकी रचनाओं में जन-सामान्य की उपस्थिति नगण्य है। इसलिए मध्यकालीन समाज के अध्ययन के लिए इन भक्त-सन्तों की वाणियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं। भले ही साहित्यिक रचनाओं में इतिहास प्रत्यक्ष रूप में नहीं होता, लेकिन संस्कृति व समाज के द्वारा वह निरन्तर प्रतिध्वनित होता रहता है, जैसे– वेदों-पुराणों पर ही प्राचीन काल का अधिकांश इतिहास निर्भर है। इसी प्रकार, कल्हण की 'राजतरंगिणी' इतिहास और साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति है। रासो ग्रन्थों में इतिहास, साहित्य, मिथक तथा किंवदंतियों का अद्‌भुत मिश्रण है। भले ही इनमें ऐतिहासिक चेतना का अभाव है, फिर भी; इन्हें हम ऐतिहासिक महाकाव्य कहते हैं। इसी प्रकार, इन भक्त-सन्तों की रचनाएँ लोक-चेतना की अभिव्यक्ति हैं। इनकी जीवनी का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि वे जिस परिवेश व समय-काल में रचना कर रहे थे, उस काल व परिवेश की परिस्थितियों व समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे, क्योंकि इन समस्याओं को उन लोगों ने स्वयं भी झेला व भोगा था। ये लोग उच्च वर्ग या शासक वर्ग से पूरी तरह उपेक्षित थे। लेकिन ये लोग तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर कड़ी नजर रखे हुए थे और भली-भाँति अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहे थे। यही कारण है कि इनकी वाणियाँ तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक इतिहास को अभिव्यक्त करने में सक्षम दिखाई देती हैं, हालाँकि इनकी कुछ सीमाएँ अवश्य रही हैं। इन भक्त-सन्तों की रचनाओं में तत्कालीन शोषणकारी व्यवस्था, शासक वर्ग व साहूकारों की शोषणकारी व दमनात्मक नीतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है। साथ ही; शासक वर्ग की विलासिता, जनसामान्य की बेगारी की स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। इनकी रचनाओं के अवलोकन से यह भली-भाँति स्पष्ट होता है कि इन भक्त-सन्तों की रचनाओं को थोड़ी सावधानी के साथ, ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में, इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीज-शब्द– इतिहास-लेखन, भक्ति साहित्य, कबीर, रैदास, तुलसीदास, राजनीतिक विचार, आर्थिक विचार।

प्राचीन काल से भारतीय जनमानस की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त होना रहा है। आध्यात्मिकता के साथ-साथ भौतिक जीवन के प्रति आसक्ति इतनी प्रबल प्रतीत नहीं होती है। हालँकि प्राचीन भारतीय मनीषियों और चिंतकों ने आध्यात्मिकता और भौतिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने का एक समुचित उपाय हमेशा से किया है।

इन मध्यकालीन भक्त-सन्तों की वाणियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये लोग मात्र अध्यात्म-लोक में विचरण नहीं कर रहे थे, बल्कि सामाजिक दायित्व का भी भली-भाँति निर्वहन कर रहे थे। वे दरिद्रता, अकाल, भुखमरी, शासकों के निरंकुश अत्याचार तथा सामाजिक-आर्थिक

* विभागाध्यक्ष– इतिहास, सावित्री बाई फुले राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया-चन्दौली।

अव्यवस्था को भी विशेष रूप से रेखांकित कर रहे थे। इस भक्त-सन्तों की कविता देश और काल के यथार्थ पर उगी हुई कविता है। इन भक्त-सन्तों ने अपनी भाववादी द्वन्द्वात्मक दृष्टि से उस काल की आर्थिक व राजनीतिक स्थिति व उसकी विषमताओं को बेजोड़ ढंग से उजागर व चित्रित किया है।

उस काल में दो वर्ग स्पष्ट रूप से थे– शासक और शासित। दोनों की जीवन-शैली में जमीन-आसमान का फर्क था। जहाँ शासक वर्ग अत्याचार व भोग-विलास में निमग्न था, वहीं शोषण की चक्की में पिस रही आम जनता के पास खाने तक को नहीं था। यहाँ तक कि वे लोग अपने बच्चों तक को बेंच रहे थे, जिसका मार्मिक चित्रण कई भक्त-सन्तों ने किया है। कबीर एक पद में बच्चों की बिक्री की चर्चा करते हैं– ''कोई लरिका बेचई, लरिकी बेंचत कोई।'' इसी प्रकार, तुलसीदास भी पेट पालने के लिए बच्चों की बिक्री का उल्लेख करते हैं– ''पेट ही को बेंचत, बेंचत बेटा बेटी को।'' कबीर के एक अन्य पद से उच्च वर्ग व निम्न वर्ग की स्थिति का स्पष्ट बोध होता है–

काहू पहिं मोती मुकताहल, काहू ब्याधि लगाई।
काहू दीन्हाँ पाट पटंबर, काहू पलंगा निवारा।
काहू गरी गूदरी नांही, काहू सेज पयारा।[१]

इस प्रकार, समाज में एक घोर विषमता व्याप्त थी। इसी क्रम में रैदास, कबीर, तुलसीदास की रचनाओं का क्रमबद्ध विश्लेषण किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि वे तत्कालीन आर्थिक व राजनीतिक चेतना से सर्वथा युक्त थे और उनकी इस पर पैनी दृष्टि थी।

रैदास ने तत्कालीन समय की मुख्य समस्या 'अन्न' को प्रमुखता से उठाया है। उनके अनुसार, उस समय साधारण जनता के लिए 'अन्न' ही आवश्यक वस्तु थी। इसलिए वे ऐसा राज्य चाहते थे, जहाँ सबको खाने को अन्न मिल सके– 'ऐसा चाहौ राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न।'[२] वे गरीबी को एक अभिशाप मानते हैं। वे कहते हैं– 'दारिदु देखि सभ को हसै ऐसी दसा हमारी।' 'साथ ही; वे बताते हैं कि किस तरह भूमिहीन कृषक दासता की त्रासदी झेलने के लिए विवश थे– **माधौ! तूं मम ठाकुर , हौं तुझ सेवगु।। जनम-जनम तैं हौं तुझ सेवानुग।**[३]

रैदास उस काल के आर्थिक शोषण व अत्याचार से भी परिचित थे। कृषकों की गरीबी का मुख्य कारण कर की ऊँची दरें थीं। अत: वे एक ऐसा आदर्श राज्य चाहते थे, जहाँ किसी भी तरह का शोषण या भेदभाव न हो। उनका वह राज्य उनका 'बेगमपुरा' था, जिसकी चर्चा उन्होंने एक पद में की है–

अब खूब बतन घर पाया, ऊँचा खेर सदा मन भाया।
बेगमपुरा सहर को नाऊँ, दुख अंदोह नहीं तिहि ठाऊँ।
ना तसबीस खिराजु न मालू, खौफ न खता न तरसु जुवालू।
कायमु दायमु सदा पातिसाही, दाम न साम एक सा आही।
आबादानु सदा मशहूर, उहाँ गनी बसै मामूर।
सैर करैं ज्यों ज्यों मन भावैं, हरम महल मोहि को अटकावैं।
कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सो मीत हमारा।[४]

इसी प्रकार, कबीर की रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कबीर हर समय 'अलख' को लखने तथा 'निराकार' का आकार स्पर्श करने की दीवानगी की स्थिति में नहीं रहे। वह एक

सजग युग-द्रष्टा भी थे तथा अपने आस-पास घटित सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक हलचलों से पूर्णतया अवगत थे। कबीर की रचनाओं पर आध्यात्मिक रहस्य की जो सुनहली चादर बिछी है, उसके नीचे उस युग का इतिहास अँगड़ाई लेता नजर आता है।[५] यही कारण है कि कबीर गरीबों और कृषकों की त्रासदी व शोषण को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ तत्कालीन अर्थव्यवस्था, यथा– कृषि, व्यापार, वाणिज्य तथा राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख एक इतिहासकार की भाँति करते हैं, भले ही उस पर अध्यात्म का आवरण हो।

यह उनका इतिहास-बोध ही है कि वे समाज के शासक वर्ग व शोषित वर्ग के बीच के अन्तर को देख पाते हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त असमानता को देखकर ही कहते हैं कि अमीरों के द्वारों पर नौबत बजती है, वे मँहगे कपड़े व आभूषण धारण करते हैं, जबकि निर्धन व्यक्ति मिट्टी की टूटी-फूटी झोपड़ी में रहने को मजबूर है– **'इब न रहूँ माटी के घर मैं/ छिनहर घर अरु झिनहर टाटी / घन गरजा कंपै मेरी छाती।'**[६] वे शासक वर्ग के स्वामीपन व शोषक-वृत्ति को भी चित्रित करते हैं कि किस तरह सिर्फ पेट के लिए गरीबों को दासत्व का जीवन जीना पड़ता है–

यही उदर कै कारनें जग जाँच्याँ निस जाम।
स्वामीपणों जु सिरि चढ्यो, सर्‌यो न एकौ काम
स्वामी होना सोहरा, दोहरा होना दास।

कबीर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हैं और बताते हैं कि शासकों की निरंकुशता व शोषक-वृत्ति के कारण किसानों की स्थिति दयनीय थी– **'राजा देश बड़ो परपंची रइयत रहति उजारी।'**[७] कबीर ने कृषकों से जबरदस्ती बेगारी लेने के लिए अपनी पीड़ा व्यक्त की है। कबीर किसानों की खेती नष्ट-भ्रष्ट होने से दु:खी होते हैं। वे बताते हैं कि ठाकुर, पटवारी, यहाँ तक कि एक दीवान भी किस तरह से कृषकों का शोषण व दमन करते हैं, जिस कारण किसान गाँव छोड़नें के लिए बाध्य होते हैं–

अब न बसूँ इहिं गाउं गुसाई।
तेरे नेवगी खरे सयांने हो राम।।
गाउं कु ठाकुर खेत कु पै, काइथ खरच न पारै।
जोरि जेवरी खेत पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो राम।।
खोटो महतो विकट बलाही, सिर कसदम का पारै।
बुरौ दिवांन दादि नहिं लागे, इक बाँधे इक मारे हो राम।।[८]

कबीरदास बताते हैं कि शासक भी विलासिता में डूबा रहता था तथा सदैव सुन्दरियों से घिरा रहता था– **'राजपाट अरु छत्र सिंथासन, बहु सुन्दरि रमना।** साथ ही; कबीरदास बताते हैं कि शासक सामान्य जनता की पहुँच से दूर था, क्योंकि वह महल में मनोविनोद में मग्न सैकड़ों सेवकों, हजारों सिपाहियों व मन्त्रियों से चतुर्दिक घिरा रहता था–

तहाँ मो गरीब की को गुदरावै।
मजलिसि दूरि महल को पावै।।
सन्तरि सहस सलार हैं जाके, सवा लाख पैगम्बर ताके।

कबीर ने शोषक व विलासी शासक वर्ग के शोषणकारी व विलासी प्रवृत्ति की घोर आलोचना की है तथा उन्हें चेतावनी भी देते हैं कि यह राजवैभव शाश्वत नहीं है, बल्कि क्षणिक है। अत:

चेत जाओ।

कबीरदास ने शासक वर्ग के विलासितापूर्ण जीवन व शोषणकारी प्रवृत्ति को चित्रित करने के साथ-साथ अपनी आर्थिक दृष्टि को भी व्यक्त किया है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने कृषि-व्यवस्था व व्यापार/वाणिज्य पर भी प्रकाश डाला है। कबीरदास ने कृषकों पर करों के भार तथा शासक वर्ग के शोषण व अत्याचार से पीड़ित किसानों की दशा के अतिरिक्त कृषि-भूमि, सिंचाई के साधन, फसल की सुरक्षा व कृषि-उपकरणों की भी चर्चा की है। कबीर कृषि की भूमि के प्रकारों से परिचित थे। वे कालर भूमि (ऊसर या बंजर) का उल्लेख करते हैं।[९] भारत वर्ष में कृषि-भूमि की सिंचाई का मुख्य साधन वर्षा का जल ही था, लेकिन उसके अलावा भी सिंचाई के अन्य साधन, जैसे– रहट, ढेंकुली, कुएँ आदि थे। कबीर की रचनाओं में सिंचाई में प्रयुक्त साधन– अरघट्ट अथवा अरहट, रहट तथा ढेंकली का प्रयोग हुआ है–

बाँधे ज्यूँ अरहट की टीडरी, आवत जात बिगूते।[१०]
नैनाँ नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।[११]
सुरति ढेकुली लेज लौ, मन नित ढोलन हार।
कंवल कुआ में प्रेम रस, पीवै बारम्बार।।[१२]

कबीर ने खेत-खलिहान के साथ-साथ नदियों का भी उल्लेख किया है– **'गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहाना।'** इसके साथ ही; कवीरदास पशुओं व चिड़ियों द्वारा फसलों के चरने या नष्ट करने का भी उल्लेख करते हैं।[१३] इसी प्रकार, कबीरदास ने खेत जोतने वाले हरवाहा, जुताई के पश्चात् वृष्टि से बहने से बचाने के लिए खेत में मेंड़ व बाड़ तथा बैलों से खेत की जुताई का भी उल्लेख किया है–

गगन घटा घहरानी साधो, गगन घटा घहरानी।
आपन आपन मेंड़ सम्हारो, बह्यो जात यह पानी।
मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निरबानी।
दुविधा दूब छोल कर बाहर, बोवो नाम की धानी।।[१४]

इसी तरह, कबीर की रचनाएँ कृषि व कृषकों के अतिरिक्त विविध व्यवसायों में संलग्न लोगों के जीवन पर यथार्थ प्रकाश डालती हैं। चूँकि कबीर स्वयं एक जुलाहा थे और वस्त्र बुनने का कार्य करते थे, अत: उनकी रचनाओं में वस्त्र-निर्माण-प्रक्रिया का वर्णन अन्य उद्योगों की अपेक्षा अधिक विस्तार से मिलता है। उनके एक पद में कपड़ा बुनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत की गई है–

मन मोरा रहँटा, रसना पिउरिया।
हरि कौ नाउं लै काति बहुरिया।।
चारि खुंटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई।
छौ मास तागा वरिस दिन कुकुरी, लोग बोलैं भल कातल वपुरी।
कहै कबीर सूत भल काता, रहटा नहीं परम पद दाता।[१५]

कबीर स्वयं करघे पर बैठ कर वस्त्र बुनते थे, जैसा कि उनके एक पद से स्पष्ट होता है–

खाड़ बुणै कोली मैं बैठी, भ्वैं खूंटा मैं गाढ़ी।
ताणैं बाणैं पड़ी अनवासी, सूत कहै बुन गाढ़ी।।[१६]

उस समय बारीक व सुन्दर सूत अधिक मूल्य पर बिकता था, जैसा कि कबीर कहते हैं–

'नाँन्हाँ काती चित दे, मँहगे मोलि बिकाइ।' इस पद से तत्कालीन अर्थव्यवस्था के एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की ओर ध्यान आकृष्ट होता है कि वस्त्र-निर्माता अब पूँजी के बढ़ते प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उत्पादन के समय इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि उनका कपड़ा महँगे दाम में बिके। कबीर के 'रहटा' तथा 'चरखे' शब्दों के प्रयोग वाले पदों से यह भी ज्ञात होता है कि वस्त्र-निर्माण एक घरेलू उद्योग के रूप में था तथा उसमें प्राय: स्त्रियाँ संलग्न थीं। जैसे– 'मन मेरौ रहटा' वाले पद में सास के निर्देशन में बहुरिया (नई बहू) सूत काट रही है– **'सासू कहै काति बहू ऐसे'**, क्योंकि बिना सूत काते जीवन-यापन सम्भव नहीं है– **'बिन कातै निसतरिवो कैसे।'**[१७] सम्भवत: यह उक्ति कबीर से ही सम्बन्धित है, क्योंकि कबीर परिवार का पालन-पोषण स्वयं बाजार में कपड़ा बेंचकर करते थे। एक स्थान पर वे स्वीकार करते हैं कि उनका कृषि-कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था– **'नाऊँ मेरे खेती, नाऊँ मेरे बारी।'**[१८] कबीर के पदों से लक्षित होता है कि बनारस कमीन श्रेणी के कपड़े, पट तथा महीन कपड़े की देश की प्रसिद्ध मण्डी थी। यह अन्य समकालीन स्रोतों से भी स्पष्ट होता है। कबीर ने कपड़े के बाजार में दलालों व बिचौलियों की उपस्थिति का भी जिक्र किया है। कबीर ने बुनकरों की विपन्नता व आर्थिक संकटों पर भी प्रकाश डाला है कि किस प्रकार आर्थिक संकट से उबरने के लिए ऋण व बक्कालों (हिन्दू बनिया) के जाल में फँस जाते थे। कबीर ने यहाँ उनकी विपन्नता का वर्णन यहाँ तक किया है कि कभी-कभी बुनकर भूख मिटाने के लिए अपने बुनाई के उपकरण भी बेंच डालते थे– **'पाई की तुरियाँ बेंचि खाई री।'**[१९] कबीर बेगारि का भी उल्लेख करते हुए कहते हैं– **'की बेगारि न भाड़ा पाया।'** कबीर ने जुलाहे का कर्म छोड़कर अन्य कार्य करने की पुष्टि की है।[२०] कबीरदास ने शराब बनाने की प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है। कबीर के पदों से ज्ञात होता है कि उस समय में मदिरा बनाने का प्रचलन बड़े पैमाने पर था। मदिरा प्राय: गुड़, महुआ, चावल, जौ एवं गन्ने के प्रयोग से तैयार की जाती थी। कबीरदास ने शराब या मदिरा बनाने व बेंचने वालों के लिए 'कलाल' या 'कलाली' (कलवारिन) आदि शब्दों का प्रयोग किया है–

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, मांगे सीस कलाल।।

या कि **यह माया जैसे कलवारिन, मद पियाई राखै बौराई।**

इसी प्रकार, कुम्हार व लुहार का ग्रामीण जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था, जिसकी पुष्टि कबीर वाणियों से होती है। उनकी वाणियों में कुम्हार व लुहार के कार्यों का उल्लेख मिलता है–

पाका कुलस कुंभार का, बहुरि न चढ़िहैं चाकि।

या, **धवणि धवंति रहि गई, बुझि गए अंगार।**
अहरनि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चला लुहार।।[२१]

कबीरदास ने सिकलीगर (अस्त्रों-शस्त्रों पर धार व बर्तनों को चमकाने का कार्य करने वाला) का भी उल्लेख किया है– **'सत्गुरु ऐसा चाहिए, जस सिकलीगर होइ।'** कबीरदास ने– 'बाढ़ी (बढ़ई) आवत देखि करि, तरुवर डोलन लाग'– वाले पद में बढ़ई का उल्लेख किया है। कबीरदास जौहरी, रत्न व आभूषण के उद्योगों की भी सूचना देते हैं। इसके अतिरिक्त; कबीर ने तेली, तम्बोली, नाई, धोबी आदि वर्गों व उनके कार्यों का भी उल्लेख किया है। कबीर के एक पद से विभिन्न जातियों तथा उनके कार्यों पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें वे कहते हैं कि–

कुम्हार होकर बर्तन गढ़ूँगा। धोबी होकर कपड़ों की मैल धोऊँगा।।

चमार बनकर चमड़ा रंगूँगा। तेली बनकर कोल्हू चलाऊँगा।।
किसान बनकर बैल चलाऊँगा। छत्री (क्षत्रिय) होकर तलवार चलाऊँगा।।
नाई बनकर बाल मूड़ूँगा। बढ़ई होकर लकड़ी काटूँगा।।
धुनिया होकर रुई धुनूँगा। बधिक होकर पशु मारूँगा।।
बनिजारा (बंजारा) बनके व्यापार करूँगा। जुआ खेलकर संसार हार जाऊँगा।।
केवट बनकर नाव चलाऊँगा।[२२]

कबीरदास मध्यकालीन व्यापार, वाणिज्य के बारे में भी सूचना देते हैं। मध्यकाल में व्यापार, वाणिज्य उन्नत दशा में था। वस्तुओं का आयात-निर्यात जल व स्थल– दोनों मार्गों से होता था। जल मार्ग का व्यापार मुख्यत: बेड़ा (नाव) के द्वारा होता था, जबकि स्थल मार्ग का व्यापार बैलगाड़ी आदि माध्यमों से होता था। कबीरदास ने बेड़े का उल्लेख करते हुए कहा कि– **'भेरा देख्या जरजरा, उतरि पड़े फरकि।'**

छोटे व्यापारी प्राय: अपनी सामग्री बैलों पर लादकर माल ले जाते थे तथा बेंचते थे। व्यापार में कभी-कभी घाटा भी होता था तथा साथ ही; सरकारी कर्मचारियों का शोषण भी सहना पड़ता था।[२३] कबीर के समय में स्थानीय व्यापार मुख्यत: हाट-बाजारों के माध्यम से होता था। दुकानदारों को सामान्यत: बनिया कहा जाता था, जैसे– **'बनिये हाट पसारा, सब जग को सिरजनहारा।'** या कि– **'सांई मेरा बनियाँ, सहजि करै ब्यौपार।'** कबीरदास के कई पदों से उस समय प्रचलित साहूकारी या महाजनी-प्रथा के प्रचलन का पता चलता है। उस समय यह व्यवस्था बड़े पैमाने पर व्याप्त थी। उनके पदों से ज्ञात होता है कि व्यापारी ब्याज पर पैसे लेते थे। हालाँकि कबीरदास ब्याज के रुपये लेने व साहूकारों से ली गई पूँजी को व्यर्थ में खर्च करने की आलोचना करते हैं। कबीरदास ने वस्तुओं के व्यापार के साथ-साथ गुलामों व दासों के व्यापार का भी उल्लेख किया है। कबीरदास ने धन-संचय की भूख की तीखी आलोचना की है– **'कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होई। सीस चढ़ाये पोटली, लै जात न देख्या कोई।।'**

उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर समकालीन राजनीतिक स्थिति व अर्थव्यवस्था की प्रामाणिक सूचना प्रदान करते हैं, जो आध्यात्मिक सन्दर्भों से शवलित है। इस शैवाल से विचार-पक्ष को अलग करके देखने से ज्ञात होता है कि कबीर समकालीन राजनीतिक व आर्थिक मर्म को पूरी तरह समझ रहे थे। ऐसे में; कबीर साधना की रहस्यात्मकता के साथ-साथ राजनीतिक व आर्थिक इतिहास के भी पट खोलते दिखाई देते हैं।

तुलसीदास ने भी अपने युग में व्याप्त दरिद्रता, अकाल, भुखमरी, कृषि-व्यवस्था, व्यापार, वाणिज्य आदि को विशेष रूप से रेखांकित किया है। उन्होंने अपने देश-काल की विषमता का चित्रण कलियुग के बहाने किया है। उन्होंने कर-व्यवस्था, सैन्य-व्यवस्था व युद्ध आदि का वर्णन किया है तथा कपटी-कुटिल भूपों की निन्दा की है। उन्होंने अपने समय में पड़ने वाले दुर्भिक्ष– अकाल व भुखमरी का यथार्थ चित्रण किया है, जिसकी पुष्टि अन्य समकालीन ग्रन्थों से होती है। इससे उनका इतिहास-बोध परिलक्षित होता है। तुलसीदास अपनी रचनाओं– रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि में तत्कालीन अर्थव्यवस्था व राजनीतिक स्थिति का यथार्थ वर्णन करते हैं।

तुलसीदास ने तत्कालीन आर्थिक जीवन, कृषि, स्थानीय लघु उद्योगों, व्यापार, वाणिज्य आदि का प्रत्यक्ष-अपरोक्ष रूप से वर्णन किया है। मध्यकाल में कृषि ही आर्थिक तन्त्र का मूल

आधार थी। राज्य की आय का मूल स्रोत खिराज (भू-राजस्व) ही था। तुलसीदास के कृषि सम्बन्धित उल्लेख व उपमाओं से स्पष्ट होता है कि कृषि ही भारतीय जनमानस की आजीविका का मुख्य आधार थी– **'खेती, बनि, बिद्या, बनिज, सेवा सिलिप सुकाज।'**[२४] तुलसीदास ने भूमि के तीन प्रकार बताए हैं– उत्तम, मध्यम व निम्न– **'तुलसी कृषि लखि जानिबो, उत्तम, मध्यम, नीचे।।'**[२५] अन्य समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों (जैसे-आइना-ए-अकबरी) से भी स्पष्ट होता है कि अकबर के काल में पोलज (प्रतिवर्ष कृषि योग्य भूमि) को उत्तम, मध्यम व निम्न श्रेणी में बाँटा जाता था। तुलसीदास ने एक पद में, प्रतीकात्मक रूप में, ऊसर भूमि की भी चर्चा की है– **'ऊसर बरषै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा।'** तुलसीास ने 'मवास' (ऐसी जागीर या भूमि, जहाँ कर वसूलना कठिन होता था, क्योंकि वहाँ की जनता विद्रोही स्वरूप धारण कर लेती थी) शब्द का इस्तेमाल किया है– **'मनहु मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज।'**[२६] तुलसीदास ने 'पाही' खेती का उल्लेख किया है तथा उसको दु:खदायी बतलाया है। 'पाही' किसान को 'पाहीकाश्त' भी कहा गया है। यह 'खुदकाश्त' के विपरीत है। यह दूसरे की जमींदारी से गाँव में खेती करने के लिए आया हुआ कृषक होता था। हालाँकि कुछ समय पश्चात् पाहीकाश्त, खुदकाश्त हो सकता था। पाही किसानों की स्थिति गाँव में हीन समझी जाती थी।[२७] तुलसीदास ने भारतीय कृषि को वर्षा पर आधारित बताया है। उन्होंने अल्पवर्षा से पड़ने वाले अकालों का मार्मिक वर्णन किया है। साथ ही; अत्यधिक वर्षा से भी खेतों को होने वाले नुकसान का उल्लेख किया है। वे बताते हैं कि अत्यधिक वर्षा से खेतों की क्यारियाँ टूट जाती हैं– **'महावृष्टि चलि फूटि कियारी।'** तुलसीदास ने अनेक खाद्यान्नों की भी चर्चा की है। इसी क्रम में; वे बतलाते हैं कि धान की खेती के लिए अधिक वर्षा की जरूरत होती है– **'देव न बरषहिं धरनी पर, ये न जामहिं धान।'** उन्होंने खाद्यान्नों को दो वर्गों में बाँटा है– (सुनाज व कुनाज)– 'सुधा सुनाज कुनाज फल, आम असन सम जानि।'[२८] हालाँकि तुलसीदास इन वर्गों में आने वाले खाद्यान्नों के बारे में नहीं बतलाते, लेकिन शासक को इसी के अनुसार न्यायपूर्वक कर वसूलने की सलाह देते हैं। तुलसीदास ने कर-वसूली के सम्बन्ध में कहा है कि कृषकों से खाद्यान्नों व बागानों पर उनकी फसल के पैदावार के अनुसार ही करों का निर्धारण करना चाहिए–

पाकि पकये बिटप दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेस त्यों, करि बिचारि मन बीचि।[२९]

वे कहते हैं कि फसलों के तैयार होने के पश्चात् ही कर-वसूली होनी चाहिए, जिससे कृषकों को कर अदा करने में सुविधा हो। वे कहते हैं कि फसल के बिना पके, भू-राजस्व की वसूली करने वाला शासक मध्यम श्रेणी का तथा अकाल या सूखे की स्थिति में लगान वसूलने वाला शासक निम्न श्रेणी का होता है। उन्होंने 'कवितावली' में देवताओं व राजाओं को स्वार्थी बताया है और कहते हैं कि एक को बलि से मतलब है, दूसरे को कर से– **'बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानव देव।'**[३०] इस दोहे से स्पष्ट है कि लगान-वसूली में कृषकों को राज कर्मचारियों की कठोरता व शोषण का शिकार होना पड़ता था। सम्भवत: इसी शोषणकारी प्रवृत्ति के कारण ही वे राजस्व सम्बन्धित अधिकारियों-कर्मचारियों को 'भूमि चोर' के पद से विभूषित करते हैं– **'वेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए।'**

इसी के साथ ही; तुलसीदास ने सामान्य जन की दरिद्रता पर भी प्रकाश डाला है। वे स्वयं इस अभिशाप से ग्रस्त थे, तभी वे महसूस कर पा रहे थे कि– **'नहिं दरिद्र सम दुख जग माही।'**

वे भूख की व्याकुलता को दावानल से भी भयंकर बताते हैं– **'आगि बड़वागि तें बड़ी है आग पेट की।'** वे आमजन को गरीबी से हाहाकर करते हुए देखते हैं– **'दारिद दसानन दबाई दुनी दीबबन्धु दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी।'** तुलसीदास के इन पदों से स्पष्ट होता है कि आम जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

तुलसीदास ने आम जनता के इस त्रासदीपूर्ण जीवन को और कष्टकारी बनाने वाले अकाल व महामारी का भी वर्णन किया है, जिससे समकालीन समाज की आर्थिक विषमता व दुरावस्था पर प्रकाश पड़ता है। वे कहते हैं कि बार-बार अकाल पड़ता है और इसमें सभी लोग अन्न के बिना मरते हैं–

''कलि बारहिं बार दुकाल परे, बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे।
येह निसिचर दुकाल सम अहई, कवि कुछ देस परना अव चहई।।

वे बताते हैं कि ऐसी दुरावस्था में लोग जीविकाविहीन हो गये हैं। किसानों के पास खेत नहीं है। यहाँ तक कि भिखारी को भीख तक भी नहीं मिल रही है–

''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीधमान सोच बस,
कहैं, एकएकन सौं 'कहाँ जाई, का करी' ।।[३१]

इस पद से जहाँ सामान्य जन की कष्टकारी स्थिति पर प्रकाश पड़ता है, वहीं अकाल आदि की स्थिति में राज्य की उदासीनता पर भी प्रकाश पड़ता है। वे बताते हैं कि यह त्रासदी इतनी भयानक है कि लोग कोई भी धरम-अधरम, ऊँच-नीच काम करते हैं। यहाँ तक कि लोग अपने बच्चों को भी बेंच दे रहे हैं। इस दरिद्रता-अकाल के साथ-साथ बढ़ते कुशासन का भी वे उल्लेख करते हैं–

दिन-दिन दूनौ देखि दारिदु, दुकालु, दुखु,
दुरितु, दुराजु सुख-सुकृत सकोच है।

इससे स्पष्ट है कि कुशासन या राज्य की उदासीनता के कारण यह समस्या भयावह रूप ले लेती थी। तुलसी द्वारा वर्णित इस भयावह अकाल के वर्णन की पुष्टि तत्कालीन लेखकों (यथा– बदायुँनी तथा अबुल फजल) की रचनाओं से भी होती है।

तुलसीदास की रचनाओं में तत्कालीन समय में होने वाले व्यापार-वाणिज्य का भी चित्रण हुआ है। व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र नगर हुआ करते थे, जहाँ के हाटों व बाजारों में वस्त्र, बहुमूल्य वस्तुएँ, खाद्यान्न आदि का क्रय-विक्रय तथा रुपये-पैसों का लेन-देन आदि होता था।[३१] तुलसीदास रामचरितमानस में बजाज (कपड़े का क्रय-विक्रय करने वाले), सर्राफ (आभूषण का कार्य करने वाले), वणिक (व्यापारी वर्ग) आदि का उल्लेख करते हैं, जो नगरों में अपनी विभिन्न वस्तुएँ ले आकर बेंचते हैं– **'बैठे बजाज सर्राफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेरत।'** एक पद में वे कहते हैं– **'धनिक बनिक बर धनद समाना, बैठे सकल बस्तु ले नाना।'** तुलसीदास ने मध्यकाल में प्रचलित 'दाम' (ताँबे के सिक्के) का उल्लेख कई बार किया हैं– **'तौ तु दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो।।'**[३२] तुलसीदास रामचरितमानस में अनेक प्रकार के वस्त्रों– ऊनी, सूती, रेशमी आदि का उल्लेख करते हैं– **'चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती।'** या **'कंबल बसन बिचित्र पटोरे, भाँति-भाँति बहु मोल न थोरे।'** इससे पता चलता है कि

उस समय वस्त्र-उद्योग उन्नत दशा में था। वे वस्त्रों पर जरी के काम का उल्लेख करते हैं– **'सुन्दर बदन सिर पगिया जरकसी।'**[३३] जिससे उन्नत कामदानी पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का भी उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह उद्योग भी उन्नतशील अवस्था में था। उन्होंने रंगरेजी, पशुपालन, पत्थर तोड़ने का काम, सुगंधित द्रव्यों का काम, कुम्भकारी, काष्ठकर्म आदि का भी उल्लेख किया है। उन्होंने महाजनी पेशा का भी उल्लेख किया है। उन्होंने जमानत रखकर ब्याज पर ऋण देने के वर्णन के साथ-साथ ऋण चुकाने में असमर्थ व्यक्ति से पत्र या दस्तावेज लिखवाने का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है।[३४] मध्यकाल में व्यापार थल मार्ग के भूमिभूमिसाथ-साथ जल मार्ग के द्वारा भी होता था। तुलसीदास ने नाव, जहाज तथा बेड़े के द्वारा व्यापारभूमि का उल्लेख किया है।[३५] उन्होंने मानस में भी छोटी व बड़ी– दोनों तरह की नौकाओं व जहाज द्वारा यात्रा का उल्लेख किया है, जिनमें यात्रा के साथ ही व्यापार भी होता था। तुलसीदास ने लूटमारों व बटमारों का भी उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि यात्रा-मार्ग डाकुओं व लुटेरों से पूर्णतया सुरक्षित न थे। इस प्रकार, स्पष्ट होता है कि तुलसीदास की रचनाओं से तत्कालीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

यद्यपि तुलसीदास का प्रतिपाद्य विषय राजनीति नहीं था, फिर भी; अपने आराध्य राम का जीवन-आख्यान प्रस्तुत करने के कारण उन्होंने विस्तार से राजा तथा उससे सम्बन्धित तत्त्वों का उल्लेख किया है। साथ ही; तत्कालीन राजनीतिक वातावरण का प्रभाव भी उनके राजनीतिक विचारों पर पड़ा है, जो अनेक स्थानों पर परिलक्षित होता है। उनके एक पद– **'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सोनृप अबसि नरक अधिकारी'** से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में राज्य का कल्याणकारी स्वरूप होना चाहिए। वे कहते हैं कि राजा मुख की भाँति होना चाहिए और मुख की ही भाँति समाज के सभी वर्गों का कल्याण करना चाहिए–

मुखिया मुख सों चाहिए, खान पान को एक।
पालैं पोषै सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।[३६]

लेकिन वे बताते हैं कि इस समय गोंड़ व गँवार राजा और यवन महिपाल हैं। राजनीति साम, दाम और भेद पर आधारित न होकर केवल कराल दण्ड पर आधारित है–

गोंड़ गँवार नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल।।[३७]

तुलसीदास ने एक योग्य शासक की तुलना सूर्य से की है, जो कर रूपी जल को सोखकर वृष्टि के समय कोई भेद-भाव नहीं करता। इसी प्रकार, राजा को भी कोई भेद-भाव नहीं करना चाहिए। यहाँ पर तुलसीदास का यह विचार अबुल फजल के 'फरें-इजीदी' से साम्यता रखता दिखाई देता है– **''बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोई। तुलसी प्रजा सुभाग तें, भूप भानु सो होई।।''** एक दोहे में वे कहते हैं–

काल बिलोकत ईस-रुख, मानु काल अनुहारि।
रविहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं बिचारी।।[३८]

लेकिन कलियुग-वर्णन में वे कहते हैं कि ऐसी स्थिति हो गयी है– सन्यासी धनी हैं और गृहस्थ दरिद्र। राजा पापी हो गए हैं। वे प्रजा को दण्डित करते हैं और अक्सर उनकी दुर्दशा करते हैं–

तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कली कौतुक तात न जात कही।।

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहीं।।[३९]

यही नहीं; इस विडम्बना से मुक्ति पाने के लिए वह एक आदर्श राज्य– 'राम राज्य'– की कल्पना करते हैं, जहाँ किसी भी प्रकार का दैहिक या भौतिक दु:ख नहीं है। न ही दरिद्रता है, न ही कोई दु:ख है। यहाँ तुलसीदास की यह कल्पना रैदास के 'बेगमपुरा' की भाँति ही दिखाई देती है। वे मानस में कहते हैं कि चक्रवर्ती राजा को विहित राज्यों को अधीनता स्वीकार कर लेने पर उनके राज्य को वापस कर देना चाहिए, जो समुद्रगुप्त की 'ग्रहणमोक्षानुग्रह' तथा अकबर की 'राजपूत नीति' से मेल खाती है। तुलसीदास ने श्रेष्ठ शासक को योग्य मन्त्रियों से मंत्रणा की सलाह दी है। तुलसीदास ने विभिन्न पदाधिकारियों का उल्लेख किया है, जिसमें 'मनसबदार' का विशेष समसामयिक महत्त्व है, क्योंकि मुगल-प्रशासन में ये राज्य-सत्ता का मुख्य अंग थे–

हम चाकर रघुबीर के पट्यौ लिख्यौ दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे, नर के मनसबदार।।[४०]

इसी प्रकार, उन्होंने 'कोतवाल' (मुगलकाल में नगर की शान्ति-व्यवस्था का अधिकारी) का भी वर्णन किया है, जो काशी नगर का अधिकारी है।[४१] उन्होंने सैन्य-व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। तुलसी ने युद्ध में प्रचलित अस्त्र-शस्त्र का भी उल्लेख किया है। सामान्यत: उन्होंने परम्परागत सेना व आयुध-सामग्री का वर्णन किया है, लेकिन मुगलकाल में व्यापक रूप से प्रचलित तोप व गोलों का भी किया– **'ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।'** तुलसीदास राज्य के चिरस्थायी होने के लिए धर्म-धुरीण, शील, तेज व बल से युक्त नीति-निपुण राजा, विवेकशील मन्त्रियों व सेवकों, स्वजनों, दुर्ग सेना, कोष इत्यादि के साथ निकटवर्ती राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध व सहयोग पर बल देते हैं।[४२] इस प्रकार, स्पष्ट है कि तुलसीदास में ऐतिहासिक सीमाओं के होते हुए भी उनकी रचनाओं में तत्कालीन अर्थव्यवस्था व राजनीतिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, जो हमारे लिए इतिहासोपयोगी हो सकती है।

निष्कर्षत: यह स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन भक्त-सन्तों के चिन्तन का मुख्य लक्ष्य तो अध्यात्म था, परन्तु वे सामाजिक हलचलों के प्रेक्षक भी थे। इन भक्त-सन्तों के राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रेक्ष्य-पट पर तत्कालीन यथार्थ का अंकन होता है, भले ही वह आध्यात्मिक सन्दर्भों से आच्छादित हो। यहाँ पर आवश्यकता इस अध्यात्म के आवरण को हटाकर विचार-पक्ष को अलग करके देखने की है। आध्यात्मिकता से सराबोर इनकी रचनाओं का महत्त्व तब अत्यधिक बढ़ जाता है, जब उसमें से राजनैतिक व आर्थिक धुरी का मर्म बाहर निकलकर आता है। इन भक्त-सन्तों की रचनाएँ जहाँ आध्यात्मिक सुख प्रदान करती हैं, वहीं मध्यकालीन राजनीतिक-आर्थिक इतिहास का पट भी खोलती नजर आती हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. श्यामसुन्दर दास (सं.)– कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. २०४१, पद, २१६
२. डॉ. धर्मपाल सिंह, बलदेव सिंह– सन्त साहित्य : विचार एवं विश्लेषण (सं.), एम. पी. एस. पब्लिशर्स, दिल्ली, २००९ ई., पृ. ४६
३. वही– पृ. ५०
४. योगेन्द्र सिंह– सन्त रैदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८ ई., पद ५, पृ. १२१
५. ओम पी. गुप्ता– कबीर और समकालीन इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, २०११ ई., पृ. ६६

६. डॉ. श्यामसुन्दर दास (सं.)– कबीर ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९५१,पद २७३
७. वासुदेव सिंह– हिन्दी सन्त काव्य : समाजशास्त्रीय अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २००१ ई., पृ. १९७
८. डॉ. श्यामसुन्दर दास– पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-३०
९. ते नर कदे न नीपजै, ज्यो कालर का खेत
१०. श्यामसुन्दर दास (सं.)– कबीर ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. २०४१, पद, १९७
११. वही– बिरह को अंग, दोहा २४
१२. वही– लौ कौ अंग, दोहा ३
१३. 'जतनि बिनु मिरगनि खेत उजारै।' अथवा 'बिन रखवाले बाहिरा / चिड़ियै खाया खेत।'
१४. वासुदेव सिंह– पूर्वोद्धृत, पृ. २३०
१५. वही– पृ. २३१
१६. रामकिशोर शर्मा (सं.)– कबीर ग्रन्थावली-सटीक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. ३१५
१७. ओम पी. गुप्ता– पूर्वोद्धृत, पृ. ८५-८६
१८. श्यामसुन्दर दास– पूर्वोद्धृत, पद ३३३
१९. वही– पद १९
२०. ओम पी. गुप्ता– पूर्वोद्धृत, पृ. ९३
२१. वासुदेव सिंह– पूर्वोद्धृत, पृ. २३४
२२. ओम पी. गुप्ता– पूर्वोद्धृत, पृ. ९३
२३. वासुदेव सिंह– पूर्वोद्धृत, पृ. २३४
२४. दोहावली– गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. २०२५, दोहा १८४
२५. वही– दोहा ४६५
२६. वही– दोहा ५५९
२७. सावित्री चन्द्र शोभा– समाज और संस्कृति (सूर, तुलसी एवं दादू के विशेष सन्दर्भ में), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, १९७६, पृ. ४१
२८. दोहावली– पूर्वोद्धृत, ५०९
२९. वही– पद ५१०
३०. वही– पद ३४९
३१. कवितावली– गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. २०२६, पद ९७
३२. विनयपत्रिका– गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. २०२७, पद. १५१
३३. गीतावली– गीता प्रेस, गोरखपुर, सं.२०२७, पद ४४
३४. सावित्री चन्द्र शोभा– पूर्वोद्धृत, पृ. ३७
३५. दोहावली– पूर्वोद्धृत, दोहा ४७८
३६. वही– दोहा ५२२
३७. सीताराम चतुर्वेदी (सं.)–तुलसी ग्रन्थावली (खण्ड दो),नागरी प्रचारिणी सभा,१९७१,दोहा ५५९
३८. दोहावली– पूर्वोद्धृत, दोहा ५०४
३९. विश्वनाथ त्रिपाठी– लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली, २०११ ई., पृ. ८८
४०. सावित्री चन्द्र शोभा– पूर्वोद्धृत, पृ. ७४
४१. कवितावली– पूर्वोद्धृत, पद १७१
४२. सावित्री चन्द्र शोभा– पूर्वोद्धृत, पृ. ८३

●

भक्ति आन्दोलन एवं शंकरदेव के अन्तर्विरोध

प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल*

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का चरित लगभग कमोवेश समग्र भारत में एक जैसा रहा। भक्ति कुछ लोगों के लिए भावात्मक शोषण का जरिया है, जबकि शंकरदेव के लिए लोक-मंगलकारी है। जो तेवर कबीर या नाथों, सिद्धों, हठ योगियों में था, उससे थोड़ा या मदारी की भाषा में शंकरदेव में मिलता है। शंकरदेव ब्राह्मण की धन-लोलुपता का वर्णन इस प्रकार करते हैं–

''सुवर्णर झारि खुरी आछे लक्ष कोटि। आक देरवी कतां ब्राह्मणरर आति मुति।।
जोट करि बंधा उपरर वस्त्र काढ़ि। दुयो हाते लैमांत कांधत कतो आरि।।
तथापि करेंते पांते मनत बिकल। मोर कि न भैल हस्ती गोट मान बल।।
आजि लैया गैला हंते भंडार उलासि। शतेक पुरुषों सुखे खायिला हंते बसि।।[१]

शंकरदेव ने जीवन-यापन के लिए धन की महत्ता स्वीकार की, परन्तु धन-संचय के पक्ष में नहीं थे। यानी उस समय एवं आज भी धन की महत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण में भक्ति 'मुफ्त का चंदन, घिस मेरे नंदन' को चरितार्थ कर रही है। जिस भक्तिकाल को लोग स्वर्णकाल या व्यापारिक पूँजीवाद का केन्द्र मानते थे, उसी भक्ति आन्दोलन के तरह-तरह के अन्तर्विरोध साफ परिलक्षित हो रहे हैं। शंकरदेव के जीवन में काफी उतार-चढ़ाव रहा। वह कछारियों के निरन्तर आक्रमण से ऊब कर, अपने राज्य को छोड़कर, ब्रह्मपुत्र के उत्तर में चले गए। इसीलिए दक्षिण असम में फैली मध्य असम की भुइयाँ राज्य सत्ता सदा-सदा के लिए समाप्त हो गई। वे ब्रह्मपुत्र के उत्तर में अपने स्वजनों के साथ शृंगरी, रउता, गिलाधारी, भुलूकगुड़ी आदि स्थानों पर कुछ समय बसावट करते हुए गंगमदु गए। कालांतर में माजूलि द्वीप, धुवहाता अथवा बेलगुड़ी में बस गए, जहाँ उन्हें माधवदेव जैसे शिष्य मिले, जो बाद में शंकरदेव के उत्तराधिकारी बने। शंकरदेव वर्ण-जाति की चौहद्दी से ऊपर उठकर मानव एवं प्रकृति मात्र का कल्याण चाहते थे, जिससे उस समय के परम्परावादी पण्डित उनसे ईर्ष्या करते थे। उनके समय के भारती, कंदलि मिश्र जैसे प्रकाण्ड पोंगा पण्डित उनको नीचा दिखाने की कोशिश करने लगे–

''हरि भकतित लोक प्रवर्तिवे देखि-आति ब्राह्मणगणर दहे मन।''[२]

धर्म-सम्प्रदाय की आँड़ में हर युग में लोगों का शोषण या नीचा दिखाने की कोशिश की जाती रही है और आज भी यह परम्परा धर्म, जाति, सम्प्रदाय, प्रादेशिकता के साथ राजनीति में भी दिखायी दे रही है। इसलिए भक्तिकालीन अन्तर्विरोध को शंकरदेव की रचनाशीलता के मारफत समझना अनिवार्य है। यही कारण है कि भारत वर्ष विभिन्न सन्दर्भों में समयानुसार गुलाम बनता रहा–

''शूद्रे ए शूद्रक नाम मंच देइ किनो भेल बिपरीत।
देवि नुपूजय पंडित सबर बचन करें खंडित।
काष्टर मालाक जयन करय शिक्षा लेया शंकरर।
बौद्धमत लेला खबे भ्रष्टभैला यत लोक निरन्तर।।[३]

उन्होंने पण्डितों के वाद-विवादों का मुँहतोड़ जवाब दिया। इसीलिए लोगों को प्रशिक्षित

* आचार्य– हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयाग

करने के लिए बरपेटा आकर 'पत्नी प्रसाद' नाटक का मंचन किया। भावानन्द जैसे सौदागर शांकरीमत में दीक्षित हुए, जो बाद में 'ठाकुरआता' के नाम से प्रसिद्ध हुए। तीर्थ-यात्राओं के दौरान उन्होंने चैतन्य महाप्रभु, रामानन्द, हरिदास, कबीर की नतिनी, रूपगोस्वामी आदि सन्तों से भी मुलाकात की। उनकी प्रतिष्ठा पर सदैव आँच आती रही। इसीलिए कोचराज नर नारायण से शिकायत की गई। राजा उनसे इतने प्रभावित हुए कि अपने सामने शंकरदेव का आसन लगवाया। उन्होंने अपने शिष्य व्यासकलाइ की बहुदेवोपासना देखकर एक शरण सम्प्रदाय से बहिष्कृत कर दिया। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी, उपदेशक, सम्पादक एवं अनुवादक भी थे। डॉ. नेओग ने खोज करके शंकरदेव के ग्रन्थों का निर्धारण इस प्रकार किया है–[४]

(अ) प्रारम्भिक (बड़ा भुइयाँ राज्यान्तर्गत १५१६ ई. के पूर्व)

(क) भागवत इतर आधारित

१. हरिश्चंद्र उपाख्यान (मार्कण्डेय पुराण पर आधारित)

२. भक्ति प्रदीप (गरुड़ पुराण पर आधारित)

३. कीर्तन घोषा- उरेषा वर्णन (ब्रह्म पुराण पर आधारित)

ख. भागवत आधारित ग्रन्थ

४. रुक्मिणी हरण (काव्य) (श्रीधरी व्याख्या से अप्रभावित, किन्तु हरिवंश से किंचित प्रभावित)

५. महाभागवत– षष्ठ स्कन्ध (अथवा अजामिलोपाख्यान) और अष्टम स्कन्ध (अथवा गजेन्द्रोपाख्यान और अमृत मंथन)

६. गुणमाला (द्वितीय) षष्ठ अध्याय

७. कीर्तन घोषा– अजामिलोपाख्यान (षष्ठ स्कन्ध), प्रह्लाद चरित (तृतीय, सप्तम स्कन्ध), हरमोहन, बलि छलन, गजेन्द्रोपाख्यान (अष्टम स्कन्ध), चतुर्विंशति अवतार वर्णन और ध्यान वर्णन।

८. बरगीत– सम्भवत: निम्नांकित पंक्तियों से प्रारम्भ होने वाले गीत

- मन मोरि राम चरणहिं लागु– गीत संख्या २८१
- राम मोरि हृदय पंकज रहिए– गीत संख्या २९१

(ब) मध्यवर्ती (अहोम राज्यान्तर्गत : १५१६ ई. से १५४२ ई. तक) यह समय शंकरदेव के लिए झंझावातों वाला होने के कारण दो प्रकार की शैली में लिखा:

(क) भक्ति-विरोधियों को लक्ष्य कर लिखे गए ग्रन्थ

(९) कीर्तन घोषा– पाषण्ड-मर्दन, नामापराध

(१०) पत्नी प्रसाद (नाटक)

(ख) कृष्ण लीला से सम्बन्धित रचनाएँ

(११) कीर्तन घोषा : शिशु लीला, कालिय-दमन, रास-क्रीड़ा, कंस-बध, गोपी-उद्धव-संवाद, कुंजी-बाछापूरण और अक्रूर-बांदा पूरण। इसके अलावा भी बरगीत की रचना की होगी।

(स) अन्तिम (कोच राज्यान्तर्गत : १५४३ ई. से १५६८ ई. तक)

(१२) कीर्तन घोषा : जरासंध-बध, कृष्ण-दर्शन, कालयवन-बध, मुचकुंद-स्तुति,

श्यामंतक-हरण, नारदर, विप्र पुत्र-आनयन, दामोदर विप्र-आख्यान, देवकी पुत्र- आनयन, वेद-स्तुति, लीलायाम (रुक्मिणी-प्रेम कलह) (भृगु-परीक्षा), बैकुण्ठ-प्रयाण और भागवत-तात्पर्य वर्णन।

(१३) महाभागवत : प्रथम स्कन्ध, द्वितीय स्कन्ध, तृतीय स्कंध (अनादि पतन) अष्टम स्कन्ध (बलि छलन), दशम स्कन्ध (आदि दशम, कुरूक्षेत्र), एकादश (निम्मि नवसिद्ध संवाद) और द्वादश स्कन्ध।

(१४) गुणमाला (१५) तोटय और भटिमा

(१६) उत्तरकाण्ड (रामायण) (रामकथा- बाल्मीकि रामायण पर आधारित)

(१७) भक्ति-रत्नाकर (विभिन्न शास्त्रों के आधार पर सम्पादन और व्याख्यान)

(१८) कालिय दमन नाट (१९) कलि गोपाल नाट

(२०) रुक्मिणी हरण नाट (२१) पारिजात हरण नाट

(२२) राम विजय नाट (१५६८ ई.)

अनुमानों के आधार पर बरगीतों की रचना का सन्दर्भ है।

(ख) भाषा प्रयोग के आधार पर : शंकरदेव असमिया, हिन्दी एवं संस्कृत के भी रचनाकार हैं।

(अ) असमिया

(१) उत्तरकाण्ड (२) महाभागवत

(३) हरिश्चंद्र उपाख्यान (४) रुक्मिणी-हरण (काव्य)

(५) कीर्तन घोषा (६) गुणमाला

(७) भक्ति प्रदीप (८) भाटिमा

(ब) ब्रजावली या हिन्दी

(१) बरगीत (२) सम्पूर्ण नाटक (३) नाटक के अलावा भाटिमा (चपय) को भी ब्रजावली की रचना माना जाता है।)

(स) संस्कृत

(१) भक्ति-रत्नाकर (२) तोटय

असमिया, हिन्दी, संस्कृत में निपुणता शंकरदेव की राष्ट्रीयता का प्रतीक है। प्रकारान्तर से त्रिभाषा-सूत्र का निदर्शन भी है। जो लोग त्रिभाषा-सूत्र के लिये गाँधी जी को प्रश्रय देते हैं, उन्हें पुनर्विचार करना होगा।

(ग) तत्त्व-निरूपण के आधार पर : शंकरदेव के तत्त्व-निरूपण में भक्ति रत्नाकर, भक्ति प्रदीप, गुणमाला एवं महाभागवत जैसे ग्रन्थों को पढ़ने पर उनके मर्म समझ में आते हैं। अद्वैत के निदर्शन में काव्य-चिन्तन थोड़ा फीका पड़ गया है। कथा, काव्य, मुक्तक, धर्म-अध्यात्म-दर्शन के समन्वित व्यवहार से काव्यत्व एवं भक्ति-दर्शन का अच्छा निदर्शन होता है। ये सब उनकी एकशरणिया भक्ति एवं प्रयोजन-सिद्धि के सम्वाहक हैं।

(घ) बंध के आधार पर : शंकरदेव के रचना-संसार का विभाजन दो स्तरों पर कर सकते हैं : (क) दृश्य काव्य तथा (ख) श्रव्य काव्य।

(क) दृश्य काव्यान्तर्गत

(१) पत्नी प्रसाद, (२) केलि गोपाल, (३) कालिय दमन, (४) रुक्मिणी हरण

(५) पारिजात हरण, (६) राम विजय

(ख) श्रव्य काव्यान्तर्गत

(१) प्रबंध काव्य (२) निर्बंध काव्य

- प्रबंध काव्य को दो वर्गों में रख सकते हैं :

(क) खण्डकाव्य (ख) एकार्थ काव्य

(क) खण्डकाव्य के अन्तर्गत निम्नांकित ग्रन्थ हैं–

१. रुक्मिणी हरण (काव्य) २. हरिश्चंद्र उपाख्यान

३. बैकुण्ठ प्रयाण (कीर्तन घोषा में संकलित) ४. उरेषा वर्णन

५. राम क्रीड़ा (महाभागवत में संकलित)

(ख) एकार्थ काव्य में परिगणित ग्रन्थ–

१. अजामिलोपाख्यान (महाभागवत में संकलित)

२. अमृत मंथन (महाबलि में संकलित)

३. बलि छलन (महाभागवत में संकलित)

४. प्रह्लाद चरित (कीर्तन घोषा में संकलित)

५. रासलीला (कीर्तन घोषा में संकलित)

६. कंस-बध (कीर्तन घोषा में संकलित)

२. निर्बन्ध काव्य के अन्तर्गत मुक्तक कोश आदि परिगणित

१. ऋतु-उत्सवाश्रित मुक्तक- बसन्त वर्णन, वर्षा वर्णन, शरद वर्णन, रास वर्णन आदि।

२. छंदाश्रित मुक्तक– आंकर (नाटकों के गीत), पयार आदि

३. आख्यान (कथात्मक) मुक्तक– गजेन्द्रोपाख्यान, गुणमाला, हरमोहन, कुजीर, बांछापूरन। उन्होंने एकशरण नामक धर्म को प्रचारित करने के लिए गायन, कीर्तन, अभिनय एवं प्रवचन के काव्य-रूपों को अपनाया। उन्होंने वैष्णव पुराणों के आधार पर विषय-वस्तु की मौलिकता निर्धारित की, जो द्रष्टव्य है–

१. प्रयोजन-सिद्धि के लिए अनुकूल श्लोकों का चुनाव, सम्पादन एवं उनकी व्याख्या।

२. प्रसंग का तत्वाधिक्य

३. प्रसंग-विशेष के आधार पर मौलिक काव्य-रचना

शंकरदेव की संकलित, अनूदित, मौलिक रचनाओं को पढ़ने पर धर्म, दर्शन, अध्यात्म, भक्ति एवं तत्व-चिन्तन आदि का पता चलता है। यों देखा जाय, तो एक शरणिया भक्ति के प्रस्तोता वही थे। शंकरदेव के यहाँ शृंगार रस मात्र चित्तशुद्धि के लिए ही है, यथा–

''यिटो भक्तर आछय श्रृंगार रसत सतते रति।
इहार श्रवण कीर्तने हुइबेक ताहारो निर्मल मति।।''[५]

यानि शंकरदेव की भक्ति रसमयी होकर भी काफी स्वच्छ है। इस आधार पर, उस समय के लोग उन पर तमाम आरोप लगाते हैं, परन्तु उनकी कृष्ण के प्रति आसक्ति जगजाहिर है। शंकरदेव की भक्ति साहजिक है। वे संसार में रहकर कृष्ण की साधना करते हैं। उनके यहाँ गोपिकाएँ, वृक्ष, गौएँ आदि तुच्छ प्राणी भी मोहरहित (वैरागी) होते दिखायी देते हैं–

''गुरु गोपिका पशु वृक्षवन नाहिं जन्मान्तरे किछु साधन।
एहि जन्में मात्रकर भक्ति पाइलेक सकले मोहोर गति।''[६]

शंकरदेव ने एक शरणिया भक्ति में गुरुदेव– नाम एवं भक्त– को एक दूसरे का पूरक

बताया है। कर्म एवं साधना से भी देवत्व प्राप्त किया जाता है। राम एवं कृष्ण ने इस पृथ्वी पर अवतार लेकर लोकजीवन को दिशा दी और दे रहे हैं। शंकरदेव का स्पष्ट मत है कि– ''एक देउ, एक सेउ, एक बिना नाहिं केउ।'' इस प्रकार की प्रपत्ति या शरणागति बहुत कम भक्तों में होती है। उन्होंने 'भक्ति रत्नाकर' के पाँचवें माहात्म्य में लिखा है–

''एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतम्, एको देवो देवकी पुत्र एव।
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा, मत्रोऽप्येकः तस्य देवस्य नाम।।''[७]

अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन का स्वरूप एवं चरित तकरीबन एक ही रहा, भले ही प्रादेशिक भाषाओं में लिखा गया हो। कृष्ण के नाम, धाम एवं लीलाओं का वर्णन प्रादेशिकता का पुट लिए हुए अखिल भारतीय दिखायी दे रहा है। शंकरदेव का ग्रन्थ 'नाम साधना' इस सन्दर्भ में पठनीय एवं द्रष्टव्य है। निर्गुण भक्त भी गुरु को काफी महत्त्व देते हैं, तो सगुण भक्त उनसे पीछे नहीं हैं। शंकरदेव गुरु को ब्रह्म ही मानते हैं–

'उपदेश दाता पिटो आछे' ताकि हरि बुलि माने।''[८]

संसार को गतिमान, ऊर्जावान एवं सृजनशील बनाने का कार्य मनुष्य या भक्त ही करते हैं और जो उस दिशा में अग्रणी होता है, सामान्य तौर पर उसे भक्त, लोक नायक, नायक या सामाजिक या धार्मिक प्रस्तोता मान लिया जाता है। यानी भक्ति प्रवृत्तिमार्गी है– शंकरदेव के यहाँ। शंकरदेव का स्पष्ट अभिमत है कि 'देवता बांधवा: सन्त: सन्त आत्माहमेव च।'' यानी देवता हमारे बांधव हैं, तो सन्त मेरी आत्मा हैं। इस प्रकार का अद्वैत भाव रखने वाले एक शरणिया भक्ति को शंकरदेव काफी ऊँचाई पर ले जाते हैं। भक्ति आन्दोलन की गति को एक नई दिशा एवं दशा शंकरदेव की भक्ति में मिलती है। शंकरदेव जन सामान्य का कल्याण चाहते थे। भक्ति का जो स्वरूप आज बाजारवाद की गिरफ्त में आकर रियासतीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, शंकरदेव या कोई भी निर्मल भक्त उसके विरोध में होगा। शंकरदेव की भक्ति से राष्ट्रीयता को मजबूती मिलती है और पाषण्ड को चुनौती। भले ही भक्ति को भावात्मक दास-शोषण का माध्यम कुछ लोग (भक्त) बना रहे हों, लेकिन भक्ति अपने आप में काफी परिशुद्ध एवं लोकहितकारी है। शंकरदेव स्वयं शिरोमणि भुइयाँ हैं। उस समय और आज भी जो लोग सद्मार्ग से भटक रहे हैं, उनकी स्थिति उत्तरोत्तर दयनीय बनती दिखायी दे रही है। शंकरदेव एक शरणिया सम्प्रदाय के प्रस्तोता होते हुए भी राम-सीता का जीवंत जिक्र करके तद्युगीन असम समाज में स्त्री की स्थिति का वर्णन करते हैं–

''जनक राजार मई जीयारी। दशरथ नृपतिर प्रथम बोहारी।।
तुमि राम राजार आमि सि महादेई। हेनतो ओमार हेन करिला बिलाइ।।''[९]

हर युग के समाज२ा में स्त्रियों पर अभियोग लगाए जाते हैं या लगाए जाते रहेंगे। इस लैंगिक भिन्नता को दूर कर पाना काफी कठिन है। कबीर पाषण्डी कर्मकाण्ड का विरोध करते हैं, तो शंकरदेव ब्राह्मणों की अर्थ-लोलुपता को यों लिखते हैं। शंकरदेव के समय भी ब्राह्मणों का त्रास था और आज भी गाँव, शहर एवं धार्मिक स्थानों में उन्हीं का बोलबाला है या पढ़ने-लिखने के बावजूद भी लोग पाषण्डी बनते या बनाए जा रहे हैं। मध्ययुगीन बोध कहें या स्त्री एवं सामान्य लोगों को दास बनाने की युक्ति– शंकरदेव भी सांसारिक गतिविधियों को चलाने के लिए स्वामी-सेवक या पति-पत्नी भाव का जिक्र करते हैं। हालाँकि ''एक: शब्द: बहव: अर्थ:'' को भी हम लोग समझते हैं, लेकिन स्वस्थ मानसिकता का राजा या पति स्वस्थ समाज का निर्माण कर

सकता है। दास, सामंती, पूँजीवादी, लोकतांत्रिक या निगमिक पूँजीवादी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की विडम्बना को भली प्रकार देख सकते हैं, तभी तो शंकरदेव या कोई भक्त यों लिखता है–

''आठो अंग मारि दासी भावे निबाकाल।
देवहेन बुलि लैबा ब्राहमणर आल।।''[१०]

आज के लोकतांत्रिक युग में भी 'हमहूँ बोलब अब ठकुर सोहाती, नाहिं त मौन रहब दिन राती' वाली हालत दिखायी दे रही है। स्त्री-विमर्श के आने के बाद भी स्त्रियों की हालत में विशेष सुधार आज नहीं दिखायी दे रहा है, तो शंकरदेव के समय की परिकल्पना की जा सकती है। इसीलिए भक्ति आन्दोलन के हर कवि या भक्त के यहाँ स्त्री दोयम दर्जे की रही है–

''स्त्री जाति भैले तार स्वामी जीव प्राण।
स्वामी से देवता यत तप जय ध्यान।''[११]

यानी स्त्री या पत्नी की दासता प्राचीन काल से तकरीबन समग्र विश्व में कमोवेश दिखायी दे रही है। घर, परिवार, समाज, राजनीति, शिक्षा, सुरक्षा, धर्म, दर्शन, भक्ति आदि के क्षेत्र में पहले एवं आज भी स्त्रियाँ दोयम दर्जे की रही हैं। शंकरदेव इस विडम्बना को समझते हैं। वे कोई भी कार्य शुद्धि भक्ति के आधार पर करते हैं और लोगों से अपेक्षा भी रखते हैं कि सभी लोग भक्ति के मार्ग पर चलें। यानी लोगों की भिन्नता कहीं-न-कहीं भक्ति के मारफत पुरुषत्वबोध को ही बलवती बनाती जा रही है। हालाँकि भक्ति से ही लोगों को मोक्ष मिलता है। यानी भक्ति के परिक्षेत्र में लिंग, जाति, वर्ग-भेद समाप्त हो जाते हैं–

''किरात, कछारि गारो, मिरि, यवनकंक, गोवाल।
असम मनुक धुवा ये तुरूक कुवाच, म्लेच्छ, चंडाल।।
आनो पापी नर कृष्ण सेवकर, संगत पवित्र हय।
भकति लभिया संसार तरिया, बैकुंठे सुखेचलय।''[१२]

कुल मिलाकर देखा जाय, तो भक्ति आन्दोलन को जितना महिमा-मण्डित किया जाता है या भक्ति के मारफत लोगों का भावात्मक शोषण हुआ और होगा। जाति-पाँति, छुआछूत, यौन-शोषण, कुलीन-अकुलीन की भावना पहले भी थी और आज भी है। भक्तिकाल के सभी कवियों ने अपने-अपने क्षेत्र की कमजोरियों के बावजूद भी भक्ति को सर्वोपरि माना, फिर शंकरदेव ने ब्रजावली (हिन्दी), संस्कृत एवं असमिया में अपने ग्रन्थों को लिखकर राष्ट्रीय चेतना को सम्पन्न बनाया है। उनके गीत, भक्ति, उपदेश, तत्वदर्शन, नाट्य-दर्शन की भाषा-शैली तद्युगीन एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य के अन्तर्विरोधों को उभारने में काफी सक्षम है। इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि भक्ति एवं लोकतन्त्र में सब समान है। शंकरदेव या कोई भी भक्त या कवि समानता हर स्तर पर रेखांकित करना चाहता है, परन्तु आर्थिक-सामाजिक भिन्नता आड़े आ रही है। मध्ययुगीन कविता एवं दर्शन को शंकरदेव ने काफी ऊँचाई प्रदान की है। उनकी काव्यता मध्ययुगीन बोध से ओत-प्रोत होते हुए भी मानवधर्मी अभिगम भी कहीं-कहीं अपनाती है। शंकरदेव या माधवदेव या अन्य प्रदेशों के भक्त कवियों की सोच में विशेष अन्तर नहीं है, पूजा-पद्धति या कर्मकाण्ड में भेद हो सकता है। शंकरदेव का एक शरणिया सम्प्रदाय कहीं-न-कहीं अद्वैत की ओर ही इंगित करता है। दाम्पत्य, राष्ट्र-भक्ति आदि में कई सत्ताएँ होने के बावजूद अद्वैत होना अनिवार्य है। शंकरदेव ने सरल-सहज संस्कृत, ब्रजावली एवं असमिया में एक शरणिया की कैफियत को सम्प्रेषणीय काव्य-भाषा में उकेरा है। अस्मितामूलक विमर्शों में भी राष्ट्र, समाज, दाम्पत्य एवं

भक्ति के क्षेत्र में समानता आवश्यक है, परन्तु विभेद आवश्यक नहीं है। राष्ट्र, समाज एवं बाजार के भेद को मिटाने की आशंका से शंकरदेव दु:खी थे। वर्ण, जाति, भक्ति, धर्म, सरकार एवं लोकतन्त्र के नाम पर लोगों का शोषण तथाकथित लोग कर रहे हैं। शंकरदेव भी इस विभेद को उस समय समझ रहे थे और आज के सभी लोग समझते हैं, परन्तु उससे निवृत्ति नहीं बना पा रहे हैं। संस्कृतियों का संघर्ष पहले भी था और आज भी है। शंकरदेव की रचनाशीलता एवं स्थान-परिवर्तन के कई मायने निकलते हैं। फिलहाल; असमिया काव्य-भाषा बनी, तो क्षेत्रीयता बलवती बनी और हम सब गुलाम बन गए। भाषायी लोकजागरण ने कहीं-न-कहीं गुलामी में राष्ट्र को झोंक दिया। इसलिए भक्तिकाल के कवियों की भक्ति में समरसता-समानता है, परन्तु सामाजिक समरसता न उस समय थी और न आज ही आ पाई। इसी परिप्रेक्ष्य में शंकरदेव या किसी भी भक्त या सन्त का मूल्यांकन करना चाहिए।

१. शंकरदेव – हरिश्चन्द्र उपाख्यान, पृष्ठ ४५-४६
२. शंकरदेव – दैत्यारि ठाकुर, पृष्ठ ७/३२
३. शंकरदेव – रामानन्द द्विज, पृष्ठ ५७३
४. डॉ. महेश्वर नेओग – शंकरदेव और उनका समय, पृष्ठ १६०-१६२
५. डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध – महाकवि शंकरदेव, पृष्ठ १७४
६. शंकरदेव कीर्तन– पृष्ठ १६९
७. डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध – महाकवि शंकरदेव, पृष्ठ २२०
८. शंकरदेव – निमनवसिद्ध, पृष्ठ ५७
९. शंकरदेव – उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ३७८
१०. शंकरदेव – हरिश्चन्द्र उपाख्यान, पृष्ठ ४३४
११. शंकरदेव – हरिश्चन्द्र उपाख्यान, पृष्ठ ४३६
१२. शंकरदेव – भागवत, २/२७०-२७१

●

'पद्मावत' का जनपदीय पाठ

डॉ. श्रद्धा सिंह*

जायसी अवध के ग्राम-समाज से जुड़े हुए कवि हैं। अवधी भाषा पर उनका सहज अधिकार है और उस भूमि-खण्ड के प्रभाव उनकी रचनाओं में सहज रूप से आ गये हैं। 'पद्मावत' की समूची रचना-सामग्री का आधार अवध का लोकजीवन है। पद्मावत की कथा के दो भाग हैं। पहले भाग की कथा कल्पित है, जो महज लोक में कही जाती रही है। आचार्य शुक्ल ने बहुत सही संकेत किया था कि जायसी ने पद्मावत के पूर्वार्द्ध का कथानक ''जनसाधारण के बीच प्रचलित चली आती ऐसी कहानियों से लिया था,..... उत्तर भारत में, विशेषत: अवध में, पद्मिनी रानी और हीरामन सुए की कहानी उसी रूप में कही जाती है, जिस रूप में जायसी ने उसका वर्णन किया है।..... इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान है कि जायसी ने लोक-प्रचलित कहानी को ही लेकर, सूक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया है।''[१]

पद्मावत में लोक-विश्रुत कथा का आश्रय लिया गया, जो निश्चय ही; लोकगाथा, लोकगीत, जनश्रुति के रूप में समाज में पर्याप्त समय से प्रचलित रही होगी। इसमें इतिहास-तत्व नगण्य है और कथाक्रम में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। अपभ्रंश के चरित-काव्य में जो कथानक रूढ़ियाँ प्रचलित थीं और जिसका सम्वेदन-जगत दो विरोधी बिन्दुओं का संकेत करती है– धर्म और शृंगार, उसका भी प्रभाव मध्यकाल के इन प्रेमाख्यानक काव्यों पर पड़ा है। पद्मावत के कथानक के दो छोर हैं। एक सामंती राजभवन, जहाँ आरम्भ में रत्नसेन और नागमती हैं और दूसरे वह संघर्षमय साधना-पथ, जिससे होकर रत्नसेन सिंहलद्वीप पहुँचता है। रत्नसेन पारसमणि पद्मावती को पाने के लिए जिस जोखिम भरे मार्ग को चुनता है, वह दार्शनिक स्तर पर माया से मुक्ति का प्रयत्न तो है ही, सामंती विलास का निषेध भी है। सामंती समाज के आभिजात्य को तोड़ते हुए जायसी पात्रों और परिस्थितियों को लोकोन्मुख बनाते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है– नागमती का वियोग-वर्णन। यह वर्णन ऋतु-वर्णन की परम्परा का निर्वाह मात्र नहीं है। यहाँ कवि राजमहिषी को ही सामान्य नारी की स्थिति से नहीं गुजारता है, बल्कि राजमाता यानी राजा रत्नसेन की माँ को भी अति सामान्य नारी बना देता है। प्रकृति के ऋतु-चित्र बनाते हुए जायसी नागमती को सामंती समाज और ग्राम-परिवेश के मिले-जुले परिवेश में प्रस्तुत करते हैं। नागमती 'पट्ट महादेवी' है तथा सौर सुपौती, कण्ठहार, पटोरा आदि के द्वारा अपने आभिजात्य का संकेत देती है। उसके महल में 'मानक दिया' जलता है, वहाँ चंदन के खम्भ हैं, पूरे कोट में सफेद पुताई है– 'धवल सिरी पोतहिं घर बारा।' पर जायसी अवसर निकाल लेते हैं और सामंती समाज की रानी को सामान्य नारी की भूमि पर उतार लाते हैं तथा फूस की छानी-छप्पर की बात करने लगते हैं– 'भै मो कहँ यह छाजनि गाढ़ी।' नागमती को वर्ष भर के ऋतु-चक्र से गुजारते हुए जायसी की ग्राम-चेतना बराबर सजग है। प्रकृति का परिवेश सामंती सीमाओं का अतिक्रमण करता है। जेठ का जलता संसार, बसन्त में पंचम स्वर में कूकती कोयल, महकती आम्र मंजरी, झूले, छाजन, रेंगती बीर बहूटियाँ आदि ग्राम-परिवेश का बोध कराते हैं और नागमती की पीड़ा सामान्य नारी का बोध कराती है। रत्नसेन के सिंहलद्वीप चले

* आचार्य– हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ. प्र.

जाने के बाद उनकी माँ का वर्णन करते समय श्रवण कुमार के अंधे माँ-बाप से तुलना की गयी है–

नैन दीठ नहिं किया बराहीं। घर अँधियार पूत जौ नाहीं।
को रे चलै सरवन के ठाऊँ। देक देह औटकै पाऊँ।

(नागमती– सन्देश खण्ड, छन्द ८)

नागमती की ही तरह रत्नसेन की माँ भी पुत्र-वियोग में राजमातापन भूल जाती है और एक लाचार माँ के रूप में दिखायी देती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रसंग के जनपदीय स्रोत का जिक्र करते हुए लिखा है– ''एक प्रकार के भिखमंगे सरवन की मातृ-पितृ-भक्ति की कथा करताल बजाकर गाते फिरते हैं।''[२] नागमती विरह-वर्णन में अवध के स्थापत्य का भी दृश्य देखने को मिलता है। इस अवसर पर जायसी ने वास्तु का जो जिक्र किया है, उसमें कोट, चित्रसारी, धौराहर, पँवरी, ओबरी, बरोठा आदि शब्द मिलते हैं।

'पद्मावत' की कथा मुख्यत: चित्तौड़गढ़ और सिंहलद्वीप से सम्बन्धित है, किन्तु उन्होंने कथाक्रम में चित्तौड़गढ़ और सिंहलद्वीप– दोनों का जो प्रकृति-चित्रण किया है, वह मेवाड़ या किसी द्वीप का न होकर अवध का है। राजमहल में रहने वालों की प्रेमकथा होने के बावजूद अवध का परिवेश, लोकाचार, लोक-कथाएँ, खान-पान, प्रचलित मान्यताएँ, लोक-जीवन के सादृश्य विधान, लोक-प्रचलित कहावतें और लोक-गीतों की प्रतिध्वनि ही 'पद्मावत' की प्राण वायु है। अवध की प्रकृति और संस्कृति (वनस्पति, पशु-पक्षी, फल-फूल, अनाज, कृषि सम्बन्धी औजार, तीज-त्योहार, खेल-कूद, उत्सव-पर्व, ऋतुएँ, विश्वास, मान्यताएँ, रीति-रिवाज) अपनी सम्पूर्ण सुषमा के साथ 'पद्मावत' में मौजूद हैं। उनकी भाषा, उनकी कल्पना, उनकी अभिव्यक्ति-शैली– इन सबका सम्बन्ध अवध के ग्रामीण परिवेश से है। पद्मावत में जो वृक्ष, फल-फूल आदि वर्णित हैं, उनमें से अधिकांशत: अवध में पाए जाते हैं, जैसे– केवाच, नीम, पीपल, ढाख, जवाँस, काँस, छितिवन आदि। अवध के बाग-बगीचे, वृक्ष-वनस्पति, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, लोग-बाग, पर्व-त्योहार, नाच-गान, लोक-रीति, खान-पान, विचार और विश्वास जायसी के कवि-मानस पर इस हद तक छाये हैं कि जब वे सिंहलद्वीप का वर्णन करते हैं, तो उसमें भी अवध ही दिखाई देता है। सिंहलद्वीप में अवध की तरह घनी अमराइयाँ हैं[३], आम, कटहल, खिरनी, जामुन, बड़हर के वृक्ष हैं। कटहल के पेड़ों में जड़ तक फल लगे हैं।[४] महुआ के फूलों की मिठास और सुवास है[५] तथा केले की गहर है।[६] सिंहलद्वीप के पक्षियों के कलरव में भी अवध के परिवेश की प्रतिध्वनि को साफ तौर पर सुना जा सकता है। बागों में कहीं मैना और सुग्गे की चह-चह है, पपीहे की पीव-पीव है, कोयल की कुहू-कुहू है, ग्वालिन पक्षी की 'दही-दही' की पुकार है, मोर की कुहक है और कहीं कौवे की काँव-काँव है। पक्षियों की बोली का सुर अवध-अंचल की ही देन है। 'बादशाह-भोज खण्ड' में जायसी ने अनेक पक्षियों का नामोल्लेख किया है, जिनमें नैनकोड़िया, चिल्हबासू, बनकुट्टी आदि महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य स्थलों पर भी जायसी ने जिन पक्षियों के नाम गिनाए हैं, वे भी अवध के अंचल से ही सम्बद्ध हैं। ये पक्षी हैं–सुवा, परेवा, महरि, काग, सोन, ढेक, बक, सारस, नकटा, तीतर, लवा, बया, गौरवा आदि। ये काव्य-जगत के लोकप्रिय पक्षी नहीं हैं, बल्कि ये लोक-जीवन के पक्षी हैं। जायसी ने केवल इनके नाम ही नहीं गिनाए हैं, अपितु इनकी प्रकृति का भी जिक्र किया है–

'भोर होत बोलहिं चुहचुही। बोलहिं पाण्डुक एकै तुही।'

बादशाह-भोज प्रकरण में जायसी ने जिन व्यंजनों के नाम गिनाए हैं, वे हैं– पूरी, सोहारी, लुचुरी, जाउरी, बरा, फुलौरी, मिथौरी, कढ़ी, पेराक, माठा, साढ़ी, काँजी, रैंता, सिरका आदि। ये सब पदार्थ अवध क्षेत्र के हैं। यही नहीं, सिंहलद्वीप में हिन्दी प्रदेश की विभिन्न जातियाँ भी मौजूद हैं। पद्मावती जब अपनी सखियों के साथ बसन्त-पूजा को निकलती है, तो उसकी सखियों में ब्राह्मण, अग्रवाल, वैश्य, चंदेल, चौहान, सोनार, कलवार, बनिया, कायस्थ, पटेल, बरई और पौनी-परजा कुल की कन्याएँ हैं। सिंहलद्वीप में इतनी जाति की स्त्रियों के जिक्र को हम सिंहलद्वीप में अवध का प्रतिबिम्ब कह सकते हैं।

सूफी काव्य होते हुए भी 'पद्मावत' की रचना-पद्धति अवध के जनपदों में लोक-प्रचलित आख्यान-परम्परा के अनुरूप है। इसमें जायसी ने ऐसी अनेक कथाओं के सन्दर्भ दिये हैं, जो अवध के जनपदों में अभी भी गायी जाती हैं, जैसे– गोपीचंद, राजा भरथरी और रानी पिंगला तथा मछंदरनाथ की कथा अथवा श्रवण कुमार की कथा। रत्नसेन की माँ के पुत्र-वियोग-सन्दर्भ में श्रवण कुमार की कथा के लोक-प्रचलित रूप का जिक्र है ही, इसी तरह; 'नागमती-सुआ खण्ड' में हीरामन तोते की बात न मानने पर जायसी ने राजा विक्रम की कथा का उल्लेख भी लोक में प्रचलित कथा के अनुरूप किया है। पद्मावत में अनेकत्र रामायण और महाभारत के अनेक लोककथात्मक संस्करणों के साथ-साथ उषा-अनिरुद्ध, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, दुष्यंत-शकुंतला, समुद्र-मंथन आदि की भी झलक मिल जाती है। लेकिन इन कथाओं का जो स्वरूप पद्मावत में है, वो शास्त्रीय पाठ के बजाय लोक में प्रचलित जनपदीय पाठ से मेल खाता है।

शिवकुमार मिश्र लिखते हैं– ''वे अवध की धरती से अपने लम्बे साहचर्य के नाते उसके एक-एक रेशे से भली-भाँति परिचित हैं। वे मूलत: एक ग्रामीण कवि हैं और अपनी ग्रामीण दृष्टि से ही उन्होंने रत्नसेन, नागमती, पद्मावती, अलाउद्दीन तथा उनके साथ जुड़े सारे आख्यान को देखा है। उनकी सारी कल्पना, उनका सारा निरीक्षण, वह जीवन का हो या प्रकृति का, मनुष्य से सम्बन्धित हो या मानवेतर हो– उनकी निपट ग्रामीण दृष्टि का ही परिचय देता है। उनकी भाषा ही नहीं, उनके उपमान, कथा कहने की उनकी शैली, पात्रों की मनोवृत्तियों को थाहने-पहचानने का उनका तरीका– सब कुछ उनके ठेठ ग्रामीण अंदाज को ही प्रकट करता है।''[७]

'पद्मावत' में ग्राम-जीवन का सर्वाधिक उपयोग लोकजीवन से प्राप्त उपमानों के प्रयोग में दिखायी देता है। खासतौर पर 'बारहमासा' के वर्णन में नागमती को आषाढ़ से फागुन तक वियोग की स्थिति से ले जाते हुए जायसी ने एक विषादमयी नारी के चित्रण में सादृश्य-विधान के लिए अधिकतर उपमान लोकजीवन से ही जुटाए हैं, जैसे–

'मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।'
'लगिउ जरै जरै जस भारू।'
'धनि सूखे भरे भादों माहाँ।'
'आँक जवास भई तस झूरी।'

अवध प्रदेश में ऋतुएँ कैसे आतीं हैं और उनका कैसा रूप होता है, उसमें सामान्य जन की क्या दशा हो जाती है– यह जायसी के बारहमासा से स्पष्ट है। पद्मावत में लोक-प्रचलित कहावतें भी मौजूद हैं, जैसे–

'जौ पीसत घुन जाइहि पीसा' (राजा गढ़ छेका खण्ड)
'सूधी अंगुरी न निकसे घीऊ' (लक्ष्मी समुद्र खण्ड)

किन्तु; कुछ अन्य प्रेरक उपकरण भी हैं, जो उनकी रचनाओं को रूपायित करते हैं, जैसे कि मध्यकाल का सामंती समाज, सूफी-दर्शन आदि। मध्यकाल का समय सामंती काल था और सामंतवाद उन इलाकों में सर्वाधिक सक्रिय था, जहाँ जमीन के टुकड़े अपेक्षाकृत उर्वर थे और अवध ऐसा ही एक उपजाऊ क्षेत्र था। सामंती समाज ऊँच-नीच के भेदभाव पर आधारित सामाजिक शृंखला में विश्वास रखने वाली सामाजिक व्यवस्था है, जिसके अपने सुख-दु:खात्मक रूप हैं। कबीर और तुलसी के काव्य में सामंती समाज-व्यवस्था से उपजे दंश की विस्तृत झाँकी देखने को मिलती है। किन्तु जायसी के काव्य में मध्यकालीन सामंती व्यवस्था अपने यथार्थ में नहीं आती, क्योंकि सामंती समाज की जो कटुताएँ थीं, अभाव-ग्रस्तता थी, उसका जिक्र जायसी नहीं करते। इस दृष्टि से तुलसी अथवा कबीर यथार्थ के अधिक निकट हैं। हालाँकि नागमती विरह-वर्णन अर्थात् बारहमासा में जायसी का निरीक्षण लोकजीवन के कटु यथार्थ की ओर कुछ-कुछ जाता है। जैसे कि–

'तपै लागि अब जेठ असाढ़ी। मोहि पिउ बिन छाजनि भइ गाढ़ी।।
तन तिनउर भा, झूरौ खरी। भइ बरखा दुख आगर जरी।।
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव कहौं केहि रोई।।
.....बरसै मेह चुवहिं नैनाहा। छपर-छपर होइ रहि बिनु नाहा।।'
'पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मन्दिर को छावा।।'

यह रानी की दीन दशा का सन्दर्भ होते हुए भी एक सामान्य नारी की दीन दशा है। जायसी ग्रामीण जीवन की दीन-दशा से, दरिद्रता और क्लेशों से भली-भाँति वाकिफ हैं। वे भली-भाँति जानते हैं कि एक साधारण ग्रमीण स्त्री, जिसका पति परदेस चला गया है, उसके लिए वर्षा ऋतु में कैसे-कैसे संकट आते हैं। यहीं नहीं; इस वियोग-वर्णन में ऐसे अन्य चित्र भी हैं, जो ग्रामीण जीवन के दु:ख-दर्द, वहाँ की विषम जीवन-स्थितियों तथा उनके बीच से विरहिणी नारी की व्यथा को सामने लाते हैं। ये चित्र बहुत मार्मिक भी हैं, जो जायसी की सम्वेदनशीलता के परिचायक हैं। किन्तु, इस प्रकार के चित्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। अत: पद्मावत में व्यक्त ग्रामीण संस्कृति आधुनिक अर्थों में यथार्थवादी नहीं है, जिसमें कबीर और तुलसी की तरह (खेती न किसान को....) ग्रामीणों की दयनीय स्थिति व्यक्त हो। डॉ. प्रेमशंकर लिखते हैं– ''कई स्थितियाँ जायसी के लोक-बोध को रूपायित करती हैं, जिसके कारण ग्राम-समाज अपनी पूरी दयनीयता में नहीं उभरने पाता। जायसी सूफी मत से गहरे जुड़े हुए कवि हैं और उनकी साधना-पद्धति किसी सीमा तक अन्तर्मुखी है। उनके आध्यात्मिक उपकरण मध्यकालीन रहस्यवादी अवधारणाओं से सम्बद्ध हैं, जिसमें परम्परागत योग-मार्ग भी आ जाता है। रत्नसेन पद्मावती को पाने के लिए जोगी का रूप धारण करता है– किंगड़ी, भस्म, मेखला, सिंगी, जोगपट्ट, रूद्राक्ष, अघोरी, कथरी, कमण्डल, खड़ाऊँ, खप्पर आदि धारण करता है। इतना ही नहीं; वह गोरखनाथ का नाम भी उच्चरित करता है– 'सिद्धि होई कहँ गोरख कहा।' (जोगी खण्ड) पर जायसी की प्रेम-पद्धति इस साधना को मानवीय आधार भी देती है और रहस्यलोक कई बार टूटता-बिखरता है। सादे जीवन का जो आग्रह सूफी-साधना में बार-बार किया जाता है, उसके कारण सूफियों की रचनाओं में सामंती आभिजात्य के रंग बहुत चटख नहीं हैं। रत्नसेन का योगी रूप मध्यकालीन सामंती भोग-विलास का पूर्ण निषेध है। अपने चित्र को पूर्णता देने के लिए जायसी सौन्दर्य-वर्णन से आरम्भिक आसक्ति जन्माते हैं। नख-शिख खण्ड के तत्काल बाद प्रेत खण्ड की नियोजना है–

सुनतहि राणा गा मुरछाई। जानी लहर तरुण कै आई ।।
प्रेम घाव दुख जान न लेई। जेहि लागै जानै तै तोई ।। (प्रेम खण्ड)

जायसी की विचारधारा उनके ग्राम-समाज की सीमाएँ निश्चित करती है, जिसमें सूफी जीवन-दृष्टि सर्वाधिक प्रमुख है। अरब-फारस की जो सूफी-परम्परा भारत में आई, उसमें यहाँ के स्थानीय परिवेश ने कुछ परिवर्तन किये। इसका परिणाम यह हुआ कि सूफी सन्त हमारी सामाजिक संस्कृति के प्रतीक बनते हैं और वे मध्यकाल में धर्म-निरपेक्षता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसीलिए समाज में उन्हें सभी वर्गों में स्वीकृति मिली और कबीर जैसे सामाजिक यथार्थ के जुझारु कवि की रागात्मक पदावली पर भी सूफी प्रेम-भावना का प्रभाव है।''[८] सूफियों की दृष्टि आध्यात्मिकता के साथ रूमानी ताने-बाने से भी निर्मित है। वे प्रेम-कहानियों का चयन करते हैं– अपनी आध्यात्मिक प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति के लिए और रूमानी प्रकरणों के प्रसंग में बार-बार लौकिक की चर्चा करते हुए अलौकिक का संकेत करते चलते हैं, जिसे हम सूफियों का रहस्यवाद कहते हैं। एक सहज उदार मानवीय दृष्टि जायसी के ग्राम-बोध का निर्माण करने में अहं भूमिका निभाती है। सामंती परिवेश में जनपद या लोकजीवन के रूप में जायसी ने एक वैकल्पिक व्यवस्था की तलाश की है। ग्राम-जीवन की दयनीय स्थिति तथा अभाव भरे दृश्यों को उभारने में जायसी की कोई रुचि नहीं है। वे केवल गाँव की प्रकृति, वनस्पति, तीज-त्योहार, लोकाचार, पर्व-उत्सव के दृश्य तक ही स्वयं को सीमित रखते हैं। डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में– ''जायसी की ग्राम-चेतना सजग होती है– लोकोत्सवों में, जहाँ सामान्यजन अपनी व्यथा भूलकर पूरी संलग्नता से सम्मिलित होते हैं।''[९]

इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि पद्मावत एक प्रेमाख्यान होते हुए भी लोकतत्व से अभिसिंचित काव्य है। खासतौर पर ऋतु-वर्णन और बारहमासा अवध जनपद के सामान्य जनजीवन का सीधा साक्षात्कार कराते हैं। उनका बारहमासा भी लोकगीतों की मौखिक परम्परा से जुड़ा हुआ है। पद्मावत में सुआ का इतना महत्त्व भी लोक-आख्यानों की साद दिलाता है। सच पूछा जाए, तो भारत के जनजीवन में व्याप्त सांस्कृतिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों, पर्वो-उत्सवों से सम्बद्ध होकर ही 'पद्मावत' हमारे सामने आया है। जायसी ने ग्राम-जीवन को निकट से जाना-समझा था, जिसके परिणामस्वरूप पद्मावत में तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न परम्पराएँ, लोकाचार, रूढ़ियाँ आदि का वर्णन करने का अवसर जायसी निकाल ही लेते हैं। कुल मिलाकर, पद्मावत के कथानक से लेकर कहावत, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, सादृश्य-विधान आदि सभी में हम अवध जनपद की झाँकी देख सकते हैं।

१. जायसी ग्रन्थावली– भूमिका, नागरी प्रचारिणी सभा, १४ वाँ संस्करण, पृ. २४-२५
२. जायसी ग्रन्थावली– पद्मावत भाग, पृ. १६०
३. घन अमराउ लाग चहुँ पासा
४. कटहर डार पींड सन पाके
५. पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू। मधुजस मीठ पुहुप पस बासू।।
६. उनै रही केरा कै घौरी
७. जायसी : भक्तिकाव्य और लोकजीवन, पृ. ७१
८. सदानंद शाही– सं. जायसी : आकलन के आयाम, पृ. ७४
९. 'जायसी का ग्राम-बोध'– शीर्षक लेख से

मुस्लिम भक्त कवि
जायसी के काव्य में स्त्री

डॉ. रवि कुमार गोंड़*

शोध-सार : भक्तिकालीन निर्गुण काव्यधारा के मुस्लिम भक्त कवि जायसी श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। 'पद्मावत' महाकाव्य द्वारा जायसी ने स्त्री के सौन्दर्य, पीड़ा और आध्यात्मिक दर्शन को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य किया है। स्त्री जगत-जननी है और सृष्टि का आधार है। उसकी निष्ठा, उदारता और परमात्मा की तपस्या आदि सभी गुण सामाजिक अध्ययन के विषय हैं। पुराणों एवं शास्त्रों में स्त्री-प्रतिष्ठा का वर्णन मिलता है। प्रेमाख्यानक काव्य में स्त्री के नख-शिख का अवलोकन बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया गया है। कवि जायसी ने अपने काव्य में स्त्री का चित्रण बहुत ही गूढ़ और अद्वितीय रूप में किया है।

बीज शब्द : प्रेमाख्यान काव्य, सामाजिक दर्शन, शृंगार, लोकदर्शन, युग-बोध, स्त्री-चित्रण, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-सौन्दर्य, लौकिक परिभूमि, अलौकिक दर्शन, भारतीय संस्कृति, जीवन-दृष्टि, अध्यात्मवाद, अन्योक्ति और समासोक्ति, समाजशास्त्र, जीवन-बोध।

मूल आलेख : मुस्लिम भक्तकवि मलिक मोहम्मद जायसी प्रेमाख्यानक काव्य के प्रमुख कवियों में से उच्च कोटि के कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में जहाँ एक तरफ सूफी भाव का दर्शन होता है, तो वहीं दूसरी ओर नारी का सामाजिक दर्शन, शृंगार तथा लोक-दर्शन का अद्‌भुत संयोजन भी मिलता है। कवि जायसी भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत प्रेमाश्रयी शाखा के कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में लौकिक-अलौकिक तथा आध्यात्मिक प्रेम के वर्णन के साथ-साथ प्रेम के शुद्ध रूप का दर्शन भी मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि– ''इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेम-मार्ग का महत्त्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम-तत्त्व का आभास दिया है, जो प्रियतम या ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम-कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है, अर्थात् किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौन्दर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर-बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर, अन्त में उस राजकुमारी को प्राप्त करना। पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यञ्जना होती है, वह उस विश्व-व्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखायी पड़ता है।''[१]

जायसी के प्रसिद्ध होने का कारण उनके द्वारा रचित 'पद्मावत' महाकाव्य है, जिसकी रचना १५४० ई. में की गई थी। इनके द्वारा लिखित और भी ग्रन्थों का परिचय मिलता है, जैसे– पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम और मसलानामा। 'पद्मावत' महाकाव्य राजकुमारी पद्मावती, नागमती और राजा रत्नसेन पर आधारित है। इस पुस्तक में कवि जायसी ने पद्मावती का शृंगारिक वर्णन एक तोते के माध्यम से किया है। यह मसनवी शैली में रचित है। इस काव्य में एक तरफ पद्मावती का शृंगारिक वर्णन है, तो वहीं दूसरी तरफ नागमती का विरह-वर्णन है। दोनों ही अपने आप में अद्‌भुत हैं। राजनाथ शर्मा लिखते हैं– ''प्रेम-गाथाकारों की नायिकाएँ

* पोस्ट डॉक्टोरल फैलो (ICSSR), हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला टैब शाहपुर, छतरी, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) १७६२०६

सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति तो अवश्य थीं, परन्तु श्रद्धास्पद नहीं। इसीलिए उन्होंने सौन्दर्य-वर्णन की स्वाभाविक प्रक्रिया को अपनाते हुए ही उनके सौन्दर्य का वर्णन मुखमण्डल से आरम्भ किया था, न कि विदेशी फारसी परम्परा के अन्धानुकरण के कारण।''[२]

कवि जायसी प्रेम-सौन्दर्य के चितेरे कवि हैं। उनकी भाव-प्रवणता, अभिव्यंजना और माधुर्य-सौन्दर्य का विहंगम दृश्य 'पद्मावत' महाकाव्य में देखा जा सकता है, जिसमें स्त्री-अनुराग का वर्णन बहुत ही संयमित ढंग से किया गया है। स्त्री की सामाजिकता, जिसे हम पाक से वर्णित करते हैं, इसका भी दृश्य जायसी के काव्य में समाहित है। डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति लिखते हैं कि– ''जायसी के प्रेम और सौन्दर्य का उत्कृष्ट रूप रत्नसेन-पद्मावती प्रसंग में देखने को मिलता है। इस प्रणय-प्रसंग को चाहे लौकिक रूप से लिया जाय या अलौकिक (आध्यात्मिक) रूप से– दोनों ही रूप में यह मनोहर एवं मार्मिक है। कवि ने बसन्त ऋतु की लुभावनी एवं मोहक छटा में रत्नसेन और पद्मावती का प्रथम मिलन कराया है। रत्नसेन और पद्मावती एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए हैं, अनुरक्त हैं, लीन हैं। यथा–

''नयन कचोर प्रेम पद भरे। भइ सुदृस्टि जोगी सहुँ टरे।।''

प्रेम का परिपक्व रूप पद्मावती-विवाह खण्ड में दृष्टिगोचर होता है। रत्नसेन को दूल्हे के रूप में और अपने को दुल्हन के रूप में पाकर वह हर्षित हो जाती है–

''अंग-अंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठाँवहिं ठाँव बिमोही, गइ मुरछा तनु आइ।।''[३]

कवि जायसी को स्त्री-अस्मिता और स्त्री की महत्ता का भरपूर ज्ञान था। उन्होंने 'पद्मावत' के माध्यम से प्रेम की मर्यादा का वर्णन करते हुए समाज को यह बताने का कार्य किया कि एक स्त्री और पुरुष का प्रेम अमृत के समान पवित्र होता है। कवि जायसी लिखते हैं–

''अति सुकुवाँरि सेज सो डासी, छुवै न पावै कोइ।
देखत नवै खिनहिं खिन, पाँव धरत कसि होइ।।
पिय धनि गही दीहि गलबाँहीं। धनि बिछुरी लागी उर माहीं।।
ते छकि रस नव केलि करेहीं। चोका लाइ अधर रस लेहीं।।''[४]

जायसी ने 'पद्मावत' की शीलता तथा रूप-गुणवत्ता का चित्रण अलौकिक रूप में किया है और साथ-ही-साथ; काव्य के सन्दर्भ-विधान में आध्यात्मिकता का पुट भी लाने का सुन्दर प्रयास किया है। कवि जायसी लिखते हैं–

''बेनी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।।''[५]

जायसी ने 'मानसरोदक खण्ड' में राजकुमारी पद्मावती और उनके साथ चली सहेलियों के रूप का वर्णन बेहतरीन ढंग से किया है। काव्य में स्त्री के सौन्दर्य रूपी सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन बड़ी कुशलतापूर्वक मिलता है। सुन्दर स्त्री अर्थात् चाहे वह गौर वर्ण की हो या फिर कृष्ण वर्ण की– दोनों के ही रूप-गुणों का वर्णन उन्होंने विस्मय ढंग से किया है। कवि जायसी लिखते हैं–

''एक दिवस पुन्यो तिथि आई। मानसरोदक चली अन्हाई।।
पद्मावति सब सखी बोलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई।।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली। कोइ सुकेत करना रस बेलीं।।
कोई सु गुलाल सुदरसन राती। कोई बकौरि बकचुन बिहँसाती।।

कोइ सो मौलसिरि पुहुपावती। कोइ जाही जूही सेवती ।।
कोइ सोनजरद जेऊँ केसरि। कोई सिगारहार नागेसरि ।।
कोइ कूजा सदबरग चबेली। कोई कदम सुरस रसबेली ।।
चलीं सबै मालति संग, फूले कँवल कमोद ।।
बेधि रहे गन गंधव, बास परिमलामोद।।''[६]

जायसी 'मानसरोदक खण्ड' में 'पद्मावत' के माध्यम से स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कई शब्दों से उसे व्याख्यायित करते हैं, जैसे– पारस, निर्मल, मलय समीर, शीतल, कुमुद, शशि मुख, कमल, नग हीर आदि। इतना ही नहीं; बल्कि स्त्री की पवित्रता का भी वर्णन उन्होंने सांकेतिक माध्यम से किया है। कवि जायसी लिखते हैं–

''कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भा निरमर तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।।
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।।
न जनौ कौनु पौन ले आवा। पुन्नि दसा भै पाप गँवावा।।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।।
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भै तेहिं रूप जहाँ जो देखा।।
पाए नयन रूप-रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।।
नयन जो देखा कंवल भा, निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ।।''[७]

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत का कथन है कि– ''सौन्दर्य की यह विराट् भावना ही जायसी के काव्य का प्राण है। इसकी अभिव्यक्ति उन्होंने पद्मिनी को 'विराट् ब्रह्म' के रूप में कल्पित करके और भी सुन्दर ढंग से की है। अनेक पंक्तियों में जायसी ने विराट् ब्रह्म-रूपिणी पद्मिनी के विराट् सौन्दर्य का चित्रण अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। इन पंक्तियों पर सूफी रहस्य-भावना की पूरी छाप दिखलाई पड़ती है। सूफी रहस्य-भावना के साथ-ही-साथ; औपनिषदिक प्रतिबिम्बवाद ने स्वर्ण-सुगन्ध-संयोग उत्पन्न कर दिया है।''[८]

जायसी ने स्त्री के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़े ही बेबाक ढंग से किया है। उनका काव्य सूफी पद्धति पर आधारित है, जिसमें स्त्री के माध्यम से परमात्मा के मिलन की बात कही भी है। नख-शिख खण्ड में स्त्री के शृंगार एवं रूप सौन्दर्य-विधान का वर्णन उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के माध्यम से और साथ ही; रसों आदि के द्वारा उत्कृष्ट रूप से किया है। इतना ही नहीं; बल्कि उन्होंने यह भी बताने का प्रयास किया है कि नारी का स्थान समाज में हमेशा से ही महत्त्वपूर्ण रहा है। सांकेतिक माध्यम से नारी का चित्रण करते हुए कवि जायसी लिखते हैं–

''का सिंगार ओहि बरनौं राजा । ओहिका सिंगार ओहि पै छाजा ।।
प्रथमहि सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकि को औरु नरेसा ।।
बरनौं माँग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं ।।
बिनु सेंदुर अस जानहुँ दीआ। उजियर पंथ रैनि महँ कीआ ।।
कहौं लिलार दुइजि कै जोती। दुइजन जोति कहाँ जग ओती ।।
सहस करिनि जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई ।।
का सरवर तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी वह निकलंकू ।।

औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा।।''[९]

निष्कर्ष : इस प्रकार से; हम देखते हैं कि मुस्लिम भक्तकवि जायसी के काव्य में स्त्री का सामाजिक अध्ययन विविध सन्दर्भों के माध्यम से दिखाई पड़ता है। उन्होंने स्त्री की महत्ता, समाज में उसका स्थान और आध्यात्मिक दृष्टि– इन सबका वर्णन बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से किया है। स्त्री के सौन्दर्य और गुणों आदि का वर्णन जायसी ने सांकेतिक दृष्टि के साथ ही ईश्वरीय प्रेम और प्रकृति के माध्यम से भी किया है। इसलिए जायसी का स्थान प्रेमाख्यानक परम्परा में महत्त्वपूर्ण दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति– हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रवृत्यात्मक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, संस्करण– २००२, पृष्ठ ११५
२. डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति– हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रवृत्यात्मक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, संस्करण– २००२, पृष्ठ ११२
३. डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति– हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रवृत्यात्मक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, संस्करण– २००२, पृष्ठ ११३
४. डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति– हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रवृत्यात्मक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, संस्करण– २००२, पृष्ठ ११४
५. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत– कबीर और जायसी का रहस्यवाद : तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, संस्करण– १९६०, पृष्ठ ४०
६. श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी एवं बाबू गुलाब राय– हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण– १९५३, पृष्ठ ५६
७. श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी एवं बाबू गुलाब राय, हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण– १९५३, पृष्ठ ५८
८. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत– कबीर और जायसी का रहस्यवाद : तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, संस्करण– १९६०, पृष्ठ ४०
९. श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी एवं बाबू गुलाब राय– हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण– १९५३, पृष्ठ ५८-५९

अन्य सहायक ग्रन्थ

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– जायसी ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. २००७
२. परशुराम चतुर्वेदी– सूफी महाकवि जायसी, भारत प्रकाशन मन्दिर, सं. १९६६
३. डॉ. शिवसहाय पाठक– मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम, कानपुर, सं. १९६४
४. मलिक मुहम्मद जायसी– पद्मावत, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण-२०१६
५. हरिमोहन– मलिक मुहम्मद जायसी, गौतम बुक कं., सं. २०१२

●

सगुण-निर्गुण रामकथा के अनन्य साधक : महात्मा बनादस

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह*

भारतीय संस्कृति मूलत: संश्लिष्ट है। वह सहस्त्रों वर्षों के ऋषियों-मुनियों और सन्तों के चिंतन का प्रतिफलन है। उसकी प्रमुख विशेषता है– अनेकता में एकता। महात्मा बनादास का साहित्य इसी सुदीर्घ चिंतन-परम्परा का रिक्थ है। अपने कठोर तप और साधना के द्वारा आपने जिस सत्य का साक्षात्कार किया था, उनका साहित्य उसी की अभिव्यक्ति है। इसीलिए आपका काव्य एक सिद्ध महापुरुष का आप्तवचन है, जिसका उद्देश्य है– लोकमंगल। ब्रह्म के निर्गुण-सगुण– दोनों रूपों का समन्वय करते हुए तथा ब्रह्म की अद्वैतता और व्यापकता का प्रतिपादन करते हुए आपने सांस्कृतिक एकता का ही प्रतिपादन किया है।

महात्मा बनादास उन्नीसवीं शताब्दी के एक श्रेष्ठ रामभक्त कवि हुए हैं, किन्तु उनके व्यक्तित्व और साहित्य से बहुत समय तक हिन्दी-जगत प्राय: अपरिचित ही रहा। इसका प्रमुख कारण उनकी रचनाओं का अप्रकाशित होना ही माना जा सकता है। उनकी समस्त रचनाएँ गोण्डा जनपद स्थित उनके गाँव तथा अयोध्या स्थित 'भवहरण कुंज' नामक मन्दिर में हस्तलिखित रूप में पड़ी थीं। प्रो. भगवती प्रसाद सिंह के अथक प्रयास से न केवल बनादास जी के तिरसठ ग्रन्थों का पता चला, अपितु उन्हीं के प्रयास से कुछ रचनाएँ प्रकाशित भी हुईं। इन्हीं रचनाओं में यत्र-तत्र प्रसंगवश उल्लिखित अंशों एवं प्राप्त बहिर्साक्ष्यों के आधार पर उनके जीवन का परिचय प्राप्त होता है।

महात्मा बनादास का आविर्भाव उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिला अन्तर्गत अशोकपुर गाँव में सम्वत् १८७८ को एक साधारण कृषक परिवार में हुआ था। उन्हें विद्यालयी शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग नहीं प्राप्त हुआ था–

बिद्या बिधि नाहीं लिखी, भूलि भालहूँ माँहि।
पढ़े ककहरा बालपन, मात्रा साबित नाहिं।।

(ब्रह्मायन पराभक्ति परत्तु- छन्द ४)

लेकिन उन्होंने चौदह वर्षीय कठोर तपश्चर्या तथा कबीर की भाँति सत्संग के माध्यम से ही तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बनादास जी की प्रवृत्ति बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक थी और उन्होंने उसी समय जन्म-मृत्यु के आवागमन से मुक्ति हेतु दृढ़ संकल्प ले लिया था–

किये प्रतिज्ञा बालपन, अब नहिं ऐहौं फेरि।
नजर न देखिहौं और को, बात कहत सोउ टेरि।।

(गुरु माहात्म्य- दोहा छन्द २०)

इस प्रकार, बाल्यावस्था में काव्य-रचना का जो अंकुर प्रस्फुटित हुआ, कालान्तर में अयोध्यागमन के पश्चात् विकसित होकर पुष्प की भाँति खिल उठा और सन् १८५१ से १८९० ईस्वी तक उनकी लेखनी निरन्तर चलती रही। काव्य-रचना की इस कालावधि में आपने तिरसठ ग्रन्थों की रचना की। अपनी इस काव्य-शक्ति को आप राम-नाम का प्रसाद मानते थे–

ऐस्यो पै नाम प्रभाव न जानिहै, ताके हिये को मसाल जरावै।
दीरघ ह्रस्व को भेद न जानत, अक्षर पै भरि मात्रा लगावै।।

* सह आचार्य- हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

पंख सो हीन उड़ात अकास में, दास बना सो दसा लखि पावै।
नाम प्रताप चहै सो करै, नहिं ताते हिये कछु ताजुब आवै।।

(उभय प्रबोधक रामायण- तृतीय, अयोध्या खण्ड, सवैया छन्द ५१)

बनादास जी की कुछ रचनाएँ सगुण उपासना से सम्बन्धित हैं, कुछ निर्गुण उपासना से और कुछ उभय प्रबोधक हैं। आरम्भ में आपके उपास्य और आराध्य तुलसीदास थे, किन्तु मौलिकता आपमें प्रारम्भ से ही थी और आप धीरे-धीरे सगुण से निर्गुण की ओर चले गए। एक सन्त की भाँति आपने अपनी 'बानी' से सांस्कृतिक नवजागरण का सन्देश दिया। आत्मवृत्तात्मक एवं समकालीन जीवन-बोध सम्बन्धी आपकी रचनाएँ भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं।

सामान्यत: महात्मा बनादास तुलसीदास से प्रभावित दिखाई देते हैं और आपने तुलसीदास को अपना गुरु भी माना है। लेकिन जहाँ तुलसीदास आद्यन्त राम की सगुण लीला का गान करते रहे, वहीं बनादास जी के विचारों में क्रमश: परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। आप आरम्भ में सगुणोपासक थे। आपकी प्रारम्भिक कृतियों– राम छटा, श्रीराम पंचांग आदि में दाशरथी राम के जन्म से लेकर परवर्ती जीवन की विविध लीलाओं का आख्यान मिलता है। किन्तु धीरे-धीरे आप निर्गुणोपासना की ओर उन्मुख होते गए और अपने साधनाजन्य अनुभव के आधार पर आपने राम के सगुण और निर्गुण– दोनों रूपों को लेकर क्रमश: 'रामायण' और 'ब्रह्मायन' शीर्षक से दो प्रबंध काव्यों की रचना की–

प्रथमहिं रामायन भयो, बहु उपासना ग्रन्थ।
पीछे ब्रह्मायन भयो, जो है ज्ञान को पन्थ।।

(ब्रह्मायन द्वार-दोहा छन्द २५)

इस प्रकार, साधना के बल पर राम के दोनों रूपों का साक्षात्कार कर लेने पर आपने 'उभय प्रबोधक रामायण' की रचना की और स्पष्ट रूप से घोषित किया कि–

उभय ब्रह्म को रूप अगम सत सिंधु समाना।
तासु निरूपण करब कठिन सब कोऊ जाना।।
सीलधाम श्रीराम जानि जन करहिं बहाई।
सगुन रूप हित कथन लेहिं गहि बाँह उठाई।।
अगुन अमित उतकिष्ट है कहब कठिन समुझब कठिन।
कह बनादास नहिं आन गति पार करिहि को राम बिन।।

(उभय प्रबोधक रामायण- तृतीय, अयोध्या खण्ड, छप्पय छन्द ४२)

बनादास जी के बहुत से विचार कबीर तथा अन्य निर्गुण मार्गी सन्तों से मिलते-जुलते हैं। जिस प्रकार कबीरदास ने कहा था–

तुम्ह जिनि जानौ गीत है, यह निज ब्रह्म बिचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।।

(कबीर वांग्मय- सम्पादक डॉ. जयदेव सिंह- डॉ. वासुदेव सिंह, खण्ड : २ सबद, पद ९७)

उसी प्रकार, बनादास जी ने भी घोषणा की–

लिखी सिखी नाहीं लिखी, निज अनुभव दृग देखि।
स्रुति पुरान सम्मत सदा, जनिहैं सन्त बिसेषि।।

(ब्रह्मायन पराभक्ति परत्तु- दोहा छन्द ४८)

पूर्ववर्ती सन्त-परम्परा के अनुकूल बनादास जी ने भी ऐसे निर्गुण-निराकार ब्रह्म को अपना उपास्य माना है, जो घट-घट व्यापी है। वह निसर्गत: अरूप है, अलख है, इन्द्रियातीत है। सभी वर्ण उसके वर्ण हैं। वह कण-कण व्यापी है। उसे जीव अपने भीतर ही प्राप्त कर सकता है। किन्तु जिस प्रकार कबीर आदि सन्तों ने अवतारवाद का खण्डन किया था, बाह्याचार पर निर्ममतापूर्वक प्रहार किया था, जप, तप, छापा, माला, तिलक आदि का विरोध किया था, वह खण्डनात्मक वृत्ति बनादास जी में नहीं मिलती। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि–

ब्रह्म राम जो दुइ कहै, ताके मुख में धूरि।
बनादास दसरथ सुवन, रह्यौ सकल भरपूरि।।

(ब्रह्मायन ज्ञान मुक्तावलि- दोहा छन्द ७२)

प्रारम्भ में वह मूर्ति-पूजा भी करते थे। तब शिव आपके आराध्य थे–

प्रथमहिं सिव सेये मन लाई। जाते रामभक्ति उर आई।।
ताते संकर में गुरु भाऊ। सो भाषत किमि करो दुराऊ।।
सिव सम रामहिं नहिं प्रिय कोई। लोकहुँ बेद माँहि नहिं गोई।।
रामभक्ति कुंजी सिव हाथा। अग्रनीअ बैस्नव गिरि नाथा।।
बिन सिव कृपा भक्ति रघुराई। कवनिउ भाँति सकै नहिं पाई।।

किन्तु बाद में; आपने राम-नाम की आराधना का मार्ग अपनाया–

राम नाम ते सिद्धि रिधि, घूमत पीछे लागि।
राम नाम है मोच्छ पद, जाहिं ताप भै भागि।।

(नाम निरूपण- द्वितीय प्रकाश, दोहा छन्द ३३)

इस प्रकार, राम के सगुण और निर्गुण– दोनों रूपों को मानने के कारण आप कबीर और तुलसी– दोनों से अलग एक नवीन मार्ग का निर्माण करते दिखाई पड़ते हैं–

अगुन सगुन से प्रथक राम जो कोउ अस गावै।
ताकी मति समानि तत्व को थाह न पावै।।
अगुन सगुन दुइ रूप कहत स्रुतिसास्त्र पुराना।
चहुँ जुग तीनिउ काल सन्त मुनि करत प्रमाना।।
तिसरा आयो कहाँ ते कल्पित बात बिचारिये।
कह बनादास संगति तजी बचन नहीं उर धारिये।।

(उभय प्रबोधक रामायण-तृतीय, अयोध्या खण्ड, छन्द २/३३)

महात्मा बनादास केवल सन्त ही नहीं थे, अपितु समाज के सजग प्रहरी भी थे। अयोध्या में निवास करते हुए आपने धूर्त्त साधुओं और मठाधीशों को निकट से देखा था। इसीलिए आपने ऐसे तथाकथित साधुओं की घोर निन्दा की है, जिनका वेश तो साधुओं का था, किन्तु वे अहर्निश सांसारिक विषय-वासना में लिप्त रहते थे और शारीरिक सुख के भौतिक साधन-संग्रह करने में तत्पर रहते थे–

धनि धनि कलजुग के बैरागी।
त्रिष्नावंन त्रिषा अति आतुर, पैसा के अनुरागी।
खान पान में अति रुचि बाढ़ी, जियहिं जगत में माँगी।
भक्ति करहिं ईंटा चूना की, द्वार द्वार बहु बाँगी।

घण्टा घरी नगारा पीटहिं, पूजा पाठ में लागी।
ज्ञान विराग गूढ़ गति भक्ति, भूलि नहीं उर लागी।
हाथी घोड़ा ऊँट खरीदहिं, बेवहर बट्टा पागी।
छोड़ि अवधपुर खेत जोतावहिं, कुल कपूत भे टाँगी।
दास बना बहु राम रंगीले, होन करत बड़ भागी।।

(सार शब्दावली- छन्द १६०)

महात्मा बनादास अपने समय के सामाजिक वैषम्य और आर्थिक विपन्नता से भी चिंतित थे। आपने देखा था कि जहाँ समाज का बहुत बड़ा वर्ग पेट भर भोजन भी नहीं जुटा पाता है, क्षुधा से पीड़ित अनेक लोग असमय काल-कवलित हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ मठाधीश धन-वैभव से सम्पन्न हैं और बिना श्रम के भौतिक सुख का भोग कर रहे हैं–

दुनिया अन्न बिना मरी जावे, धनी भए मठधारी।
खाएँ पेट भर करैं न कष्टा, सोवैं पाँव पसारी।। (विक्षेप विनाश)

बनादास जी ने एक ओर सगुणोपासक बैरागियों की निन्दा की है, उनके बाह्याचार और पाषण्ड पर क्षोभ व्यक्त किया है, तो दूसरी ओर ऐसे निर्गुणमार्गियों की भी निन्दा की है, जो कबीर को अपना आदर्श तो मानते थे, किन्तु उनका आचरण कबीर के विपरीत था। जैसा कि सर्वविदित है कि कबीर ने अपने नाम से किसी पंथ या सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया था। वह इसके घोर विरोधी थे। किन्तु उनके बाद जो निर्गुणोपासक सन्त हुए, उनमें से अधिकांश ने अपने नाम से पंथ चलाया, मन्दिरों-मठों का निर्माण कराया और ईश्वर के नाम पर अचल सम्पत्ति एकत्र की। सन्त मार्ग व्यवसाय के मार्ग पर चल पड़ा। बनादास जी के समय तक अयोध्या और उसके आस-पास गद्दीधारी साधुओं के अनेक केन्द्र बन गए थे, जो वस्तुत: सन्त वेश में ठग थे। उन्होंने ऐसे साधुओं पर प्रहार करते हुए कहा कि लोग पंथ-निर्माण के लिए पागल हो रहे हैं। ऐसे तथाकथित साधु गीता, भागवत, रामायण आदि धर्मग्रन्थों की तो निन्दा करते हैं और अपने छन्दों की प्रशंसा करते हैं। वह कबीर की प्रशंसा तो करते हैं, पर उनके बताए मार्ग पर नहीं चलते। उनका समस्त जीवन असत्-मण्डित है। कबीर तो अपने को 'दास' कहते थे, किन्तु यह लोग अपने को 'साहब' घोषित करते हैं और 'अहम् ब्रह्मास्मि' का पाठ पढ़ा कर अर्थात् स्वयं को ब्रह्म बताकर अपनी पूजा करवाते हैं। (विक्षेप विनाश)

महात्मा बनादास के चरित्र की प्रमुख विशेषता है– स्पष्टवादिता। यही सत्यनिष्ठा उन्हें श्रेष्ठ सन्त और कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। उन्होंने हर प्रकार की रूढ़ियों का विरोध किया। सन्तों में ही नहीं, गृहस्थों में भी व्याप्त पाषण्ड का विरोध किया और सीधे-सीधे निर्णय दे दिया कि मुक्ति को खरीदा नहीं जा सकता–

पोल पाल की बात नहीं, डाल फरति नहीं मुक्ति।
जियत मरै बिनु ना मिलै, करौ करोरिन जुक्ति।। (विक्षेप विनाश)

महात्मा बनादास एक श्रेष्ठ सन्त होने के साथ ही उच्च कोटि के कवि भी थे। आपका काव्य रीतिकालीन तथा आधुनिककालीन कवियों से सर्वथा भिन्न है। आपने 'कविता के लिए कविता' नहीं लिखी। आपका साहित्य एक साधक चित्त की अनुभूति का परिणाम है। आप काव्य की सीमा केवल 'शरीर' को ही नहीं मानते थे। आपका काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आप 'काव्यानन्द' को सीधे 'ब्रह्मानन्द' ही मानते थे, इसीलिए आपने काव्य के नौ रसों की अपेक्षा

'राम रस' को अधिक महत्त्व दिया है। काव्य के तीन हेतु माने गए हैं– शक्ति, अभ्यास और निपुणता। बनादास का काव्य 'शक्ति' यानी 'दैवीय प्रेरणा' पर आधारित है। स्वयं बनादास के शब्दों में–

काव्य ग्रन्थ नहिं कर छुयो, नहिं विद्या अधिकार।
मति न ऊँचि गति अवक नहिं, उर प्रेरक सरकार।।

(आत्मबोध- दोहा छन्द २२४, पृष्ठ १८)

मध्यकाल में ब्रह्म के सभी नामों में 'राम नाम' को सर्वोपरि माना गया था। कबीर और तुलसी के द्वारा क्रमशः श्रीराम नाम के निर्गुण और सगुण रूपों को जन-जन तक पहुँचाया गया और श्रीराम भारतीय संस्कृति के प्रतीक बन गए। किन्तु १७वीं शताब्दी के बाद 'राम मंत्र' की दीपशिखा मन्द पड़ने लगी। यदि एक ओर तुलसी के बाद कोई बड़ा सगुणोपासक भक्त कवि नहीं हुआ, तो दूसरी ओर निर्गुणियाँ सन्तों द्वारा राम के स्थान पर 'सत्यनाम' की उपासना पर जोर दिया गया। महात्मा बनादास का विशिष्ट योगदान यह है कि आपने रामोपासना की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया।

बनादास केवल सन्त और भक्त के रूप में ही वरेण्य नहीं हैं, अपितु उनका साहित्यिक योगदान भी गरिमापूर्ण है। वह लोकजीवन के कवि थे तथा अवध क्षेत्र के निवासी थे। अवधी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। अवधी के अतिरिक्त अन्य लोकभाषाओं के शब्दों को भी आपने अपने काव्य में अत्यन्त कुशलतापूर्वक पिरोया है। आपका शब्द-भाण्डार अत्यन्त व्यापक था। आपने अनेक काव्य-शैलियों को भी आत्मसात् किया था, जिसकी अपनी अलग साहित्यिक महत्ता है। आपने कठोर तप और साधना द्वारा जिस सत्य का दर्शन किया था, आपका साहित्य उसी की अभिव्यक्ति है।

●

काव्य-बिम्ब की अवधारणा

डॉ. रेणु बाला*

काव्य के सन्दर्भ में 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग आधुनिक है और यह 'इमेज' का हिन्दी रूपान्तर है। हिन्दी आलोचना में इसके प्रथम प्रयोक्ता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल माने जाते हैं। उनके निकट वस्तु-विधान के काव्यात्मक उत्कर्ष की विधि का नाम बिम्ब था। उन्होंने कहा– ''काव्य का काम है– कल्पना में 'बिम्ब' (Image) या मूर्त्त भावना उपस्थित करना; बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं।'' विचार को व्यक्त करने के लिए भाषा सर्वोत्तम साधन है, किन्तु विचार अमूर्त्त होते हैं– जैसे 'अहिंसा परमोधर्म:' कहने से 'अहिंसा' शब्द का कोई मूर्त्त रूप हमारे सामने उपस्थित नहीं होता। व्यक्ति भूख-प्यास को संकेतों में व्यक्त कर सकता है। किन्तु जब भाषा कलात्मक अभिव्यक्ति करती है, तो उसे चित्रों से काम लेना पड़ता है और यही चित्रात्मकता 'बिम्ब' कहलाती है, अर्थात् भाषा की चित्रात्मकता का अर्थ है– बिम्ब विधान। सभी कलाएँ अनिवार्यत: चित्रात्मक होती हैं। काव्य की चित्रात्मकता मूर्तिकला तथा चित्रकला की चित्रात्मकता से इस रूप में भिन्न है कि उसमें चित्रांकन शब्दों के माध्यम से किया जाता है। प्रत्येक सार्थक शब्द बिम्ब-रूप होता है, किन्तु निरन्तर प्रयोग से उसका ऐन्द्रिय एवं गोचर रूप घिस जाता है और वह सामान्य शब्द मात्र रह जाता है। उदाहरण के लिए, आरम्भ में जड़ों के भीतर से कुश चुनने वाले को 'कुशैल' कहते थे, किन्तु निरन्तर प्रयोग से उसका बिम्ब-विधायक रूप घिस गया और उसने सांकेतिक रूप ग्रहण कर लिया।

कविता अनिवार्यत: चित्रात्मक होती है। चित्र का अर्थ है– अनुभव रूप। प्रकारान्तर से बिम्ब का अर्थ होता है– अनुभव रूप, जिस रूप में हम वस्तु को अनुभव करते हैं अथवा ग्रहण करते हैं। आचार्य शुक्ल का कहना है– ''बिम्ब जब होगा, तब 'विशेष' या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।'' क्योंकि काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य नहीं', वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, 'जाति' नहीं, अर्थात् बिम्ब-ग्रहण की प्रक्रिया मूर्त्त > अमूर्त्त > मूर्त्त के क्रम में होती है। जब कवि किसी पेड़ को देखता है, तो वह उसका अवलोकन उसके मूर्त्त रूप में करता है, पश्चात् उसका मन में ग्रहण अमूर्त्त होता है और काव्य में भाषा के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति बिम्ब (मूर्त्त) रूप में होती है। कवि जब कविता में उस पेड़ का अंकन करता है, तो वह 'विशेष' होता है; 'सामान्य' नहीं। वर्णन करते समय उसका मन भी 'विशेष' को ग्रहण करता है, 'सामान्य' को नहीं। उदाहरण के लिए, काव्य में वर्णित 'उदास शाम' का ग्रहण प्रत्येक पाठक अपनी किसी उदास शाम के रूप में करेगा। वह व्यक्ति सापेक्ष होगी, कवि सापेक्ष नहीं।

बिम्ब प्रधानता या इन्द्रियबोध का विषय है। बिम्ब-ग्रहण के लिए इन्द्रियबोध का होना आवश्यक है। यह बोध ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही होता है, कर्मेन्द्रियों से नहीं। बिम्ब केवल चाक्षुष नहीं होता; रस, गंध, स्पर्श और शब्द का भी होता है। बिम्ब का आधार यह जीवन और जगत है। बिम्ब हमारी सम्वेदनाओं को व्यक्त करने का मूल माध्यम है। जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में रूप की प्रधानता होती है, उसी प्रकार काव्य में भी रूप की प्रधानता होती है। रस, गंध, स्पर्श और शब्द में भी रूप विद्यमान रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है– ''ज्ञानेन्द्रियों से

* एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

समन्वित मनुष्य-जाति जगत नामक अपार और अगाध रूप समुद्र में छोड़ दी गई है। न जाने कब से वह इसमें बहती जा रही है। इसी की रूप-तरंगों से ही उसकी कल्पना का निर्माण और इसी की रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है... जब हमारी आँखें देखने में प्रवृत्त रहती हैं, तब रूप हमारे बाहर प्रतीत होते हैं। जब हमारी वृत्ति अन्तर्मुख होती है, तब रूप हमारे भीतर दिखाई पड़ते हैं। बाहर-भीतर– दोनों ओर रहते हैं रूप ही।'' उदाहरण के लिए, 'कुहुक' ध्वनि-बिम्ब के उच्चारण के साथ ही उससे जुड़े पक्षी (कोयल) का रूप-बिम्ब भी हमारे प्रत्यक्ष आ जाता है। बिम्ब अमूर्त्त को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। बिम्ब विधान में मूर्त्तता पर बल देते हुए डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि– ''बिम्ब का विधान अनिवार्यत: मूर्त्त ही होता है और चूँकि ऐन्द्रिय अनुभवों में चाक्षुष अनुभव रूप सर्वाधिक मूर्त्त होता है, अत: बिम्ब में रूप-तत्त्व का प्राधान्य रहता है। शब्द, स्पर्श, रस और गंध के भी अपने-अपने बिम्ब होते हैं, पर पशय: उन्हें भी रूप का आधार लेना पड़ जाता है।'' यहाँ तक कि काव्य में विचार और धारणाएँ भी अनिवार्यत: बिम्ब रूप में ही चित्रित होती हैं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु कवि के निकट प्रत्यक्ष होती है। वह उसे देखता ही नहीं, अनुभव भी करता है। इसी प्रकार, धारणा और विचार को भी वह अनुभव रूप में ग्रहण करता है।

विद्वानों ने अलग-अलग दृष्टिकोण के अनुसार बिम्ब की अलग-अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, ''काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।''

डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार, ''बिम्ब वह शब्द-चित्र है, जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।''

डॉ. नगेन्द्र ने अपनी परिभाषा में मूलत: बिम्ब की रचना-प्रक्रिया तथा उसके मूल घटकों पर प्रकाश डाला है। बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम दृश्य-वस्तु के साथ इन्द्रियों का सम्पर्क होता है, उसके पश्चात् मन में ग्रहण, जहाँ पहले से विद्यमान संस्कारों के साथ संश्लिष्ट होकर ये सम्वेदन अनुभूति-रूप में हमारे स्मृति-कोश में संकलित हो जाते हैं और फिर किसी क्षण-विशेष में व्यक्त हो जाते हैं। अभिव्यक्ति का यह क्षण दिन, महीने अथवा वर्षों पश्चात् भी आ सकता है। काव्य में यह अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से चित्र-रूप (बिम्ब) में होती है और अपने मूल रूप में न होकर प्रतिबिम्ब रूप में होती है। डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि– ''बिम्ब पदार्थ नहीं है, वरन् उसकी प्रतिकृति या पशतिच्छवि है। मूल सृष्टि नहीं, पुन: सृष्टि है।'' अर्थात् काव्यगत पेड़, पेड़ होते हुए भी उसके बाहरी प्रत्यक्ष रूप से मूलत: भिन्न होता है। कवि अपनी कविता में बाहरी पेड़ के समानान्तर एक अन्य पेड़ की रचना करता है। इस प्रकार, कविता में कवि बाह्य सृष्टि के समानान्तर एक अन्य सृष्टि की रचना करता है। लम्बे समय से संचित, मन में पड़ा हुआ कोई भी विचार किसी विशेष स्थान, घटना अथवा सन्दर्भ में मूर्त्त रूप धारण कर सकता है, उसके लिए संचित स्मृति से सम्बन्धित व्यक्ति, घटना अथवा स्थान का प्रत्यक्ष होना आवश्यक नहीं। अर्थात् मूल उपादान के अभाव में भी कवि पूर्व स्मृति के आधार पर कल्पना के सहारे उसका अंकन कर लेता है, किन्तु इसके लिए कवि का उस व्यक्ति, घटना अथवा स्थान से गहन रागात्मक सम्बन्ध का होना आवश्यक है, केवल स्मृति के सहारे बिम्ब की रचना नहीं हो सकती। इस प्रकार, इस परिभाषा से तीन बातें उभरकर सामने आती हैं–

१. बिम्ब एक प्रकार का शब्द-चित्र है।

२. वह कल्पना द्वारा निर्मित होता है।

३. उसके मूल में भाव की प्रेरणा का होना आवश्यक है।

डॉ. केदारनाथ सिंह की परिभाषा से एक अन्य बात उभर कर सामने आती है कि बिम्ब का ज्ञानेन्द्रिय के किसी-न-किसी स्तर पर मूर्त्त होना आवश्यक है। बिम्ब में ऐन्द्रियता को प्रमुख मानते हुए डॉ. केदारनाथ सिंह का कहना है कि– ''ऐन्द्रियता बिम्ब की प्रथम और अन्तिम कसौटी है। इस कसौटी के आधार पर वह सब कुछ, जिसका हमें किसी इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है, बिम्ब कहला सकता है।'' यही सामान्य बिम्ब से काव्य-बिम्ब को अलगाने वाले तत्त्व भी हैं। कवि प्रत्येक वस्तु को बिम्ब-रूप में ही ग्रहण करता है, यहाँ तक कि विचार भी उसके निकट बिम्ब रूप में ही ग्रहण होता है। आचार्य शुक्ल ने भी काव्य में बिम्ब-स्थापना को प्रधान वस्तु माना है, क्योंकि– ''कविता में कही गई बात चित्र-रूप में हमारे सामने आनी चाहिए... अत: उसमें गोचर रूपों का विधान अधिक होता है। वह पशय: ऐसे रूपों और व्यापारों को ही लेती है, जो स्वाभाविक होते हैं... अगोचर बातों या भावनाओं को भी जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है।'' किन्तु बिम्ब उसी वस्तु का प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसे पहले कभी देखा हो, अर्थात् बिम्ब अनुभूत सम्वेदना का ही हो सकता है, अननुभूत सम्वेदना या अघटित अनुभूति का नहीं।

बिम्ब केवल रचना-प्रक्रिया का अंग नहीं, अपितु कवि की यथार्थ-दृष्टि का भी परिचायक है। बिम्बों के माध्यम से चित्रित वस्तु के साथ कवि का रागात्मक सम्बन्ध जितना गहरा होगा, वस्तु का बोध उतना ही मूर्त्त, प्रखर और तीव्र होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''बिम्ब-ग्रहण वहीं होता है, जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग, प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।'' अर्थात् कवि वस्तु को उसके समग्र रूप में ग्रहण करता है। वह सत्य को खण्ड-खण्ड रूप में न देखकर उसे संश्लिष्ट रूप में देखता है। बिम्ब-विधान वस्तुगत होता है। जिस कवि की दृष्टि जितनी आत्मपरक होगी, उसी मात्रा में उसके काव्य में बिम्बों की संख्या कम होगी और जिस कवि की दृष्टि जितनी वस्तुपरक होगी, उसी मात्रा में उसके काव्य में बिम्बों की संख्या अधिक होगी। काव्य में बिम्बों की सघनता और विरलता इस बात पर निर्भर करती है कि कवि का वस्तु से सम्बन्ध कितना वस्तुपरक अथवा आत्मपरक है। किशोरावस्था में व्यक्ति अधिक बहिर्मुखी होता है, इसलिए अपवादों को छोड़कर प्रत्येक कवि के काव्य की प्रारम्भिक अवस्था में बिम्बों का बाहुल्य होगा। प्रौढ़ावस्था में कवि अधिक अन्तर्मुखी हो जाता है, इसलिए चिन्तन की प्रधानता के कारण बिम्ब क्रमश: विरल होते चले जाते हैं।

आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''भाषा के दो पक्ष होते हैं– एक सांकेतिक (Symbolic) और दूसरा बिम्ब-विधायक (Preventative)। एक में तो नियत संकेत द्वारा अर्थ-बोध मात्र हो जाता है, दूसरे में वस्तु का बिम्ब या चित्र अन्त:करण में उपस्थित होता है।'' पहले प्रकार की भाषा का प्रयोग तर्कशास्त्र, गणित तथा विज्ञान के क्षेत्र में होता है, क्योंकि वह संकेतात्मक होती है, जबकि काव्य के क्षेत्र में दूसरी प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है, जो बिम्बात्मक होती है। चित्रभाषा की आवश्यकता पर जोर देते हुए पन्त ने पल्लव की भूमिका में कहा है कि– ''कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों,

सेब की तरह जिनकी रस-मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के आगे चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हो, जिनका भाव-संगीत विद्युतधारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके, जिसका सौरभ सूँघते ही साँसों द्वारा अन्दर पैठकर हृदयाकाश में समा जाये।'' सफल बिम्ब-निर्माण के लिए सार्थक भाषा और समृद्ध शब्द-भण्डार का होना आवश्यक है। शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों अर्थात् जो चित्रमय और नादमय हों। शब्दों की ध्वन्यात्मकता के द्वारा ध्वनि-बिम्ब का निर्माण हो, न कि सानुप्राशस शब्दावली का आधार लेकर उसका रूप खड़ा किया जाए। शब्दों की अपनी आन्तरिक लय और संगीतात्मकता होनी चाहिए।

बिम्ब के विभिन्न घटकों के परस्पर सामंजस्य से ही उसकी आन्तरिक अन्विति का निर्माण होता है। सफल बिम्ब-निर्माण के लिए जटिल यथार्थ से कवि का गहरा रागात्मक सम्बन्ध, समृद्ध स्मृतिकोश और सर्जनात्मक कल्पनाशक्ति का होना आवश्यक है। बाह्य यथार्थ एवं कवि की वैचारिकता के द्वन्द्व से बिम्ब का निर्माण होता है। इसलिए बिम्बों के माध्यम से कवि द्वारा सम्प्रेषित सत्य को ही नहीं, बल्कि उस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को भी जाना जा सकता है, जिसके माध्यम से कवि अपने काव्यगत सत्य तक पहुँचता है, क्योंकि मनोविज्ञान के अनुसार, व्यक्ति व्यावहारिक जगत में समाज और सभ्यता के कठोर अनुशासन में जीवनयापन करता है। सामान्य व्यक्ति बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता कर लेता है, किन्तु स्वाभाविक दृष्टि से दुर्बल व्यक्ति परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता। कलाकार भी स्वाभाविक दृष्टि से दुर्बल और भावुक होता है, इसलिए वह बाह्य परिस्थितियों से भय खाकर अवचेतन-उपचेतन की गहरी गुफाओं में लौट आता है। किन्तु कलाकार साधारण मनुष्य से इस अर्थ में भिन्न है कि वह अपनी मानसिक कल्पनाओं की कलात्मक रूप में अभिव्यक्ति कर उनसे छुटकारा पा लेता है। साधारण मनुष्य के लिए अवचेतन की गहराइयों से लौट पाना असम्भव होता है। काव्यगत विधान 'स्वत: सम्भावी' होता है, इसलिए उसके माध्यम से कवि के सम्पूर्ण सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश, रुचि, बौद्धिक रुझान एवं वर्गीय स्थिति को जाना जा सकता है। वह अपने काव्य में किस वर्ग की हिमायत करता है, इसे भी समझा जा सकता है।

●

आधुनिक हिन्दी कविता में नारी-चेतना

डॉ. अनुपमा त्रिपाठी*

साहित्य में समाज की व्यष्टिगत एवं समष्टिगत अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। साहित्यकार यथार्थ के चित्रण के साथ ही समाजहित को ध्यान में रखकर द्रष्टा और स्रष्टा के दायित्व का भी निर्वाह करता है।

भारतीय संस्कृति का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें नारी अत्यन्त गौरवमय एवं समादृत पद पर प्रतिष्ठित रही है। भारतीय साधकों, दार्शनिकों, चिंतकों, ऋषि-मुनियों तथा नीतिकारों ने नारी के विषय में जो भी उद्‌गार व्यक्त किए हैं, उन्हें यदि नारी जाति के स्तवन की संज्ञा दी जाए, तो अनुचित ना होगा। विभिन्न युगों की समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य में नारी कभी तो गौरव और उत्थान के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित होती हुई दृष्टिगत होती है और कभी अवमानना, उपेक्षा एवं पतन के अतल गर्त में गिरती हुई।

भारतीय सांस्कृतिक चिंतन अपनी तमाम सीमाओं और विरोधाभासों के बावजूद कुछ बेहतरीन पहलुओं को समेटे हुए है। आधुनिक सन्दर्भ में स्त्री के प्रति मित्र या समकक्षता-भाव ही मातृभाव को सही मायने में वास्तविक अधिकार और शक्ति प्रदान करता है। इसके पालन से ही समाज में समरसता आ सकती है। यदि आप स्त्री के भीतर एक माँ को देखते हैं, तो फिर उसकी सर्वोच्चता से आपको परहेज नहीं होगा। एक कहावत के अनुसार, पुरुष को शिक्षित करो; तो एक जन शिक्षित होता है, पर स्त्री को शिक्षित करो; तो पूरा वंश शिक्षित होता है।

साहित्य-लेखन के क्षेत्र में आज स्त्रीवादी स्वर चहुँओर मुखरित हो रहा है। आधुनिक हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ आत्मविश्लेषणात्मक स्वरूप को लिए हुए है। कवि हो या कवयित्री– दोनों ने ही स्त्री के जीवन-संघर्ष को दृष्टिगत किया है। प्रभा खेतान अरविन्द जैन द्वारा लिखित महिला-लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन 'औरत : अस्तित्व और अस्मिता' पुस्तक की भूमिका में लिखती हैं– ''आप स्वीकारेंगे कि स्त्री महज एक विचार नहीं है। स्त्री-पुरुष एक दूसरे के सम्पूरक होते हुए भी सम्पूरक-प्रक्रिया के पुरुष विधेयक और स्त्री निषेधक है तथा स्त्री की इस निषेधक भूमिका के प्रति पुरुष स्वयं मोहासक्त है। शास्त्रज्ञ स्त्री को माया कहते हैं। स्त्री की अपनी संस्कृति है, अपना इतिहास है, जीवन और परम्परा है, जो पुरुषों से भिन्न है। साहित्य में इसे भिन्न तो माना गया है, पर भिन्नता को अलग पहचान नहीं दी गई। सत्ता की शक्ति स्त्री को माना गया है, किन्तु इस शक्ति का आधार पुरुष था, अलग से स्त्री की सत्ता नहीं थी। नतीजतन; स्त्री-सत्ता को अलग पहचान ही नहीं मिली।''[१]

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रादुर्भाव पुनरुत्थानवादी तथा समाज-सुधारवादी आन्दोलनों के वातावरण में हुआ। भारतेन्दु युग से ही कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। रीतिकाल की काम-प्रसूत नारी-भावना का पूर्ण परिहार किया द्विवेदीयुगीन कवियों ने। तदनन्तर छायावादी कवियों ने नारी के व्यक्तित्व में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने नारी में उस पावन सौन्दर्य के दर्शन किए, जो भोग की वस्तु न होकर अर्चना का विषय है। नारी इनके लिए प्रेरणास्रोत है। इनके काव्य में चित्रित नारी के अंतस्तल

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, डी.बी.एस. पी.जी. कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड

में त्याग, समर्पण, करुणा, क्षमा, वात्सल्य, प्रेम, सेवा तथा विश्वास का अक्षय भण्डार है। वस्तुत: छायावादी कवियों की नारी प्रत्येक अवस्था में पुरुषों के लिए कल्याण और मंगल का विधान करती है। नारी विषयक प्राचीन भारतीय नैतिक आदर्शों को भी आधुनिक युग के नवीन जीवन-मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित किया है। नारी के चित्र में कमी का दृष्टिकोण सर्वत्र उसके प्रति अतीव मानवीय रहा है।

१. भारतेन्दु युगीन काव्य में नारी-चेतना- भारतेन्दु युग के कवियों ने स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। कवियों और रचनाकारों ने जीवन की 'नारी शोषण परस्त' प्रकृति की निन्दा की। मानवीय तर्कों के साथ समाज और संस्कृति में नारी की महत्त्वपूर्ण सहभागिता का चित्रण करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है–

''जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारि सोई पुरुष, यामें कछु न विभक्ति ।।''

स्त्री को उसकी महिमा में देखना, उसका उद्धार करना स्वाधीनता के लिए जागते भारत की संघर्ष-चेतना का एक हिस्सा था। भारतेन्दु तथा उनके समकालीनों ने 'नारी' को उसकी कर्मशील उदात्तता के अन्तर्गत देखा। राधा की स्तुति करते हुए भारतेन्दु जी कहते हैं–

''श्री राधे तू ही सुहागिनी साँची।
और कामिनिन को सुख संपत्ति तुव रस आगे काँची।
प्रेम सिद्धि तु द्वार नटी लौ रहत रैन दिन नाँची।
हरीचन्द याही सों सब तजि हरि-मति तुव रंग राँची।''

२. द्विवेदी युगीन काव्य में नारी-चेतना– द्विवेदी युग में मैथिली शरण गुप्त, हरिऔध, मुकुटधर पाण्डेय आदि कवियों ने मानवता के इस दलित पक्ष के उद्धार का संकल्प लिया। मैथिली शरण गुप्त ने उपेक्षिता नारियों को उनका प्राप्य दिलाने के लिए लगातार लिखा और उनके पक्ष से अनेक मानवीय प्रश्न उठाए। यशोधरा, उर्मिला, विधृता आदि के सवालों ने जड़तानुरागी भारत की आत्मा को झकझोर दिया। इस युग के कवियों ने नारी-चरित्र और नैतिक मूल्यों को चरम उत्कृष्टता के साथ रेखांकित किया है।

साहित्य समाज का दर्पण है। जहाँ समाज में नारी के रूपों में परिवर्तन आया है, वहीं साहित्य में भी उसका परिवर्तित रूप दिखाई देता है। काव्य में नारी को नायकत्व प्रदान किया गया। 'वैदेही वनवास' में सीता, 'यशोधरा' में गोपा तथा 'कामायनी' में श्रद्धा कथा-सूत्र का संचालन करती प्रतीत होती हैं। आरम्भिक काव्यों में स्त्री के प्रेमिका रूप को चित्रित किया गया। अयोध्या सिंह उपाध्याय के महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' की 'राधा' कृष्ण की परिणीता नहीं है, इसलिए वह कृष्ण से प्रेम तो करती है, परन्तु स्वयं को कल्याणकारी कार्यों में व्यस्त रखती है। कवि की नायिका प्रणयिनी, वियोगिनी व लोकसेवा– तीनों रूपों को प्रस्तुत करती है। कवि ने राधा-कृष्ण का वर्णन करते हुए लिखा है–

''जो दो प्यारे हृदय मिल के एक ही हो गए हैं।
क्यों विधाता ने विलग उनके गात को यों किया है।
कैसे आ के गुरु-गिरी पड़े बीच में हैं उन्हीं के।
जो दो प्रेमी मिलित पय और नीर से नित्यशः थे।।''

मैथिली शरण गुप्त ने अपने साहित्य में महत्त्वपूर्ण समस्याओं को उजागर करने का प्रयास

किया है, जिसमें प्रमुख समस्या है– जीवन में नारी के स्थान की। गुप्त जी ने नारी के मंगल में गृहिणी रूप को प्रमुखता दी है। गुप्त जी ने 'साकेत' में उपेक्षिता उर्मिला का चित्रण तो अवश्य किया, परन्तु वे भारतीय संस्कृति के उपासक थे, इसलिए उर्मिला का उदात्त रूप ही प्रस्तुत कर सके। गुप्त जी 'सीता सन्तोष' में सीता जी का चरित्र उद्घाटित करते हुए लिखते हैं–

''औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ,
श्रमवारी बिंदु फल, स्वास्थ्य-शक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ।''

भारतीय काव्य की उपेक्षिताओं की ओर हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न गुप्त जी ने किया। 'यशोधरा' की दो पंक्तियों में तो केवल एक नहीं, युग-युग से उपेक्षित नारी व भारतीय नारियों को कवि ने चित्रित किया–

''नारी जीवन! हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

३. छायावादी काव्य में नारी-चेतना– छायावादी काव्य में नारी-सौन्दर्य की नैसर्गिकता के दर्शन होते हैं। नारी का व्यक्तित्व इस काव्य में उदात्त रूप में व्यक्त हुआ है। प्रसाद ने नारी-व्यक्तित्व को 'श्रद्धा' का भावनात्मक विस्तार दिया, तो 'इड़ा' की तर्कशीलता भी दी। निराला की कविता पर यथार्थ का दबाव सर्वाधिक था। उनकी नारियाँ कहीं भारत की 'विधवा', तो कहीं 'तोड़ती पत्थर' में दिखाई देती हैं। पंत में नारी को रुग्ण पारम्परिक कारा से मुक्त करने का उत्साह है। महादेवी के काव्य में नारी की पीड़ा व कष्टों का चित्रण मिलता है। इन कवियों की सौन्दर्यप्रिय रचनात्मक चेतना ने नारी-सौन्दर्य को उसके करुणामय रूप में देखा।

प्रसाद जी की 'कामायनी' एक युग-प्रवर्तक काव्य है। श्रद्धा एक गौरवमयी उदात्त चरित्र वाली भारतीय नारी है, जो दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास जैसे गुणों से परिपूर्ण है। आधुनिक युग की नारी-जागरण की भावना 'कामायनी' में अभिव्यक्त हुई है–

''नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।''

समाज की नारी के प्रति सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का मस्तक आदर के साथ झुका रहा। अत: भारतीय समाज की पीड़ित स्त्री का दु:ख-दर्द, उनकी कविताओं– 'विधवा' तथा 'वह तोड़ती पत्थर' में स्पष्ट रूप से झलकता है–

''वह ईष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।''

४. प्रगतिवादी काव्य में नारी-चेतना– प्रगतिवादी कवियों ने नारी को शोषित माना है। वह पुरुष की दासी बनकर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो बैठी है। प्रगतिवादी काव्य में शोषित और शोषक– दो वर्गों में समाज को बाँटकर उसकी अभिव्यक्ति की गयी है। प्रगतिवादी कवि शोषित वर्ग का ही अधिक वर्णन करते हैं, जिसमें नारी प्रमुख है।

नागार्जुन ने अपनी कविता 'पाषाणी' में अहल्या-उद्धार के प्रसंग को नए रंग-रूप में प्रस्तुत कर मौलिक चिंतन का परिचय दिया है, जहाँ अहल्या अपने उद्धार के बाद राम से 'एक नारी व्रत' रखने का संकल्प लेने का आग्रह करती है। नागार्जुन कालिदास के प्रति नमनशील और श्रद्धाभिभूत होकर कह उठते हैं–

''रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोए थे?
कालिदास सच सच बतलाना
रति रोई या तुम रोए थे?''

रामधारी सिंह 'दिनकर' भी प्रेम, सौन्दर्य, नर और नारी को लेकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। वे नर और नारी को लेकर अपने विचारों में उनके प्रेम की व्याख्या और स्थिरता को विविध रूपों में व्यक्त करते हैं।

पुरुष सुख का साथी है, जबकि नारी सुख और दु:ख– दोनों की संगिनी है। इस तथ्य को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है–

''पुरुष चूमते तब, जब वे सुख में होते हैं,
हम चूमती उन्हें, जब वे दु:ख में होते हैं।''

राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता 'झाँसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा हो बसंत' के माध्यम से नारी के सम्मान में चार चाँद लगा दिए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद समानता के लिए नारी-संघर्ष ने अथक प्रयास किया। नारीवादी आन्दोलनों ने और नारीवादी साहित्य ने स्त्रियों की समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया है। 'झाँसी की रानी' कविता में रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का वर्णन करते हुए सुभद्रा कुमारी चौहान लिखती हैं–

''रानी गई सिधार! चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज जी नहीं अवतारी थी,
हम को जीवित करने आयी, बन स्वतंत्रता नारी थी।''

५. प्रयोगवादी काव्य में नारी-चेतना– प्रयोगवादी कवियों ने भी नारी के प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण किया है। इस युग के प्रवर्तक कवि अज्ञेय ने नर और नारी के सम्बन्धों का वर्णन किया है। धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र और कुँवर नारायण आदि कवियों ने नारी के सौन्दर्य का चित्रण किया है। अज्ञेय ने अन्य कवियों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने नारी के साथ साहचर्य जोड़कर अपनी पिपासा-पूर्ति नहीं की, अपितु फ्रॉयड के काम-सिद्धान्त को अपना जीवन-दर्शन बनाकर उसका स्वच्छंद रूप प्रस्तुत किया है।

अज्ञेय ने नर-नारी के सम्बन्धों पर अपनी मौलिक दृष्टि से विचार किया है। 'चिंता' में नारी और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या ही विवेचित और विश्लेषित हुई है। वे पुरुष और नारी के सम्बन्धों को मात्र सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका पर ही स्वीकार नहीं करते हैं, अपितु वे उन्हें चिरंतन पुरुष और चिरंतन नारी के सम्बन्धों के रूप में भी लेते हैं। 'चिंता' कृति में 'विश्वप्रिया' में पुरुष का और 'एकायन' में नारी का दृष्टिकोण निहित है। अज्ञेय ने पुरुष के व्यक्तित्व और नारी के स्वरूप को चित्रित करते हुए लिखा है–

''तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान
कोषवत सिमटी रहे यह चाहती नारी
खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी।''

धर्मवीर भारती की कल्पना सौन्दर्य की उपासिका है। वे एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने सौन्दर्य के माध्यम से ही शिव-तत्व की प्राप्ति की है। नारी-सौन्दर्य के वर्णन के लिए कवि ने प्रकृति के अनेक उपकरणों का सहारा लिया है। कवि ने 'अंधा युग' कृति में गांधारी के दु:ख और ताप का वर्णन करते हुए लिखा है–

''मैं तपस्विनी गांधारी
अपने सारे जीवन के पुण्यों का
अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का
बल लेकर कहती हूँ
कृष्ण सुनो!
यदि तुम चाहते तो रुक सकता था युद्ध यह
मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह।''

'स्व' का अस्तित्व तलाशती नारी आधुनिक युग की कविता में जब समाज की ओर देखती है और अपना स्थान ढूँढती है, तो वह स्वाश्रित की बजाय पराश्रित हो जाती है। जन्म से लेकर विवाह तक पिता एवं भाई पर आश्रित, विवाहोपरान्त पति पर। आधुनिक कविता की नारी अपने अस्तित्व और अपने हिस्से के आसमान को पाने के लिए हर स्थिति का सामना करने को तत्पर है। आज हमारा यह युगबोध बदल गया है। सामाजिक परिस्थितियाँ बदल गई हैं। जीवन-पद्धतियाँ और शैलियाँ बदल गई हैं। इसी अनुसार, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में नए समीकरण की तलाश है। भारतीय साहित्य में नारी का एक विशिष्ट स्थान है। आदिकाल से आधुनिक काल तक वह साहित्य की हर विधा में अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप चली है और उसकी कृति-कृतित्व से इतिहास गौरवान्वित हुआ है। आज नारी पुरुष के साथ कदम मिलाकर हर एक क्षेत्र में अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रही है। नारी ने जीवन के लगभग हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर यह अहसास करा दिया है कि किसी भी दृष्टि में नारी पुरुष से कम नहीं होती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. अरविन्द जैन– औरत : अस्तित्व और अस्मिता, पृष्ठ १०
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र– बाला बोधिनी
३. डॉ. मिथिलेश पाण्डे– भारतेन्दु ग्रन्थावली, खण्ड १, पृष्ठ ३६७
४. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'– प्रिय प्रवास, पृष्ठ २४३
५. गुरु प्रसाद टण्डन– काव्यधारा, पृष्ठ ४८
६. डॉ. नत्थन सिंह व धर्मेन्द्र शास्त्री– माध्यमिक हिन्दी दर्शन, पृष्ठ ९१
७. जयशंकर प्रसाद– कामायनी, पृष्ठ ४७
८. डॉ. मुरारी लाल शर्मा 'सुरस'– हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ ४३
९. डॉ. हरिचरण वर्मा– नये प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ ३४
१०. सविता असवाल– दिनकर के काव्य में प्रेम का स्वरूप, पृष्ठ १२
११. डॉ. मृदुला जुगरान– अर्वाचीन हिन्दी काव्य, पृष्ठ १०१
१२. डॉ. हरिचरण वर्मा– नये प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ ६०
१३. धर्मवीर भारती– अंधा युग, पृष्ठ ८१

यथार्थ के सजग प्रहरी कवि निराला

डॉ. पूजा सिंह*

यह गाथा एक ऐसे महाकवि की है, जिसे जीवनपर्यन्त तिरस्कार के अतिरिक्त कुछ न मिला। अगर कुछ मिला, तो केवल माँ सरस्वती के आँचल की घनी छाँव, जिसके तले बैठकर न जाने कितने ऐसे महाकाव्यों की रचना की, जिसकी अखण्ड ज्योति आज भी प्रज्ज्वलित है। सरस्वती के वरद्पुत्र, छायावाद के महाप्राण, नवचेतन साहित्य के निर्माणकर्त्ता, प्रतिपल मानवता को पूजने वाले, राष्ट्रीय प्रेम-भावना से ओत-प्रोत, देश में क्रान्ति की अलख जगाने वाले, तत्कालीन समाज के संघर्ष व स्वानुभूति के अन्तर्द्वन्द्व को यथार्थ के कठोर धरातल पर प्रस्तुत करने वाले, रहस्यवाद के प्रमुख प्रवर्तक, जीवन के तमाम अन्तर्विरोधों व आर्थिक झंझावातों को अविचलित भाव से झेलने वाले, सिंह की भाँति गर्जन करते हुए, पूँजीपतियों व भष्ट्राचारियों को ललकारते हुए, प्राकृतिक परिवेश के रंगीन धरातल पर प्रकृति के विविध रूपों का सजीव चित्र अंकित करते हुए, नव चेतना से सम्पृक्त, प्रगतिशील विचारधारा के महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का विशाल साहित्य उनके अथक परिश्रम और लगन का अनूठा संग्रह है।

निराला हिन्दी-जगत् के युगान्तकारी कवि हैं, जिसकी रचनाओं में आक्रोश एवं विद्रोह की प्रधानता है, जिसे साहित्य-जगत् ने ओज और औदात्य कहा। निराला विचार से क्रान्तिदर्शी और आचरण से क्रान्तिकारी थे। उनकी कविता में नवजागरण का सन्देश, प्रगतिशील चेतना तथा राष्ट्रीयता का स्वर विद्यमान है। अन्याय, अत्याचार एवं असमानता के विरुद्ध वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। मानव की पीड़ा ने उनके संवेदनशील हृदय को करुणाप्लावित कर दिया।

समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के मध्य जो अमीरी-गरीबी की खाई बढ़ती जा रही थी, उससे निराला बड़े विचलित थे। पूँजीपतियों की बढ़ती विलासिता और गरीबों की दीनता को देख कर वे अपने हृदय में गहन वेदना, टीस एवं छटपटाहट अनुभव करते थे, जिसके फलस्वरूप; सामाजिक विषमता के विरुद्ध उनका स्वर और प्रभावी हो उठा। क्रान्ति का वह ऐसा ताण्डव चाहते थे, जो पूँजीपतियों को यथार्थ का आईना दिखा सके तथा समाज के प्रगति-पथ के समस्त रोड़े, अवरोध व रुकावटें अपने आप ध्वस्त हो जाएँ, नष्ट हो जाएँ, जीर्ण-शीर्ण होकर समाज से सदा-सदा के लिए विलुप्त हो जाएँ।

भारत की परतन्त्रता के प्रति जनता को जागरूक करना वह अपना परम कर्त्तव्य मानते थे। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र विद्यमान है। युग-युग से प्रताड़ित, प्रवंचित, मारे एवं पीड़ित दलितों के प्रति उनके हृदय में अपार करुणा भरी थी, जिसे वे निरीहों पर उड़ेल देना चाहते थे। निराला की दृष्टि से तत्कालीन जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। अपने व्यंग्यों से उन्होंने सामाजिक चेतना को झकझोरने का भरपूर प्रयास किया। जगत् एवं जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर करारे प्रहार करते हुए दीन-हीनों पर प्रेम और पूँजीपतियों पर आक्रोश बरसाते रहे।

छायावादी कवियों में निराला का अप्रतिम स्थान है। उन्होंने छायावाद को उस समय सँभाला, जब वह पलायन की ओर उन्मुख हो चली थी। भले ही वह सम्मान और प्रतिष्ठा उस

* सहायक आचार्य– हिन्दी, सनबीम महिला कॉलेज, वरुणा, वाराणसी

युग में निराला को प्राप्त न हुई हो, परन्तु आज इस सत्य को स्वीकार करने में किसी को सन्देह नहीं कि निराला ही छायावाद के सबसे मजबूत स्तम्भ हैं। अगर उन्होंने छायावाद को सहारा न दिया होता, तो कब का वह धराशायी होकर विलुप्त हो चुका होता। उन्होंने अपने काव्य की बगिया से छायावाद को ऐसा सींचा कि आज भी उसकी मधुर सुगन्ध हिन्दी-जगत् के वातावरण में व्याप्त है और चिरकाल तक व्याप्त रहेगी। डॉ. नगेन्द्र ने निराला के जीवन-संघर्ष को व्याख्यायित करते हुए लिखा है– ''निराला जी का जीवन अनेक अभावों एवं विपत्तियों से पीड़ित रहा, किन्तु इन्होंने किसी विपत्ति के सामने झुकना नहीं सीखा। अभावों की तीव्र मर्मान्तक व्यथा को झेलते हुए भी ये साधना में तल्लीन रहे। मगर कब तक कोई इस तरह जी सकता है? निराला का मन और बुद्धि संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रही, किन्तु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष जहाँ उनकी चेतना के अथक-अविचल संघर्ष की कहानी कहते हैं, वहीं उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं ... निराला को केवल व्यक्ति के रूप में ही परिस्थितियों का तीव्र विरोध नहीं सहना पड़ा, वरन् कवि के रूप में भी उनका प्रबल विरोध हुआ। इसका प्रधान कारण तो मौलिकता है, जो कवि के दीप्त अहंकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।'' (डॉ. नगेन्द्र-हिन्दी साहित्य का इतिहास)

निराला के जीवन में त्रासदियों की कोई कमी न थी– चाहे उनका व्यक्तिगत जीवन हो या काव्य-जीवन। शायद कोई सामान्य मनुष्य होता, तो कब का वह इन प्रबल त्रासदी की वेग-धाराओं में बह गया होता। किन्तु वे तो महाप्राण, मृत्युञ्जयी कविवर निराला थे, जिन्होंने अपने हृदय में सदैव उल्लास व आशा का संचार प्रवाहित रखा, जहाँ से उच्चकोटि की रचनाओं की धारा निरन्तर बहती रही। आलोचकों के लिए यह भी कम चिन्ता का विषय न था कि कैसे कोई मानव इतना सब कुछ सहकर मानसिक रूप से इतना मजबूत हो सकता है?

निराला के इस मजबूत विश्वास को तोड़ने के अनेक-अनेक बार प्रयास हुए। व्यंग्यों और कटाक्षों के तीव्र-से-तीव्र बाण चले। साहित्यिक रचनाओं को 'अश्लील' व 'सस्ती' कह कर वापस कर दिया जाता। 'उन्हें साहित्य का ज्ञान नहीं'– ऐसे घृणित आरोप भी लगे। 'उधार के साहित्य रचे'– यह लांछन भी लगा। परन्तु निराला ने इन सभी गरल को अपने अन्दर समाहित कर लिया। मानव के साथ-साथ ईश्वर ने भी उनके ऊपर कठोर आघात किया। अपने प्रियजनों और प्राणों से प्रिय पत्नी मनोहरा देवी, जीवन की एकमात्र सम्बल पुत्री सरोज की मृत्यु का वज्रपात भी सहा, किन्तु जिस तरह भगवान् शिव विष का प्याला हँसते-हँसते पीकर नीलकण्ठ बन गये, उसी प्रकार सूर्यकान्त परिस्थितियों का विष पीते-पीते 'निराला' बन गए। उन्हें जीते जी तो कोई सम्मान न मिला, लेकिन मरणोपरान्त उन्हें श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम घोषित करने की होड़ लग गयी। स्वतंत्रता, साहस और निर्भीकता– ये तीनों गुण निराला के जीवन की कसौटी रहे हैं। छायावाद के गर्भ से अनेक कवियों का जन्म हुआ, अनेक महाकाव्य रचे गये, नयी-नयी काव्य-शैली विकसित हुई, किन्तु जो अमिट छाप निराला के साहित्य ने छोड़ी, वैसा अन्य किसी के साहित्य ने नहीं।

उनका साहित्य केवल चमत्कार-प्रदर्शन नहीं करता, सुनहरे कल्पना-लोक का भ्रमण नहीं कराता, केवल प्रिय के शृंगार-मनुहार को ही नहीं दर्शाता। उनका साहित्य तो क्रान्ति का शंखनाद करता है, जिसकी ध्वनि में इतनी शक्ति है, जो सारे समाज में हलचल पैदा कर दे। निराला अपने

काव्य के स्वयं विधाता हैं। उनके स्वभाव में अक्खड़पन और मृदुलता, व्यंग्य और हास्य– दोनों का समावेश है। सहिष्णुता और आक्रोश, उल्लास, आशा और कभी विकट परिस्थिति में निराशा भी– इन सभी गुणों के दर्शन निराला में होते हैं।

जिस अद्वैतवादी परिवेश का निर्माण रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द ने किया था, उसी परिवेश में निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। इस अद्वैत दर्शन को निराला ने आत्मसात् कर लिया था। किसानों और मजदूरों के संघर्ष को उन्होंने देखा, सुना और झेला था। इन तत्वों को उनकी कविता में समग्रत: देखा जा सकता है। उनका व्यक्तित्व वैविध्य और वैषम्य– दोनों का प्रारूप है। उनकी धमनियों में सदैव निर्भीकता का संचार होता रहा। वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे। किसी प्रकार का रौब उन्हें बर्दास्त न था, क्योंकि किसी के रौब को सुनना या चुपचाप सह लेना उनके स्वभाव में न था। वे इसे अपना अपमान समझते थे। ना किसी का अपमान करते थे और ना ही सहते थे। निराला यथार्थ के सजग प्रहरी थे, जो देश की हर गतिविधि पर पैनी नजर रखे हुए थे। उनमें वह सामर्थ्य-शक्ति थी, जो समाज में सदियों से व्याप्त कुरीतियों का विरोध कर सके, अंधविश्वासों की सीढ़ियों को कुचल सके, आडम्बरों और मृतप्राय परम्पराओं को त्याग कर साहस व निडरता के साथ प्रगति के पथ पर अपने कदम बढ़ाते चले। उन्होंने जनसमुदाय के हृदय पर पड़ी विकारों की सिलवटें हटाने में सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। वे जनसमुदाय को जागरुक करने के आकांक्षी थे, क्योंकि जो विकृतियाँ समाज को पंगु बनाये हुए थी, जनसमुदाय के जाग्रत होते ही स्वत: मिट जाएँगी।

उन्होंने सब कुछ साहित्य को समर्पित कर बदले में कुछ पाने की इच्छा न रखी। उनका मन, हृदय और आत्मा बस इतना ही चाहता था कि गरीबों, किसानों, दलितों, पीड़ितों, शोषितों तथा नारी का उद्धार हो। जिस छल के चक्रव्यूह में बार-बार वे फँस रहे थे, उन्हें वहाँ से स्वतन्त्रता मिले और यह स्वतन्त्रता उनकी जागृति में छिपी थी, क्योंकि अगर एक बार देश की जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत व जागरूक हो जाये, तो उनका शोषण अपने आप बन्द हो जायेगा। जो निरीह जनता इन पूँजीपतियों, राजनीतिज्ञों और भ्रष्टाचारियों के जुल्म से कराह रही थी, वे स्वयं इनका मुँह तोड़ जवाब देगी। ऐसा नहीं है कि पूँजीपतियों, राजनीतिज्ञों और व्यापारियों ने उनका मुँह बन्द करने का प्रयास नहीं किया या प्रलोभन नहीं दिया। किन्तु निराला का निर्माण कुछ दूसरी प्रकार की मिट्टी से हुआ था, जिसे खरीदना इन लोगों के बूते की बात न थी, क्योंकि उन्हें न तो प्रशंसा की इच्छा थी, ना उपाधियों का शौक और ना ही किसी कुर्सी का मोह, जिसे पाने की चाह में वे चुप रहते। वे तो सदैव द्विजों की स्वार्थपरकता और अस्पृश्यता की निन्दा करते रहे। निराला मुक्ति के प्रबल समर्थक थे। उन्हें मुक्ति प्रिय थी– चाहे वह मुक्ति कविता की हो या मनुष्य की। वे तो हर तरह की बेड़ियाँ समाज और साहित्य से समाप्त कर देना चाहते थे। इस मुक्ति की पक्षधरता के पीछे न जाने कितने विरोधों के विषैले बाण उन पर चले, पर उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। वे अपनी ही मस्ती के सागर में डूबे रहे।

निराला के सम्पूर्ण काव्य-संसार को देख पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। उन्होंने जिस साहस और धैर्य के साथ सबके उद्धार के बारे में सोचा, वह अपने आप में अदम्य है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को अभिव्यक्ति दे पाना किसी के सामर्थ्य की बात नहीं। जिस प्रकार आसमान की ऊँचाई और सागर की गहराई को कोई नाप नहीं सका, उसी प्रकार किसी लेखनी में वह स्याही नहीं, जो महाप्राण को अभिव्यक्त कर सके। निराला उस सूर्य के समान थे, जिन पर ग्रहण के

बादल बारम्बार लगते रहे, लेकिन ग्रहण को काट कर वे पुन: उसी तेज के साथ बादलों के बीच चमकने लगते। शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार हो, जो निराला की तरह अव्याहत भाव से साहित्य-साधना में सब कुछ खोकर निरन्तर लगा रहे। छायावाद तो छायावाद, निराला के प्रकाश की चमक तो उत्तर छायावाद तक देखी जा सकती है। उनके इस दिव्य तेज का प्रकाश प्रगतिवाद प्रयोगवाद और नयी कविता– सभी जगह स्पष्ट रूप से दिखळाई पड़ता है। भाषा की सहजता हो या सरलता– सबसे पहले निराला की कविता में ही दिखलायी पड़ती है। निराला छायावादी कवि हैं, प्रगतिवादी नहीं।

यह प्रश्न सदैव उठता रहा है कि वे छायावाद के स्तम्भ हैं या प्रगतिवाद की नींव? किन्तु यह भी सत्य है कि जितनी अधिक प्रगतिपरक रचनाएँ निराला ने लिखीं, उतना शायद ही किसी अन्य कवि ने छायावाद में लिखा हो। अत: यह कहना गलत है कि वह केवल छयावादी हैं। वे छायावादी होने के साथ-साथ उतने ही प्रगतिवादी भी हैं और इसका प्रमाण है– बादल राग, भिक्षुक, कुकुरमुत्ता जैसी रचनाएँ। प्रयोगवाद से भी निराला का कोई लेना-देना नहीं, लेकिन कविताओं में इतने रूपात्मक प्रयोग निराला के अतिरिक्त किसी अन्य कवि ने करने का साहस नहीं किया है। 'नयी कविता' के घेरे में तो निराला कहीं से फिट नहीं बैठते, लेकिन प्रतीक, बिम्ब, शब्द, उपमान आदि की दृष्टि से वे किसी नये कवि से बीस हैं, उन्नीस नहीं। यही कारण है कि निराला को पढ़ने, समझने व जानने की उत्सुकता रखने वाले पाठकों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती ही जा रही है, क्योंकि उनके साहित्य में न दब्बूपन की गंध है, ना दंप और ना अहंकार की धुन। वे निर्भीक, निडर, साहसी व निर्द्वन्द्व कवि के रूप में सबके सम्मुख आते हैं। यही गुण सच्चे मानव की प्रतिभा की संज्ञा है। आजीवन अपने दु:ख-तकलीफ के बारे में न सोच कर जनता को उसका खोया मान-सम्मान दिलाने के लिए वे हर व्यवस्था से लड़ते रहे। ऐसा करने के पीछे उनका अपना कोई स्वार्थ न था, क्योंकि ना तो उन्हें देवता बनने की चाह थी और ना मसीहा। वे तो समाज को अवगत कराना चाहते थे, जिससे वे अपने हक के लिए खड़े हो सकें। उन्होंने सदैव आदर्शों का आदर और सम्मान किया, किन्तु यथार्थ को झुठलाने की चेष्टा कभी नहीं की। साहित्य का उद्देश्य और विषय-वस्तु कैसा होना चाहिए? इसका सदैव ध्यान रखा। साहित्य वही है, जो मनुष्य को अज्ञान, अंधकार, अविवेक, अहंकार व कुसंस्कारों के घेरे से बाहर निकाल कर एक स्वस्थ व सुन्दर समाज का निर्माण कर सके। निराला सबके लिए प्रेरणा के स्रोत हैं और प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के ज्ञान-पुञ्ज। मुझे भी निराला का साहित्य इसीलिए प्रिय है, क्योंकि वे आशावादी, संघर्षशील और सर्वाधिक मौलिक क्षमता से सम्पन्न कवि हैं। रचनात्मक वैविध्य से युक्त भाषा और सम्वेदना के बहुआयामी रंग और स्तर जितना इनमें देखने को मिलता है, उतना अन्य कवियों में नहीं।

नि:सन्देह यह कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य का भव्य भवन निराला की मजबूत नींव पर ही टिका है, जिसे हटाते ही यह भव्य भवन चकनाचूर हो जायेगा।

●

नागार्जुन के काव्य में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य

डॉ. दीपक*

मानव-जीवन को प्रभावित करने में राजनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आज, वैश्वीकरण के युग में तो जीवन का मुखापेक्षी ही हो गया है। मनुष्य की सामूहिक रूप से रहने की इच्छा और स्वयं को भौगोलिक इकाई का सदस्य समझे जाने की आकांक्षा ने राजनीति एवं राष्ट्र की अवधारणा को जन्म दिया। आधुनिक युग में राजनीति का जीवन में प्रभाव इतना बढ़ गया है कि राजनीति अन्य मूल्यों का केन्द्र बनती जा रही है। किसी भी राष्ट्र विशेष के राजनैतिक मूल्य, उस राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था पर अपना प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि आज के युग में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। नागार्जुन ने अपने काव्य में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का विशिष्ट चित्रण किया है।

नेताओं की प्रवृत्ति– 'स्वदेशी शासक' कविता में नागार्जुन ने नेताओं की प्रवृत्तियों के बारे में बताया है। प्रस्तुत कविता में नागार्जुन ने बताया है कि नेता लोग बातें बनाने, बहानें बनाने एवं गप्पें मारने में बहुत कुशल होते हैं–

''बात बनाओ करो बहाने गप्पें मारो / लो जम्हाइयाँ ताजा-ताजा माल उड़ाओ
चाँदी का मुँह, कंचन की है जीभ तुम्हारी / चरण तुम्हारे गगन बिहारी,
राजाओं के राजा हो तुम।''

'मुकरियाँ' कविता में नेताओं की बात करते हुए कवि कहता है कि अगर किसी को इनसे काम पड़ जाए, तो ये उससे मुँह मोड़ लेते हैं, वैसे तो बहुत बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं–

''बातन की फुलझड़ियाँ छोड़ैं, बखत पड़े तो चट मुँह मोड़ैं
छन में शेर, छन ही में गीदड़, क्या सखि साजन? ना सखि लीडर।''

नेता लोग वोट माँगते समय बड़े-बड़े वायदे करते हैं, परन्तु जैसे ही कुर्सी पर बैठते हैं अथवा सत्ता इनके हाथों में आती है, तो सब कुछ भूल जाते हैं–

''चाहै अमृत, चटावैं धूल, वादे गए जिन्हें सब भूल
कोई भी अब नाम न लेता, कौन गँजेड़ी? ना सखि नेता।''

'भली-भाँति पहचान गए हम' कविता में काँग्रेस पार्टी की आपसी फूट एवं उनकी झूठी देशभक्ति के बारे में बताया गया है। लोगों की समस्याओं की उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है। पार्टी का एकमात्र उद्देश्य वोट बटोरना है– **''दाँत निपोड़ो वोट बटोरो / छाप-छापकर बापू जी के नाम, कोकटी चादर ओढ़ो।''**

'काँग्रेस जन को तेणे कहिए' कविता में नागार्जुन द्वारा काँग्रेसियों के स्वार्थीपन को दिखाया गया है। वे इतने स्वार्थी हो गए हैं कि लोगों के दु:ख में भी अपना सुख देखते हैं। दूसरों के प्रति उनमें तनिक भी दया-भाव नहीं है–

''काँग्रेस जन को तेणे कहिए, जे पीर आपणी जाणे रे
पर दु:ख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे।''

'चना जोर गरम' कविता में कवि ने काँग्रेसी लोगों के चरित्र के बारे में बताया है। वे किसी

* अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, श्री गुरु गोविन्द सिंह खालसा कॉलेज, माहिलपुर, जिला– होशियारपुर, पंजाब

भी प्रकार के छल-बल का प्रयोग करके सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। केवल वोट प्राप्त करना ही उनका अन्तिम लक्ष्य रहता है–

''वोट पाने का है उद्योग, भिड़ाते हैं छल-बल का जोग
वतन को बना दिया बाजार, प्रजा को छोड़ दिया मझदार
चना जोर गरम...।''

जनता केवल उसे वोट देना चाहती है, जो जनता के हितों का ध्यान रखे और उनके काम आए। भले ही वह किसी भी जाति, किसी भी धर्म का हो, परन्तु ईमानदार हो तथा हर समय उनकी सहायता के लिए तैयार रहे–

''वोट देंगे हम उनके नाम, करेंगे जो जनता का काम
भले हों रहीम, भले हों राम, न माँगें कुर्बानी का दाम
साथ दें सुबह, साथ दें शाम, साथ हो जिनके पब्लिक आम।''

''अभी-अभी उस दिन' कविता में कवि ने बताया है कि किस प्रकार मन्त्री लोग बार-बार वादों को दोहराते हैं, परन्तु उन्हें पूरा नहीं करते। यहाँ तक कि उन्हें छपा हुआ भाषण भी पढ़ना नहीं आता– **''अभी अभी उस दिन मिनिस्टर आए थे, बत्तीसी दिखाई थी, वादे दुहराए थे, शाखा लटपटाई थी, नैन शरमाए थे, छपा हुआ भाषण भी पढ़ नहीं पाए थे, जाते वक्त हाथ जोड़ कैसे मुस्कुराए थे, अभी अभी उस दिन....।''**

प्रशासन द्वारा अत्याचार– 'नवादा' कविता में प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार के बारे में बताया गया है कि किस प्रकार एक छोटा सा शहर आतंक में डूबा हुआ है और पुलिस अधिकारियों द्वारा दो युवा व्यक्तियों को जान से मार दिया गया है–

''आतंक में डूबा हुआ छोटा शहर, पुलिस बरपा गई जिसपे कहर
नासमझ अधिकारियों ने मार डाले दो तरुण।''

'झण्डा' कविता में नागार्जुन ने काँग्रेसी प्रशासन की बात कही है। जैसे-तैसे काँग्रेसी अपनी सत्ता को कायम रखना चाहते हैं। भले ही इसके लिए उन्हें अनुचित तरीके अपनाने पड़ें अथवा लोगों की जान के साथ खिलवाड़ करना पड़े–

''दस हजार, दस लाख मरें, पर झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
कुछ हो काँग्रेसी शासन का, डण्डा ऊँचा रहे हमारा।
सत्य अहिंसा की लाशों पर नादिरशाही तख्त जमाएँ।
नई पौध को मसल-मसलकर दुनिया भर में नाम कमाए।''

'एक पैसे की लड़ाई' कविता में काँग्रेस सरकार द्वारा लोगों पर अत्याचार की मुँह बोलती तस्वीर दिखाई देती है। इसमें काँग्रेस सरकार द्वारा निहत्थी भीड़ पर गोलियां चला देने का वर्णन किया गया है–

''काँग्रेसी बौखलाए, पुलिस उनकी तिलमिलाई
एकता का कमल फूटा, फूट की फट गई काई
होश खो बैठे, निहत्थी भीड़ पर गोली चलाई
हो गया है साफ अब वे चाहते किसकी भलाई।''

'बीते तेरह साल' कविता में आजादी के तेरह वर्ष बाद की स्थिति का चित्रण किया गया है। आजादी प्राप्त किए हुए तेरह वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु स्थिति ऐसी है कि लोग अपने घरों में

भी असुरक्षित हैं और अत्याचार से पीड़ित हैं। सुरक्षा की कहीं कोई व्यवस्था नहीं है–

''दिन है तो डाकू घेरे हैं, रात हुई तो चोर / नौकरशाही अत्याचारों की है, ओर न छोर / अन्दर संकट, बाहर संकट, संकट चारों ओर / जीभ कटी है, भारतमाता मचा न पाती शोर / देखो धँसी-धँसी ये आँखें, पिचके-पिचके गाल / कौन कहेगा आजादी के बीते तेरह साल?''

'दूर-दूर से आए हम मनवाने निज...' कविता में नागार्जुन ने कृषकों की बहुत ही दयनीय अवस्था का चित्रण किया है। मिनिस्टर लोग नित्य नई-नई कारों में घूमते हैं, परन्तु किसानों की दशा पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते– **''नए मिनिस्टर नई-नई कारों की रही बहार / नई-नई मालाओं से हो नित्य नया श्रृंगार / जयति विनोदानंद! मुख्यमंत्री युग के अवतार! / बतलाओ प्रभु, कृषकों का बेड़ा होगा कब पार?''**

शोचनीय शासन-व्यवस्था– भारत में प्रजातन्त्र का बहुत बुरा हाल है। शासन-व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। नागार्जुन ने 'भरत-भूमि में प्रजातन्त्र का बुरा हाल है' नामक कविता में इसी स्थिति का वर्णन किया है–

''जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ? / जनकवि हूँ मैं, साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ? नेहरू को तो मरे हुए सौ साल हो गए / अब जो हैं वो शासन के जंजाल हो गए। गृह मंत्री के सीने पर बैठा अकाल है / भरत-भूमि में प्रजातन्त्र का बुरा हाल है।''

'खूब फँसे हैं नंदा जी' कविता में नेताओं के भ्रष्टाचार का चित्रण हुआ है। प्रत्येक नेता राजनीति के गंदे खेल में फँसा हुआ है। दिन-प्रतिदिन घोटाले हो रहे हैं। लीडर लोगों के घोटाले का रेट भी निरन्तर बढ़ता जा रहा है–

''रेट बढ़ गया घोटाले का, सदाचार है मंदा जी।
कौन नहीं है भ्रष्टाचारी, कौन नहीं है गंदा जी?
बुरे फँसे हैं, नंदा जी।
डाल दिया है जाने किसने फंदा जी।''

जन-सामान्य की दयनीय स्थिति– नेता लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु आम लोगों के हालात पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। वे विदेशी ताकतों के साथ मिलकर आम जनता का शोषण करते हैं। नागार्जुन ने 'ले रखा है जिसने ठीका' कविता में आजादी के बाद भी लोगों की कितनी बुरी स्थिति है, इसका चित्रण किया है। जमींदार लोग निरन्तर मजदूरों का शोषण कर रहे हैं, जबकि नेता लोग आजादी का ढोल पीट रहे हैं। सामान्य जन बहुत दु:खी हैं, लेकिन उनकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा–

''कायम हैं राजे-महाराजे अन्त न है जिमदारी का
नहीं बढ़ाते हैं पैसा धेला-भर भी मजदूरी का
मिटा नहीं भारत माता के सिर पर का काला टीका
फिर भी पीट रहे हैं नेता ढोल खूब आजादी का।''

'कवि कोकिल' कविता में कवि ने सरकार द्वारा लोगों पर किए जा रहे अत्याचारों का वर्णन किया है। अगर कोई व्यक्ति भूख-प्यास के कारण रोता-चिल्लाता है, तो उसके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया जाता है–

''भूख प्यास से जिसने भी की मर्मांतक चीत्कार

उस बेचारे की गुस्ताखी सह न सकी सरकार
अस्त्र-शस्त्र से करने लगी प्रहार
कितनों को तो भेज चुकी वह वैतरणी के पार।''

'वह कौन था' कविता में जब सर्वहारा वर्ग को स्वयं की आजादी हेतु कोई मार्गदर्शक नहीं मिलता, तो सर्वहारा वर्ग अपनी आजादी के लिए एवं अपने राष्ट्र की आजादी हेतु मुक्ति का मार्ग स्वयं ढूँढ़ता है–

''सर्वहारा ने निकाला है स्वयं की मुक्ति का यह मार्ग
महाश्वेता दानी कवल से सर्वांशतः अब मुक्त होगा राष्ट्र
अब आजाद होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव
अब आजाद होगी भूमि, अब आजाद होंगे खेत, अब आजाद होंगे कारखाने।''

'ऐटम बम' कविता में बताया गया है कि युद्ध में जान-माल की हानि केवल आम व्यक्ति को ही उठानी पड़ती है। जो लोग युद्ध की इच्छा रखते हैं और जिनके कारण मानवता का नाश हो रहा है, उन्हें युद्ध से कोई नुकसान नहीं होता–

''कहाँ गिरेंगे ऐटम या हाइड्रोजन बम / नहीं फौज पर / नहीं पुलिस पर / नहीं लाम पर नहीं मुहिम पर / बम बरसेंगे जनाकीर्ण आबादी पर ही / निरपराध निर्दोष निष्कलुष- बाल-वृद्ध-वनिताओं की ही जान जाएगी।''

'रामराज' कविता में राजनीतिक मूल्यों का अंकन स्पष्ट दिखाई देता है। राजनेताओं एवं सामाजिक हालातों की बात करते हुए कवि कहता है–

''लाज शरम रह गई न बाकी गाँधी जी के चेलों में
फूल नहीं, लाठियाँ बरसतीं रामराज की जेलों में।''

नेता लोग पहले तो वोट बटोरने के लिए जनता से बड़े-बड़े वादे करते हैं, लेकिन कुर्सी मिलने पर वे सब कुछ भूल जाते हैं। दिखावे के लिए रामराज्य की बातें की जाती हैं, परन्तु जनता पर जो अत्याचार किए जा रहे हैं, उसकी खबर तक नहीं लेते–

''रामराज में अबकी रावन नंगा होकर नाचा है,
सूरत शकल वही है भैया, बदला केवल ढाँचा है
नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों
भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है
रामराज में अबकी रावन नंगा होकर नाचा है।''

स्वतन्त्रता की भावना– 'छापामारों का गीत' कविता में नागार्जुन ने राष्ट्रीय मूल्यों की चर्चा की है। प्रत्येक व्यक्ति को आजादी प्रिय है। प्रस्तुत कविता में आजादी को तन, मन एवं धन से ही बढ़कर नहीं, बल्कि संसार की सभी वस्तुओं से बढ़कर माना गया है–

''हमको है आजादी प्यारी / जीवन और यौवन से बढ़कर
तन से, मन से और धन से बढ़कर / हमको है आजादी प्यारी
इस दुनिया की सभी वस्तुओं से बढ़कर / हमको है आजादी प्यारी।''

यहाँ पर किसी एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता की बात नहीं हो रही, बल्कि सामूहिक स्वतन्त्रता की बात की गई है। अपना बलिदान देकर अथवा बड़ी-से-बड़ी कीमत देकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने की बात की गई है– **''कितनी ही महँगी हो, कीमत / हम चुकाएँगे। अपना भी**

बलिदान करेंगे, पर / स्वतन्त्रता को बचाएँगे भाई-बहनों पुत्र-पुत्रियों की स्वतन्त्रता।''

'शपथ' कविता में कवि शपथ लेता है कि जब तक देश से अत्याचारों की समाप्ति नहीं होती, तब तक वह अत्याचारियों के विरुद्ध अपनी लेखनी को निरन्तर चलाता रहेगा–

''हाँ बापू! निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ / हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे / हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी / मातृभूमि यह जब तक खाली होगी / सम्प्रदायी दैत्यों के विकट खोह / जब तक खण्डहर न बनेंगे / तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा।''

'वाह गोडसे!' कविता में बताया गया है कि किस प्रकार गाँधी जी के विरुद्ध साजिश करके उनकी हत्या कर दी गई। हत्या के पश्चात् उनके कातिल का मानसिक सन्तुलन बिगड़ा हुआ बताया गया– **''जब की होगी / गाँधी की हत्या तूने- / तब की तेरी चित्तवृत्ति का फोटो वही उतार सकेगा।..... देकर के पिस्तौल और छर्रों की पेटी / तुम्हें जिन्होंने दिया था महावीर विक्रम बजरंगी / अकस्मात् पकड़े जाने पर / आज वही कर रहे तुम्हारे सर की मालिश / गुलरोगन से कहते हैं : / बिगड़े दिमाग ने / गाँधी जी का खून कर दिया।''**

देश-प्रेम– 'लाल भवानी' कविता में कवि ने जमींदारों एवं शोषक-वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना एवं स्वदेश-प्रेम की भावना के स्वर को मुखरित किया है। अब लोग सच्चे अर्थों में देश को जमींदारों एवं शोषकों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। देश के प्रत्येक कोने में प्रेम फैलाकर देश को स्वर्ग बनाना चाहते हैं– **''झूठ-मूठ सुजलां-सुफलां के गीत न हम अब गाएँगे, / भात दाल तरकारी जब तक नहीं पेट भर पाएँगे / सड़ी लाश है जमींदारियाँ, इनको हम दफनाएँगे, / गाँव-गाँव पाँतर-पाँतर को हम भू-स्वर्ग बनाएँगे, / खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है, / इसीलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है।''**

विश्व-कल्याण की भावना– 'दोन वोलगा जमुना-गंगा आज . . .' कविता में नागार्जुन बताते हैं कि लोगों को आजादी बहुत प्रिय है। वे आजादी किसी प्रकार की हिंसा से नहीं प्राप्त करना चाहते, बल्कि शांतमयी ढंग से इसकी प्राप्ति चाहते हैं। वे हिंसा की प्रवृत्ति अपनाकर आजादी प्राप्त करने के पक्ष में नहीं है। वे अपने पूर्वजों– अशोक, गौतम बुद्ध एवं महात्मा गाँधी की भाँति अहिंसा के मार्ग पर चल कर आजादी प्राप्त करना चाहते हैं–

''नया राष्ट्र है, नई कौम है, नए-नए अरमान / नव-नव साहस नई कल्पना, नए-नए निर्माण / पराधीनता से नफरत है आजादी से प्यार / नहीं करेंगे, किया नहीं हत्या का कारोबार/ हम अशोक के वंशज, गौतम, गाँधी के हम पुत्र / नहीं करेंगे, शोणित से दूषित यह पावन सूत्र।''

प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति का हो, किसी भी समुदाय से सम्बन्ध रखने वाला हो, सभी बहुत समय से विश्वशान्ति हेतु नाना प्रकार से प्रयत्न कर रहे थे– **''देश-देश के, जाति-जाति के नर-नारी समुदाय / ढूँढ़ रहे थे विश्वशांति का कब से सहज उपाय।''**

राष्ट्र-प्रेम– 'वीर बाँकुरे गढ़वाली. . .' कविता उन जवानों के प्रति समर्पित है, जो कि अपने राष्ट्र एवं मातृभूमि की रक्षा के लिए सीमाओं पर तैनात हैं। उनका अपनी मातृभूमि एवं राष्ट्र के प्रति अथाह प्रेम एवं पूर्ण समर्पण है। वे दिन-रात अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हैं और इसका चप्पा-चप्पा अपने लहू से सींचते हैं– **''मातृभूमि का चप्पा-चप्पा / इनके शोणित से सिंचित / इनके दिल में पा न सकोगे / संशय या दुविधा किंचित / साक्षी है इतिहास / साक्षी**

धरती / साक्षी है आकाश. ./ किसे नहीं प्यारे लगते हैं / वीर बाँकुरे गढ़वाली / करते हैं दिन रात /मातृभूमि की रखवाली...../ वीर बाँकुरे गढ़वाली ....।''

'भारत माता' कविता में कवि ने भारत माता की वंदना की है–

''जय जय जय हे भारत माता / नभ निवासिनी जल निवासिनी
हरित-भरित भूतल निवासिनी / जय जय जय हे भारत माता।''

राष्ट्रीय भावना के विखण्डन का दर्द– 'बस करेंगे आज प्रायश्चित' कविता में नागार्जुन ने राष्ट्र के विभाजन पर अपने मन की बात कही है–

''इधर भारत हो गया, उस ओर पाक / हो गई यह कौन ही बस चाक-चाक / मना बापू ने किया, माने न हम / इधर ईश्वर, उधर अल्ला की कसम / धर्म का उन्माद अवसर पा गया / राष्ट्र के ऊपर विभाजन छा गया।''

'फिक्र में पड़ गए कामरेड!' कविता में बताया गया है कि कुछ लोग राष्ट्रीय एकता एवं भाईचारे की भावना को पसन्द नहीं करते हैं। कहीं पर शान्ति हो, तो उन्हें चिन्ता सताने लगती है कि कहीं कोई दंगा क्यों नहीं भड़क रहा– **''कहाँ गया वह जर्जर खण्डित देश / उभर आया एकाएक / कैसी यह नयी कौम, कैसी यह नई कौमियत । / हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई-सिक्ख साथ-साथ रहत्त। / राष्ट्रीय संकट में कहीं नहीं दंगा भड़कत्त।''**

'चलो चलो धरना दें चलकर' कविता में शासक वर्ग के लोगों की घटिया मानसिक प्रवृत्ति के बारे में बताया गया है। सत्ता मिल जाने पर उनके रंग-ढंग बदल जाते हैं। वे छल-कपट की नीतियाँ बनाते हैं तथा निज सुख के बारे में ही सोचते हैं। राष्ट्र की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते– **''नशा चढ़ा बहुमत का, आती खट्टी बास डकार में, / लगता है मिल गई हुकूमत इनको कहीं उधार में / शासक दल के क्या कहने हैं, माहिर कपटाचार में / पार्लमेंट को बदल लिया है इन सबने चटसार में / नशा चढ़ा बहुमत का, आती खट्टी बास डकार में।''**

'बाढ़ : ६७ पटना' कविता में बताया गया है कि नेता लोग चुनाव को तमाशा समझते हैं। पाँच वर्ष की सत्ता के अन्दर वे सब कुछ इस तरह प्राप्त करना चाहते हैं, जैसे तेल के कोल्हू से शक्कर निकालना चाहते हों। अपने राष्ट्र की उन्हें बिल्कुल चिंता नहीं है–

''हार का डर नहीं, न जीत का प्रलोभन / तमाशा है चुनाव इनके लिए, परम सुशोभन / चलती है हुकूमत अफसर की तीस-पैंतीस साल / रहेंगे मिनिस्टर पाँच वर्ष राम लाल-श्याम लाल / इसीलिए हाहुत्ती तरह मंत्री खाते हैं चक्कर / तेल के कोल्हू से निकालना चाहते हैं शक्कर।''

'स्वगत-चिंतन काँग्रेसी आला कमान का' कविता में नागार्जुन बिहार में होने वाले मध्यावधि चुनावों की बात करते हैं, जब दल-बदलू नेता अपना रंग दिखाते हैं। यहाँ बिहार के लिए स्थायी सरकार न होने के कारण कवि चिन्ता व्यक्त करता है–

''हाय रे बिहार, / लेगा क्या फिर से संविद-सरकार ! / दलबदलू 'विभीषण' करेंगे तेरा उद्धार! / दिया नहीं तूने शोणित-सिंह को अपना प्यार ! / . . . हाय रे बिहार ! / कब मिलेगी तुझे अब 'स्थाई सरकार'?''

नेताशाही तथा राष्ट्रीय मूल्यों का विघटन– 'झूमे बाली धान की' कविता में नागार्जुन ने नेताशाही और भ्रष्टाचारी का राज बदलने की बात कही है। जन सामान्य ऐसी स्थिति में निरन्तर शोषण का शिकार होता है, इसलिए ऐसी सत्ता को बदलना ही एकमात्र उपाय है–

''निश्चय राज बदलना होगा, शासक नेताशाही का / पदलोलुपता, दलबंदी का भ्रष्टाचार, तबाही का / आजादी टकसाल बनी है, परमिट के भुगतान की / चमचम चमके हँसिया प्यारा, झूमे बाली धान की।''

'जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतन्त्र की' कविता में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का चित्रण हुआ है। जय प्रकाश पर लोकतन्त्र की लाठियाँ पड़ रही हैं– **''एक और गाँधी की हत्या होगी क्या? / बर्बरता के भोग चढ़ेगा योगी अब क्या? / पोल खुल गई शासक दल के महामंत्र की। / जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतन्त्र की।''**

राष्ट्रीय मूल्यों का विघटन दिखाते हुए नागार्जुन कहते हैं– **''भटक गया है देश दलों के बीहड़ वन में / कदम-कदम पर संशय ही उगता है मन में / नेता क्या है, निज-निज गुट के महापात्र हैं / राष्ट्र कहाँ है शेष, शेष बस 'राज्य' मात्र है।''**

'हो गए बारह महीने' कविता में नागार्जुन ने आम जनता को दु:ख भोगते हुए दिखाया है। कारण यह है कि सरकार को सत्ता में आए हुए लगभग एक वर्ष हो गया है और नेताओं ने ईमानदारी की नीति का त्याग कर दिया है– **''स्वच्छता की कसम खाए / दुआ का टीका लगाए / प्रशासन का सुफल पाए / हो गए बारह महीने / . . .सादगी- ईमानदारी / गई कुचली, गई मारी / दु:खी है नर और नारी / हो गए बारह महीने।''**

'अपना यह देश है महान' कविता में देश भर में चल रहे अत्याचार एवं नेताओं द्वारा कुछ न किए जाने का संकेत है। नेताओं के दाँव-पेंच कोई नहीं समझता, क्योंकि किसान एवं मजदूर सीधे-सादे हैं– **''अपना यह देश है महान। / तभी तो यहाँ चल रहा भेड़िया धसान। शब्दों के तीर हैं जीभ हैं, कमान / सीधे हैं मजदूर, बुद्धू हैं किसान / लीडरों की नीयत कौन पाएगा जान / अपना यह देश है महान।''**

'माई नहीं रही है चेत...' कविता में नागार्जुन बताते हैं कि राजनीति में लाभ एवं लोभ का प्रेत घुस गया है। राजनेता अपने ही देश को टिड्डों की भाँति धीरे-धीरे खाए जा रहे हैं, लेकिन उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है– **''लोकसभा के गलियारों में घुस आए हैं प्रेत / टिड्डे बनकर चर जाएँगे यही वतन के खेत / देखो, देखो, फिर भी माई नहीं रही है चेत / पॉलिटिक्स में मिला चुकी है लाभ-लोभ की रेत/ लोकसभा के गलियारों में घुस आए हैं प्रेत।''**

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में दृष्टि का पैनापन और कबीर की तरह खुली आँखों से जीवन का निरीक्षण है। अपनी राष्ट्रीय कविताओं में नागार्जुन ने सच्चे देश-सेवक एवं राष्ट्रपंथी के रूप में अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुए लोकमंगल की कामना की है। राजनैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों के अन्तर्गत कहीं पर नागार्जुन ने नेताओं की प्रवृत्ति, प्रशासन द्वारा अत्याचार, शोचनीय शासन-व्यवस्था का चित्रण किया है, तो कहीं पर जनसामान्य की दयनीय स्थिति का वर्णन है। नागार्जुन की प्रस्तुत कविताओं में स्वतन्त्रता की भावना, देश-प्रेम और इसके साथ ही; विश्व-कल्याण की भावना भी देखने को मिलती है। उनके काव्य में जहाँ एक ओर राष्ट्र के प्रति प्रेम देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीयता का खण्डन होता हुआ भी दिखाई देता है। उन्होंने नेताशाही एवं राष्ट्रीय मूल्यों के विघटन को भी यथास्थान अपने काव्य में चित्रित किया है।

●

'रेत में आधा दबा यह पहिया' : अज्ञेय का काल-चिन्तन

डॉ. माधुरी पाण्डेय गर्ग *

कवि अज्ञेय प्रयोगवादी धारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी अज्ञेय की लेखनी एक साथ कई विधाओं पर चली है। अपनी प्रतिभा से उन्होंने गद्य एवं काव्य विधा– दोनों को ही नवीन रचनादर्शों से सँवारा है। कवि अज्ञेय एक साथ क्रांतिकारी, सैनिक, पत्रकार, सम्पादक, चिंतक, कवि, लेखक और गीति-नाट्यकार थे।

यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाए, तो यह सत्य होगा कि अज्ञेय की रचनाओं में एक सतर्क चिंतक की गम्भीरता, दार्शनिक विचारधारा, कवि की निश्छल अनुभूति सामाजिक-राजनैतिक विसंगतियों का यथार्थ स्वरूप झलकता है। साहित्य व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब होता है– इस आधार को यदि मूल्यांकन की कसौटी बनाया जाए, तो यह सत्य है कि अज्ञेय के व्यक्तित्व की छाप उनके साहित्य में परिलक्षित होती है। अज्ञेय सभ्यता और संस्कृति के हिमायती हैं। उनकी दृढ़ धारणा है कि सभ्यता एवं संस्कृति के सेवन, अनुसरण से ही जीवन की समस्त परिस्थितियों का डटकर सामना किया जा सकता है। डॉ. सुरेशचन्द्र पाण्डेय के अनुसार–''अज्ञेय द्वारा रचित साहित्य, विशेषत: काव्य साहित्य, भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता-बोध का विशाल कोश है, जिसका अध्ययन-मनन सुखद और प्रीतिकर अनुभव है। यह अनुभव हमें अपनी विशाल सांस्कृतिक परम्परा से जुड़ने के लिए प्रेरित करता है, अपने भीतर झाँकने के लिए उकसाता है।''[१] रचना की 'विषय-वस्तु' को सहज एवं सटीक ढंग से अभिव्यक्त करने हेतु उन्होंने मिथकों का सहारा लिया है।

कर्म के प्रति सचेत, सतर्क, सजग एवं समर्पित रचनाकार अज्ञेय ने अपने साहित्य में भारतीय एवं ग्रीक मिथकों का विशेष प्रयोग किया है। साथ ही; वर्तमान परिवेश में व्याप्त विभिन्न कठिनाइयों का निदान-समाधान भी प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से 'मरुस्थल' काव्य-संग्रह, जो उनका अन्तिम काव्य-संग्रह है, मृत्यूपरांत १९९५ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल १५ रचनाएँ हैं, जिसमें 'रेत में आधा दबा यह पहिया' कविता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह कविता कवि के 'जातीय अस्मिता बोध' को रेखांकित करने के साथ-साथ प्राचीन धर्म-ग्रन्थों, इतिहास साहित्य, पुराण साहित्य, संस्कृति-मूल्य एवं आदर्शों से भी उनके जुड़ाव को अभिव्यक्त करती है। साथ ही; साहित्य के माध्यम से हम सभी को भी जुड़ने हेतु प्रेरित करती है।

भारतीय संस्कृति के रक्षक कवि अज्ञेय प्राकृतिक उपादानों से भी प्रभावित हैं। प्रकृति के उपादान– सागर, नदी, पहाड़, पर्वत और झरने की तरह मरुस्थल भी सदैव उनके विचारों को परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हैं। सागर एवं पर्वत की भाँति 'मरु' के प्रति भी उनके मन में आकर्षण था। 'भवन्ती' की एक टीप में कवि अज्ञेय ने अपनी इस दृष्टि को व्यक्त किया है– मैं सागर तट पर नदी सेवित पर्वतीय उपत्यका में रहना चाहता हूँ। मेरी सादगी देख, क्या चाहता हूँ? वैसी ही भूमि, मेरी भूमि और उससे उपजने वाला मिथक ही मेरा मिथक हो, तो क्या बुरा है? लेकिन जैसी जगह रहना चाहता हूँ, वैसी कभी मिली कहाँ है? 'बारी-बारी पर्वत, सागर, नदी और मरु के पास रहा हूँ।''[२]

अज्ञेय ने पर्वत, सागर, नदी के मिथकीय महत्त्व को अपनी कविताओं में उजागर तो किया है, लेकिन 'मरु' छूट गया था। 'मरुस्थल'[३] की कविताओं के माध्यम से 'जीवन के धुनी' कवि

* प्राध्यापक– हिन्दी, शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म. प्र.)

ने मरुस्थल की छवि से निराकार का स्तवन किया है।''[४] और इस प्रकार, मिथक इंटीग्रेट हो गया प्रतीत होता है। सागर प्राक्तन अस्तित्व की पुकार है, पर्वत शिखर मौन भाव से रहस्यमयी विराट सत्ता की प्रार्थना ही नहीं करते, अपितु द्रष्टा को जिज्ञासा और विस्मय से भर देते हैं। ''कदाचित् शिखरों पर से देवी ध्यान करती हैं कैलाशवासी योगीश्वर का, उस अनिकेत तपस्विनी का, जिसकी ही जय होगी।''[५]

सागर की लहरों के समानान्तर 'मरु में लहर' और 'बालू की झील' की अनुभूति के द्वारा अज्ञेय मरु के अनन्त विस्तार में विरह का भावन करते हैं और इस तथ्य को रेखांकित भी करते हैं कि 'मरु' भी जीवन का आधार है और अमर रूप है। रात की रौंदी हुई रेत भोर में छविमयी हो जाती है। बहकी हवाएँ पैरों के छापे धो-पोंछ देती हैं। मरु का अनन्त विस्तार शताब्दियों के जीवन-क्रम, सभ्यता और संस्कृतियों के उत्थान-पतन, उनके बनने एवं बिगड़ने के क्रम के साक्षी हैं। इसीलिए कवि के अन्तर्मन में रेत से गुजरने वाले काफिलों, गड़ेरिन, मालिन, कबीलाई रानियों, राजकुमारियों की प्रेम-गाथाओं, जोगियों के अलगोजों से रिसने वाली वेदना, मनस्ताप का संश्लिष्ट चित्र उभरता है, जो 'पगलाये से पिपियाते हुए पंछी', 'पिपियाता वह आकुल परेवा' और अंतत: 'पिपियाते सुरों की गूँज' में घनीभूत हो उठता है। ये सभी दृश्य महाकाल की लीला की ओर संकेत करते हैं, साथ ही; विरह-भाव की स्थिति को भी घोषित करते हैं। इस प्रकार, विरह को कवि अज्ञेय ने एक नया रूप देने की पूर्णत: कोशिश की है, क्योंकि आज की निरी भौतिकता से घिरे हम अपने भीतर और बाहर मरु के रेत का विस्तार करते जा रहे हैं। हम बालू के घरौंदे बनाते हैं, मिटाते हैं और नहीं जानते हैं कि रेत के कणों में छिपी विकिरण की अनन्त शक्ति महाविनाश की भी पृष्ठभूमि तैयार कर सकती है। सागर के स्वर की तरह हम रेत के स्वर को अनसुनी कर जाते हैं और यह भूलते जा रहे हैं कि मनुष्य-जीवन से श्रेष्ठ कुछ नहीं है– 'मानव ही मानव की तीसरी आँख है।' इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि 'मरु' अज्ञेय के लिए मिथक का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। 'मरुस्थल की सीपियाँ' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है– ''एक बार मरुस्थल की रात में टहलते हुए एकाएक मैंने जाना कि यह मरुस्थल भी तो उसी अस्तित्व के महासागर का एक रूपक है– उतना ही समर्थ रूपक, जितना कि जलनिधि।'' तो सत्ता के अनन्त विस्तार का ही एक रूपक मरुस्थल भी हो सकता है, जैसे कि सागर। और शायद इसीलिए मरुस्थल ने उस विस्तार के अपने दार्शनिक पैदा किए हैं, जो अरण्य के ऋषियों से किसी तरह कम नहीं रहे होंगे।''[६] मरु हमारे न जाने हुए, न समझे हुए बहुत कुछ का प्रतीक हैं, जिन्हें समझा भी था या कि समझता था कि समझता हूँ, उनमें से भी कोई-कोई एक दिन हठात् केवल 'जाने हुए' हो गए। एक बालू की मुठ्ठी थी, जो ''मेरी उँगलियों में से फिसलकर निकल गयी है, पर जिसके कण-कण का संस्पर्श मैंने भोगा, जो 'मेरी' थी, तब उसे पहचानने का विस्मय, उसे समझने का दु:सह दुर्वह सुख।''[७]

जीवन की नश्वरता को रेखांकित करने के लिए, काल की लीला का बोध कराने के लिए, अज्ञेय ने 'मरु' को प्रतीक या बिम्ब के रूप में चुना है।

'रेत में आधा दबा यह पहिया' कविता 'काल-मिथक' के स्वरूप को उजागर करती है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का रूप इस कविता में समाहित है। काल-चक्र से सृष्टि प्रभावित होती है और होती भी रहेगी। यह कहा जा सकता है कि– ''अज्ञेय की मिथकीय संचेतना एक सांस्कृतिक यात्रा है। इस यात्रा का आरम्भ-बिन्दु व्यक्ति है और मंजिल है– विराट का साक्षात्कार। सच्चा कलाकार 'कला को काल में' और 'काल को कला में' स्थापित करता है।''[८] काल एक महत्त्वपूर्ण मिथक

है। अज्ञेय ने पश्चिमी काल के 'एकरेखीय रूप' की तुलना में 'आवर्ती रूप' को महत्त्व प्रदान किया है। 'काल का डमरू नाद' नामक अपने निबन्ध में उन्होंने भारतीय स्वरूप– 'आवर्ती रूप'– को महत्त्व प्रदान किया है– 'अन्त' नया 'आरम्भ' बन जाता है और काल-चक्र ही अमरत्व का चक्र बन जाता है। दूसरे शब्दों में– ''नित्यता, नैरन्तर्य, अमरत्व सभी का मूल आधार वृत्त है।''[९] इसी प्रकार, 'डमरू' एक दूसरा प्रतीक भी है। नटराज शिव के हाथ में स्थित डमरू नाद अर्थात् ब्रह्म और सृष्टि का प्रतीक है। 'डमरू' स्वयं में आवर्तीकाल का प्रतीक है। 'डमरू' सृष्टि का प्रतीक है, जिसे काल के आयाम में, सत्ता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[१०] इस सन्दर्भ में कवि अज्ञेय का मत है– ''काल-चेतना अनु या प्रति-गति की ही चेतना है– भविष्य की ओर गति या अतीत से परे गति है, स्मृति है अथवा प्रतीक्षा है।''[११]

'मरुस्थल' की यह कविता उस अनन्त शक्ति की चरम पराकाष्ठा को रूपायित करती है, उस ब्रह्म की शक्ति का बोध कराती है। मरु स्वयं में एक सशक्त प्रतीक है, जिसके इर्द-गिर्द अज्ञेय ने अपनी रचनाओं/कविताओं का ताना-बाना बुना है–

''काल की रेती पर हमारे पैरों की छापें? / हमीं तो हैं बिखरे बालू के कण,
जिन पर लिखता बढ़ जाता है काल / अपने पैरों के छापे सरल-गूढ़,
अर्थ-भरे नियति गर्भ।''[१२]

यह सत्य है कि हम मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन काल-चक्र के अनुसार ही सम्पादित करते हैं और कहीं-न-कहीं उस असीम सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करने हेतु नतमस्तक भी होते हैं। 'यही वह गलियारा है' 'मरुस्थल' संग्रह की १२वीं कविता है, जिसकी सम्पूर्ण पंक्तियाँ मिथकीय प्रतीक के रूप में 'कर्ण-वध' से सम्बन्धित हैं। कविता का यह अंश–

''यह इधर-रेत में आधा दबा यह पहिया / पड़ा वह अरा-काला
इसी से मारा था कृष्ण ने कर्ण को।''

काल-मिथक की दृष्टि से 'मरुस्थल' संग्रह की यह १२वीं कविता बहुत ही सशक्त है। इस कविता में अज्ञेय ने इतिहास को निरी घटनाओं के जड़-समूह के रूप में नहीं, अपितु जीवन-शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। इस शक्ति को वे 'इतिहास पुरुष' के रूप में पहचानते हैं। अज्ञेय की यह मौलिक उद्‌भावना है। अज्ञेय का 'इतिहास पुरुष' वस्तुत: महाकाल है। काल अपने चक्र में सबको समेट लेता है। इस प्रकार, उसका प्रतिशोध पूरा होता है–

''यों होता है इतिहास का शोध / यों इतिहास पुरुष/लेता है प्रतिशोध''

इस कविता की महीन बुनावट में प्राचीन भारत के वैभव की एक झलक मिल जाती है, जब भारत के सुदूर देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। सब कुछ रेत में दब गया है। यह कविता छल-छद्म-युक्त आधुनिक सामाजिक व्यवस्था की ओर भी हल्का इशारा करती है–

''गलियारे में चालू है नाटक / एक हवा और झट / बदल जाता है पट / यह इधर / रेत में आधा दबा यह पहिया / पड़ा वह अटा-काला / इसी से मारा था कृष्ण ने कर्ण को''

कविता का केन्द्रीय प्रतीक 'रेत में आधा दबा यह पहिया' है, जो अपने चरित्र में पौराणिक एवं मिथकीय है। यह प्रतीक काल-मिथक को उभारता है। इस प्रतीक का स्रोत महाभारत का 'कर्ण-वध' प्रसंग है।

अर्जुन द्वारा कौरव सेना के भयंकर विनाश के बाद कर्ण को कौरव सेना का सेनापति बनाया गया। कर्ण ने युद्ध में अर्जुन को परास्त करने तथा मार डालने का संकल्प लिया, परन्तु इस शर्त

के साथ कि उसका सारथी भी कृष्ण की तरह नीतिज्ञ और पराक्रमी हो। कर्ण की दृष्टि में मद्रनरेश शल्य इसके लिए सर्वथा योग्य थे। दुर्योधन ने शल्य की बहुत प्रशंसा की और उन्हें श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ बताया। दुर्योधन के अनुनय-विनय करने पर किसी प्रकार शल्य ने कर्ण का सारथी बनना स्वीकार कर लिया। परन्तु शल्य की एक शर्त थी– ''मैं इसके (कर्ण के) समीप, जैसी मेरी इच्छा हो, वैसी बातें कर सकता हूँ।'' कर्ण और दुर्योधन ने मद्रनरेश शल्य की यह शर्त स्वीकार कर ली।''[१३]

मद्रराज शल्य ने कर्ण का सारथी बनना स्वीकार तो कर लिया, लेकिन उन्होंने कर्ण को बहुत हतोत्साहित किया– **''क्व च हि नरवरो धनंजयः / क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान्।''**[१४]

महाभारत में कर्ण-पर्व के अध्याय नब्बे के सात श्लोकों (८१ से ८५ तथा १०४ और १०५) में पृथ्वी में कर्ण के रथ के पहिये के धँस जाने का उल्लेख हुआ है और यही अर्जुन द्वारा कर्ण के वध का कारण बना।[१५] पृथ्वी में कर्ण के रथ का पहिया फँस जाने के बाद कृष्ण ने अर्जुन से कहा– ''पार्थ! कर्ण जब तक रथ पर नहीं चढ़ जाता, तब तक अपने बाण द्वारा इस शत्रु का मस्तक काट डालो''–

''तातः किरीही प्रतिलम्य संज्ञां / जग्राह बाणं यमदण्ड कल्पम्
ततोऽर्जुनः प्रांजलिकं महात्मा / ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थम्
छिन्ध्यस्य मूर्धा नमरेः शरेण / न मावदारोहति वै रथं वृषः।''[१६]

कृष्ण के परामर्श के बाद अर्जुन ने कर्ण का वध कर डाला।

कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में कैसे फँस गया, इसके पीछे भी एक अंतर्कथा है। कथा इस प्रकार है– ''शस्त्रों के अभ्यास के समय एक बार कर्ण विजय नामक एक ब्राह्मण के आश्रम के पास घूम रहा था। अनजाने में कर्ण के बाण से उस ब्राह्मण की होम धेनु का बछड़ा मर गया। उस ब्राह्मण ने कर्ण को शाप दिया– ''जिस समय तुम रण क्षेत्र में युद्ध करते-करते अत्यन्त भय को प्राप्त होवोगे, उसी समय तुम्हारे रथ का पहिया गड्ढे में गिर जाएगा।''[१७]

परशुराम का श्राप भी कर्ण-वध का निमित्त बना। कर्ण ने ब्राह्मण बनकर परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था। परशुराम को जब ज्ञात हुआ कि कर्ण सूत पुत्र है और विद्या सीखने के लिए छल किया है, तब उन्होंने कर्ण को श्राप दिया कि– ''मृत्यु के समय यह अस्त्र उसे भूल जाएगा– 'न कर्म काले प्रतिभास्यति त्वाम्', क्योंकि ब्राह्मणेतर मनुष्य में यह ब्रह्मास्त्र सदा स्थिर नहीं रह सकता।'' रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जाने के बाद घबराहट में कर्ण श्राप के प्रभाव से दिव्यास्त्र का प्रयोग करना भूल गया।[१८]

रथ का पहिया धँस जाने के बाद कर्ण ने अर्जुन से धर्म के आधार पर दो घड़ी के लिए युद्ध रोक देने का आग्रह किया है– **''त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव / अभिज्ञो युद्धधर्माणां तस्मात्क्षममुहूर्तकम्। दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि।''**[१९]

उत्तर में कृष्ण ने कर्ण को विगत घटनाओं का स्मरण दिलाते हुए पूछा– 'जब दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि ने एकवस्त्रा द्रोपदी को सभा में बुलवाया था, जब जुएँ के खेल में शकुनि ने छलपूर्वक युधिष्ठिर को हराया था, भीम को छलपूर्वक मार डालने के लिए कर्ण ने जब दुर्योधन का सहयोग किया था, वारणावत नगर में लाक्षागृह में सोये हुए कुन्ती-कुमारों को जलाने में कर्ण ने सहयोग किया था, उस समय कर्ण का धर्म-ज्ञान कहाँ था?' इस प्रकार, कृष्ण ने अर्जुन द्वारा कर्ण-वध को नीति-सम्मत सिद्ध कर दिया। क्या यह 'इतिहास पुरुष' द्वारा प्रतिशोध नहीं है? निश्चित

ही; काल, प्रकृति, नियति, सृष्टि 'येन केन प्रकारेण' मनुष्य के 'अहं' का विनाश करती है। कर्ण के साथ भी ऐसा ही हुआ है। यह काव्य-पंक्ति आज भी प्रासंगिक है।

यह कहा जा सकता है कि आज के इस स्वार्थ-परिवेश में मनुष्य कर्ण की तरह बुद्धि-विवेक रहित हो गया है, मानसिक सन्तुलन खो बैठा है। भौतिक सत्य ही उसे अन्तिम सत्य प्रतीत होता है। मनुष्य की यही दुर्गति है, पराभव है, जीवन में ही मृत्यु– 'डेथ इन लाइफ।'

इस मिथकीय प्रतीक के समानान्तर कविता में प्रयुक्त 'गलियारा' को भी रचनाकार ने प्रतीकवत् प्रयोग किया है। आज के परिवेश में 'गलियारा' शब्द 'सत्ता का गलियारा' है। सत्ता में आने के लिए लोग जी तोड़ परिश्रम करते हैं, और समयानुसार बदलते रहते हैं। लेकिन वे काल-चक्र में समाहित होते रहते हैं– 'कर्ण' की ही तरह। मरु इन सभी का साक्षी है। संसार नश्वर है– 'देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभाति।' सूक्ष्मता से यदि विश्लेषण किया जाए, तो रचनाकार ने 'सत्य' को प्रतिभासित कर दिया है। 'स्व-अस्तित्व' एवं 'अस्मिता का बोध' करने हेतु विवश कर दिया है। डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय के अनुसार– ''मरुस्थल' अज्ञेय काव्य-मंजूषा का नगीना है। विषय-वस्तु की दृष्टि से यह गम्भीर दार्शनिक कृति है, लेकिन इसमें दर्शन की शुष्कता, नीरसता और कठोरता नहीं है। ये कविताएँ पढ़ने से अधिक मनन करने एवं गुनने की चीज हैं। कविता में आए शब्द, चाहे वे तत्सम हों या तद्भव, बिम्ब रूप में आए हों या प्रतीक रूप में– सभी कवि की अनुभूति के अनिवार्य एवं अविच्छिन्न अंग हैं। यह विशेषता इस कृति को अतिरिक्त गौरव प्रदान करती है।''[२०]

सरल, परिमार्जित शैली में यह कविता अधूरी होने पर भी 'जीवन-यथार्थ' की अभिव्यक्ति में सक्षम है। अज्ञेय के ही शब्दों में– ''स्मृति के बिना काल नहीं, सातत्य नहीं है– 'स्मरामि: अतएव अस्मि।' मैं स्मरण करता हूँ, इसलिए मैं हूँ।''–

'कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू' – कवि काल के फलक पर भाव टाँक देता है। सृजन– यही तो कवि पद है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यह कविता बड़ी ही गम्भीरता से जीवन-मूल्यों का बोध कराने में सक्षम है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय– समकालीन काव्य, पृ. ६६ २. भवन्ती, पृ. १३५
३. अज्ञेय के देहावसान के पश्चात् प्रकाशित (१९९५)
४. द्रष्टव्य, इला डालमिया– कोइराला का निवेदन
५. अरे यायावर रहेगा याद, पृ. १९४ ६. कहाँ है द्वारका, पृ. ९६-९८
७. भवन्ती, पृ. ५३ ८. शाश्वती, पृ. ९१
९. आलवाल, पृ. ९७-९८ १०. आलवाल, पृ. १००
११. आलवाल, पृ. १०१ १२. आलवाल, पृ. ९
१३. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय ३२, ३५, पृ. ३८९ तथा ३८६५
१४. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय ३७, ३५, पृ. ३८७१
१५. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय ८६, ३५, पृ. ४०८८
१६. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय ९१, ३५, पृ. ४०९
१७. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय ४२, ३५, पृ. ३८९१
१८. महाभारत– कर्ण पर्व, पृ. ३८८७ १९. महाभारत– कर्ण पर्व, अध्याय १९, पृ. ४०८८
२०. डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय– अज्ञेय : साहित्य-विमर्श, खण्ड-३, पृ. २८७

दरख्तों के साये में दुष्यन्त

डॉ. संध्या द्विवेदी*

दुष्यन्त कुमार नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। एक ओर उन्होंने कविता, नाटक, आलोचना जैसी विधाओं पर लेखनी चलाई है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी गजल को भी समृद्ध करने में उनका विशेष हाथ रहा है। वैसे तो गजल-विधा का सबसे ज्यादा प्रयोग उर्दू साहित्य में हुआ है, लेकिन कुछ विद्वान् इसका उद्‌भव फारसी से मानते हैं। गजल विधा के भारत आगमन के पीछे सातवीं सदी हिजरी के आरम्भ में ईरान पर हुए मुगल-तैमूर आक्रमण थे, जिससे संत्रस्त होकर ईरानी विद्वान्, साहित्य-प्रेमी और सूफी सन्त अपनी बची-खुची पूँजी लेकर सपरिवार भारत आए और जहाँ जगह मिली, वहाँ बस गए। भारत आकर ये लोग स्थानीय भाषाओं से धीरे-धीरे परिचित होने लगे। उनकी अपेक्षा भारत में जन्में उनके बालकों के लिए यहाँ की बोलियाँ एवं भाषाएँ सीखना ज्यादा सुगम और स्वाभाविक था। इन्हीं बालकों में से कुछ ऐसे भी थे, जो युवा होकर अपनी पैतृक भाषा के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी विनोदार्थ कुछ-न-कुछ कह लिया करते थे। धीरे-धीरे कुछ-कुछ कहने वाले यही लोग हिन्दी में बहुत कुछ कहने लगे और फिर दिनों-दिन हिन्दी के माध्यम से कहने वालों का ताँता-सा बँध गया। गजल भी कही जाने लगी। इस तरह से, एक सुनिश्चित परम्परा चल पड़ी।''[१]

लेकिन यदि हिन्दी में गजल विधा को जाना-पहचाना जाता है, तो उसमें पहला नाम दुष्यन्त से शुरू होता है। दुष्यन्त ने जिस प्रकार से हिन्दी गजल को एक नया आयाम दिया, उसे देखकर कहीं-न-कहीं गालिब की याद जरूर आती है। गालिब की गजलों या विशेषकर उर्दू की गजलों में जिस पीड़ा की अनुभूति पाठक करता है, सम्भवत: उस पीड़ा से निकालकर दुष्यन्त ने अपनी गजलों के माध्यम से एक नया रूप दिया है। वे लिखते भी हैं– ''यहाँ मैं यह साफ कर दूँ कि गजल मुझ पर नाजिल नहीं हुई। मैं पिछले पच्चीस वर्षों से इसे सुनता और पसन्द करता आया हूँ और मैंने कभी चोरी-छिपे इसमें हाथ भी अजमाया है। लेकिन गजल लिखने या कहने के पीछे एक जिज्ञासा अक्सर मुझे तंग करती है और वह यह है कि भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्जा गालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए गजल का माध्यम ही क्यों चुना? और अगर गजल के माध्यम से गालिब अपनी तकलीफ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं, तो मेरी दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?''[२]

जहाँ उर्दू गजल जीवन समाप्त होने के बाद का आमन्त्रण है, जैसे– प्रेमिका का प्रेमी को मजार पर बुलाना, उस पर फूल चढ़ाना, चिराग जलाना आदि विषय प्रमुखता से देखे जा सकते हैं, वहीं दुष्यन्त की गजलों में एक जोश दिखाई देता है, जैसे- 'गूँगे निकल पड़े हैं जुबाँ की तलाश में।'

दुष्यन्त कुमार नयी कविता के कवि हैं। विशेषकर उनका साहित्य आक्रोश और पीड़ा का साहित्य है। जिस समय नयी कविता की भावभूमि जीवन की कठोरता को उकेरने में लगी थी, उसी समय दुष्यन्त ने कविता और गजल को अपना माध्यम बनाया। हालाँकि इस समय गजल-

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद
४/९० रजनी खण्ड शारदा नगर, लखनऊ उत्तर प्रदेश

लेखकों की कमी नहीं थी, लेकिन साहित्य वही होता है, जो पाठक के सिर चढ़कर बोले। यह बात दुष्यन्त के बारे में कही जा सकती है। 'साये में धूप' उनका चर्चित गजल-संग्रह है, जिसमें कवि ने सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं को अपनी गजलों के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है। उन्होंने कभी भी समझौते का साहित्य नहीं लिखा। उनका हर एक संग्रह आईने की तरह बिल्कुल साफ है। विद्वानों ने उन पर आरोप भी लगाये कि वे एक 'आवेशी शायर' हैं, किन्तु दुष्यन्त को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने आवेश को चेतना के साथ सम्मिलित कर दिया था।

दुष्यन्त की इस भावना की कद्र करते हुए डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा कि– ''दुष्यन्त कुमार में इन्सान के बुनियादी मूल्यों और सपनों के प्रति एक दर्द भरी आस्था है। उसने मानवमात्र से अपनी एकात्मकता स्थापित की थी और इसीलिए वह कह सकता था– **मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग, चुप कैसे रहूँ।''**

यह सच है कि गालिब से दुष्यन्त प्रभावित थे, लेकिन सच्चाई से मुँह मोड़ लेना भी उन्हें नहीं आता था। जहाँ गालिब अपनी व्यक्तिगत पीड़ा को सामाजिक बनाते हैं, अर्थात् उनका निजी व्यक्तित्व सामाजिक होता है, वहीं दुष्यन्त की स्थिति दोहरी है– एक व्यक्तिगत और दूसरी सामाजिक। इसीलिए उनका मन सदैव विक्षुब्ध और आहत रहता है। वे वर्तमान विसंगतियों को पराजित करना चाहते हैं। इसे स्वयं दुष्यन्त स्वीकार भी करते हैं। वे कहते हैं– ''मेरी तकलीफ गालिब से कम नहीं है और न ही मैंने कम शिद्दत से दर्द को महसूस किया है। हो सकता है अपनी पीड़ा को लेकर हर आदमी को वहम होता है। लेकिन इतिहास मुझसे जुड़ी हुई मेरी समय की तकलीफ का गवाह खुद है।''

दुष्यन्त की गजलों में भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के समय की तकलीफ स्पष्ट देखी जा सकती है। उस समय अधिकतर कवि और शायर भाट और चारण की भूमिक निभा रहे थे। ऐसे में; दुष्यन्त का विरोधी स्वर निश्चित रूप से सराहनीय है। कवि होने का दायित्व वहन करते हुए दुष्यन्त ने लिखा–

''एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है
आज शायर ये तमाशा देखकर हैरान है
मस्लहत आभेज होते हैं सियासत के कदम
तू न समझेगा सियासत, तू अभी नादान है।[३]

निश्चित रूप से; असन्तोष की लहर समूचे हिन्दुस्तान में फैली थी। 'गरीबी हटाओ' का नारा जोरों पर था। समझ में नहीं आ रहा था कि गरीबी हट रही है, गरीब हट रहे हैं या महज एक नाटक है।

स्वार्थ की राजनीति समाज में फैल रही थी, जनता को बेवकूफ बनाया जा रहा था। उसे भ्रम में डालकर सत्ता के गलियारे फल-फूल रहे थे और भोली-भाली जनता उनके झूठे वादों को सुन तालियाँ बजा रही थी। उसने कभी भी पेट की शिकायत नहीं की। ऐसे भ्रष्ट क्रियाहीन नेताओं के विरुद्ध दुष्यन्त लिखते हैं– **''नेताओं / मुझे माफ करना / जरूर कुछ सुनहले स्वप्न होंगे / जिन्हें मैंने नहीं देखा।**

मैने तो देखा / जो मशालें उठाकर चले थे / वे तिमिरजयी, / अँधेरे की कहानियाँ सुनाने में खो गए / सहारा टटोलते हुए दोनों दशक / ठोकरें खा-खाकर लंगड़े हो गए

अपंग और अपाहिज बच्चों की तरह / नंगे बदन / ठंड से काँपता हुआ एक-एक वर्ष / ऐन मेरी पलकों के नीचे से गुजरा है।''[४]

''जब कवि राजनीतिक स्थिति के बारे में सोचते हैं, तो बेहद अप्रिय; परन्तु सच्ची बातें कह जाते हैं। अपने समय के मुल्क की बेहाली का बेबाक शब्दों में खाका खींचते हुए वे लिख जाते हैं।''[५]

इसी का खुलासा करते हुए दुष्यन्त कहते हैं–

''कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है।
मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ
हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।''[६]

सरकारी पद पर रहते हुए सरकार-विरोधी रचनाओं का सृजन करना आम बात नहीं है। उन्होंने अपनी आवाज को बुलन्द करते हुए अनेक बे-जुबानों को आवाज देने का काम किया है। सरकार की पोल खोलते हुए वे लिखते हैं–

''गूँगे निकल पड़े हैं जुबाँ की तलाश में,
सरकार के खिलाफ साजिश तो देखिए।
जिसने नजर उठाई वही शख्स गुम हुआ,
इस जिस्म के तिलिस्म की बंदिश तो देखिए।''[७]

दुष्यन्त जी की गजलें सामयिक इतिहास की प्रतिक्रिया का वह दस्तावेज हैं, जिनकी गूँज संसद से लेकर तंग गलियों तक सुनाई पड़ती है। उनकी गजलें चेतनता की मशाल को प्रज्ज्वलित करती हैं। 'साये में धूप' में वह लिखते हैं–

''मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''[८]

वे चेतनता की आग को बुझने नहीं देना चाहते। उनका मानना था कि समाज की जो दयनीय दशा है, उसका प्रमुख कारण नेतागण हैं। इसीलिए हमें एकजुट होकर, इन स्थितियों का सामना करते हुए, इनसे निपटने का उपाय सोचना चाहिए। वे बेबाक होकर भारतीयों को सुप्तावस्था से जाग्रत करने का प्रयास करते हुए लिखते हैं–

''रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनिया,
इस बहकती हुई दुनिया को सँभालो यारो।
कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों।।''[९]

कहीं-न-कहीं सच कहने का खामियाजा भी उनको भुगतना पड़ा था, क्योंकि सच हमेशा कड़वा होता है। लोग सच सुनने और बोलने– दोनों से ही डरते हैं।

''दुष्यन्त कुमार की सामाजिक चेतना प्रारम्भ से ही प्रखर रही है और 'साये में धूप' तक वह व्यंग्य की धार बहुत पैनी कर चुके थे। उनकी गजलों में शोषण, पराजय, दैन्य, उत्पीड़न और दुर्व्यवस्था की निर्भीक अभिव्यक्ति है। उनकी आस्था का केन्द्र ईश्वर नहीं, मनुष्य है। सामाजिक वैषम्य उन्हें बहुत गहरे तक कुरेदते हैं। वे राजनेता की भूमिका को बारीकी से तोड़ते हैं और राजनीतिक स्वतन्त्रता के पश्चात् मोहभंग की यथार्थता से क्षुब्ध हो उठते हैं।''[१०]

एक शायर में ही इतना दम होता है कि वह सच सुनने और बोलने का हौसला रखता है। दुष्यन्त जी ने इस बात को इस तरह से लिखा है–

''लोग कहते थे कि ये बात नहीं कहने की
तुमने कह दी है, तो कहने की सजा लो यारों।''[११]

बच्चन सिंह लिखते हैं– ''दुष्यन्त कुमार की गजलों में एक ओर उनके विक्षुब्ध मन और तरल आहत अनुराग की ध्वनियाँ हैं, तो दूसरी ओर समाज में विद्यमान विसंगतियों, पराजित संघर्ष, मानव और मानवता के ह्रास, मानव-दमन की दुर्घटनाओं की बारीक मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति मिलती है। दुष्यन्त कुमार गजलों को इसीलिए चुनता है कि जिस काल में वह जी रहा है, उस काल की विद्रूपताओं को वही वाणी देकर रहेगा। चाहे शासन-व्यवस्था उसे जलील करना चाहे, पर वह कभी सिर नहीं झुकायेगा। आपातकाल में वह जिस घुटन को महसूस कर रहा है, उसको तो वाणी देनी ही है।''

गजल पर उर्दू का अधिकार माना जाता था। उर्दू से हिन्दी तक जो सफर गजल ने तय किया, उसका श्रेय दुष्यन्त जी को ही जाता है। हिन्दी में आकर उसने अपना चेहरा और मिजाज भी बदल लिया। 'साये में धूप' की भूमिका में इस बात को स्वीकार करते हुए वह लिखते हैं कि– ''उर्दू और हिन्दी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के बीच आती है, तो उनमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नियत और कोशिश यही रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा-से-ज्यादा करीब ला सकूँ। इसलिए ये गजलें उस भाषा में लिखी गई हैं, जिसमें मैं बोलता हूँ।''[१२]

दुष्यन्त ने हिन्दी गजलों को उस मुकाम तक पहुँचाया है, जो शायद ही कोई कर पाता। अपने ४२ वर्ष के जीवन में दुष्यन्त ने मानव को निरन्तर अभावों में जीते तथा तिल-तिल कर मरते हुए देखा है। समाज अनेक प्रकार की विषमताओं से पटा पड़ा है, जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता है। आम व्यक्ति सिर से पैर तक समस्याओं और दर्दों से घिरा कराह रहा है और उच्च वर्ग के लोगों के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती। दुष्यन्त इस पीड़ा को इस ढंग से व्यक्त करते हैं–

''सिर से सीने में कभी, पेट से पाँवों में कभी
इक जगह हो तो कहें, दर्द इधर होता है।
मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई
पहले से हो गया है जहाँ और भी खराब।
आगे निकल गये हैं घिसटते हुए कदम,
राहों में रह गये हैं निशाँ और भी खराब।''[१३]

एक वर्ग के लिए बेकार की वस्तु, दूसरे के लिए किस तरह जीवनदायी होती है, ऐसी गरीबी का चित्रण करते हुए उन्होंने लिखा है–

''हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत
तुमने बासी रोटियाँ नाहक उठाकर फेंक दी हैं।''[१४]

दुष्यन्त की गजलों में कहीं दु:ख, तो कहीं विद्रोह, कहीं आवेश, तो कहीं चेतनता आदि रंगों में रंगी झलकियाँ दिखाई पडती हैं। फाजली दुष्यन्त के विषय में लिखते हैं– ''दुष्यन्त की नजर उनके युग की नई पीढ़ी के गुस्से और नाराजगी से सजी-बनी है। यह गुस्सा और नाराजगी

उस अन्याय और राजनीति के कुकर्मो के खिलाफ नए तेवरों की आवाज थी, जो समाज में मध्यवर्गीय झूठेपन की जगह पिछड़े वर्ग की मेहनत और दया की नुमाइंदगी करती है।''[१५]

दुष्यन्त केवल राजनीति को ही नहीं, बल्कि अनेक विषयों को अपनी गजलों के रूप में स्वीकारते हैं–

''मैं जिसे ओढ़ता-बिछाता हूँ
वो गजल आपको सुनाता हूँ।''[१६]

दुष्यन्त कुमार की गजलों का वास्तविक अनुशीलन करने से उनकी हर एक गजल मशाल का काम करती हुई दिखाई पड़ती है। उनकी गजलों में समाज की स्थितियों का चित्रांकन तथा बदलाव लाने के लिए जनता के हृदय को झकझोर कर रख देना आदि गुण विद्यमान हैं। उनकी गजलें चेतनता का आलोक फैलाते हुए आगे बढ़ने में सहायक हैं–

''मेरी जुबान से निकली तो सिर्फ नज्म बनी,
तुम्हारे हाथ में आयी तो एक मशाल हुई।''[१७]

दुष्यन्त ने गजल सम्बन्धी धारणाओं को बदलकर एक नयी दिशा प्रदान की है। 'साये में धूप' किसी शायर की मूक अन्तर्व्यथा का प्रकाशन नहीं है, बल्कि समाज की अनेक विपरीत परिस्थितियों के थपेड़े खाकर स्वानुभूतियों की निश्छल अभिव्यक्तियाँ हैं।

दुष्यन्त कुमार अपने सिद्धातों एवं विचारों को आवाम तक पहुँचाना चाहते थे। वे कहते हैं– ''मैं साधारण आदमी हूँ। इतिहास और सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके सम्बन्धों-उलझनों को जीता और व्यक्त करता हूँ.....पाठक से यह पूछना बहुत जरूरी है कि वह कविता के सन्दर्भ में आज क्या सोचता है? और क्या कविता उस तक पहुँच रही है? मैं खुद पाठक के रूप में उस कविता की खोज में हूँ, जो हर व्यक्ति की कविता हो और हर कण्ठ से फूटे।''[१८]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी गजल और दुष्यन्त एक दूसरे के पर्याय हैं। आज हम न दुष्यन्त को भुला सकते हैं, न उनकी गजलों को। उनकी गजलें कवि-कर्म को पूर्णत्व देने में पूरी तरह समर्थ हैं। उनका मानना था कि हम समसामयिक समाज के प्रति वचनबद्ध हैं और उनकी बुनियादी बातों को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करना हमारा काम है। व्यक्तिगत पीड़ा और प्रेमपरक साहित्य का निर्माण हर कोई कर सकता है, लेकिन समाज के दर्द को अपने में समेट कर कशीदें पढ़ना हर किसी लेखक के बस की बात नहीं है। यद्यपि दुष्यन्त सामाजिक कशीदें पढ़ने में कहीं भी कमजोर नजर नहीं आते, लेकिन फिर भी; कवि भी इन्सान होता है। उसकी भी सम्वेदनाएँ हैं। कभी-कभी हताश होकर वह भी कह उठते हैं–

''यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिये।
वो मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिये।''[१९]

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. सरादार भुजावर डॉ. दुष्यन्त कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, संस्करण २००३, पृ.सं. २४
२. कमलेश्वर (सं.)– सारिका - दुष्यन्त कुमार स्मृति अंक, मई १९७५, पृ.सं. ३६

३. डॉ. सरदार भुजावर– दुष्यन्त कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन संस्करण २००३, पृ.सं. ६८
४. डॉ. किशोर– रचनाकार दुष्यन्त कुमार, विनय प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर-२, प्रथम संस्करण २००७, पृ.सं. ३७
५. डॉ. सरदार भुजावर– दुष्यन्त कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, संस्करण २००३, पृ.सं. ३१
६. डॉ. किशोर– रचनाकार दुष्यन्त कुमार, विनय प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००७, पृ.सं. ११
७. डॉ. सरदार भुजावर– दुष्यन्त कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, संस्करण २००३, पृ.सं. ६६
८. डॉ. किशोर– रचनाकार दुष्यन्त कुमार, विनय प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००७, पृ.सं. ११६
९. दुष्यन्त कुमार– साये में धूप, पृ.सं. ४९
१०. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ तथा डॉ. बादाम सिंह रावत– हिन्दी गजल : सन्दर्भ और सार्थकता, पृ.सं. ११६
११. डॉ. किशोर– रचनाकार दुष्यन्त कुमार, विनय प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००७, पृ.सं. १२२
१२. साये में धूप– राधाकृष्ण प्रकाशन, १८वाँ संस्करण, पृ.सं. ०३
१३. दुष्यन्त कुमार– साये में धूप, पृ.सं. ४६
१४. दुष्यन्त कुमार– साये में धूप, पृ.सं. ५४
१५. दुष्यन्त कुमार– साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, १८वाँ संस्करण १९९९, पृ.सं. १३
१६. डॉ. किशोर– रचनाकार दुष्यन्त कुमार, विनय प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००७, पृ.सं. ११४
१७. कमलेश्वर (सं.)– सारिका दुष्यन्त स्मृति अंक, पृ.सं. ११४
१८. कमलेश्वर (सं.)– सारिका दुष्यन्त स्मृति अंक, पृ.सं. ८५
१९. दुष्यन्त कुमार– साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, १८वाँ संस्करण १९९९, पृ.सं. १३

●

कवि अटल बिहारी वाजपेयी के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. कपिल देव पँवार*

राष्ट्र के प्रति ममत्व की अनुभूति एवं सकारात्मक आवेग राष्ट्र-चेतना कहलाती है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की परिकल्पना के साथ हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना की मानसिक अनुभूति का प्रवाह होता है, जो राष्ट्र को प्रबल शक्ति और प्रभावशाली प्रेरणा प्रदान करती है। ''राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीयता, राष्ट्र शब्द से बनी हुई भावात्मक संज्ञा है, अत: स्पष्ट है कि राष्ट्र के प्रति हम जो भावना रखते हैं, वही राष्ट्रीयता है। शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जिसे अपने राष्ट्र-गौरव का बोध न हो अथवा वह राष्ट्र से अपना सम्बन्ध न मानता हो।''[१] अत: राष्ट्र के प्रति किसी नागरिक का भावनात्मक सम्वेग उसकी राष्ट्रीय चेतना कहलाती है। भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना प्राचीन काल से प्रस्फुटित होती आई है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में– ''साहित्य का मानव-जीवन से चिरंतन सम्बन्ध है। साहित्य का स्रष्टा मनुष्य है और मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानव-जीवन ही साहित्य का उपादान और विषयवस्तु रहा है और रहेगा। मानव-जीवन विकासशील वस्तु है, इसलिए साहित्य भी विकासशील वस्तु है।''[२] भारतभूमि में स्वदेश-प्रेम, स्वदेशाभिमान तथा सामुदायिक राष्ट्रीयता का संस्कृत वाङ्मय में सतत् प्रवाह रहा है।

राष्ट्रीय चेतना की सामुदायिक भावना हमें वैदिक काल से प्राप्त है। अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त में जहाँ 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:' राष्ट्रीय चेतना की सामुदायिक भावना का सन्देश देती है, वहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उद्घोषणा से समुदाय की सीमा से उठकर व्यक्ति विश्व-बन्धुत्व की भावना के सूत्र में बँधता है और भारतीय साहित्य 'स्व' की संकीर्ण भावना को त्यागकर अपने युग के प्रत्येक प्राणी के मंगल की कामना करता है।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक राष्ट्रीय चेतना समकालीन कवि-लेखकों का प्रमुख विषय रहा है। हमारे साहित्य का कालगत विशेषताओं के आधार पर विभाजन अवश्य किया जाता है, लेकिन कवि-हृदय राष्ट्रीय चेतना के स्वर से कभी वंचित नहीं रहा, इसीलिए राष्ट्रीय चेतना प्रत्येक काल की कड़ियों को जोड़ने के लिए प्रमुख तत्त्व की भूमिका निभाता है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में चारण-भाट राजाश्रय में रहकर भी राष्ट्रीय एवं जातीय भावनाओं का संचार करते थे। युद्ध से पूर्व सैनिकों को 'आल्हा' सुनाना राष्ट्रीय चेतना जगाने का माध्यम था। भक्तिकाल में साहित्य के मूल में भक्ति प्रधान भाव है, लेकिन राष्ट्रीयता की भावना से भक्तिकाल के कवि भी स्वयं को दूर न रख सके। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में आदर्श रामराज्य की परिकल्पना कवि की राष्ट्र-चेतना को मुखरित करती है। रीतिकाल में शृंगार और विलासिता की भोगवादी प्रवृत्ति की रचनाएँ हुई, लेकिन भूषण जैसे कवियों ने छत्रसाल और शिवाजी जैसे योद्धाओं की राष्ट्र-चेतना में अपनी कविताओं को आकार दिया। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का सूत्रपात ही राष्ट्रीय चेतना के आलोक में हुआ। स्वाधीनता-संग्राम की रणभेरी

* सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

बजते ही कवियों की हुंकार राष्ट्रीय चेतना के रूप में ही दिखाई देती है, जिसमें विशेष रूप से १८५० के बाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, शिवमंगल सिंह 'सुमन' जैसे कवियों ने राष्ट्रीय चेतना के स्वर में कविताओं का सृजन किया।

युगीन परिस्थितियों के साथ हर काल के लेखन में राष्ट्रीय चेतना की तीव्रता में अन्तर जरूर आया, लेकिन कवि-हृदय राष्ट्रीय चेतना से मुक्त न हो सका। राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्वों– भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता, जातीय एकता, भाषिक एकता एवं आर्थिक एकता को भाव-भूमि बनाकर स्वतन्त्रता के बाद भी राष्ट्रीय चेतना की कविताएँ लिखी जा रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में राष्ट्रीय चेतना को प्रबलता के साथ मुखरित करने वाले कवियों में ओजस्वी कवि अटल बिहारी वाजपेयी का नाम प्रमुख है। राष्ट्र के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का भाव रखते हुए उन्होंने हमेशा 'राष्ट्र सर्वोपरि' की भावना के साथ कवि-धर्म निभाया। उनके काव्य में राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं भक्ति, लोकतान्त्रिक भावना, प्रगतिवादी विचारधारा, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार, निकृष्टता जैसे तमाम स्वर प्रस्फुटित होते हैं। अटल बिहारी वाजपेयी की रचनाधर्मिता राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न आयामों को मुखरित करती है और अपने ओज गुण से सम्पन्न कविताओं से वे पाठकीय चेतना उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त करते हैं। उनके काव्य में सामाजिक चेतना की आन्तरिक एवं बाह्य प्रेरणा मिलती है। 'मेरी इक्यावन कविताएँ' नामक काव्य-संग्रह की 'झुक नहीं सकते' नामक कविता में वे हर भारतीय को संघर्ष के पथ पर आत्मसम्मान के साथ लक्ष्य तक पहुँचने की प्रेरणा देते हैं– **''दीप निष्ठा का लिये निष्कम्प / वज्र टूटे या उठे भूकम्प / यह बराबर का नहीं है युद्ध / हम निहत्थे, शत्रु है सन्नद्ध / हर तरह के शस्त्र से है सज्ज / और पशुबल हो उठा निर्लज्ज / किन्तु फिर भी जूझने का प्रण / अंगद ने बढ़ाया चरण / प्राण-प्रण से करेंगे प्रतिकार / समर्पण की माँग अस्वीकार / दाँव पर सब कुछ लगा है, रुक नहीं सकते / टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।''**[३]

राष्ट्रीय स्वाभिमान से ओत-प्रोत उपर्युक्त पंक्तियाँ अटल जी को साहित्यिक पटल पर अमरत्व दिलाने के लिए पर्याप्त हैं। अटल जी राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत हैं। मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूक कवि राष्ट्र-उत्थान के लिए प्रतिबद्ध होता है। हृदय में राष्ट्र-भक्ति लिए हुए वे अपने आस-पास के लोगों को नहीं, बल्कि अपनी कविताओं में नये-नये बिम्ब पैदा करके प्रत्येक भारतीय को सम्बोधित करते हैं–

''हम अपने को ही पहचाने आत्मशक्ति का निश्चय ठाने
पड़े हुए जूठे शिकार को सिंह नहीं जाते हैं खाने।
एक हाथ में सृजन दूसरे में हम प्रलय लिए चलते हैं
सभी कीर्ति ज्वाला में जलते, हम अँधियारे में जलते हैं।
आँखों में वैभव के सपने पग में तूफानों की गति हो
राष्ट्रभक्ति का ज्वर न रुकता, आये जिस-जिस की हिम्मत हो।''[४]

राष्ट्र-निर्माण में प्रत्येक नागरिक अपना योगदान दे सकता है– चाहे वह योगदान किसी भी रूप में क्यों न हो। राष्ट्र के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के लिए उन्हें हर आहुति मंजूर है। उन्होंने

राष्ट्र-ऊर्जा की जागृति के लिए पोखरण में परमाणु ऊर्जा से राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया। राष्ट्र के प्रति उत्कण्ठित करती हुई उनकी ऐतिहासिक कविता में राष्ट्रीय चेतना के प्रबल स्वर सुनाई देते हैं–

''मेरी कविता जंग का ऐलान है, / पराजय की प्रस्तावना नहीं।
वह हारे हुए सिपाही का नैराश्य-निनाद नहीं, / जूझते योद्धा का जय संकल्प है।
वह निराशा का स्वर नहीं, / आत्मविश्वास का जयघोष है।''[५]

अटल जी की कविताओं में देश-भक्ति की भावना नये-नये अर्थों में उभर कर आती है। उनका जीवन राष्ट्र-देवता को समर्पित है और वे 'इदम् राष्ट्रय, इदम् न मम्' की भावना से देश के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र के लिए समर्पित देखना चाहते हैं। राष्ट्र के प्रति ऐसे समर्पण के लिए वे कहते हैं–

''जिसने रक्त पिलाकर पाला, / क्षण-भर उसका वेश निहारो,
उसकी सूनी माँग निहारो, / बिखरे-बिखरे केश निहारो।''[६]

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की चेतना राष्ट्र के गौरवमयी इतिहास के प्रति हमेशा बनी रहे और वह राष्ट्र के लिए हर पल मर-मिटने के लिए ही नहीं, बल्कि उसमें नित-नूतन चेतनाओं का प्रवाह बना रहे, इसके लिए वे अपनी कविता 'स्वतन्त्रता दिवस की पुकार' में आह्वान करते हैं कि–

''उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से कमर कसे बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएँ, जो खोया उसका ध्यान करें।''[७]

कवि अनेक भावों और कार्यों का समिश्रण होता है। आजादी से पूर्व प्रसिद्ध साहित्यकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्रत्येक देशवासी को स्वतन्त्रता-आन्दोलन के प्रति जागरूक करने के लिए और उनमें राष्ट्र-चेतना की प्रेरणा भरने के लिए कहा था कि- **''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है।''** आजादी के बाद अटल जी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए नहीं, बल्कि आजादी के लिए हमारे स्वतन्त्रता-सेनानियों की कुर्बानी को याद रखने के लिए राष्ट्र में उस चेतना को उज्ज्वलित करने का कार्य करते हैं। अपनी कविता 'उनकी याद करें' में वे कहते हैं कि–

''शहीद जो फाँसी पर चढ़े खेल में, उनकी याद करें।
जो बरसों तक लड़े जेल में, उनकी याद करें।
याद करें काला पानी को, / अंग्रेजों की मनमानी को,
कोल्हू में जुट तेल पेरते, / सावरकर से बलिदानी को।''[८]

अटल जी लोकतन्त्र की नैतिक अवधारणा के हिमायती हैं। वे प्रत्येक नागरिक में लोकतन्त्र के मूल्यों का बोध उत्पन्न करना चाहते हैं। आपातकाल के दौरान उन्होंने जेल में लम्बा समय बिताया और कड़ी यातनाओं के बीच अपने हृदय के उद्‌गार व्यंग्यात्मक कुण्डलियों के माध्यम से प्रस्तुत किए– **''अनुशासन के नाम पर, अनुशासन का खून / भंग कर दिया संघ को, कैसा चढ़ा जुनून / कैसा चढ़ा जुनून, मातृ-पूजा प्रतिबंधित / कुटिल कर रहे केशव-कुल की कीर्ति कलंकित / कह कैदी कविराय, तोड़ कानूनी कारा / गूँजेगा भारत माता की जय का नारा।''**[९]

अटल जी का भाषा पर विशेष अधिकार है। वे कविताओं में भाषण देते हैं या भाषण में

कविताएँ पढ़ते हैं, राष्ट्र-चेतना के लिए सम्बोधित करते हैं या अपनी राष्ट्र-चेतना को अभिव्यक्त करते हैं– यह समझना आसान नहीं है। वे अपने समस्त साहित्य में प्रांजल कलाकार की भाँति भाषा का उपयोग करते हैं। एक राजनेता के रूप में उन्होंने समाज की अन्तरंगता के साथ स्वयं को सम्बद्ध किया और राष्ट्रीयता के प्रति प्रतिबद्ध होकर अपनी कविताओं में राष्ट्र-उत्थान के गरिमामय स्वप्न सँजोये। अटल जी की कविताएँ सामाजिक मंगलमय-कामना से राष्ट्र को आत्मविश्वास, एकता, आशावाद, कर्मशीलता के सूत्र में बाँधती है। अपने पूरे जीवनकाल में उन्होंने उपनिषदों के क्रान्तिमूलक सन्देश– 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'– की भावना से राष्ट्र-चेतना के उद्घोषक की भूमिका निभाई।

सन्दर्भ-सूची

१. विमलेश कुमार श्रीवास्तव– प्रसाद-साहित्य में संस्कृति और राष्ट्रीयता, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या २३
२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी– नया साहित्य : नये प्रश्न
३. अटल बिहारी वाजपेयी– सम्पादक डॉ. चंद्रिका प्रकाश शर्मा, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ सं. ३१
४. अटल बिहारी बाजपेयी, सम्पादक डॉ चंद्रिका प्रकाश शर्मा, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. ८१
५. https://www.india.com/hindi-news/india-hindi/five-best-poems-of-atal-bihari-vajpayee-3227641/
६. अटल बिहारी वाजपेयी– सम्पादक डॉ. चंद्रिका प्रकाश शर्मा, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ सं. ५९
७. अटल बिहारी वाजपेयी– सम्पादक डॉ चंद्रिका प्रकाश शर्मा, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं. ४९
८. http://kavitakosh.org/kk/ जो बरसों सड़े जेल में / अटल बिहारी वाजपेयी
९. अटल जी का कविता-पाठ- https://www.youtube.com/watch?v=31L2J1pkexg

●

खण्ड-ख : गद्य-विमर्श

नवजागरण का आशय

डॉ. अभिषेक मिश्र*

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष विकृत परिस्थितियों और अंत:संघर्ष के दौर से गुजर रहा था। औपनिवेशिक बन्धनों से बन्धित भारतीय जनता के विवेक पर राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक हस्तक्षेपों के प्रहार आहत कर रहे थे, जिससे भारतीय जनता दु:ख, संत्रास, भूख, गरीबी, महामारी से प्रतिघात सहती शारीरिक और मानसिक गुलामी में बँध चुकी थी। इस औपनिवेशिक वृत्त से बाहर निकलने के लिए भारतवर्ष की असहाय जनता मुक्ति की राह और नए नेतृत्व की तलाश में थी।

मुक्ति का प्रश्न सदैव विपरीत परिस्थितियों में मनुष्य का मुख्य और अनिवार्य विषय रहा है। यह सर्वविदित है कि उन्नीसवीं शताब्दी में 'दो जातियों की टकराहट' तो अवश्य हुई। स्वभावत: यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है– टकराहट का परिणाम स्थान, काल, समय की परिस्थितियों पर निर्भर करता है, क्योंकि बिना परिस्थितियों के कोई भी नया परिवर्तन समाज और राजनीति के साथ-साथ साहित्य में दृष्टिगत नहीं हुआ है। भक्तिकाल में भी अपने समय की परिस्थितियों से संघर्ष हेतु ही उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम दिखलाई पड़ते हैं। कहीं-न-कहीं आधुनिककालीन परिस्थितियों ने भारतीय समाज के संक्रान्ति काल में एक नई चेतना को जन्म दिया। यह चेतना भी दो जातियों और दो वर्गों के अंत:संघर्ष का परिणाम था। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस युग को 'नवोत्थान' नाम दिया, जबकि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसके लिए 'पुनरुत्थान' शब्द का प्रयोग उचित समझा। ठीक इसी तरह; उन्नीसवीं शताब्दी में मुगलिया सल्तनत की बागडोर को सँभाल कर जनता जनार्दन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध १८५७ में प्रथम स्वाधीनता संघर्ष लड़ा। हालाँकि पूर्णत: सफल न होने पर भी राष्ट्रीयता की अवधारणा को निर्मित करने में सफल रहा। अंग्रेजी सरकार की हुकूमत के विरुद्ध भारतीय समाज के प्रबुद्ध नेतृत्व, उन्नत समाज-सुधारकों और लेखकों ने अपनी प्रतिभा तथा श्रम-सुधार के द्वारा नई घटनाओं के साथ-साथ संघर्ष करने वाली परिस्थितियों को जन्म दिया। इन सामंती परिस्थितियों के विरुद्ध भारतीय उन्नायकों ने साहित्य और राजनीति में अपना अकथनीय योगदान दिया। औपनिवेशिक शक्तियों और उनकी सभ्यता से एक बहुस्तरीय रिश्ता बना। यह बहु स्तरीय रिश्ता भारतवर्ष के अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न समस्याओं और परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ। ग्रामीण, कस्बाई एवं नगरीय जीवन में बसर करने वाला व्यक्ति प्रकृति के भयावह रूप को झेलने के साथ-साथ सामंती नैतिकता के बन्धन में भी जकड़ा हुआ था। उसे एक नए नेतृत्व की तलाश थी। इस नए नेतृत्व में बंगाल से लेकर पंजाब तक कई प्रबुद्ध उन्नायकों का सहयोग प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम पश्चिम बंगाल की बात करें, तो बंगाल अंग्रेजों की लूट का पहला स्थान बना या कहें, तो इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात भी इसी भद्रलोक की भूमि की उपज है। अंग्रेजों की लूट ने बंगाल को अकाल, दुर्दशा, पीड़ा, भूख, गरीबी के अन्धकार में धकेल दिया। जनता तिल-तिल कर मरने पर विवश हो गई। आत्मनिर्भर ग्राम-समाज की कृषि, लघु उद्योग

* सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया, उ. प्र.

तथा कुटीर उद्योग नष्ट हो गए। खेतिहरों और किसानों पर भयंकर अत्याचार और शोषण हुए। अंग्रेज कभी नीलहे, गोरांग प्रभु, तो कभी जनरल डायर, हेस्टिंग, कर्जन बनकर भारतीय जनता का दमन करते रहे। अन्ततः वे लूट-तंत्र का माध्यम बन गए। 'सोने की चिड़िया' कही जाने वाली भारत भूमि अंग्रेजी सरकार पर आश्रित हो गई। व्यापार और लूट की भयावहता ने अंग्रेजी सरकार को मालामाल और भारतीयों को दरिद्रता की जर्जर अवस्था में पहुँचा दिया। जिस भारत के प्राप्त धन से इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, वही भारत वर्ष अकाल, भुखमरी, अशिक्षा, जमींदारी-शोषण, धर्मसत्ता और अन्धविश्वास के शोषण तले पिसता रहा। किसान खेती न कर सकने के कारण उच्च वर्ग के बँधुआ मजदूर बन गए। ग्रामीण जनता इनके इस शोषण और अन्याय को अपना भाग्य और पुनर्जन्म का फल समझकर भोगे जा रही थी। अंग्रेजी सरकार की ईसाइयत शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण भारतीय शिक्षा-व्यवस्था पर कई प्रश्नचिन्ह खड़े किए जा रहे थे। अंग्रेजियत की धुँध में धुँधता भारतीय समाज अपना संस्कृति और धर्म की आलोचना करता जा रहा था। भारतीय संस्कृति और परम्परा की निन्दा करते हुए कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय नवयुवक अपने ज्ञान पर इतराने लगे थे। भारतीय समाज को इन तात्कालिक परिस्थितियों से जूझते हुए एक ऐसे वर्ग की तलाश थी, जो इन दो संस्कृतियों के अंतर को समझा पाए और भारतीय संस्कृति की पुनर्व्याख्या कर सके। मध्यवर्गीय नेतृत्व ने विपरीत परिस्थितियों के विरुद्ध कमान सँभाली तथा राजनीति में दादाभाई नैरोजी से लेकर सुभाष चन्द्र बोस तक की क्रियात्मक विचार-प्रक्रिया ने इन विपरीत परिस्थितियों के प्रश्नों का भली-भाँति प्रत्युत्तर दिया। सामाजिक विषमता, अन्धविश्वास, कूपमण्डूकता के विरुद्ध मॉडर्न पुरुष राजा राममोहन राय से लेकर गाँधी तक की विचार-यात्रा देश-दशा की परिस्थितियों के अनुकूल और सकारात्मक दिखलाई पड़ती है।

साहित्यिक अवदानों में, बंगीय जाति का भारतीय समाज सदैव ऋणी रहेगा, क्योंकि इनकी साहित्यिक-सामाजिक विचार-यात्रा ने कहीं-न-कहीं पश्चिमोत्तर प्रदेश के समाज में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, दुर्दशा और अन्धविश्वास के विरुद्ध खड़े होने के लिए 'बैकबोन' प्रदान किया और कहीं-न-कहीं यह सम्भव हो सका– अंग्रेजी सरकार के अनजाने में किए गए विकास से, जो भारतीयों में एक नई चेतना को जन्म देने में सहायक सिद्ध हुआ। रेलवे का विकास सबसे महत्त्वपूर्ण विकास है, इस संक्रान्ति-काल के भारत के लिए। इसके अलावा; प्रिंट मीडिया, अखबार, पत्र-पत्रिकाओं ने तथा स्कूल-कॉलेजों ने एक नई चेतना को प्रचारित-प्रसारित करने में परोक्ष और सीधा योगदान दिया। सम्भवतः इस विकास से भारतीय नेतृत्व को तथा उनके विचारों को क्रियान्वित करने के लिए एक सशक्त माध्यम मिल पाया।

ग्रामीण महाजनी सामन्ती समाज की दुर्द्धर्ष राजनीति से परिचय कराने और उसमें फँसी जनता की समस्याओं से बाहर निकालने का सूत्र भी मध्यवर्ग ने अंग्रेजी सरकार के निजी अनुभवों से प्राप्त किया। बंगाल के राजा राममोहन राय हों, बंकिमचन्द्र हों या पश्चिमोत्तर प्रदेश के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका साहित्यिक मण्डल हो, इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। जैसा कि विदित है कि हर प्रदेश अपनी विभिन्न समस्याओं से ग्रसित था। अतः वहाँ उन समस्याओं के निदान हेतु अनुकूल वातावरण और नेतृत्व निर्मित करने हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि की आवश्यकता थी। इस पृष्ठभूमि का निर्माण भी सामाजिक उत्तरदायित्व के अधीन था। पश्चिमोत्तर प्रदेश अंग्रेजी-शोषण और जमींदारी-व्यवस्था की अधीनता के साथ-साथ धर्मसत्ता एवं सामाजिक

कुप्रथाओं से बन्धित था। जनता की छटपटाहट सामाजिक नेतृत्व के साथ-साथ साहित्यिक नेतृत्व की मंशा से संघर्ष कर रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि का साहित्य कहीं-न-कहीं इन बन्धनों से मुक्ति का दहकता हुआ दस्तावेज है, जो हिन्दी समाज में नवजागरण, प्रबोधन जैसी चेतना का संचार करने में सक्षम रहा। महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'सम्पत्तिशास्त्र', भारतेन्दु का 'भारत दुर्दशा' तथा हिन्दी साहित्य मण्डल के अन्य ग्रन्थ कहीं-न-कहीं इस दु:खी समाज में आशा की नवीन चेतना फैलाने में अंशत: सफल रहे। इस सफलता की तलाश ने साहित्य में ''हिन्दी नवजागरण की अवधारणा को परिभाषित किया, जिसका श्रेय डॉक्टर रामविलास शर्मा को जाता है।'' डॉक्टर शर्मा ने हिन्दी नवजागरण की तुलना भक्तिकाल के लोक-जागरण से की। औपनिवेशिक मुक्ति और कौमी तरक्की हिन्दी नवजागरण का मूल स्वर था। महाराष्ट्र में इस नई चेतना ने उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में जो जातिगत असमानता की खाई थी, उसे भरने का प्रयास किया, जिसमें दलित और वंचित वर्ग छुआछूत, असहिष्णुता, अन्धविश्वास, गरीबी और अशिक्षा के अन्धकार में अपना जीवन जिए जा रहा था। आभिजात्य वर्ग की असीमित शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार व अशिक्षा के भाव से हर रोज वंचित वर्ग शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना झेल रहा था। वंचित समाज उच्च वर्ग के द्वारा बनाए इन नैतिक बन्धनों से मुक्ति की राह तलाश रहा था और एक नए नेतृत्व की तलाश में था। तभी परिस्थितिजन्य अव्यवस्था के विरुद्ध इस मराठी समाज को ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले नामक नेतृत्व प्राप्त हुआ, जिनके योगदान की चर्चा काफी की जा चुकी है। उसे दोहराना युक्तिसंगत ना होगा। निम्न वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा को लेकर फूले दम्पत्ति ने अप्रतिम सहयोग दिया। बंगाल में भी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का स्त्री-शिक्षा के लिए किया गया प्रयास वन्दनीय है। भारतेन्दु और उनके मण्डल ने भी साहित्यिक और सुधारात्मक प्रयास द्वारा स्त्री-शिक्षा तथा विधवा-विवाह पर अत्यधिक बल दिया, जो सराहनीय है। लेकिन वह इतनी सफलता प्राप्त न कर सका, जितनी कि फूले और बंगाल के विद्यासागर को प्राप्त हुई।

संस्कार और विचार की टकराहट तो होती ही है, गद्य-रचना इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण दिखलाई पड़ती है। वैचारिक नवीनता जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे गद्य-लेखन भी विकसित होता दिखाई पड़ता है। इस गद्य-लेखन से हिन्दी को बहुत समर्थ एवं सार्थक रूप मिलता हुआ दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु से लेकर छायावादी कवियों की कविता एवं गद्य-लेखन कहीं-न-कहीं इसी नवजागरण का प्रतिफल है। यही नहीं; राजनीतिक संचेतना, सामाजिक संचेतना, धार्मिक-सांस्कृतिक संचेतना आदि तमाम पक्ष ऐसे हैं, जिनकी मुखर आलोचना का सूत्रपात भी होता है, जिसके माध्यम से समाज-सुधारकों द्वारा गठित ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, धर्म महामण्डल और तदीय समाज आदि जैसी कई संस्थाएँ निर्मित हुईं, जिनकी भूमिका इतिहास और साहित्य में दिखाई पड़ती है। धर्म के इन सम्प्रदायों में कहीं-न-कहीं धार्मिक अंधविश्वास एवं कूप-मण्डूकता का विरोध तो दिखता ही है, इसके अलावा; राष्ट्रीयता का उत्साहपूर्ण रूप भी विकसित होता हुआ दिखाई पड़ता है। आर्य समाज इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिकाओं, निबन्धों और नाटकों में स्वाभाविक रूप देश-प्रेम का दिखता है।

'नवजागरण युग' की सबसे बड़ी विशेषता थी कि प्रबुद्ध वर्ग संस्कारों से पुराने हों और विचारों से नए हों। १९वीं सदी के सुधार-आन्दोलन में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव हुए।

इस नई शिक्षा-प्रणाली से स्त्रियों को एक नई दुनिया, एक नए समाज का ज्ञान प्राप्त हुआ और स्त्रियों में नए विचारों का अभ्युदय हुआ। स्त्रियों के भीतर भी अंग्रेजी गुलामी की मुक्ति के साथ-साथ स्त्री-स्वतन्त्रता का भाव जाग्रत होने लगा। नई पीढ़ी के इस आकर्षण को देख पुरानी पीढ़ियों में भी नवजागरण के प्रति आकर्षण दिखाई देने लगा। बंगाल अग्रणी राज्य था, जहाँ स्त्री-शिक्षा-सुधार का सूत्रपात हुआ। मुक्त स्त्री में पुरुष को भी अपनी मुक्ति सहज दिखलाई पड़ने लगी। सम्भवत: नवजागरण के उन्नायकों में यह स्वरूप विकसित होता हुआ दिखाई पड़ रहा था। स्त्रियों की स्वतन्त्रता ने राष्ट्रीयता के भाव को जाग्रत किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों ने राजनीतिक आन्दोलन के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक सुधार–आन्दोलनों में सक्रिय भूमिका निभाई।

'सुधार युग' के इन नेताओं ने विधवा-समस्या का हल केवल विवाह ही नहीं माना, बल्कि उनकी यथोचित शिक्षा के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा और सहयोग भी उपलब्ध कराने की हरसम्भव कोशिश की। इस नवजागरण काल में बाल-विवाह और सती-प्रथा जैसी कुप्रथाओं पर हस्तक्षेप तो सजग रूप से हुआ ही, लेकिन विवाह मात्र से उनकी समस्याओं का हल होता हुआ दिखाई नहीं पड़ रहा था, क्योंकि प्रश्न केवल विवाह का नहीं था। प्रश्न स्त्रियों के आत्मसम्मान, स्वनिर्णय, अस्मिता और प्रेम जैसे महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्यों का था, जो धीरे-धीरे छायावादी कवियों के साहित्य में दिखलाई पड़ा।

हम पाते हैं कि इस नवजागरण काल में स्त्री-पुरुष– दोनों की पुरानी सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने की कामना का एक स्वर दिखलाई पड़ा। भारतीय जनता ने अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष किया, उसे मुखरित करने में बंगीय उद्घोषकों के साथ-साथ पश्चिमोत्तर प्रदेश के साहित्यिक उन्नायकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। भारतवासियों की पराभवकालीन दासता की मुक्ति के लिए अतीत के पुनर्मूल्यांकन का सहारा भी लेना पड़ा। नवजागरण के सम्वाहकों ने भारतीयों में सांस्कृतिक परम्परा को पुनर्जीवित कर सम्पूर्ण भारतीय कौम में राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण के साथ-साथ आत्मगौरव के भाव को भी पुनर्जीवित करने की कोशिश की। बंगाल के रवीन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन और विवेकानन्द आदि जैसे महापुरुषों के अलावा भारतीय राजनीति में सक्रिय लाल-बाल-पाल और गाँधी तक की क्रान्तिकारी आन्दोलन-प्रतिक्रिया इसका अनूठा उदाहरण है। पश्चिमोत्तर प्रदेश के भारतेन्दु मण्डल के दल ने नाटक, निबन्ध, काव्य और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस चेतना को तीव्रतर बना दिया।

अंग्रेजी राज्य की दिलचस्पी न तो वैज्ञानिक ज्ञान के आम प्रचार-प्रसार में थी और न भारतीयों को उच्चतर वैज्ञानिक अध्ययन में प्रवृत्त करने की। भारतीय नवजागरण की चर्चा हिन्दी नवजागरण के उन्नायकों की साहित्यिक चर्चा के बिना अधूरी जान पड़ती है। इन हिन्दी नवजागरण के पुरोधाओं ने नवजागरण काल को दु:ख, आक्रोश, अत्याचार और शोषण के काल के रूप में भी देखा। इन सभी का मानना था कि नवजागरण उच्च वर्ग और मध्य वर्ग से सम्बन्धित था, न कि कृषक, दलित, आदिवासी या स्त्री-जीवन से। हाँ! यह प्रश्न उठ सकता है कि महाराष्ट्र, केरल आदि प्रदेशों में दलित-सुधार लाने हेतु वहाँ के उन्नायकों ने अन्यतम प्रयास किए। भले ही हिन्दी प्रदेश का कृषक समाज १८५७ का स्वाधीनता-संग्राम अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहा हो, लेकिन इनकी मूलभूत समस्याओं का समाधान जमीनी स्तर तक नहीं पहुँच पाया था। इन्हीं समस्याओं को केन्द्रित करने का श्रेय बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट और भारतेन्दु आदि को है। भारतेन्दु मण्डल के यहाँ राष्ट्रीय चेतना स्फुरित होती हुई दिखाई पड़ती है।

भारतीय नवजागरण के उन्नायकों ने अंग्रेजी शोषण और अत्याचार के विरुद्ध कई ज्वलन्त प्रश्नों को उठाया है। उपनिवेशवाद की आलोचना का स्वर इनके निबन्धों, नाटकों और काव्यों के माध्यम से स्पष्ट होता हुआ दिखाई पड़ता है। नवजागरण के पुरोधाओं की चिन्तन-प्रक्रिया का मुख्य अंश उपनिवेशवाद की आलोचना है। उन्होंने अंग्रेजों की शोषणपरक नीति का उल्लेख करते हुए उनके कपटपूर्ण शासन-नीति की आलोचना राजनीतिक एवं सामाजिक प्रसंगों के माध्यम से की। इनके निबन्धों में बंग-भंग-विरोध एवं स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन की गूँज सुनाई पड़ती है। उदाहरण के तौर पर; बालमुकुन्द गुप्त का 'बंग-विच्छेद', प्रताप नारायण मिश्र का 'देसी कपड़ा', प्रेमघन जी का 'स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशी बहिष्कार है।' स्वदेशी आन्दोलन के साथ-साथ स्वराज और स्वतन्त्रता का स्वर भी नवजागरण का प्राणतत्त्व है। हिन्दी नवजागरण के पुरोधा भी सनातन धर्म से जुड़े हुए थे। धर्म के विभेदकारी तत्त्वों से जनता को दूर रहने की सलाह देते हैं, साथ ही; हिन्दू-मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और कुरीतियों की सीमाओं का अतिक्रमण करने की माँग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। यहाँ रूढ़ियों का विरोध बहुवचनात्मक एवं बहुरचनात्मक रूप में दिखता है। बहुपत्नी-प्रथा, अस्पृश्यता आदि का विरोध भी दृष्टिगत होता है। नवजागरणकालीन साहित्य राष्ट्रीय शिक्षा के जागरण की वकालत करता है। अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा-प्रणाली से सदा सतर्क रहने की हिदायत देते हैं, क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा गुण की अपेक्षा दोष दिखाने में अधिक तेज है, साथ ही; देशी कारीगरी उद्योग की शिक्षा को राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक मानते हैं ।

हिन्दी भाषा के निर्माण के सन्दर्भ में भारतेन्दु मण्डल की भाषायी दृष्टि सार्वदेशिक, सार्वजनिक और राष्ट्रव्यापी रही है। भाषा-निर्माण की प्रक्रिया में उन्होंने भाषा को व्याकरण में निबद्ध करते हुए उन्हें अनुशासित करने की कोशिश की। भाषा-निर्माण की प्रक्रिया में संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू के प्रत्ययों और उपसर्गों को जोड़कर शब्द-निर्माण में परहेज नहीं किया, साथ ही; लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग मुक्त रूप से किया। नागरी लिपि का समर्थन इस काल की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गयी। भाषा के साथ-साथ जाति एवं सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की चर्चा इनके साहित्य का मूल ध्येय था।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी साहित्य के सम्वेदना का इतिहास, संस्करण- २०१६, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ट ८०
२. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय– आधुनिक हिन्दी साहित्य, संस्करण-१९५४, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद, पृष्ठ ३
३. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ ४४३
४. डॉ. रामविलास शर्मा– महावीर प्रसाद और हिन्दी नवजागरण, संस्करण-२०१२, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ (भूमिका) १२
५. नत्थन सिंह– बाल मुकुंद गुप्त, संस्करण-१९९३, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृष्ठ ११९
६. विजय शंकर मल्ल– प्रताप नारायण ग्रंथावली, संस्करण- संवत् २०४९, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ ८७
७. प्रेमघन सर्वस्व– प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण-१९६१, पृष्ठ ६२

अंधा युग : पौराणिकता में आधुनिकता का आख्यान

प्रिया तिवारी*

धर्मवीर भारती हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद महत्त्वपूर्ण रचनाकारों में रहे हैं। वे सुप्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार एवं नाटककार हैं। उनकी रचना का समय हिन्दी साहित्य का प्रयोगवाद और नयी कविता का युग था। 'अंधा युग' १९५४ में प्रकाशित हुआ एक गीतिनाट्य है। यह महत्त्वपूर्ण काव्यों की श्रेणी में कवि द्वारा किया गया एक नवीन प्रयोग था। 'अंधा युग' की पृष्ठभूमि पौराणिक आख्यान 'महाभारत' पर आधारित है। इसमें महाभारत के पूर्वाद्ध का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। यह महाभारत के अन्तिम दिनों की, अत: उत्तरार्द्ध पर आधारित है। कवि ने 'अंधा युग' गीतिनाट्य में आधुनिक समाज की विकलांगता, कुरूप युग तथा ध्वन्सोन्मुख संस्कृति का चित्र प्रस्तुत किया है। कवि ने दो-दो विनाशकारी युद्धों को देखा था और उन दोनों विश्व युद्धों के दुनिया पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभाव को महाभारत के सहारे दर्शाया है।

इस परिप्रेक्ष्य में 'अंधा युग' का अध्ययन हम करते हैं, तो ऐसा लगता है कि धर्मवीर भारती ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भाव-बोध को व्यक्त करने का प्रयास किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् देश में जो मानवीय विघटन, मूल्य-ह्रास और सांस्कृतिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, उसके परिणामस्वरूप आधुनिक मानव-जाति व्यक्तिवादी, अहंवादी, अनास्थामय और निराशा की भावना से विचलित होने लगी थी। महाभारत की पृष्ठभूमि पर लिखे गये 'अंधा युग' नाटक में कवि ने द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न आधुनिक यंत्रणा को इस नाटक से जिस प्रकार जोड़ा है, वह मानस-पटल पर अपनी गहरी प्रभाविता को प्रकट करता है। इस नाटक में मनुष्य के अकेलेपन, उसके टूटने-बिखरने की गाथा को सांकेतिक ढंग से बहुत ही गहरी आंतरिक यातना के प्रसंग में उभारा गया है। इन्हीं कारणों से; अंधा युग नाटक का अनेक बार सफल मंचन किया जा चुका है। इसका कथानक इतना प्रभावी है कि वह पाठक या दर्शक को सघन सम्वेदना का अनुभव करा जाता है। इसके अध्ययन से ऐसा लगता है, मानो एक पूरा-का-पूरा युग हमारे सामने से गुजर जाता है।

'अंधा युग' मिथक पर आधारित नाटक है, लेकिन इसमें आधुनिकता के सूत्र जगह-जगह बिखरे पड़े हैं। धर्मवीर भारती ने महाभारतकालीन इतिहास को यथासंभव पृष्ठभूमि में अपनाते हुए आधुनिक जीवन की विसंगतियों को इस कृति में उभारने का प्रयास किया है। इस नाटक के माध्यम से धर्मवीर भारती ने लोगों का ध्यान पूर्व में हुई गलतियों की ओर ले जाना चाहा है, जो देश के विनाश का कारण रही हैं। वे समाज को विनाश की स्थिति से बचाने के लिए सचेत करना चाहते हैं। अंधा युग के कथानक में महाभारत की कथा के साथ-साथ कुछ काल्पनिक विचारों का समावेश भी किया गया है। कवि ने इसमें मिथक का प्रयोग आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में किया है। इसमें महाभारत के अन्तिम दिन की संध्या से लेकर कृष्ण के निर्वाण तक की कथा को पाँच खण्डों में समेटा गया है। महाभारत के चरित्रों और उसके माध्यम से भारती जी ने अंधा युग में आज के मनुष्य के स्वरूप को प्रकट किया है। साधारणतया देखा जाता है कि लोग मिथक को आधुनिकता का विरोधी मानकर कपोल-कल्पित, अवैज्ञानिक एवं पुरातन स्वरूप प्रदान कर देते हैं। परन्तु सत्य यह है कि यदि रचनाकार कुशल एवं सधा हुआ है, तो मिथक उसकी कृति में प्रयुक्त होकर उसे अत्यन्त प्रभावपूर्ण व द्विगुणित बना देता है। काव्य के क्षेत्र में देखें, तो मिथक को आधार बनाकर

* शोध छात्रा– हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भरपूर रचनाएँ की गयी हैं। हिन्दी साहित्य-जगत् में नयी कविता और प्रयोगवाद का युग मिथकीय प्रयोगों से भरपूर था। हिन्दी साहित्य-जगत् में मिथकीय काव्य-सृजन की सर्जनात्मकता और महतयुग में कवि ने वर्तमान मनुष्य की व्यंजना को प्रकट किया है।

महाभारत-कथा का मिथक साहित्य-जगत् में अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होता है, क्योंकि वह वर्तमान युगीन परिस्थितियों और समस्याओं को चित्रित करता है। डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार- ''महाभारत युद्धकालीन जीवन-संघर्षों की अभिव्यक्ति देने वाला अनुपम महाकाव्य है। इस महाकाव्य में वर्णित परिस्थितियाँ आज भी जीवन-परिस्थितियों से बहुत साम्य रखती हैं। महाभारत युद्धकालीन मानव-वृत्तियों का दर्पण है। बीसवीं सदी में घटे दोनों महायुद्धों ने वर्तमान जीवन को महाभारतकालीन जीवन-परिस्थितियों के एकदम निकट ला दिया है। युद्धोत्तर कालीन घोर नैराश्य, तीव्र असन्तोष, विघटित जीवन-मूल्य तथा ज्ञान– सभी कुछ आधुनिक जीवन एवं महाभारतकालीन जीवन में समान रूपेण विद्यमान है।''[१]

'अंधा युग' की स्थापना में धर्मवीर भारती ने कहा है कि यह केवल पौराणिक आख्यान को नहीं प्रस्तुत करता है, बल्कि यह आधुनिक युग की कथा को हमारे समक्ष उपस्थित करता है। यह वर्तमानयुगीन परिस्थिति को वर्णित करता है, जो महाभारत युग की समस्याओं के समान ही है। वे कहते हैं कि मैंने यह कथा सभी के समक्ष उपस्थित करने का माध्यम अतीत को बनाया, परन्तु यह है– आज की आधुनिक परिस्थिति। इतना ही नहीं, उन्होंने महाभारत की गीता में प्रयुक्त अनासक्त जीवन-दर्शन को भी वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। इस अंधा युग में महाभारत की पृष्ठभूमि के सहारे उन्होंने मिथक को आधुनिकता से जोड़ने का सफल प्रयास किया है।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में– ''भारती जी द्वारा 'अंधा युग' को अपने कथ्य के अनुरूप ही भारतीय अर्थ में रच पाना और युग की पूरी त्रासदी दिखा पाना कोई छोटा कार्य नहीं था। यह मिथक बड़ी चुनौती थी, पर था बड़ा सम्भावनापूर्ण। मिथक की इस चुनौती को झेलते हुए भारती जी ने अंधा युग की रचना की।''[२]

यहाँ गीतिनाद्यकार ने पौराणिक वृत्त को अपनाकर उसमें प्रयुक्त विषय-वस्तु, घटनाएँ, मूल्य और चरित्र– सभी को नवीनता प्रदान की है। उन्होंने प्रतीकात्मक ढंग से आधुनिक भाव-बोध और युगीन सम्वेदना की ऐसी सशक्त प्रस्तुति की है, जो परम्परा और नवीनता– दोनों की उद्‌भावना करते हुए प्रकट होती है। इस रचना के समय और नामों को यदि हटा दें, तो ऐसा मालूम होता है कि यह आज के समय की घटना है। इसमें प्रस्तुत घटना आज के आधुनिक युग के लिए भी प्रांसगिक और चिर-परिचित मालूम पड़ती है। अंधा युग नाटक की कथावस्तु में आधुनिकता के तत्त्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। उन्होंने इसमें जिन भी मान्यताओं-मूल्यों का प्रयोग किया है, वे आज की आधुनिक दृष्टि को व्यंजित करती हुई-सी दिखती हैं। भारती जी ने इसमें आधुनिक समस्याओं के प्रश्नों को उठाया है। ये प्रश्न इस कथा में आधुनिक बोध को वाणी देते हैं। नि:संदेह यह 'अंधा युग' आधुनिक भाव-बोध की प्रस्तुति है। इस सन्दर्भ में; धर्मवीर भारती निर्देश में स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि– ''इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है। अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात् है, केवल कुछ ही तत्त्व उत्पाद्य हैं। कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ।''[३]

स्पष्ट है कि 'अंधा युग' का मूल कथानक प्रख्यात् और पौराणिक है, आलोचना के लिए मिथक है। विदित है- श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र, गांधारी, युधिष्ठिर, विदुर, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, युयुत्सु, बलराम– ये पात्र महाभारत में हैं, और अंधा युग में भी हैं। उन्होंने इन पात्रों

की घटनाओं को भी आधुनिकता बोध से जोड़ने का प्रयास किया है। व्यास द्वारा अश्वत्थामा को दी गयी चेतावनी को उन्होंने वर्तमान अणुयुद्ध की भयावह त्रासदी व विध्वंसकता के परिप्रेक्ष्य में प्रदर्शित करते हुए उसे आज के मानव के लिए अत्यन्त सामयिक माना है–

''ज्ञात क्या तुम्हें है, परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का?
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ नर पशु /सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी।''[४]

व्यास के द्वारा कहा गया यह कथन आज के समय में, आज के युग में, शान्ति और मानवता बनाये रखने के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है। देश में युद्ध के बाद वहाँ की संस्कृति व मानवीय मूल्य टूट जाते हैं या पूर्णतया परिवर्तित हो जाते हैं। वस्तुत: कोई भी युद्ध सम्पूर्ण मानवता के लिए नहीं लड़ा जाता है। ये सिर्फ कुछ लोगों के स्वार्थ की आपूर्ति के लिए किये जाते हैं। ऐसा ही विघटन/विनाश महाभारत युद्ध के उपरान्त भी हुआ था। इस युद्ध की विभीषिका ने एक युग की समाप्ति कर दी थी। युद्ध होने का मूल कारण कुछ अंधी मूल्य-दृष्टि, स्वार्थ, प्रतिशोध और वे निर्णय थे, जो बिना विवेक के लिए गये होते हैं। युद्ध के उपरान्त जो स्थिति उत्पन्न होती है, उसमें वहाँ की व्यापक संस्कृति विध्वंसित हो चुकी होती है। प्रस्तुत नाटक में कवि ने इस स्थिति को उत्पन्न होते दिखाया है– ''कवि ने महाभारत की कथा को लेकर आज के जीवन की गहन विसंगतियों, भयानक टूटन-विघटन, मूल्य-विच्छिन्नता, त्रास और द्वन्द्व को चित्रित किया है। महाभारत अपने आप में आधुनिक काल की द्वन्द्वात्मक प्रकृति को व्यक्त करने में समर्थ है। किन्तु कवि ने इस युद्ध की ख्यात् घटनाओं, प्रसंगों और पात्रों को लेकर उनका ऐतिहासिक निर्वाह करते हुए भी उनका नियोजन इस दृष्टिकोण से किया है कि वे अपने भीतर के समग्र भाव से हमारे युग को ध्वनित करें। ..... कवि की आधुनिक दृष्टि और आधुनिक सम्वेदना ने इतिहास की सारी सामग्री को, उसके सारे स्वर को समेट कर आधुनिक काल की ओर उन्मुख कर दिया है।..... कहीं भी इतिहास पर वर्तमान लादे बिना कवि ने इतिहास को वर्तमान के अनुकूल कर दिया है। इसीलिए महाभारत का युद्ध अपने अंधे युग की स्थिति का परिचायक मात्र न रहकर प्रतीक बन गया है। आधुनिक युग के अंधेपन का प्रतीक।''[५]

इस मिथकीय कथा को धर्मवीर भारती ने युगानुरूप परिवर्तित रूप में प्रयुक्त किया है। भारती जी ने महाभारत के मूल कथानक के साथ ज्यादा छेड़-छाड़ नहीं की है। युग के अनुकूल साँचे में ढालने के लिए उसमें आधुनिकता का समावेश कवि ने कर दिया है। इसमें उन्होंने मिथकीय कथानक को सुरक्षित रखते हुए उन घटनाओं और चरित्रों को प्रतीकात्मक बना दिया है। इसमें उन्होंने युद्ध-याचक के विचारों में अपने विचारों का समावेश किया है। वे उस युद्ध-याचक के विचारों के माध्यम से अपने विचारों को समाज के समक्ष प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

''नियति नहीं है पूर्व-निर्धारित
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता-मिटाता है
केवल कर्म सत्य है/वर्तमान से स्वतंत्र कोई भविष्य नहीं।''[६]

आगे; वे दो प्रहरियों को सामान्य जनता के प्रतीक के रूप में प्रकट करते हुए आधुनिकता का समावेश करते हैं। उन दोनों को सामान्य जनता की गुलामी का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि इन सभी विकट संकटग्रस्त परिस्थितियों में केवल सामान्य वर्ग पिस रहा है-

''हम जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी हैं
शासक बदले, स्थितियाँ बिलकुल वैसी हैं।''[७]

आगे; 'अंधा युग' के महत्त्वपूर्ण पात्र श्रीकृष्ण मानवीय मूल्यों के प्रतीक हैं। मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा से ही मानव-भविष्य सुरक्षित और सुखी हो सकता है। इसी मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा

के लिए कृष्ण का सहारा लिया है। संसार के लिए नए मूल्यों और नयी मानवता की आशावादी ज्योति उनके भीतर से ही निकलती है। शस्त्रीकरण की समस्या को महाभारत में भी बड़ी समस्या के रूप में दिखाया गया है। वही शस्त्रीकरण आज के लिए भी एक बड़ी समस्या है। इसी ने मानव-अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। युद्धकाल में ही नहीं, बल्कि ये शस्त्र शांतिकाल में भी हानिकारक सिद्ध हुए हैं। 'अंधा युग' में इस खतरे की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा है–

''युद्ध हो या शांति हो, रक्तपात होता है
अस्त्र रहेंगे तो उपयोग में आयेंगे ही,
अब तक वे अस्त्र दूसरों के लिए उठाने थे,
अब वे अपने ही विरुद्ध काम आयेंगे।''[८]

साहित्य में युग के यथार्थ-तत्त्व को दिखाने एवं सांस्कृतिक बदलाव के लिए उदात्त जीवन-मूल्यों को स्थापित करने के लिए मिथ का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसीलिए कवि धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' में महाभारत की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए, उसमें मिथकीय प्रयोग कर, उसे वर्तमान समय या आधुनिकता से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। अंधा युग के रचनात्मक वैशिष्ट्य पटल का निरूपण करते हुए पौराणिक वृत्त में समकालीन संस्कृति के सम्बन्ध में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– ''वृत्त के स्वर पर भी महाभारत कई बार लग सकता है कि वास्तविक महाभारत की स्थिति अब है।''[९]

''यहाँ प्रश्न पुराण-कथा की नयी व्याख्या का नहीं, पुराण-कथा को समकालीन जीवन में देखने का है। इसलिए यहाँ काल का आयाम किसी खास कथा या इतिवृत्त में सीमित न रहकर अनुभव मात्र में विस्तार पा गया है। ..... अंधा युग में पुराण-कथा को वास्तविकता के आमने-सामने कर दिया गया है।''[१०]

धर्मवीर भारती जी ने चिरंतन और शाश्वत समस्या को इस नाटक द्वारा उठाया है। उन्होंने आधुनिक युग में मानव-कल्याण व उसके सुखद भविष्य के लिए एक दृष्टि दी है, क्योंकि भारती जी जानते थे कि आज भी मानव-जीवन खतरे में है। धर्मवीर भारती इस समस्या के समाधान के लिए लोगों की ओर पुकार लगाते हुए कहते हैं– ''कोई सुनेगा, जो अंधा नहीं है और मानव-भविष्य को बचाएगा।'' इसके माध्यम से धर्मवीर भारती समूचे विश्व की मनीषा का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं।

निष्कर्षत: 'अंधा युग' के सभी पात्रों के मिथकीय स्वरूप में होते हुए भी आधुनिक विश्व में युद्ध मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है। अंधा युग की कथा जितनी मिथकीय है, उसकी चेतना उतनी ही आधुनिक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. डॉ. पुष्पपाल सिंह- काव्य मिथक, पृ. ५६
२. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल- सारिका पात्रिका का लेख, दिसम्बर १९८६, पृ. ४२
३. डॉ. धर्मवीर भारती- अंधा युग ४. वही– पृ. ९४
५. डॉ. रामदरश मिश्र- हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम, पृ. १४३
६. डॉ. धर्मवीर भारती- अंधा युग, कौरवी नगरी, पृ. १३
७. डॉ. धर्मवीर भारती- अंधा युग, विजय : एक क्रमिक आत्महत्या, पृ. ७१
८. डॉ. धर्मवीर भारती- अंधा युग, विजय : एक क्रमिक आत्महत्या, पृ. ६४
९. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी- नयी कविता : एक साक्ष्य, सं. १९७६, पृ. १०३
१०. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी- नयी कविता : एक साक्ष्य, पृ. ११२

वृन्दावनलाल वर्मा के पात्रों की युगीन सार्थकता

डॉ. शशिकला*

वृन्दावनलाल वर्मा ने पात्रों का चयन समसामयिक राजनीतिक उथल-पुथल, जीवन-मूल्यों के प्रति अनास्था एवं आर्थिक शोषण से पीड़ित भारत को सन्देश तथा जीवनी प्रदान करने के लिए किया है। इनके चरित्र-निर्माण के विषय में शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं– ''चरित्र के विषय में वर्मा जी को हमारे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वे चरित्र-सृष्टि के बड़े ही कुशल विधाता हैं। उनके चरित्र बहुत दिनों तक हमारी स्मृति में जीवित रहते हैं, यही उनकी विशेषता है। बुन्देलखण्ड के उच्च और निम्न प्राय: सभी वर्ग के लोगों का अच्छा ज्ञान होने के कारण उनके चरित्रों में कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है।''[१] ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी रचना का आधार बनाने के कारण उन्होंने अधिकांश पात्र सामंत वर्ग से चुने हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में नवाबों, बेगमों, रानियों एवं सरदारों की भरमार है।

वर्मा जी ने एक ओर शौर्य, आत्मगौरव तथा आत्मोत्सर्ग के प्रतीक आदर्श एवं तेजस्वी पात्रों को चुना है, तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज की क्रूरता, कुटिलता, धर्मान्धता, स्वार्थपरकता एवं दुष्टता के प्रतीक खलपात्रों को। किन्तु, इन दोनों प्रकार के पात्रों की अपनी सार्थकता है। डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर' के शब्दों में– ''प्रेमचन्द अपने सामाजिक उपन्यासों के पात्रों द्वारा भविष्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो वृन्दावनलाल वर्मा के (ऐतिहासिक उपन्यासों के) पात्र वर्तमान के माध्यम से अतीत को देखना पसन्द करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार की दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा बेजोड़ हैं। उनकी तुलना बंगाल के राखाल बाबू से की जा सकती है।''[२]

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में ऊँच-नीच, सवर्ण-अवर्ण, छूत-अछूत, राजा-रंक, सामंत-दास, अमीर-गरीब आदि सभी प्रकार के पात्रों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। 'गढ़कुण्डार' का नागदेव खंगार जाति से सम्बन्ध रखता है और वह एक उन्मादक प्रेमी है। अपने को खंगारों से ऊँचा समझने वाली बुन्देला हेमवती की तरफ से उसे जब अवहेलना एवं भर्त्सना मिलती है, तो नागदेव सर्प की भाँति फूँफकार उठता है और नागदेव का यही उग्र व्यवहार कुण्डार के पतन का कारण बनता है। उपन्सास का दूसरा पात्र अग्निदत्त स्वाभिमानी, वीर एवं साहसी है। वह नागदेव की बहन तारा से प्रेम करता है, किन्तु जातिगत संघर्ष एवं परिस्थितियों के कारण यहाँ भी प्रेम में असफलता मिलती है और वह खंगारों से बदला लेने के लिए उद्धत हो जाता है। वहीं दिवाकर संयमी, साहसी एवं शान्त स्वभाव का है। उसका यही व्यक्तित्व अंत में तारा को प्राप्त करने में सहायक बनता है।

'विराटा की पद्मिनी' का कुंजरसिंह कुमुद के प्रति अपार श्रद्धा एवं प्रेम रखता है। वह प्रणय-साधना में दिवाकर से भी आगे निकल जाता है और कुमुद से कहता है– ''नवाब से लड़ना मेरा धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य-पालन करना धर्म है। आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्त्तव्य और सर्वस्व है। यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूँ।''[३] कुंजरसिह कुमुद की रक्षा हेतु देवीसिंह

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

से लड़ते हुए अपने प्राणों का बलिदान कर देता है। वहीं देवीसिंह मुसलमान अलीमर्दान की सेना से युद्ध करके नायकसिंह को सहायता पहुँचाता है और अचानक राजा भी घोषित हो जाता है। वर्मा जी पात्र-निर्माण में परिस्थितियों को विशेष रूप से उत्तरदायी मानते हैं और सभी पात्र परिस्थितियों के अनुकूल आचरण करते हुए दिखाई देते हैं।

'कचनार' उपन्यास में मानसिंह और राव दलीपसिंह– प्रारम्भ में दोनों ही पात्र सशक्त रूप में सामने नहीं आते हैं। मानसिंह तो विलासी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वह स्त्रियों से बात करने में विशेष रुचि लेता है और राव दलीपसिंह की पत्नी कलावती से विवाह भी कर लेता है। दूसरी ओर; राव दलीपसिंह प्रारम्भ में क्रोधी, विवेकहीन एवं सामन्ती प्रवृत्ति का व्यक्ति था, किन्तु गोसांई अचलपुरी के अखाड़े में जाने के पश्चात् वह उदार, धैर्यशाली एवं विवेकवान व्यक्ति बन जाता है।

मानसिंह (मृगनयनी) को सामन्त शासक के रूप में चित्रित किया गया है, किन्तु वह पूरी तरह से सामन्ती प्रवृत्ति का नहीं है, क्योंकि उसमें जनसाधारण के प्रति सहानुभूति है। वह कर्त्तव्यपरायण, कला-प्रेमी एवं कुशल शासक है। मानसिंह की प्रिय पत्नी मृगनयनी है। यह उपन्यास मृगनयनी (निन्नी) एवं मानसिंह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर आधारित है। 'टूटे काँटे' में मोहनलाल साधारण जाट परिवार का कोमल हृदय के साथ वीर एवं साहसी व्यक्ति है। नर्तकी नूरबाई की रक्षा वह अपनी जान पर खेलकर करता है। 'माधव जी सिंधिया' उपन्यास का नायक आदर्शवादी, महान योद्धा एवं राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति है। उन्होंने भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का संकल्प लिया था। वे कहते हैं– ''मैने एक आदर्श रख छोड़ा है। मैं भारत भर की शक्तियों का एकीकरण एवं सामंजस्य करके ऐसे संघ की स्थापना करना चाहता हूँ, जिससे भारतीय संस्कृति की रक्षा हो जाय, उसका विकास हो और वह निरन्तर बढ़े। अहमदशाह सरीखे विदेशियों से, जो यहाँ रक्तपात और भयंकर उत्पात मचा चुके हैं और अंग्रेज सरीखे परदेशियों से, जो आगे चलकर हमको दाब सकते हैं, इस देश को बचाना चाहता हूँ।''[४]

वर्मा जी के उपन्सासों में नारी-चरित्र पुरुषों से अधिक महिमामण्डित, गौरवान्वित एवं सशक्त हैं। नारियों के प्रति उनका दृष्टिकोण पवित्र एवं आस्थावान है। उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास नारी-जीवन पर आधारित हैं। नारी के प्रति जागरूकता के पीछे युग-चेतना की पृष्ठभूमि का भी हाथ है। उनके उपन्यासों की नारी अविस्मरणीय अमर नारी पात्र हैं, जिनके स्वर युग-युगान्तर तक गुंजायमान होते रहेंगे, जैसे- रानी लक्ष्मीबाई, कुमुद, गौरी, कचनार, अहिल्याबाई, लाखी, मृगनयनी, कुन्ती इत्यादि। इनकी सार्थकता अनन्त काल तक बनी रहेगी। नारी-स्वतंत्रता के युग में पददलित, पीड़ित, उपेक्षित स्त्री को स्वतंत्र रहने की प्रेरणा देने में वर्मा जी ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। वे नारी को भोग्या एवं अबला के रूप में नहीं देखना चाहते, बल्कि वे उसे आत्मनिर्भर एवं पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलने की प्रेरणा देते हैं। इनके पात्रों के क्रियाकलाप में स्वाभाविकता, मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता इत्यादि सभी का निर्वाह पूरी गम्भीरता से हुआ है। डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार– ''चरित्रों की इस बहुरंगी सृष्टि में विभिन्न मनोवृत्तियों का उभार, उनकी चारित्रिक विशेषताओं, दुर्बलताओं, सबलताओं का चित्रण इतनी व्यापकता और गहराई के साथ हुआ है कि जान पड़ता है कि उपन्यासकार उनसे भली-भाँति परिचित है और इसी कारण उनकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वृत्तियों को उभार सका है।''[५]

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई सरीखी नारियाँ आज के समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं। राष्ट्रहित

के लिए रानी के बलिदान को आज भी भुलाया नहीं जा सकता। 'अहिल्याबाई' उपन्यास की स्त्री पात्र अहिल्याबाई विलक्षण सोच एवं विचारों वाली नारी है। वह करुणा एवं दया की साक्षात् मूर्ति थीं तथा अपने जीवनकाल में ही देवी के रूप में पूजी जाने लगी थीं। सियारामशरण प्रसाद लिखते हैं– ''अहिल्याबाई का जीवन गाल्सवर्दी के मोची की तरह है, जो परम कर्त्तव्य एवं परमार्थ की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर कर देता है और आह तक नहीं करता। वह मल्हार के भ्रष्टाचार तथा लूट एवं अन्य अराजक तत्त्वों से व्यथित, परन्तु जनकल्याणार्थ विषपायी शिव की तरह सबको आत्मसात् कर लेती हैं और सत्य और उसका आदर्श विजयी होता है।''[६]

वर्मा जी की सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र मृगनयनी मध्ययुग की एक आश्चर्यजनक वीर, दृढ़ एवं शक्तिशाली नारी है। वह हृदय से कोमल एवं कर्त्तव्य-बुद्धि से अनुशासित है। लेखक ने उसे एक दार्शनिक पात्र के रूप में चित्रित किया है। वह संकल्प को कर्त्तव्य एवं भावना को कला मानती है। उसके विचार से स्त्री का गौरव, सौन्दर्य एवं महत्त्व स्थिरता में है, ऐसी स्थिरता; जो दूर से स्थिर दिखे, किन्तु पास से प्रगतिशालिनी। भारतीय नारी की मूल चेतना वर्मा जी ने मृगनयनी के माध्यम से व्यक्त की है। वह वीरांगना नारी के साथ त्याग की प्रतिमूर्ति भी थी। डॉ. उषा भटनागर लिखती हैं– ''गृह-कलह को रोकने के लिए अपने पुत्रों– राजसिंह और बालसिंह को स्वयं उत्तराधिकार से वंचित कर सुमन मोहिनी के पुत्र विक्रमादित्य सिंह को राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त करती है। उसका यह त्याग भारतीय नारी के आदर्श का गौरव है।''[७] मृगनयनी शक्ति एवं शौर्य से सम्पन्न वीरांगना है। वह 'जिय बिनु देह नदी बिनु वारि, तैसीय नाथ पुरुष बिनु नारि' की अवधारणा को नकारते हुए पति के साथ चिता पर जलना अस्वीकार करती है और दूसरी रानियों के सती होने का विरोध करते हुए कहती है– ''रानियों को ऐसे समय में वही याद आया, क्योंकि उनकी बाहों ने तीर-कमान और तलवार को कभी अपनी सखी नहीं बनाया। पहले की सतियों ने आग और चिता को जितना प्यार किया, उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिए था।''[८] दूसरी तरफ; लाखी (मृगनयनी) का चरित्र भी हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित करता है। वह एक स्वाभिमानी एवं दृढ़ नारी पात्र है। उसे भूखों रहना स्वीकार है, किन्तु अपनी सखी मृगनयनी की दया का पात्र होना नहीं। वह समाज से टक्कर लेते हुए अटल के साथ अन्तर्जातीय विवाह भी करती है।

रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई) मात्र अट्ठारह वर्ष की आयु में विधवा हो जाती हैं, किन्तु पति के साथ वह सती नहीं होतीं, अपितु राष्ट्रहित के लिए अंग्रेजों से लड़ती हैं और सैनिकों को देशभक्ति का सन्देश देती हैं– ''यह आवश्यक नहीं कि स्वराज्य की स्थापना हम अपने जीवन-काल में ही देखते। सीढ़ी के डण्डे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुँच जाते। एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जनम से स्वराज्य नहीं मिलता।''[९] इस सन्देश के साथ रानी अंग्रेजों से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे देती हैं। नारी का यह भारतीय स्वरूप वर्मा जी के तत्कालीन अन्य उपन्यासों में गहराई के साथ उजागर हुआ है।

उनकी स्त्रियाँ शोषण एवं सामाजिक कुप्रथाओं; विशेषकर दहेज-प्रथा एवं विवाह-संस्था का सशक्त विरोध करती हैं। 'आहत' की छाया मण्डप में ही अपने श्वसुर एवं होने वाले पति की चप्पलों से पिटाई करती है और भरे लग्न-मण्डप में कहती है– ''है कोई यहाँ ऐसा साहसी, जो मेरे साथ ब्याह करने को तैयार हो? है कोई ऐसा?''[१०] वहीं 'कचनार' उपन्यास की दृढ़ एवं सशक्त पात्र है– कचनार, जो राव दलीपसिंह के विवाह में दासी बनकर आयी थी। वह एक

अभिमानिनी स्त्री है तथा दास-प्रथा का विरोध करती है और दलीपसिंह की भोग्या बनने से अस्वीकार करते हुए कहती है– ''दासी तो हूँ। आपकी और दीदी की। अब सब सेवा करूँगी, परन्तु मैं ऐसा अंगरखा नहीं बन सकती, जो जब चाहा, उतारकर फेंक दिया।''[११] भारतीय नारी की गरिमा और पवित्रता राजा को झुकाने में सफल होती है और कचनार को अपना सम्माननीय पद प्राप्त होता है।

'माधव जी सिंधिया' की गन्ना बेगम भी एक सशक्त नारी पात्र है। अपने पति के व्यवहारों से तंग आकर वह उसे छोड़कर चली जाती है तथा मन-ही-मन जवाहर सिंह को प्रेम करती है। गन्ना बेगम एक ओर साहसी, कर्त्तव्यपरायण एवं राष्ट्रभक्त नारी है, तो दूसरी ओर फारसी एवं हिन्दवी की अच्छी जानकार भी। रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई एवं महारानी दुर्गावती– दोनों ही नारियाँ लक्ष्मीबाई एवं अहिल्याबाई के समान वीर, साहसी, राष्ट्र तथा धर्म के लिए प्राण त्यागने की भी अपूर्व क्षमता रखती हैं।

'अचल मेरा कोई' की स्त्री पात्र कुन्ती तो आधुनिक नारी की प्रतीक है। उसे पुरुष का बंधन स्वीकार नहीं है। उसका समाज-सुधारक पति सुधाकर समानता का पक्षपाती बनते हुए मंच से कहता है– ''मैं स्त्रियों की स्वाधीनता का कट्टर पक्षपाती हूँ, परन्तु रंगमंच पर अपनी या होने वाली पत्नी के नृत्य, हाव-भाव, घुँघरू की छमाछम का पक्षपाती तो नहीं।''[१२] सुधाकर की यही रूढ़िवादिता कुन्ती को कहीं आने-जाने से रोकती है, जिससे उसे गहरा आघात लगता है। कुन्ती अधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा मौत का वरण करना श्रेयस्कर समझती है और आत्महत्या कर लेती है। यह आत्महत्या नारी को अपनी अस्मिता का बोध कराता है तथा पुरुष के गाल पर जबरदस्त तमाचा है। 'उदय किरण' की किरण समाज की रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गाँव में डाकुओं को किरण अपने साहस से पराजित कर देती है। इसी प्रकार, 'अमर-ज्योति' की ज्योति देश की रक्षा के लिए युद्ध में भाग लेती है और साहस के साथ दुश्मनों का मुकाबला करती है। 'साहित्य-सन्देश' में इनकी स्त्रियों के विषय में कहा गया है– ''वर्मा जी के नारी पात्र आधुनिक बुद्धिवादी लेखकों की नारी के समान बौद्धिक द्वन्द्व में फँसी, उलझी तथा मानसिक गुत्थियों की शिकार नहीं हैं और न ही उनकी नारी पात्र प्रवृत्तियों की दास ही हैं, बल्कि वे प्रवृत्तियों पर शासन करने वाली हैं। सर्वत्र ही एक विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण देखने को मिलता है, जो अपने में पूर्ण तथा मानसिक कुण्ठाओं से परे है।''[१३]

वर्मा जी ने एक ओर शौर्य, आत्मगौरव तथा आत्मोत्सर्ग के प्रतीक आदर्श एवं तेजस्वी पात्रों को चुना है, तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज की क्रूरता, कुटिलता, धर्मान्धता, स्वार्थपरकता एवं दुष्टता के प्रतीक खलपात्रों को। उन्होंने अपने उपन्यासों में ऊँच-नीच, सवर्ण-अवर्ण, छूत-अछूत, राजा-रंक, सामंत-दास, अमीर-गरीब आदि सभी प्रकार के पात्रों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। वृन्दावनलाल वर्मा के नारी चरित्र विरोध एवं प्रतिरोध के स्वर में पूर्ण स्वतन्त्रता का बोध कराते हुए भी परिवार एवं समाज में अपनी सशक्त भूमिका निभाते हैं। वर्मा जी की स्त्री-चेतना पराधीनता, शोषण, रूढ़ियों एवं कुरीतियों के विरोध का चिन्तन और विमर्श है। इनकी नारियाँ जागरूक एवं अपने अधिकारों के लिए सजग हैं। वह समाज में अबला नहीं, अपितु स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र नारी पात्र हैं।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव– हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ. २५०
२. डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'– हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ. ७६
३. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– विराटा की पद्मिनी, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-२, पृ. ३९५-३९६
४. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– माधव जी सिंधिया, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-३, पृ. ३२८
५. डॉ. शिवकुमार मिश्र– वृन्दावनलाल वर्मा : उपन्यास एवं कला, पृ. १७५
६. डॉ. सियारामशरण प्रसाद– वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य एवं समीक्षा, पृ. १७७
७. डॉ. उषा भटनागर– वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. ४८
८. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– मृगनयनी, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-३, पृ. ७३४
९. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-२, पृ. ३९५
१०. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– आहत, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-५, पृ. ४२४
११. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– कचनार, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-३, पृ. २५
१२. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (सं.)– अचल मेरा कोई, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, भाग-३, पृ. ३७१
१३. साहित्य संदेश- नवम्बर, १९५५

●

भारतीय समाज एवं नारी

डॉ. सुनीता*

शोधपत्र-सार : नारी-विमर्श दो शब्दों से मिलकर बना है– नारी अर्थात् स्त्री, गृहलक्ष्मी, महिला और विमर्श से अभिप्राय नारी के बारे में सोच-विचार। समाज में उसकी क्या स्थिति है या कैसी हो– उसके बारे में सलाह-मशविरा करना ही नारी-विमर्श है। इस पुरुष प्रधान समाज में नारी अनेक समस्याओं से जूझती है सम्वेदनाओं के साथ जीती है तथा अपने घर-परिवार को सँभालती है। घर-परिवार से बाहर भी उसे कई जगह पर जाना पड़ता है, परन्तु फिर; उसे इस पुरुष प्रधान समाज में शक़ की नजर से देखा जाता है। नारी इन सबकी परवाह न करते हुए भी आज पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है। १९वीं शताब्दी में समाज-सुधारकों ने पहली बार भारतीय समाज में नारी की स्थिति के विरोध में आवाज उठायी। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, दयानंद सरस्वती तथा अन्य कई समाज-सुधारकों के प्रयास से नारी की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुए। भारतीय समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हर युग के समाज में नारी-जीवन को प्रमुखता मिलती है। प्रत्येक युग में नारी की स्थिति को साहित्य के माध्यम से जाना जाता है। साहित्य, समाज और नारी का तमाम सम्बन्ध सदा से रहा है। भारतीय समाज में नारी का स्थान प्राचीन समय से ही पूजनीय रहा है।

शब्द-संकेत : भारतीय समाज, प्रमुखता, सलाह-मशविरा, गृहलक्ष्मी, सम्वेदना, शक़।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नारी की भूमिका : वर्तमान समाज में नारी की स्थिति क्या है? वर्तमान समाज में नारी किन-किन मुश्किलों का सामना कर रही है? इस बात को स्पष्ट करना अति आवश्यक है कि वर्तमान में नारी की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति कैसी है? शैक्षिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र में और अन्य क्षेत्रों में नारी को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है? इसके साथ-साथ; नारी की राजनैतिक गतिविधियों में भूमिका का भी चित्रण किया गया है।

भारतीय समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हर युग के समाज में नारी-जीवन की प्रमुखता मिलती है। प्रत्येक युग में नारी की स्थिति को साहित्य के माध्यम से जाना जाता है। साहित्य,समाज और नारी का अन्तर्सम्बन्ध है। भारतीय समाज में नारी का स्थान प्राचीन समय से ही पूजनीय रहा है। इस सम्बन्ध में दिवेश ठाकुर ने लिखा है– ''समाज के बदलते हुए मापदण्ड, विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था का विकास तथा नवीन आदेशों की स्थापना नारी के उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी रहे हैं।''[१]

इससे स्पष्ट है कि समाज में नारी की स्थिति का गहरा प्रभाव रहा है। उसकी स्थिति में समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहा है, लेकिन नारी अनन्त काल से ही मनुष्य और समाज का अंग रही है। हमारा इतिहास नारी जाति के विकास की कहानी है। व्यावहारिक रूप में, भारतीय समाज में लौकिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन आता रहा है।

भारतीय समाज में शुरू से ही नारी की स्थिति अच्छी रही है। आर्यों के समय में नारी का गौरवपूर्ण ऊँचा स्थान था, परन्तु विभिन्न परिस्थितियों और कालों में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया है। भारत के चार प्रमुख वेद– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद हैं। सबसे पुराना

* सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला-५

और पहला वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद में नारी की स्थिति अच्छी थी और उसे शिक्षा-प्राप्ति की सम्पूर्ण आजादी थी। ऋग्वेद में नारी की सम्मानजनक स्थिति के बारे में शैलजा माहेश्वरी ने लिखा है– ''उस युग में नारी की बड़ी सम्मानजनक स्थिति थी। आर्यों के सबसे पुराने ग्रन्थ ऋग्वेद में ऐसा उल्लेख मिलता है, जिससे उस समय के समाज में स्त्रियों की उन्नत स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।''[२] वैदिक युग में नारी पढ़ाई के साथ-साथ शस्त्र चलाने की विद्या भी ग्रहण करती थी, क्योंकि वह न केवल एक साधारण पत्नी ही थी, बल्कि वह पति की अर्द्धांगिनी और गृहस्वामिनी भी थी। वह पुरुषों के साथ युद्ध-क्षेत्र में जाने की भी हिम्मत रखती थी। नारी की वीरता के विषय में बल्लभ दास तिवारी ने लिखा है– ''इस युग में स्त्रियों को युद्ध-विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी और अनेक महिलाएँ समर-भूमि में रथ हाँकती तथा साहस और पराक्रम के कई कार्य करती थीं।''[३] इससे स्पष्ट होता है कि इस युग में नारी को शिक्षा के साथ-साथ युद्ध-विद्या लेने की भी पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वैदिक युग में नारी-शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया जाता था, जिसके कारण समाज में बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा जैसी कुरीतियाँ नहीं थीं। नारी की इस युग में बेहतर स्थिति थी।

ऋग्वेद के बाद अथर्ववेद युग में नारी की स्थिति में बदलाव आ गया। लड़की का जन्म अशुभ माना जाने लगा। लड़की के जन्म को रोकने के लिए यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठान किए जाने लगे। इस युग में लड़की के जन्म को अशुभ समझे जाने के विषय में सुशील मित्तल ने लिखा है– ''इस काल में कन्या का जन्म अशुभ माना जाने लगा और उसे रोकने के लिए धार्मिक अनुष्ठान तक किए जाते थे। बाह्य और गंधर्व विवाह के भी संकेत मिलते हैं।''[४] अत: कहा जा सकता है कि समाज में धीरे-धीरे सामाजिक कुरीतियों का जन्म हो रहा था। बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि कुरीतियों ने अपने पाँव पसारने शुरू कर दिये थे।

सती-प्रथा के बारे में गजानन शर्मा ने लिखा है– ''अथर्ववेद में दो-एक मंत्रों में सती-प्रथा की पुष्टि होती है। इस प्रकार, इसका मूल इस विचार में था कि मृत् व्यक्ति की आत्मा बनी रहे, अत: सभी प्रिय वस्तुएँ उसके साथ जानी चाहिए।''[५] इस युग में बेशक नारी की स्थिति काफी हद तक गिर चुकी थी, परन्तु अभी भी यज्ञों में नारी की उपस्थिति पहले की ही तरह जरूरी थी। यज्ञों में नारी की स्थिति के बारे में सुशील मित्तल ने लिखा है– ''ब्राह्मण ग्रन्थों में पुत्री एक विपत्ति मानी गई, किन्तु यज्ञों में नारी की उपस्थिति अनिवार्य थी।''[६] इससे स्पष्ट होता है कि नारी केवल ग्रन्थों तक ही सीमित रह गई थी। समय-परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ। उपनिषद काल में कन्या के जन्म को शुभ समझा जाने लगा। कन्या के जन्म के विषय में गजानंद शर्मा ने लिखा है– ''पुत्रों के साथ पुत्री का भी जन्म होता रहे, अन्यथा सृष्टि का अवतरण ही रुक जाएगा। अत: प्रकृति पर अन्तरिक्ष संस्कृति कन्या द्वेषी कैसे हो सकती है।''[६] विदुषी पुत्री पाने के लिए चावल और तिल से युक्त खिचड़ी खाने का विधान किया गया है।''[७] इससे स्पष्ट होता है कि इस युग में कन्या का जन्म शुभ माना जाता था और समाज में प्रचलित कुरीतियाँ भी कम होने लगी थीं। नारी को इस युग में भी ऋग्वेद की तरह शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार था और वे अब भी शस्त्र-विद्या सीखकर युद्ध-भूमि में अपने पति की रक्षा के लिए जा सकती थीं।

महाभारत काल में भी नारी की स्थिति अच्छी थी। इस काल में नारी को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस काल में पतिव्रता-धर्म को ही नारी का सबसे बड़ा धर्म माना गया है, जिसके विषय में सरला दुबे ने लिखा है– ''पत्नी का मुख्य धर्म पति-परायणता होता था। गांधारी पति-परायणता का आदर्श है। पति के सुख के लिए नारी सब कुछ करती थी। द्रौपदी ने पाण्डवों

के वनवास-काल में निरन्तर उनकी सहभागिनी बनकर पति-परायण नारी की आदर्शमयी झाँकी प्रस्तुत की।''[८] इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत काल में नारी को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपना पतिव्रता-धर्म निभाने के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार रहती थी।

जैन और बौद्ध– दोनों धर्मों के दार्शनिक सिद्धांत लगभग एक समान ही हैं। दोनों ही धर्मों में मोक्ष का साधन संन्यास माना गया है। जैन धर्म के अनुसार– ''मोक्ष का साधन केवल संन्यास है। दिगम्बर पंथ वालों ने तो स्पष्ट ही घोषित कर दिया था कि मुक्ति नारियों के लिए है ही नहीं। नारियों को चाहिए कि वह सीमित धर्म का पालन करें, जिससे पुरुष होकर पुनर्जन्म लें, क्योंकि मोक्ष-लाभ उसी दशा में मिल सकता है।'' जैन धर्म में नारी के मातृ, रूप, पतिव्रता-धर्म और सतीत्व-धर्म पर अधिक बल दिया गया। जैन धर्म में नारी को कामवासना का मूल समझा गया और उसे त्याज्य बताया गया। बौद्धकालीन समय में नारी को आदर्श और प्रतिष्ठित रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस काल में भी नर-नारी को एक समान समझा जाता था और मान्यता थी कि पुरुष की भाँति स्त्री को भी पिछले जन्म के कर्मों का फल मिलता है। नारी के विषय में सरला दुबे का कहना है– ''नारी भी पुरुष की भाँति ही अपने जन्म के कर्मों का फल ग्रहण करती है। अपने उत्थान और पतन तथा निर्वाण-प्राप्ति के लिए स्वयं पर निर्भर रहती है। माता-पिता, गुरु तथा आत्म-ज्ञानोपदेष्टा भी उसे फल-प्राप्ति के बंधन से मुक्त नहीं कर सकते।''[९] इससे पता चलता है कि इस काल में नर-नारी को एक समान समझा जाता था और दोनों को समान अधिकार प्राप्त था। इस काल में दु:खी व पीड़ित नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। सामान्यतया इस काल में नारी को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

मध्यकाल में, विशेष रूप से भारत पर मुसलमानों के आक्रमण और मुगलों के राज्य के बाद; भारत में स्त्रियों की स्थिति में और गिरावट आई। १५वीं शताब्दी में हिन्दू-मुसलमानों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान हुआ। जाति-पाँति के बंधन कठोर होने से स्त्रियों को सामाजिक बंधनों में जकड़ दिया गया। विलासी मुस्लिम अधिकारियों की लोलुप रसिकता से रक्षा पाने के लिए हिन्दू समाज में पर्दा-प्रथा तथा बाल-विवाह का प्रचलन हुआ। लड़कियों की शिक्षा प्राय: समाप्त हो गयी। मध्यकालीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर विचार करते हुए सुशील मित्तल ने लिखा है– ''वैदिक कालीन मैत्रेयी और गार्गी का विदुषीपन तथा सीता-सावित्री का सतीत्व और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता' की उक्ति सार्थक करने वाली भारतीय नारी-शक्ति और सिद्धों-नाथों के संस्कारों के भँवर में फँसकर के गुड़ियों की बारात बन गई।''[१०] समस्त अधिकार छीन लिए गए। उनकी स्वतन्त्रता नाम मात्र की ही रह गयी। शासक वर्ग लूटे हुए अपार धन से ऐश्वर्य और विनाश में उन्मुक्त था। परिणामत: समाज भी पतनोन्मुख हो गया। नारी को केवल मनोरंजन और विलासिता की सामग्री मात्र समझा गया। उसका कार्यक्षेत्र अब घर तक ही सीमित रह गया था। नारी का यह रूप भक्तिकालीन युग में विशेष रूप से उजागर हुआ है। सामंती युग की दृष्टि का प्रसार स्त्री के शारीरिक लावण्यता तक ही सीमित रहा, उसकी अनुपम शक्ति-सम्पन्न अन्तरात्मा तक वह नहीं गयी।

भक्तिकाल में पुरुष की भाँति नारी भी भक्ति के माध्यम से भगवान् की पूजा कर मोक्ष प्राप्त कर सकती थी। पुरुषों और संतों ने नारी के पतिव्रता-धर्म निभाने पर ही मोक्ष-प्राप्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, परन्तु भक्तिकाल में पतिता, वेश्या, अकुलीना आदि भी मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार रखती थीं। मध्यकाल में धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में भी कुछ

सुधार हुआ। इस काल में कीर्तन, भजन आदि अवसरों में भी महिला भाग लेती थी। संन्यासी बनने से पूर्व पति को पत्नी की आज्ञा लेनी आवश्यक थी। पत्नी को भी पति के साथ संन्यासी बनने का अधिकार था। अत: मोक्ष-प्राप्ति में नारी पुरुष का साथ देती थी। रामभक्ति काव्य-परम्परा में तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। रामकुमार वर्मा ने लिखा है– ''तुलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्या, सीता, ग्राम-बधू आदि के चरित्र पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुए हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी की निन्दा की है और उन्हें ढोल-गँवार की कोटि में रखा है। परन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाए, तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रहार उस समय पर किए गए हैं, जब नारी ने धर्म-विरोधी आचरण किया है।''[११] अन्त में; कहा जा सकता है कि मध्यकालीन साहित्य में जहाँ नारी को कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है; वहीं सन्तों एवं भक्तों ने उसके प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त की है। मोक्ष-प्राप्ति तक पहुँचने के लिए उन्होंने सामान्य रूप में ही नारी की उपेक्षा की है, अन्यथा सभी सन्तों के हृदय में नारी के प्रति आदर एवं सम्मान के भाव नहीं थे।

आधुनिक काल का आरम्भ २०वीं सदी से माना गया है। बीसवीं सदी को 'महिला जागरण युग' कहा गया है। इस काल में नारी की स्थिति में लगातार परिवर्तन हो रहा था। मध्यकाल के समाज-सुधारकों ने नारी की स्थिति को एक नई जान दी। उनके प्रयत्नों से ही आधुनिक काल में नारी की शिक्षा पर ध्यान दिया जाने लगा। परिणामस्वरूप नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई और उसने समाज में अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। नारी के विषय में सरला दुआ ने लिखा है– ''हिन्दी का आधुनिक काल सुधार एवं जागरण का काल है। उसमें चित्रित नारी ने अपना पूरा-पूरा पुरातनवादी निर्वाह छोड़ दिया है। उसने सर्वशक्ति-सम्पन्न हो करके अपने को एक प्रकार से मुक्त कर लिया है। वह अपने पग-पग पर पुरुष की आश्रित नहीं रह गयी है।''[१२]

नारी की स्थिति को सुधारने के लिए पहला कदम नारी को शिक्षित करना था। समाज के अनेक वर्गों ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् नारी-शिक्षा को लेकर महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। नारी की शिक्षा के विषय में शैलजा माहेश्वरी के अनुसार– ''नारी-शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति स्वतन्त्र भारत का संविधान लागू होने के बाद ही हुई, जिसमें समान अधिकारों के साथ समान अवसरों की गारण्टी दी गई है। नेहरू स्त्री-शिक्षा के बड़े समर्थकों में से एक थे। महिला शिक्षा की अनेक संस्थाएँ खुली थीं।''[१३] नारी की शिक्षा को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद एक नई दिशा मिली, जिससे वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकी। नारी की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कानून बनाए गए। नारी-मुक्ति-आन्दोलन से जुड़ी विदेशी महिलाओं में सिस्टर निवेदिता, मारग्रेट नोबुल तथा एनी बेसेण्ट का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने नारी-जागृति तथा प्रगति को आगे बढ़ाकर देश के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का स्थान निर्धारित किया। हजारों महिलाएँ सामूहिक रूप से स्वतन्त्रता-संग्राम में उतरीं। स्वतन्त्र भारत के संविधान-निर्माण में भी महिलाओं ने भाग लिया और अनेक सुधार कानून पास किए। अब सामान्य शिक्षा ही नहीं; विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में भी महिलाएँ आगे बढ़ने लगी हैं।

लेकिन आधुनिक युग में इन कानूनों के होने पर भी नारी की स्थिति कहीं-ना-कहीं पुरुष की तुलना में उतनी सुदृढ़ नहीं है, क्योंकि समाज में आज भी नारी को पुरुष के बराबर सम्मान

नहीं मिलता है। अनेक समस्याओं के लिए नारी को जिम्मेदार ठहराया जाता है। अत: अभी तक नारी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं है। आज भी नारी को समाज में अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। आधुनिक काल में नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए आशारानी व्होरा ने इसे दो भागों में विभाजित किया है– ''स्वतन्त्रता के पूर्व के ४०-५० वर्षों को नारी-जागरण का युग कहा जा सकता है और स्वतन्त्रता के पश्चात् जो दूसरा युग प्रारम्भ होता है, वह नारी-प्रगति का। प्रथम युग में नारी ने पराधीनता की बेड़ियों को काटकर अपने लक्ष्य निर्धारित किए और दूसरी अवधि में वह उस मार्ग पर चल रही है।''[१४] इस काम में उसे अनेक समाज-सुधारकों का सहयोग मिलता रहा है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आदिकाल में नारी नर के समान ही नहीं, बल्कि नर से श्रेष्ठ मानी जाती थी। वैदिक युग में धर्म का प्रभाव होने से नारियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। पुरुष के समान सभी क्षेत्रों में वह भाग ले सकती थी। युग-परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति बदलती गई। देवी के स्थान से गिरकर वह पुत्र उत्पन्न करने की वस्तु मात्र रह गई। विदेशी आक्रमणों के कारण उसका जीवन विषादपूर्ण हो गया और कालान्तर में उसकी गिनती शुद्रों में होने लगी। इस प्रकार, हिन्दी साहित्य में नारी सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक दृष्टि से अनेक-अनेक रूप में चित्रित होती रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. दिवेश ठाकुर– प्रसाद के उपन्यास में नारी-चित्रण, नवयुग प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७४, पृष्ठ १६
२. शैलजा माहेश्वरी– हिन्दी व्यंग साहित्य में नारी, अनुराग प्रकाशन, अजमेर, १९९७, पृष्ठ ४५
३. बल्लभ दास तिवारी– हिन्दी काव्य में नारी, विकास प्रकाशन, दिल्ली, १९७४, पृष्ठ ६५
४. सुशील मित्तल– आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७४, पृष्ठ ६५
५. गजानंद शर्मा– प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१, पृष्ठ ६६-६७
६. सुशील मित्तल– आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७४, पृष्ठ ६९
७. गजानंद शर्मा– प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१, पृष्ठ ६९
८. सरला दुआ– आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी, साहित्य निकेतन, ऋदानन्द रामबाग प्रकाशन, कानपुर, १९७१, पृष्ठ ४४
९. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, उदयांचल प्रकाशन, पटना, १९६२, पृष्ठ १४७
१०. सुशील मित्तल– आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७४, पृष्ठ १२
११. रामकुमार वर्मा– हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५८, पृष्ठ ४९४
१२. सरला दुआ– आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी, साहित्य निकेतन, ऋदानन्द रामबाग प्रकाशन, कानपुर, १९७१, पृष्ठ ९३
१३. शैलजा माहेश्वरी– हिन्दी व्यंग साहित्य में नारी, अनुराग प्रकाशन, अजमेर, १९९७, पृष्ठ ४९
१४. आशारानी व्होरा– भारतीय नारी : दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, १९८३, पृष्ठ ७७

●

प्रताप नारायण मिश्र के
साहित्य में विधवा-विवाह सम्बन्धी चिन्तन

मुकेश यादव*

हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु मण्डल में प्रताप नारायण मिश्र का स्थान अन्यतम है । मिश्र जी हिन्दी के अनन्य निबन्धकार हैं और हिन्दी में निबन्ध साहित्य के अभ्युदय के विशिष्ट नायक हैं। वे बड़े चैतन्य साहित्यकार हैं। भारतेन्दु युग के लेखकों में उनका व्यक्तित्व अद्‌भुत है। ६ जनवरी, १८८५ ई. को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के पश्चात् हिन्दी नवजागरण का नेतृत्व इन्होंने सँभाला। बालकृष्ण भट्ट के शब्दों में– ''प्रात: स्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्र को जो हिन्दी का जन्मदाता कहें, तो प्रताप नारायण मिश्र को निस्संदेह उस स्तन-धन्या दुधमुँही का पालन-पोषण करती कहना ही पड़ेगा, क्योंकि हरिश्चन्द्र के उपरान्त उसे अनेक रोग-दोष से सर्वदा नष्ट न हो जाने से बचा रखने वाले यही देख पड़े।''[१]

भट्‌ट जी की साहित्यिक प्रतिक्रिया से यह पता चलता है कि हिन्दी नवजागरण में आप भारतेन्दु के उत्तराधिकारी थे। भारतेन्दु ने जो सामाजिक-राजनीतिक कार्य प्रारम्भ किए थे, उन कार्यों को मिश्र जी ने आगे बढ़ाया और वे मरणोपरांत तक देश की उन्नति के कार्यों में संलग्न रहे। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध वे सदैव अग्रणी रहे। हिन्दी नवजागरण के इन पुरोधाओं ने सदैव विधवा-विवाह के समर्थन में बाल-विवाह का विरोध किया। पूरे भारतवर्ष को इस व्याधि ने अपनी गिरफ्त में कर लिया था। इस तरह की व्याधियों से मुक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष करने वाले रचनाकारों में प्रताप नारायण मिश्र का योगदान महत्त्वपूर्ण है। कहीं-न-कहीं उनका मानना था कि भारतीयों को अपनी दुर्बलताओं से स्वयं ही मुक्ति पानी चाहिए। प्रताप नारायण मिश्र ने विधवा-विवाह का ना होना भी हमारे समाज के लिए एक कलंक माना है। हमारे समाज के लिए राममोहन राय के प्रयत्नों से लार्ड विलियम बैंटिंग १८२९ ई. में सती-प्रथा पर रोक लगा चुके थे। जब सती-प्रथा पर रोक लगाई गई, तब समाज-सुधारकों का ध्यान विधवा-विवाह पर गया। इस सन्दर्भ में विद्यासागर जी का कार्य बहुत प्रशंसनीय है। पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री को जन्म भर घर बैठना होता था। शृंगार तो दूर की बात थी, उसे अच्छे वस्त्र तक पहनने की अनुमति समाज नहीं देता था। उसे सदैव श्वेत वस्त्र धारण करने होते रहे थे। कहीं-कहीं पर विधवाओं को सिर मुँड़वाना भी अनिवार्य हो जाता था। उनका मुख-दर्शन अशुभ माना जाता था। अत: उनके साथ अस्पृश्यता का भाव रखा जाता था। उन्हें शारीरिक-मानसिक यातनाएँ झेलनी पड़ती थीं। वह ब्राह्मणों और उच्च वर्ग के लोगो की शारीरिक अग्नि को शान्त करने का माध्यम बन चुकी थीं और वे जीवित लाश की तरह जिए जा रही थीं। बंगाल प्रदेश तथा महाराष्ट्र से दक्षिण तक इन महिलाओं की स्थिति दयनीय थी। बंगाल के मनीषी, समाज-सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपने सक्रिय प्रयत्नों से १८५६ ई. में विधवा-पुनर्विवाह कानून पास करवाया। कट्टरपंथियों ने इसका पुरजोर विरोध किया, फिर भी; यह आन्दोलन बंगाल से देश के दूसरे हिस्सों में पहुँचा। महाराष्ट्र में गंगाधर शास्त्री, विष्णु शास्त्री, महादेव गोविन्द राना डे, गोपाल हरि देशमुख, ज्योतिबा फूले आदि अनेक समाज-सुधारकों ने विधवा-पुनर्विवाह को आन्दोलन का रूप दिया।

* शोध छात्र– हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–२२१००५

दक्षिण में इस कार्य को तेलुगू भाषी वीरेशलिंगम ने पूरा किया। पश्चिमोत्तर प्रदेश में भारतेन्दु मण्डल के सभी लेखक सक्रिय थे। इस क्षेत्र में विधवा-विवाह के साथ-साथ स्त्री-दशा सुधारने के काम में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का योगदान महत्त्वपूर्ण है। पंजाब में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने १८७७ ई. में हिन्दी का पहला उपन्यास 'भाग्यवती' लिखकर विधवा-विवाह का पुरजोर समर्थन किया। प्रताप नारायण मिश्र विधवाओं की समस्याओं को बाल-विवाह का दुष्परिणाम मानते हैं– ''यदि बाल विवाह की प्रथा उठ जाये, तो विधवा-विवाह की आवश्यकता ही न रहे।''[२] वे न केवल विधवा के पुनर्विवाह के समर्थक थे, वरन् चाहते थे कि जो लोग विधवा-विवाह में बाधक हों, उनको जेल की 'सीखचों' में होना चाहिए। उनके अनुसार– ''ऐसे लोगों को सजा ठहरा दी जाए, जो कामवर्ती बाल विधवाओं के पुनर्विवाह में बाधक होते हैं।''[३]

मिश्र जी बड़े सम्वेदनशील थे। वे बाल विधवाओं को देखकर बड़े दु:खी होते थे। विधवाओं की बुरी दशा को देखकर उनका कलेजा कसकता है था–

''कौन करेजौ नहि कसकत, सुनि विपत्ति बाल विधवन की।''[४]

इतना ही नहीं; देशोन्नति के प्रसंग में वे कहते हैं कि– ''विधवा-विवाह हुए बिना त्रिकाल में कुछ (उन्नति) नहीं होगा। वे विधवा-विवाह के प्रचार-प्रसार का कोई अवसर खोना नहीं चाहते। १५ मई, १८८९ ई. के 'ब्राह्मण' में वे 'विधवा-विवाह सिद्धांत' नामक पुस्तक का परिचय इस प्रकार देते हैं– ''पुस्तक बहुत उपयोगी है, क्योंकि आजकल देश के अभाग्य से बाल विवाह फैला हुआ है, जिसके कारण बाल विधवाओं की संख्या बढ़ती जाती है और इन बेचारियों का पुनर्विवाह न होने से कारण हत्या और व्यभिचार की भरमार है। अत: ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता है, जिनमें मुक्ति एवं प्रमाण विधवा-विवाह की भलाई-बुराई जताई गयी हो।''[५]

मिश्र जी का 'ब्राह्मण' एक मासिक पत्र था। उसमें समाचारों के लिए गुंजाइश नहीं थी, फिर भी; सामाजिक महत्त्व और देशोद्धार से सम्बन्धित समाचार छाँट कर वे अपने पत्र में छापते रहते थे। १५ अप्रैल, १८८३ ई. के 'ब्राह्मण' में विधवा-विवाह से सम्बन्धित समाचार इस प्रकार छपा है– ''मद्रास में ब्राह्मणों में विधवा-विवाह का प्रचार होता आया है और वहाँ की बहुत स्त्रियों ने राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के नाम एक दरखास्त विधवा-विवाह प्रचलित करने के अभिप्राय से समाचार-पत्रों में छपवाई है।''[६]

स्पष्ट है कि मिश्र जी बाल विधवाओं के पुनर्विवाह की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। जहाँ वे बाल विधवाओं के लिए विवाह की पुरजोर वकालत करते हैं, वहीं दूसरी अन्य विधवाओं को समाज की प्राचीन परम्परागत रूढ़ियों के बन्धनों में रहने की बात करते हैं। वे विधवाओं के केश कटवाने को बुरा नहीं समझते हैं। १५ जनवरी, १८९० ई. के 'ब्राह्मण' में 'सोशल कॉन्फ्रेंस' शीर्षक लेख में इस– ''सोशल कॉन्फ्रेंस के प्रस्ताव पर विधवा होने पर जब तक स्त्री पंचों और मजिस्ट्रेट के सामने अपने केश कटवाने की सहमति न दे दे, तब तक उसके बाल न काटे जाएँ''[७] – पर मिश्र जी इस प्रकार टिप्पणी करते हैं– ''वाह री नई सभ्यता! भारतीय विधवा न ठहरी, वीरांगना ठहरी। इसमें उसे कष्ट क्या होता है? हानि क्या होती है?''[८] यहाँ मिश्र जी समाज की इस दुष्परम्परा का विरोध नहीं कर पाते हैं।

संक्षेप में; मिश्र जी बाल विधवा-विवाह के पूर्ण समर्थक थे। वे समाज में बाल विधवाओं की दयनीय स्थिति को देखकर बहुत ही दु:खी होते थे। विधवाओं की इस दुर्दशा के लिए वे

समाज में बाल विवाह की प्रथा को अधिक दोषी समझते थे, इसलिए वे बाल विवाह के सख्त विरोधी थे। विवाहादि के अवसरों पर फिजूलखर्ची, दहेज, आतिशबाजी आदि का भी विरोध करते थे। वे इन खर्चों पर सामूहिक रोक लगाने की बात करते हैं। १५ फरवरी, १८८४ ई. के 'ब्राह्मण' में विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार की फिजूलखर्ची की चर्चा उन्होंने विस्तार से की है।

मिश्र जी अपने 'स्त्री' नामक निबन्ध में स्पष्ट रूप से वर-कन्या की इच्छा के बिना विवाह को उनकी जीवन-यात्रा में बाधक मानते हैं– ''विवाह केवल वर और कन्या की इच्छा से होना ठीक है, नहीं तो दोनों की जीवन-यात्रा में बाधा पड़ना सम्भव है।''[९]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मिश्र जी बाल विवाह को ऐसा कारण मानते हैं, जिससे विधवाओं की यह दशा है। नवजागरण काल में इन सामाजिक कुरीतियों का विरोध प्रताप नारायण मिश्र सहित भारतेन्दु मण्डल के प्राय: सभी साहित्यकारों ने किया है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. राजेन्द्र शर्मा– बालकृष्ण भट्ट : जीवन और साहित्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-१२९
२. विजय शंकर मल्ल– प्रताप नारायण ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण, सम्वत् २०४९, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ-३२१
३. नारायण प्रसाद अरोड़ा– प्रताप लहरी, प्रथम संस्करण, १९४९, कानपुर, पृष्ठ-१३६
४. विजय शंकर मल्ल– प्रताप नारायण ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण, सम्वत् २०४९, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ-९९
५. भगवती शर्मा– प्रसाद, नवजागरण और प्रताप नारायण मिश्र, संस्करण-१९९४, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-२२३
६. पूर्वोक्त– पृष्ठ-२२३
७. पूर्वोक्त– पृष्ठ-२२४
८. पूर्वोक्त– पृष्ठ-२२४
९. पूर्वोक्त– पृष्ठ-२२५

●

सेवासदन : स्त्री-स्वाधीनता की प्रथम पहल

कु. प्रतिमा*

प्रेमचन्द का उपन्यास-लेखन वैसे तो उर्दू में 'हमखुर्मा हमसबाब' से ही आरम्भ हो जाता है, किन्तु हिन्दी में उनके लेखन-कर्म का आरम्भ सन् १९१८ ई. में प्रकाशित 'सेवासदन' से माना जाता है। सेवासदन से पहले यह उर्दू भाषा में 'बाजारे हुस्न' के नाम से प्रकाशित हुआ था। चूँकि 'सेवासदन' वेश्या-जीवन पर लिखा गया उपन्यास है, अत: इसमें स्त्री पात्र ही कथा के केन्द्र में है। हालाँकि इससे पूर्व भी वेश्या-जीवन पर उपन्यास लिखा जा चुका था, किन्तु प्रेमचन्द ने सेवासदन में जिस रूप में स्त्री का चरित्र-चित्रण किया है, वह अन्य उपन्यासों से इसे अलग कर देता है। अपने उपन्यास सेवासदन में प्रेमचन्द ने सुमन, शान्ता और भोली वेश्या का चरित्र जिस रूप में प्रस्तुत किया, उस रूप में ये स्त्री पात्र आज सौ साल गुजर जाने के बाद भी जीवित हैं।

'सेवासदन' की समस्या मध्यवर्ग से सम्बन्धित है, जिसमें वेश्या-जीवन को सामाजिक सन्दर्भ में देखा गया है। वेश्या-जीवन भले ही पुरुष के लिए लुभावनी चीज रही हो, लेकिन प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार ने इस लुभावनी चीज के नीचे छुपी हुई स्त्री की मर्मवेदना, प्रताड़ना और अपमान को उद्घाटित कर उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला है, जो एक स्त्री को वेश्या बनने पर मजबूर करता है। 'सेवासदन' उपन्यास में सुमन जैसी पात्र की सर्जना कर लेखक ने बड़ी ही सहजता से इस अन्धे समाज के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए, सभ्यता की चादर ओढ़े समाज के धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक पुण्य-पुरुषों को भरी सड़क पर नंगा कर दिया है और उन कुरीतियों पर प्रकाश डाला है, जो उन्हें शरीफ से जानवर बनाये हुए है।

प्रेमचन्द वेश्यावृत्ति की समस्या को सामाजिक समस्या के रूप में अंकित करते हैं और इसे दहेज तथा अशिक्षा से जोड़कर देखते हैं। इन सभी समस्याओं का कारण था– स्त्री का पराधीन होना और प्रेमचन्द ने सेवासदन में नारी के इस दर्द को सबसे अधिक उभारा है। यह लेखक की सत्यवादी दृष्टि तो है ही, साथ ही; घोर मानवतावादी दृष्टि भी है। सेवासदन की मुख्य नायिका सुमन की समस्या केवल उसकी अपनी समस्या न होकर पूरे समाज की समस्या है। सुमन पहली स्त्री पात्र है, जो परिवार द्वारा, समाज द्वारा और पति द्वारा प्रताड़ित, अपमानित और उपेक्षित होने के बाद भी आत्महत्या की राह नहीं चुनती। वह जीवन चुनती है और पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वतंत्र रूप से जीने का निश्चय करती है। इस रूप में वह अकेली स्त्री न होकर एक समूह है, जो सुमन के रूप में भारतीय नारी की गरिमा और अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करती है। आलोचक रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग' में लिखते हैं– ''हिन्दी कथा-साहित्य की वह पहली नारी है, जो आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष की डगर पर पाँव उठाती है।''[१] सुमन अपने संघर्ष-पथ पर सफल भी होती है और स्वाधीन भी। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा का कथन सत्य प्रतीत होता है कि– ''विवाह की संस्था पवित्र है, उसका उद्देश्य भी उच्चतम है, परन्तु जब वह व्यक्ति के नैतिक पतन का कारण बन जाय, तो अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य संशोधन की आवश्यकता समझना चाहिए।''[२]

* शोध छात्रा– भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

उपन्यास के अन्त में; प्रेमचन्द ने सेवासदन की स्थापना कर कहीं-न-कहीं यह संशोधन किया है। प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास की नायिकाएँ या तो आर्थिक मजबूरीवश वेश्यावृत्ति अपनाती हैं या धन के लिए उनका अपहरण कर उन्हें जबरदस्ती वेश्या बनाया जाता है। जैसा कि मिर्जा हादी 'रुश्वा' का उपन्यास 'उमराव जान' है, जिसमें धन के लिए उसका अपहरण कर उसे वेश्या बनने पर विवश किया गया। लेकिन सुमन पहली स्त्री पात्र है, जो यह राह स्वयं चुनती है।

हमारे समाज में वेश्या और उसकी वृत्ति को घृणित दृष्टि से देखा जाता है। उसे कुलधर्म नाशिनी, कुलटा, चरित्रहीन, वेश्या– न जाने क्या-क्या नाम दिया जाता है। लेकिन प्रेमचन्द जैसा उपन्यासकार ऐसी पतिताओं से घृणा से आँखें नहीं फेरता, बल्कि सहानुभूति रखते हुए करुणा से आर्द्र हो उठता है। शायद इसी कारण, सुमन जैसी पात्र की सर्जना कर समाज को सच्चा आईना भी दिखाता है कि जो कुछ भी हो रहा है, उसका जिम्मेदार समाज है, न कि स्त्री। इसलिए पद्म सिंह जैसे पात्र के रूप में लेखक स्वयं कहता है कि– ''हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है। यह दालमण्डी हमारे कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब है। हम किस मुँह से उनसे घृणा करें?''[३] आखिर समाज ने ऐसा कठोर विधान क्यों बनाया, जिसका पालन करना मानव के वश में नहीं? फिर स्त्री भला कैसे बर्दास्त करती?

उपन्यास में सुमन भी गजाधर द्वारा घर से निकाल दिये जाने और पद्म सिंह के यहाँ शरण न मिलने पर भोली वेश्या की शरण लेती है। उसे वहाँ सब कुछ मिलता है, जो उसे सभ्य कहे जाने वाले समाज में नहीं मिला। वह बिट्ठलनाथ जैसे समाज-सुधारक से कहती है– ''मेरा अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिन्मनलाल के ठाकुरद्वारे गई थी झूला देखने। सारी रात बाहर खड़ी भींगती रही, लेकिन किसी ने मुझे भीतर नहीं जाने दिया। कल उसी ठाकुरद्वारा में गाना हुआ, तो ऐसा जान पड़ा, मानों मेरे चरण से वह मन्दिर पवित्र हो गया हो।''[४]

यहाँ भोली का चरित्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह उन भले मानुषों से तो लाख दर्जे सही है, जो सम्वेदनहीन हैं। भोली भले ही सामाजिक पद-प्रतिष्ठा से वंचित वेश्या है, लेकिन उसमें सम्वेदना तो है। और इसी से वह सुमन को अपने यहाँ आश्रय भी देती है, जहाँ सुमन को जीवन जीने की स्वतंत्रता मिलती है। भोली के यहाँ न केवल उसका स्वागत होता है, बल्कि उसके रूप की प्रशंसा भी होती है। वहाँ उसे वह आदर-सम्मान मिलता है, जो पहले कभी न मिला था। वहाँ जाकर उसे एहसास होता है– ''सुख न सही, मेरा आदर तो है। मैं किसी की गुलाम तो नहीं हूँ।''[५] अभी तक पुरुष शासित समाज में एक पराधीन दासी की जिन्दगी जी रही सुमन को पहली बार स्वतंत्रता का अनुभव होता है। रामविलास शर्मा ने संकेत किया है कि– ''नारी की पराधीनता के बारे में जो कटु अनुभव सुमन को हुआ, वही कटु अनुभव उससे पहले भोली को हो चुका था।''[६]

सेवासदन में वेश्यावृत्ति के ब्यौरे बहुत नहीं हैं, वरन् इतना ही बताया गया है कि वेश्यालयों में ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिष्ठित वर्ग से और प्रतिष्ठित व्यक्ति ही पहुँचते थे। उनके यहाँ खुशी का अवसर हो अथवा मन्दिर में पूजा-पाठ का उत्सव, वेश्याओं को बड़े आदर से बुलाया जाता था। फिर समाज में उनकी अवहेलना-उपेक्षा क्यों? जो पुरुष अँधेरे में उनके चरणों पर लोटता है, वही उजाले में अपने को सभ्य समझ कर उनकी उपेक्षा क्यों करता है? एक स्त्री की

उपेक्षा और प्रताड़ना की हद् तब हो जाती है, जब शान्ता में स्त्री-धर्म के सारे गुण– सुन्दरता, पवित्रता और गुणधर्मिता होते हुए भी उसे ठुकरा दिया जाता है– केवल उसके परिवारवालों के दोषों का हवाला देकर। सुमन की बहन शान्ता जब सदन की झोपड़ी में आने के बाद बेहोश होकर गिर जाती है, तब सुमन सदन की ओर तिरस्कार भरे नेत्रों से देखते हुए कहती हैं– ''यह तुम्हारे अत्याचार का फल है...आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो, अँधेरे में जूठा खाने को तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं। यह निरी धूर्त्तता है, दगाबाजी है।''[७]

शान्ता का चरित्र प्रस्तुत कर लेखक कथा का अन्त और भी मार्मिक बना देता है। शान्ता सुमन की बहन है। वह भोली-भाली सच्चरित्र महिला है, उसका दोष केवल इतना है कि वह सुमन जैसी पतिता की बहन है और ऐसे पिता की बेटी है, जो रिश्वत लेने के जुर्म में जेल काट चुका है। बस इतनी सी कमी होने के कारण उसकी बारात दरवाजे से लौट जाती है। जाहिर है; ऐसे प्रश्न उपस्थित कर प्रेमचन्द समाज से यही पूछना चाहते हैं कि क्या सारे विधान सुमन, शान्त और भोली जैसी औरतों के लिए बनाया गया है?

प्रेमचन्द ने शान्ता के रूप में चिरन्तन नारी-दर्शन कराया है, जिसमें प्रेम का आदर्श ऊँचा है। और अन्त में; सेवासदन की स्थापना कर लेखक ने मानों इस समस्या का हल दे दिया है। रामविलास शर्मा का यह कथन 'सेवासदन' और उसके नारी पात्रों के लिए सही साबित होता है कि– ''बीसवीं सदी के भारतीय समाज में धीरे-धीरे एक परिवर्तन हो रहा था। साम्राज्यवादी-सामती जुएँ के नीचे जनता कसमसाने लगी थी। समाज का सबसे दलित अंग नारी राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता– दोनों से पिसती हुई नारी-स्वाधीनता के लिए हाथ फैलाने लगी थी। प्रेमचन्द ने सबसे पहले इस परिवर्तन को देखा था, उसका स्वागत किया था, उसे बढ़ावा दिया था।''[८]

इस प्रकार, 'सेवासदन' अपने आप में महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी तुलना प्रारम्भिक से लेकर बाद के उपन्यासों से भी नहीं है। उपन्यास की मुख्य पात्र सुमन अंत तक हार नहीं मानती। वह गिरती है, चोट खाती है, उपेक्षित-अपमानित होती है, लेकिन व्यवस्था से लड़ती है। इसकी तुलना प्रारम्भिक उपन्यासों से लेकर बाद के उपन्यासों से भी होती रही है। स्पष्ट रूप से यह नारी-मुक्ति का प्रथम उपन्यास है।

सन्दर्भ-सूची

१. रामविलास शर्मा– प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. ३९
२. महादेवी वर्मा– शृंखला की कड़ियाँ, पृ. २२
३. प्रेमचन्द– सेवासदन, पृ. १३१
४. प्रेमचन्द– सेवासदन, पृ. ५७
५. वही– पृ. ५८
६. रामविलास शर्मा– प्रेमचन्द और उनका युग, पृ. ३७
७. प्रेमचन्द– सेवासदन, पृ. १७९
८. रामविलास शर्मा– प्रेमचन्द और उनका युग, पृ. ३६

●

भारतीय नारी और
यशपाल के उपन्यासों में नारी-परिकल्पना

प्रज्ञा सिंह*

यशपाल का साहित्य-लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। यशपाल की प्रमुखता उपन्यास-विधा में अधिक है, हालाँकि लेखन का प्रारम्भ उन्होंने कहानियों से किया था। यशपाल की कहानियाँ ने उपन्यास की तरह अपने समय की राजनीति से प्रभावित न होकर, नई कहानी के समय में स्त्री की मन:स्थिति, देह के मेल से एक सम्पूर्ण स्त्री को निखारा है। नई कहानी के दौर की स्त्री की स्थिति के लेखन पर वास्तविक हस्ताक्षर यशपाल ने किया है। आधुनिक कहानियाँ यशपाल की कहानियों से दिशा या मार्गदर्शन लिए बिना नहीं रह पाती हैं। आज की कहानियों की सार्थकता में यशपाल की कहानियों के प्रभाव का मूल है।

यशपाल ने अपने उपन्यासों में समाज के हर पहलू का वर्णन किया है। भारतीय समाज को प्रभावित करने में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय समाज की कल्पना भारतीय नारी को केन्द्र में बिना रखे असम्भव है। भारतीय समाज वर्ग-विभाजित है और इस वर्ग-विभाजन में स्त्रियों के भी वर्ग को विभाजित किया गया है। वह सामाजिक व्यवस्था उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्नवर्ग– इन तीन वर्गों में विभाजित है।

उच्चवर्गीय स्त्रियाँ समाज में अपनी अलग पहचान रखती हैं। ये धन-सम्पत्ति से सम्पन्न होती हैं। इन्हें अपने ऐश-ओ-आराम के अलावा दूसरों से कोई मतलब नहीं होता है। प्राय: ये स्वार्थी होती हैं। स्वतंत्र विचारों वाले बन्धनों से परे जीवन जीना पसन्द करती हैं। यशपाल के उपन्यासों की स्त्री-पात्र कनक, मिसेज अगरवाल, डॉ. श्यामा (झूठा-सच), मनोरमा (मनुष्य के रूप), शैल (दादा कामरेड) आदि उच्चवर्गीय नारी की भूमिका में हैं।

मिसेज अगरवाल (झूठा-सच) आधुनिकता और फैशन से उच्चवर्गीय नारी की भूमिका का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक संवाद देखिए– ''हेलो!'' मिसेज अगरवाल ने कमरे में प्रवेश किया।

वे शिफान की नयी साड़ी पहने, नया मेकअप किए लग रही थीं, मानों स्टेज पर आयी हों।

''एक्सक्यूज मी''– उन्होंने अंग्रेजी में कहा और फिर हिन्दी में– ''मुझे मालूम ही नहीं हुआ, मैं जरा पीछे मदर से बात कर रही थी।''.[१]

मिसेज अगरवाल जैसी उच्चवर्गीय नारी पात्र आत्मकेन्द्रित होती हैं। इनके लिए दूसरों की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं होता। अपनी सुविधानुसार नौकरों पर अपना गुस्सा उतार देती और उनका अपमान कर देती हैं–

''कहाँ गयी थीं तुम? / मालकिन ने पूछा।''

''साहब क्लब ले गये थे। रावत साहब ने बुलाया था।''

''तुम यहाँ नौकरी करती हो या रंगरेलियाँ करने आयी हो? किससे पूछ कर गई थीं?''

''मैंने साहब से कहा था, आपसे पूछकर जाना चाहिए। पर साहब ने.....।''

''साहब से तुम्हें मतलब? तुम यहाँ नौकरी करने आई हो या सौत बनने? मेरी क्या आँखें

* शोध छात्रा– हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

नहीं हैं? साँप को हजार दूध पिलाओ, वह डसने से थोड़ी ही रहेगा.....।'' मालकिन गरजती जा रही थीं। तारा सिर झुकाये खड़ी थी।''[२]

श्यामा एक उच्चवर्गीय स्त्री पात्र है, जो तैंतीस की आयु में अविवाहित होते हुए भी अपने पसंदीदा पुरुष के साथ रहते हुए कोई बुराई नहीं समझती।

श्यामा की आज की आधुनिक लड़कियों से तुलना किया जाये, तो 'लिव इन' फैशन है। 'लिव इन' आज की लड़कियों को आधुनिकता लगती है। उन्हें यह बुराई नहीं, आधुनिकता का एक नया पहलू लगता है।

श्यामा को डे की बीबी द्वारा ईर्ष्या करना भी उसे गलत लगता है।

''उनका क्या बिगड़ रहा है? वही चुड़ैल बवंडर खड़ा किये रहती है। मैंने उसका छीन क्या लिया है, वही बता दे? उसे ईर्ष्या है, यही जलन है कि उसका पतिजरा खुश क्यों हो जाता है? प्राइड आफ पॉजेशन (स्वामित्व का अहंकार) और क्या? ईर्ष्या के सिवा उस चुड़ैल को काम ही क्या है?''[३]

कनक एक स्वतंत्र व उन्मुक्त विचार में पोषित उच्चवर्गीय लड़की है, जो सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं से लैश होने के बाद भी दिखावे में भरोसा नहीं रखती है। कनक के पिता को अपनी बेटियों पर पूर्ण विश्वास है।

''गिरधारी लाल जी की लड़कियाँ कांता, कनक और कंचन बचपन से स्वतंत्र वातावरण में ही पली-बढ़ी थीं। उन्हें लड़कों के सामने सिमट-सकुचाकर चुप हो जाने का अभ्यास न था। दूसरे घरों में लड़कियों को युवा अध्यापक पढ़ाने आते थे, तो लड़की को भयभीत न होने देने के लिए या चौकसी के लिए किसी बड़ी-बूढ़ी के समीप बैठे रहने का कायदा था। वैसा रिवाज पण्डित जी के यहाँ न था।''[४]

उच्चवर्गीय स्त्री पात्रों में कुछ पात्र ऐसी हैं, जिनके पास सब सुख-सुविधा होने के कारण वे पूर्णत: आलसी हैं और यह आलस उनकी शारीरिक बनावट में साफ झलकता है। 'मनुष्य के रूप' की पात्रा सोमा ऐसी ही स्त्री पात्र है।

''अपने सुघड़पन का अभिमान बढ़ गया था। वह अमीर घरों की मोटरों में घूमने वाली स्त्रियों के कीमती कपड़ों से ढके लद्द-बद्द शरीरों से अपने शरीर की तुलना करती और साहब की बात याद आ जाती– खुशबूदार जरक-बरक कपड़ों में लिपटी कूड़े की गठरियाँ हैं।''[५]

मध्यम वर्ग की स्त्रियों को या समाज को ही अधिक कार्यशील देखा गया है। समाज में अपनी मान-प्रतिष्ठा को बढ़ाने की जद्दोजहद इस समाज में अधिक देखने को मिलती है। ये अपने जीवन में गतिमान और व्यस्त पायी जाती हैं। इनकी भूमिका बुद्धिजीवियों की होती है। मूलत: हमारे आस-पास भी बराबर की परिस्थिति देखने को मिल जाती है। मध्यवर्ग बुद्धिजीवी और कार्यशील होते हैं। यशपाल के लेखन में मध्यम वर्ग के पात्रों को अधिक स्थान मिला है। नारी पात्रों की बात की जाये, तो तारा (झूठा-सच), यशोदा (दादा कामरेड), गीता (पार्टी कामरेड), उषा (मेरी-तेरी उसकी बात) आदि मध्यवर्गीय स्त्रियों की भूमिका में हैं।

तारा 'झूठा-सच' में एक निम्नमध्यम वर्ग की पात्र है। अधिक परेशानियों के बाद भी उसके अन्दर शिक्षा ग्रहण करने की तीव्र लालसा है। वह हर परिस्थिति का सामना करने की हिम्मत रखती है। अपनी मेहनत और काबिलियत को स्थापित कर वह उच्चपद पर आसीन हो जाती है। यशपाल ने 'झूठा-सच' उपन्यास में साधारण-से-साधारण रहन-सहन को दिखाया है–

''तारा का मन चिन्ता में डूब रहा था, परन्तु पुस्तक हाथ में लिए कोठरी में दीवार के साथ चटाई बिछाकर लेटी हुई, पढ़ने का यत्न कर रही थी। प्राय: सभी लड़कियाँ अपने घर में साधारण कपड़े ही पहने रहती हैं। तारा कपड़ों की कमी के कारण घर में ऐसे ही कपड़ों से निर्वाह कर लेती थी, जो बाहर जाते समय पहनने योग्य होते थे। मन खिन्न, सिर और शरीर में हल्का-हल्का दर्द भी होने के कारण उस समय उसकी अवस्था और भी फूहड़-सी लग रही थी। कंघी भी ठीक से नहीं की हुई थी। घरों में कोई मर्द नहीं था, इसीलिए कन्धों पर दुपट्टा भी न था।''[६]

'दादा-कामरेड' की पात्रा यशोदा एक ऐसी मध्यमवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो शादी के बाद अपने घर-संसार के कर्त्तव्यों के प्रति स्वयं को समर्पित कर घर की चारदीवारी में ही अपनी दुनिया समेटे रखती है–

''पढ़ने का उसका अभ्यास विवाह के बाद से प्राय: छूट चुका था। सास कभी उससे भगवद्गीता या कोई दूसरी पुस्तक पढ़ाकर सुनतीं, परन्तु बहुत कम। घर का काम ही कभी समाप्त न होता। आर्यपुत्री पाठशाला से मिडिल पास कर लेने के बाद उसकी पढ़ाई का उपयोग रह गया था– केवल मायके से आये पत्र पढ़ उत्तर लिख देना या कभी कोई उपन्यास प्रेमचन्द या शरत बाबू का मिल जाये, तो पढ़ डालना। पढ़ने के प्रति या अक्षरों के झरोखे की राह विस्तृत संसार से सम्पर्क बनाये रखने के लिए कोई व्यग्रता उसके मन में न थी। मानो वह दिल बहलावे का एक काम है, जिसे फालतू समय मिलने पर कर लेने में कोई हर्ज नहीं। उसका संसार परिमित था– अमरनाथ बाबू के शरीर और उसके घर की व्यवस्था बनाये रखने में। अपने जन्म के बाद से उदय उसकी चिन्ता और विचार का केन्द्र बन गया। हिन्दुस्तानी स्त्री का जीवन इससे परे और है ही क्या?''[७]

यशोदा जैसी स्त्रियाँ परम्परा व संस्कारवश समर्पण को ही अपना सबसे बड़ा धर्म मानती हैं। विवाह के बाद ससुराल की चौखट पर कदम रखते ही लड़की का नया जीवन शुरू हो जाता है और यशोदा जैसी स्त्री इस नए जीवन में दूसरों की इच्छानुसार खुद को परिवर्तित करना ही अपने जीवन का सार समझती हैं। इनकी सोच का केन्द्र घर-परिवार तक ही सीमित होता है। अपनी इच्छा, अपनी रुचियाँ, अपनी चाह– सब भूलकर घर वालों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सेवा में लगे रहने में ही इन्हें सन्तुष्टि अनुभव होती है। शैल जैसी आधुनिक नारी का व्यक्तित्व व सम्पर्क ही उसे झकझोर पाता है और तभी घर के अलावा बाहर की दुनिया में दिलचस्पी लेने की जिज्ञासा उनके मन में उत्पन्न होती है।

'मेरी-तेरी उसकी बात' की स्त्री-चरित्र 'उषा' एक विद्रोही मध्यमवर्गीय नारी है, जो हर गलत बात का डटकर विरोध करती है। वह दृढ़ी, साहसी और आत्मविश्वासी है। ''परम्परा और प्रगति के छाया-प्रकाश में उगी ऊषा यशपाल की अनूठी सृष्टि है। वह नारी के बन्धन और मुक्ति की दारुण व्यथा-कथा है। समाज, धर्म और परम्पराओं से परे उसमें शुद्ध मानवीय स्तर का राष्ट्रीय नारी-व्यक्तित्व है। उसमें विप्लवकारिणी युवा आग की ध्वंसोन्मुखता है, तो सृजनशील नारी का अपार वात्सल्य और करुण जल भी है। राष्ट्र को देखते वह क्रान्तिकारिणी है, समाज के लिए विद्रोही, सहयोगियों के लिए प्रेरकशक्ति, पति के लिए पत्नी और पुत्र के लिए शुद्ध ममतामयी है। बावजूद एक एंग्लो-इण्डियन बुद्धिजीवी परिवार में जन्म लेने और पालित होने के कारण आई आधुनिता के 'उषा को उन समस्त विडम्बनाओं से गुजरते हुए अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को निखार देना पड़ा, जो सामान्य नारी के सन्दर्भ में 'पति' और 'विवाह' नामक सड़ी

संस्थाओं के इर्द-गिर्द हमारे भारतीय समाज में उभरती है।''[८]

यशपाल की मध्यमवर्गीय नारी पात्र संघर्षशील, साहसी व प्रगतिशील नारी के रूप में प्रकट होती हैं, जो स्वयं सामाजिक रूढ़ियों से ऊपर उठने व अपनी अस्मिता को पहचानने का प्रयत्न कर रही हैं।

निम्न वर्ग की स्थिति अत्यधिक कारुणिक व दयनीय होती है, चाहे वह पृथ्वी के किसी भी कोने का निम्न वर्ग हो। अभाव और हीनता से ग्रस्त उनके जीवन में अनेक कठिनाइयों की महामारी फैली हुई है। इस परिस्थिति में एक स्त्री-जीवन कैसे प्रभावति होता है और एक नारी दुर्गम परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को किस प्रकार परिवर्तित करती है या कई बार मर्यादित सीमाओं का भी उल्लंघन कर बैठती है, इसका चित्रण यशपाल ने अपने उपन्यासों में बखूबी किया है।

'मनुष्य के रूप' की सोमा एक ऐसी पात्र है, जो निम्न वर्ग के गरीब परिवार की लड़की है। सोमा के पिता कर्ज छुड़ाने के लिए उसे बेंचने पर मजबूर हो जाते हैं। सोमा शादी के बाद महीने भर में ही विधवा हो जाती है। पति की मृत्यु के पश्चात् उसे अनेक कष्टों और यातनाओं का सामना करना पड़ता है। कई पड़ाव के बाद, परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के साथ, सोमा के कई रूप उभर कर सामने आते दिखाई देते हैं और अन्त में; इन परिस्थितियों से लड़ते हुए, लम्बे संघर्ष के बाद, वह (सोमा) एक प्रसिद्ध अभिनेत्री के रूप में अपनी नई दुनिया बसाती है। वह अपने अतीत को भूल आगे बढ़ जाती है।

'झूठा-सच' की सीता निम्नवर्गीय स्त्री पात्र है, जिसका चरित्र-पक्ष लचीला दिखाया गया है। आर्थिक अभावों के कारण वह अपने जीवन में आजादी और सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए गलत मार्ग चुन लेती है और उसका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है। तारा उसे समझाने का प्रयास करती है, लेकिन सीता पर कोई असर नहीं होता। वह नाम की सीता रह जाती है।

तारा गम्भीर हो गयी– ''सीता! यह ढंग ठीक नहीं है। यह तूने क्या शुरू किया है? तुझे कुछ लिहाज-शरम नहीं रहती?''

''क्या किया है मैंने? क्या जरा हँसें-खेलें भी नहीं?''

''यह हँसना-खेलना है?'' तारा ने अधिकार से डाँटा।

''लोगों से प्रेजेण्ट लेना, उनके पैसे पर मौज उड़ाना हँसी-खेल है?''

''तुम्हें क्या?'' सीता अकड़ गयी, ''मैं हँसती-खेलती हूँ, तुम्हें जलन होती है। तुझसे क्या माँगती हूँ।''[९]

सीता की यह अकड़न उसे मँहगी पड़ जाती है और वह बिन ब्याही गर्भवती हो जाती है। अपनी गलती का अहसास होने पर वह तारा के सामने खूब गिड़गिड़ाती है और अबार्शन के लिए तारा से कहती है। इस समय सीता एक लाचार और बेबस स्त्री बन जाती है।

यशपाल के उपन्यासों में निम्नवर्गीय स्त्रियों को कई-कई प्रकार की परिस्थितियों से निपटते दिखाया गया है और कई बार समझौतों से ही काम बनाना पड़ा है। कई बार उन्हें घोर विवशताओं से घिरे लाचार देखा जा सकता है।

यशपाल के उपन्यासों की स्त्रियाँ स्वाधीनता-आन्दोलन में भी अपनी भूमिका निभाती नजर आती हैं। 'पार्टी कामरेड' की पात्र गीता कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बन्ध रखती है और पार्टी के लिए प्रचार कर अखबार भी बेचती है। गीता पूरी निष्ठा के साथ अपनी पार्टी की सेवा करती है।

'मेरी-तेरी उसकी बात' की पात्र उषा अपनी प्रभावशाली छवि, वक्तव्यों और भाषणों से अपार जन-समूह को प्रभावित करती है।

यह बात हजारों बार हमने लिखी और पढ़ी हैं, लेकिन इस पृथ्वी पर जब तक मनुष्य का अस्तित्व रहेगा, तब तक कोई इस बात को झुठला नहीं सकता है कि स्त्री के कई रूप होते हैं। एक ही स्त्री कितनी सारी भूमिका अपने जीवन में एक साथ निभाती है। बेटी, बहन, पत्नी, बहू, माँ, प्रेमिका आदि। यशपाल के उपन्यासों में स्त्री के इन सभी रूपों को हमें पढ़ने को मिलता है।

'दिव्या' उपन्यास की पात्र की जीवन-गाथा एक नारी-जीवन का कटु यथार्थ है, जिसे पाठक समझता है। ''दिव्या का चरित्र व्यवस्था के समूचे घिनौनेपन को उद्‌घाटित करता हैं। बड़े ही प्रभावशाली तथा तर्कपूर्ण ढंग से यशपाल ने व्यवस्था के वास्तविक रूप को दर्शाया है। इस तथ्य पर प्रकाश डालना कितना कठिन है कि नारी की मुक्ति आत्मनिर्भरता में नहीं, वरन् व्यवस्था को बदलने में है।''[१०] वर्ण-भेद न होता, तो दिव्या को नारकीय जीवन न भोगना पड़ता। वह अपने प्रेमी पृथुसेन से विवाह करके सुखमय जीवन का भोग कर सकती थी। लेकिन वर्ण-व्यवस्था के नियमों के बन्धन ने दोनों के जीवन में कटु परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। सुन्दर व प्रतिभावान दिव्या को यह व्यवस्था दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर देती हैं।

यशपाल के उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यशपाल एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था में विश्वास रखते हैं, जहाँ समाज के सभी नागरिकों को समानाधिकार प्राप्त हो। नारी और पुरुष के अधिकारों में किसी प्रकार का विभाजन न किया जाए। यशपाल अपने विभिन्न पात्रों के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का चित्रण करते हुए मानव-मन की परतों को खोलना चाहते हैं। व्यवस्था कैसी भी हो, लेकिन उसकी विसंगतियों का शिकार नारी को ही होना पड़ता है। हम आज तक इस बात पर कभी भी अमल कर सकते हैं कि सारी यंत्रणा स्त्री को ही भोगनी है। यशपाल जैसे लेखक इन विषमताओं से स्वयं को अछूता न रख सके और हमारे सामने अनेक पात्रों का जीवन-चरित्र अपने उपन्यासों के माध्यम से खोल कर रख दिया।

सन्दर्भ-सूची

१. यशपाल– झूठा-सच (देश का भविष्य-२), पृ. १५७
२. यशपाल– झूठा-सच (देश का भविष्य-२), पृ. २३९
३. यशपाल– झूठा-सच (देश का भविष्य-२), पृ. ३७१
४. यशपाल– झूठा-सच (वतन और देश-१), पृ. २८
५. यशपाल– मनुष्य के रूप, पृ. १२४
६. यशपाल– झूठा-सच (वतन और देश-१), पृ. १२९-१३
७. यशपाल– दादा-कामरेड, पृ. १४
८. विवेकी राय– यशपाल की 'मेरी-तेरी उसकी बात' (आलेख), सं. कुँवरपाल सिंह, यशपाल : पुनर्मूल्यांकन, पृ. १११
९. यशपाल– झूठा-सच (देश का भविष्य-२), पृ. २५८
१०. प्रकाशचन्द्र मिश्र– यशपाल का कथा-साहित्य, पृ. ६७
११. शिवकुमार मिश्र– यशपाल और यथार्थवाद (आलेख) सं. मधुरेश, क्रान्तिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. २८१

●

प्रवासी कथाकार

डॉ. पुष्पा सक्सेना की कहानियों में नारी और राष्ट्रीय गरिमा

डॉ. अशोक कुमार ज्योति*

प्रस्तावना– भूगोल और हिन्दी विषयों में एम.ए. तथा 'डॉ हरिवंश राय बच्चन का गद्य-साहित्य' विषय पर पीएच्.डी. उपाधि प्राप्त डॉ. पुष्पा सक्सेना उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रवासी भारतीय हिन्दी भूषण सम्मान, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, ऑथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया का पुरस्कार, पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार तथा राष्ट्रीय महिला आयोग एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक सम्मानित पुरस्कारों से अलंकृत हैं। इलाहाबाद में जन्मीं और विगत ढाई दशक से भी अधिक अवधि से अमेरिका में निवास कर रहीं डॉ. पुष्पा सक्सेना की तैंतीस पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें उपन्यास, कहानी-पुस्तक, रेडियो नाटक, समीक्षा-ग्रन्थ इत्यादि हैं। उनकी दो सौ नब्बे से अधिक कहानियाँ, यात्रा-वृत्तांत, समीक्षाएँ, परिचर्चाएँ इत्यादि भारत तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनकी हिन्दी-कहानियाँ अनेक भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त रूसी, अंग्रेजी तथा चीनी भाषाओं में अनूदित की गई हैं। भारतीय मूल की एक प्रवासी कथाकार के लिए यह बहुत ही गौरव और हर्ष का विषय है कि उनकी पुस्तक मॉस्को विश्वविद्यालय तथा कहानियाँ यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन, अमेरिका के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित की गई हैं।

पुष्पा जी नारी-चेतना, नारी-सशक्तीकरण और नारी-आन्दोलन से प्रभावित हैं। उनकी कहानियों की केन्द्रबिन्दु नारी होती हैं। भारतीय नारी की गरिमा उनकी प्रत्येक कहानी के मूल में निहित है। विदेश जाकर भी उनकी नारी पात्र भारतीय संस्कृति की गरिमा बनाए रखती हैं। इतना ही नहीं, अपने प्रवास की कहानियों में भी वह अमेरिकी स्त्रियों को भारतीय स्त्री पात्रों का अनुकरण करते हुए देखती हैं। उनकी वर्जिन मीरा जैसी नारी पात्र पाठकों को मुग्ध करती हैं।

नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित डॉ. पुष्पा सक्सेना की प्रवासी कहानियों के संकलन 'पुष्पा सक्सेना : संकलित कहानियाँ' की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में हम उनकी कहानियों में निहित नारी और राष्ट्रीय गरिमा का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इस संकलन में कुल २० कहानियाँ संकलित हैं, जो प्रवासी कथानक पर आधारित हैं। इस संकलन के विषय में प्रेमचन्द-विशेषज्ञ और वरिष्ठ समालोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कहा है– ''हिन्दी में जो प्रवासी साहित्य है, यह कहानी-संग्रह उसे समृद्ध करेगा और अपनी विशिष्ट प्रवासी सम्वेदना, जीवन-दृष्टि तथा सरोकारों के कारण विशिष्ट बना रहेगा।''[१]

नारी और राष्ट्रीय गरिमा– लेखिका स्वीकार करती हैं, भारत उनकी मातृभूमि रही है और अमेरिका परदेश है। प्रवास में रहते हुए भी अपने पूर्व परिवेश और परिजनों की यादें उनकी कहानियों में साकार हुई हैं। पुष्पा जी की एक प्रसिद्ध कहानी 'क्षति-पूर्ति' इस सत्य का उदाहरण है। अमेरिका में रहते हुए उन्होंने वहाँ रहने वाले भारतीयों के अनुभवों को साक्षात् देखा है, इसलिए उनकी कहानियों में भारतीय पात्रों, उनके जीवन-प्रसंगों, तनावों तथा सरोकारों को स्पष्ट देखा जा सकता है। उनके यही अनुभव कहानियों के विषय बने हैं। भारत की युवा पीढ़ी को अमेरिका की सुख-सुविधाएँ और समृद्धि स्वर्ग-सदृश लगती है, पर क्या उस पार की हरियाली सत्य सिद्ध होती

* सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

है? यह कहानी-संकलन इस मृगतृष्णा की सत्यता को उद्घाटित करता है।

वीजा पाने के लिए कई भारतीय युवक अमेरिकी लड़कियों से विवाह कर लेते हैं और इस सत्य को छिपाकर बाद में भारतीय लड़की से धोखा करके विवाह करते हैं। कुछ भारतीय युवक अमेरिकी लड़कियों के मोहजाल के वशीभूत उनके साथ विवाह कर लेते हैं और परिवारवालों के दबाव में पुन: भारतीय लड़की के साथ विवाह कर उसे अमेरिका साथ तो ले जाते हैं, पर उनके इस सत्य को भारतीय नारी का स्वाभिमान और संस्कार स्वीकार नहीं कर पाता।

पुष्पा सक्सेना की कहानियों में पत्नियाँ अधिक शक्तिशाली पात्र हैं। वे पति से धोखा खाकर भी जीवन-संघर्ष करती हैं और अपने भारतीय जीवन-मूल्यों से जीवन जीती हैं। इन कहानियों में भारतीय जीवनशैली तथा अमेरिकी जीवनशैली और मूल्यों की टकराहट है। इसके बीच पात्र अपनी राह बनाते हैं और उनके भीतर भारतीय राष्ट्रीय गरिमा सुरक्षित-संरक्षित होती है।

'दूरियों का साथ' कहानी में नायिका सुमिता का विवाह अमेरिका में सी.ए. अर्पित के साथ होता है। अपने परिवार और अपने घनिष्ठ मित्र सुधीर से दूर अर्पित के साथ सुमिता खुश थी। अचानक एक फोन ने सुमिता का जीवन बदल दिया। अर्पित के नाम आए फोन से सुमिता को ज्ञात होता है, अर्पित का एक दो साल का बेटा कैलीफोर्निया के एक ऑरफनेज में रह रहा है। सुमिता स्तब्ध रह गई। यह धोखा वह सह नहीं पाती। परिवारवालों को अपने और अर्पित के तलाक की संक्षिप्त सूचना देकर वह मौन रही। रहस्य का उद्घाटन उसकी बहन प्रतिमा के अमेरिका आगमन से होता है। अर्पित के धोखे के लिए सुमिता उसे क्षमा नहीं कर सकी और अर्पित की लाख सफाई देने के बावजूद कि वीजा पाने के लिए उसने एक अमेरिकन युवती से विवाह किया था, उसका बेटा एक रात की भूल का परिणाम था, उसकी अमेरिकी पत्नी जा चुकी है– पर सुमिता उससे अलग हो जाती है। सुमिता अपने भारतीय आदर्श और संस्कार नहीं भूलती। वह अर्पित से अलग होकर भी उसके बेटे को उसका अधिकार दिलाती है। अपनी गरिमा बनाए रखकर अर्पित के बेटे की बीमारी में एक माँ की तरह उसकी देख-रेख करती है। उसके जन्मदिन में जाने की बात पर प्रतिमा विस्मित होती है। वह सुमिता से पूछती है– ''ये कैसा रिश्ता बाँधे बैठी है, सुमी? कोर्ट जाकर उस अर्पित से मेण्टेनेंस तो ले लेती। उसे मजा तो चखाती!'' सुमिता ने उत्तर दिया– ''किसे मजा चखाती, दीदी? अपमान की जिस आग में वह जल रहा है, वही दण्ड क्या कम है! रिश्ता तो हम दोनों के बीच बस दूरियों का है, साथ चलते हुए कभी न मिलने के लिए... ...''[२]

'वर्जिन मीरा' एक अमेरिकी युवती वर्जीनिया की एक भारतीय युवक रवि के साथ सच्चे प्रेम की कहानी है। वर्जीनिया भारतीय दर्शन का अध्ययन कर रही थी। रवि के रूप में उसे एक मित्र और गुरु मिलता है। अपनी मीठी वाणी में राम और सीता, कृष्ण और राधा की कहानियाँ सुनाते रवि में वर्जीनिया अपना कृष्ण और स्वयं को मीरा मान लेती है। वह रवि से सच्चा प्रेम करती है। रवि के साथ भारतीय जीवन-दर्शन, धर्म और संस्कृति की बातें सुनती वर्जीनिया पूरी तरह से भारतीय नारी को आत्मसात् करती है। वह विवाह को पवित्र बंधन मानती है। एक पार्टी में नशे में रवि उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाना चाहता है। वह कहता है– ''शारीरिक मिलन हमारे प्यार को दृढ़ करेगा, इस मिलन के बिना प्रेम अपूर्ण है।''[३] रवि जिद कर रहा था, पर वर्जीनिया अपने आत्मसात् किए भारतीय संस्कार नहीं भूलती और रवि को रोकती है। वह रवि के कथन का विरोध करती है– ''यह प्यार नहीं है, रवि! यह पाप है और मैं तुम्हें यह भूल नहीं करने दूँगी। मीरा ने क्या अपने कृष्ण से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किए थे?''[४]

कहानी के अंत में रवि का धोखा स्पष्ट होता है, जब वह भारत में एक धनी व्यक्ति की

बेटी से विवाह करता है। जिस समय वह सेहरा बाँध विवाह को चला था, उसी दिन उसके पिता की झूठी अस्वस्थता के लिए वर्जीनिया ने पूरे दिन उपवास रखकर उनके स्वास्थ्य के लिए पूजा की थी। क्या वर्जीनिया के अंतस में भारतीय नारी का अस्तित्व समाहित नहीं हो गया था?

'क्षति-पूर्ति' कहानी में मॉरीशस में समस्त सुख-सुविधाओं के बीच भी नीता की माँ अपने भारतीय परिवेश और सम्बन्धों को नहीं भूल पाती। भारतीय स्नेह के सम्बन्ध, जहाँ पड़ोसी भी अपने सगे-सम्बन्धियों जैसा प्यार देते हैं, प्रत्येक पर्व और समारोह में सबका साथ रहता है, त्याग, प्रेम और क्षमा सबके लिए होती है, वहीं उनकी बेटियों को इसका आभास भी नहीं है। माँ की इच्छा पूरी करने के लिए नीता भारत में भारतीय युवक से विवाह करने को तैयार होती है। विवाह के समय माँ के परिवारवालों का नि:स्वार्थ सच्चा प्यार नीता को भारतीय संस्कारों से परिचित कराता है। उसकी समझ में आ जाता है, उसकी माँ ने क्या खोया है। पति के मॉरीशस में नौकरी करने के निश्चय को वह अस्वीकार करके भारत में रहने का निर्णय लेती है और कहती है– ''मैं अकेली ही भारत जाऊँगी, राजेश! क्योंकि मैं वो सब पा लेना चाहती हूँ, जो माँ ने यहाँ (मॉरीशस) आकर खोया है। मुझे उनकी 'क्षति-पूर्ति' करनी है, राजेश!''[५]

'ताले' कहानी की सुन्दर-सौम्य केवल बारहवीं पास नायिका इंदु भारतीय स्त्री की चारित्रिक दृढ़ता और स्वाभिमान की प्रतीक है। उसका पति सुरेश अमेरिका में एम.एस. की पढ़ाई के लिए जब जाने वाला होता है, तो उसकी माँ उसे विवाह के बाद ही अमेरिका जाने की शर्त रख देती है। विवाह के बाद सुरेश फिर आने की बात कहकर इंदु को अपने साथ नहीं ले जाता। इंदु के मुख पर कोई शिकायत नहीं आती और पूरे मन से घर के सारे दायित्व पूर्ण करती है। कुछ समय बाद, माँ के जोर देने पर जब सुरेश इंदु को अमेरिका ले जाता है, तब वहाँ इंदु को सुरेश का धोखा ज्ञात होता है। सुरेश पहले ही अमेरिकी लड़की लिलियन से विवाह कर चुका था। इंदु का स्वाभिमान उसे पति के साथ रहने नहीं देता, पर पति और अपनी गरिमा बनाए रखने के लिए वह पति से अलग रहकर वह संगीत की सहायता से अपनी आजीविका चलाती है। सुरेश की आकस्मिक मृत्यु के बाद इंदु को उसकी सम्पत्ति का अधिकार दिया जाता है, पर वह अस्वीकार कर देती है, और कहती है– ''जीते जी जिसने कोई अधिकार नहीं दिया, उसे मृत्यु के बाद धोखा नहीं दे सकती। झूठा दावा करने की इच्छा नहीं, उनका सबकुछ लिलियन और उनकी बेटी का है।''[६]

इंदु अपने उदार हृदय और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्तित्व का परिचय देती है– ''मैं अपना मुकदमा पहले ही हार चुकी, दुबारा केस लड़ने की कोई इच्छा नहीं।''[७]

इतना ही नहीं, अमेरिका में एक भारतीय युवक संजीव उसके साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है, पर भारतीय संस्कारों से अलंकृत इंदु उसे स्वीकार नहीं करती। भारत में भी वह पति की चारित्रिक दुर्बलता किसी पर प्रकट नहीं करती, वरन् उसके चित्र की पूजा करती है। अमेरिका जाकर भी वह परम्परागत भारतीय स्त्री ही बनी रहती है। परिवार एवं नारी की मर्यादा को वह तालों में बंद रखती है। इन तालों को तोड़कर उसकी सास संजीव के साथ उसका विवाह कराती है।

'पीले गुलाबों के साथ एक रात' जेम्स और लिली की एक रोचक प्रेम-कहानी है। दोनों के प्यार के बीच पीले गुलाब खिलते हैं। लिली अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. कर रही भावुक युवती है। जेम्स एक महत्त्वाकांक्षी व्यावहारिक युवा डॉक्टर है। वह भी लिली को बहुत प्यार करता है। जेम्स को मेडिसिन में एम.एस. करने के लिए जब अमेरिका की स्कॉलरशिप मिलती है, तो उसके सपने आकाश छूने लगते हैं। लिली के साथ सगाई के बाद वह अमेरिका चला जाता है। लिली

से प्रेम करने के बावजूद वह अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए विभागाध्यक्ष की बेटी कैथरीना से विवाह करके एक नन्हें बेटे के साथ भारत वापस आता है। लिली जेम्स के इस धोखे के आघात को शान्ति से सहती है और उसके अनुरोध पर भी वह उससे नहीं मिलती। जेम्स से कभी ना मिलने के निर्णय के साथ दूसरे शहर में जाकर वह नौकरी कर लेती है। लिली भारतीय नारी है, जो सच्चे एकाकी प्रेम में विश्वास करती है और किसी अन्य युवक के साथ विवाह ना करने का निर्णय लेती है। लिली का जेम्स से कभी ना मिलने का निश्चय उस समय टूट जाता है, जब उसे ज्ञात होता है कि मृत्यु के बाद जेम्स ने अपने अन्तिम संस्कार के लिए वही चाहा है, जो कभी लिली ने चाहा था। वह जेम्स के फेवरिट पीले गुलाबों के साथ उसकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करने उसके अन्तिम संस्कार के लिए जाती है। यह एक भारतीय नारी का प्रेम है, जो प्रेमी से धोखा खाकर भी उससे प्रेम करना नहीं छोड़ पाती, बल्कि अपने पति जेम्स के प्रेम में विश्वास रखती है। वह अपनी सहयात्री से कहती है– ''यू नो, उसने मेरी भावनाओं की कद्र की, वह अन्दर से हमेशा मुझे चाहता रहा, वरना क्या बरीयल की जगह मेरी इच्छा के अनुसार हिन्दू रीति से अन्तिम संस्कार माँगता? गॉड ब्लेस हिज सोल!''[८]

'तूफान' भारतीय माता-पिता की अमेरिकी नागरिक बेटी जेनिफर तथा अमेरिका में नौकरी करने वाले भारतीय युवक सुधीर की कहानी है। ये दोनों अथाबासका ग्लेशियर देखने जाते समय संयोग से सहयात्री हैं। परिचय से दोनों के बीच कुछ निकटता आती है। जल्दबाजी में ग्लेशियर तक ले जाने वाली बस पकड़ने के प्रयास में सुधीर अपनी जैकेट उसी रेस्तराँ में छोड़ जाता है। रेस्तराँ में वापस लौटने पर सुधीर को उसकी जैकेट नहीं मिल पाती है। अचानक बिजली चली जाने से रात में ठण्ड बढ़ जाती है। कहीं जगह न मिलने पर दोनों रेस्तराँ के एक कोने में सोने का प्रयास करते हैं। जेनिफर को अमेरिका की ठण्ड सहने का अभ्यास है, पर सुधीर अभी भारत से आया है, अत: उसे इतनी ठण्ड सहने का अभ्यास नहीं है। सुधीर को काँपते देख जेनिफर उसे अपनी जैकेट देती है। अचानक तूफान बढ़ने पर सुधीर की सहायता के लिए उसे अपने से सटा लेती है। सुधीर जेनिफर को भींचकर उसका चुम्बन लेता है, तो वह बिफरकर कहती है– ''तुमने सोचा होगा, अमेरिका में पली-बढ़ी जेनिफर को सेक्स से कोई परहेज नहीं होगा। एक बात अच्छी तरह से समझ लो। मैं इस देश की हवा-पानी में पली-बढ़ी जरूर हूँ, पर मेरे अन्दर एक विशुद्ध हिन्दुस्तानी लड़की साँस लेती है। मेरी माँ ने हमेशा सही-गलत की शिक्षा दी है। शादी के पहले सेक्स का अनुभव गलत बात है, शायद हिन्दुस्तान में तुम्हें यह बात नहीं बताई गई।''[९]

लेखिका, इस प्रकार से, भारतीय जीवन-मूल्यों की रक्षा करती हैं। सुधीर लज्जित है। जेनिफर को बताना चाहता है– यह उस तूफान का परिणाम था, जो उससे गलती हो गई, पर जेनिफर उसके लिए अपनी जैकेट छोड़कर जा चुकी है।

'लेखिका' में अमेरिकी पत्रकार लिण्डा की दो भारतीय महिलाओं– नंदिता रे तथा सुप्रिया जादवानी के साथ वार्ता की कहानी है। कहानी का मूलाधार अमेरिकी-भारतीय स्त्रियों की तुलनात्मक स्थिति का विवेचन है। लिण्डा का प्रश्न है कि भारत में एक स्त्री अपना पूरा जीवन एक पति के साथ कैसे बिता देती है और क्या उसे चेंज की जरूरत नहीं होती? हिन्दी लेखिका सुप्रिया उत्तर में कहती है– ''भारतीय समाज आज भी भारतीय नारी की सहिष्णुता और त्याग पर स्थिर है, वरना यहाँ भी रोज तलाक होते रहते।''[१०]

'फाँस' कहानी में फिर पत्नी को धोखा देकर अतुल अँग्रेज युवती रोजलीना के साथ शादी करता है। पत्नी नीलम जब लंदन पहुँचती है, तब उसे पति द्वारा दिए गए धोखे का ज्ञान होता

है। नीलम जब अतुल की माँ की बीमारी के कारण भारत में रहकर उनकी सेवा कर रही थी, अतुल अकेलेपन का बहाना बताकर अमेरिकी युवती रोजलीना के साथ पति की तरह रह रहा था। पति के अहं पर चोट करने के लिए नीलम दूसरे पुरुष के साथ अपने सम्बन्धों की झूठी कहानी अतुल को बताती है। वह अतुल को टेम्स नदी के तट पर ले जाती है और अपने सुहाग के चिह्न बिछुए, सिंदूर, मंगलसूत्र इत्यादि टेम्स में बहा देती है। इस तरह से पति को मुक्त कर देती है और स्वयं अपना नया जीवन जीती है। काजल के प्रश्न पर कि पति को अपने झूठे सम्बन्ध बताकर नीलम को क्या मिला, क्यों उसने अपने चरित्र को दाँव पर लगा दिया? तुम्हारे देवीत्व की तो वह पूजा करते थे। नीलम का उत्तर है– ''क्या करती देवी बनकर? झूठे देवीत्व की अपेक्षा मैं भी किसी की आकांक्षा बन सकती हूँ, क्या यह अधिक सम्मानजनक नहीं?

''पुरुष के अहं को जानती है न काजल? पत्नी उसे परमेश्वर मान पूजती रहे, यह उसका प्राप्य है। पर अगर पत्नी उसे छोड़ अन्य का वरण कर ले, तो नहीं सह पाएगा उसका अहं। वही मैंने चाहा। अतुल अपनी इस पराजय को कभी नहीं भुला सकेंगे, हमेशा फाँस-सी गड़ती रहेगी मन में।''[११]

इस 'फाँस' कहानी की नायिका नीलम एक न्यायप्रिय तेजस्विनी भारतीय नारी है। वह दृढ़ चरित्र वाली स्त्री है, जो पति को उसकी भूल दिखाने के निमित्त एक नया रास्ता चुनती है।

'फाल के बाद' तथा 'यादों के नाम' ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें भारत तथा अमेरिका– दोनों देशों की पत्नियों का अंतर स्पष्ट होता है। इन दोनों कहानियों की अमेरिकी पत्नियाँ अपने पतियों को सम्मान न देकर दूसरे पुरुषों के साथ मौज-मस्ती करती हैं। 'फाल के बाद' कहानी में भारतीय पति की अमेरिकी पत्नी जूलियन कहती है– ''मुझे अपनी जिंदगी अपनी तरह से जीने की पूरी आजादी है। अच्छी तरह सुन लो, मैं तुम्हारी इण्डियन वाइफ की तरह गुलामी नहीं सहूँगी।''[१२]

'यादों का चेरी ब्लॉसम' कहानी में भारतीय पिता और अमेरिकी माँ की सन्तान चेरी कथा का केन्द्र है। उसका पिता चेरी को छल से भारत ले आता है और अपनी अमेरिकी पत्नी को बिना बताए वहीं छोड़ आता है। भारत में अपनी पूर्व प्रेमिका से विवाह करता है। संयोगवश चेरी उसी यूनिवर्सिटी में पढ़ने अमेरिका जाती है, जहाँ उसकी माँ प्रोफेसर थी। अमेरिका में मृत माँ की मित्र से उसे अपनी माँ की सच्चाई और चेरी के लिए अटूट प्यार तथा पिता का छल ज्ञात होता है। उसकी माँ ने जो घर अमेरिका में चेरी के नाम छोड़ा था, चेरी माँ की यादों को जीने के लिए उसी में रहने का निर्णय लेती है। लेखिका ने कहानी के अंत में इस क्षण को बहुत सुन्दर रूप में लिखा है– ''एक सूना उदास घर मानो किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। बंद दरवाजे खुलने को तैयार थे। घर की उदासी को झुठलाता, एक चेरी ब्लॉसम का पेड़ पूर्ण दर्प के साथ गुलाबी फूलों के साथ मुस्कुराता-सा लग रहा था, मानो प्रतीक्षा पूर्ण हो गई हो।''[१३]

यह कहानी भारतीय पुरुष के छल-कपट तथा स्वार्थपरकता तथा उसकी अमेरिकी पत्नी और उसकी बेटी चेरी की चारित्रिक एवं नैतिक उच्चता को चित्रित करती है। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि लेखिका अमेरिकी स्त्रियों के चरित्र को भी उदार दृष्टि से देखती हुई उनके साथ न्याय करती है।

'अनुबंध' अरमिंदर और तनवीर की कहानी है। यह कहानी अमेरिका में स्थायी वीजा के लिए होने वाली नकली शादियों पर आधारित है। अरमिंदर लड़कियों को वीजा दिलाने के लिए पैसे लेकर उनके साथ झूठा विवाह करता है। वह एक शराबी और स्वार्थी इंसान के रूप में जाना जाता है। वीजा मिल जाने के बाद उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। तनवीर के पति के मित्र उसकी सहायता के लिए उसका विवाह अरमिंदर के साथ करा देते हैं। तनवीर की सच्चाई,

उसका भोलापन तथा अरमिंदर के प्रति सेवा और कर्त्तव्यपालन जैसी भारतीय नारी के सद्‌गुणों के वशीभूत अरमिंदर का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह तनवीर को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करके एक अच्छा इंसान बन जाता है। विवाह के समय का कुछ महीनों का अनुबंध अब स्थायी अनुबंध बन जाता है। भारत-वापसी के लिए एअरपोर्ट पर पहुँची तनवीर से अरमिंदर कहता है– ''वापस चल तन्नी! तू कहीं नहीं जाएगी, क्योंकि पिछले चंद घण्टों में जान गया हूँ, मैं तेरे बिना नहीं रह सकता। मेरे कहे-सुने को माफ कर दे, तन्नो! चल, तेरा घर तेरा इंतजार कर रहा है।''[१४]

निष्कर्ष– डॉ. पुष्पा सक्सेना की कहानियाँ भारत के एक ऐसे शिक्षित समाज की कहानियाँ हैं, जो उच्च शिक्षा, बेहतर कैरियर और बेहतर जीवन के लिए विदेश जाते हैं। अमेरिका तो उन्हें स्वर्ग ही लगता है, पर अमेरिका पहुँचने पर अमेरिकी और भारतीय जीवन-शैली का अंतर सामने आता है। कुछ व्यक्ति अमेरिकी चकाचौंध से मोहाविष्ट भारतीय जीवन-मूल्य भुला देते हैं। ऐसे भारतीय भले ही पथ-विचलित हो सकते हैं, पर भारतीय नारियाँ अमेरिका या विदेश जाकर भी अपने भारतीय संस्कारों और जीवन-मूल्यों के साथ विषम परिस्थितियों में भी संघर्ष करके साहस के साथ स्वाभिमानी जीवन जीती हैं और प्रत्येक स्थिति में अपनी और अपने परिवार की गरिमा बनाए रखती हैं।

संकलन की अत्यन्त रोचक एवं पठनीय कहानियाँ पाठकों को अंत तक पढ़ने को विवश करती हैं। कहानियों में पात्रों के साथ आत्मसात् करने की पूर्ण क्षमता है। पुष्पा सक्सेना की भाषा में सम्प्रेषण की अद्‌भुत क्षमता है। सहज-स्वाभाविक भाषा में लिखी गई कहानियाँ पाठकों के मन को छूती हैं। पात्रों के अनुरूप हिन्दी, अँग्रेजी और अरबी-फारसी के शब्दों से कहानी के वाक्य-गठन में सरलता आई है। इन कहानियों की भाषा में विदेशी परिवेश की झलक स्पष्ट परिलक्षित होती है। कथ्य-शैली का कौशल्य ऐसा है कि पाठकों के सामने पात्र सजीव हो उठते हैं। उनकी शैली प्रवाहमयी है, जिसके साथ पाठक बहता चला जाता है।

सन्दर्भ-सूची

१. पुष्पा सक्सेना– संकलित कहानियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण-सन् २०१४, भूमिका
२. पुष्पा सक्सेना– संकलित कहानियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण-सन् २०१४, पृष्ठ-११ और १२
३. वही, पृष्ठ-१९
४. वही, पृष्ठ-१९
५. वही, पृष्ठ-२९
६. वही, पृष्ठ-५७
७. वही, पृष्ठ-५७
८. वही, पृष्ठ-४९
९. वही, पृष्ठ-१२१
१०. वही, पृष्ठ-१४५
११. वही, पृष्ठ-१६३
१२. वही, पृष्ठ-१८४
१३. वही, पृष्ठ-८०
१४. वही, पृष्ठ-९४

●

हिन्दी साहित्य में
दलित महिला आत्मकथा का विवेचन

नीलू सिंह*, डॉ. सेंथिल कुमार**

आत्मकथा-विधा में व्यवस्थित लेखन का सिलसिला आधुनिक काल में शुरू होता है। आत्मकथा का सम्बन्ध आधुनिकता के मूल्यों से है। उसको तर्क-आधारित समाज में व्यक्ति का महत्त्व बढ़ता जाता है। उसकी अभिव्यक्ति की परिस्थितियाँ निर्मित होती जाती हैं। औपनिवेशिक समाज में अपनी गुलामी की गाथा के केन्द्र में 'व्यक्ति की मुक्ति' की गाथा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। पराधीन भारत में अंग्रेजी शिक्षा, सहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार की बदौलत कुछ नये जीवन-मूल्य अस्तित्व में आये। एक नयी वैज्ञानिक चेतना के प्रति आत्मीयता बढ़ी। आत्मकथा-लेखन के लिए अनिवार्य कुछ सांस्कृतिक परिस्थितियाँ निर्मित हुईं। इतिहास को स्वायत्तता और विशिष्ट अनुशासन के रूप में मान्यता मिली। पाश्चात्य संस्कृति से घात-संघात की व्यापक प्रक्रिया में पड़कर भारतीय जनों को लगा कि उनके समक्ष पहचान का संकट खड़ा हो गया है। इस अप्रत्याशित रूप से बदल गये समय-सन्दर्भों की कसौटी पर रखकर 'आत्म' को विश्लेषित करने की, उसे ठीक से समझने और उसकी दिशाएँ तय करने की जरूरत आन पड़ी।

हिन्दी की दलित आत्मकथाएँ दलित समाज का सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास हैं। इनका लेखन इतिहास-लेखन ही कहा जायेगा। उत्तर भारत में सामाजिक सुधार-आन्दोलनों की परम्परा उतनी सशक्त नहीं है, जितनी महाराष्ट्र की। अत: समाज का परम्परागत ताना-बाना कुछ खास ढीला नहीं हुआ। यहाँ व्यक्ति का 'आत्म' महत्त्वपूर्ण नहीं हो पाया। वह सीमित जकड़न में अपना दम तोड़ता रहा। फिर भी; प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के माध्यम से एक खास समुदाय जीवन के तमाम क्षेत्रों में अपना स्थान बना पाया। हिन्दी में दलित आत्मकथा-लेखन की उम्र बहुत ज्यादा नहीं है। १९९५ में प्रकाशित 'अपने-अपने पिंजरे' (मोहनदास नैमिशराय) को हिन्दी में पहली दलित आत्मकथा का श्रेय प्राप्त है। इसके बाद; अब तक की सबसे चर्चित आत्मकथा 'जूठन' (ओमप्रकाश वाल्मीकि) है। १९९७ में इसके प्रकाशन के बाद काफी अन्तराल पर सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' (२००२) आई। यद्यपि मराठी मूल की महिला कौशल्या बैसंत्री की हिन्दी में लिखी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' इससे पहले १९९९ ही में छप गयी थी, पर चर्चित वह अब हो पा रही है। इसे हिन्दी की पहली दलित स्त्री-आत्मकथा माना गया है।[१]

साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं की सीधी उपस्थिति बहुत बाद की परिघटना है। चूँकि भारत में दलितों और स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थी, इसलिए इन वर्गों से लोग साहित्य और अन्य कलाओं के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पाए। नवजागरण के समय ज्ञान की स्वतन्त्र परम्परा के विकास की आवश्यकता महसूस हुई, जिसके कारण वंचितों को भी शिक्षा-जगत में आने का अवसर मिला। नहीं तो इसके पहले तमाम सामाजिक पूर्वाग्रहों के चलते दलित और स्त्री को पढ़ने का अवसर नहीं मिलता था। भारत में लोकतन्त्र के विकास के साथ-साथ इन क्षेत्रों में अवसर बढ़ते गये। अभिव्यक्ति की आजादी की सैद्धान्तिक मान्यता से भी भारतीय समाज के वंचित तबकों को अपनी बात कहने का मजबूत आधार मिला।

* शोध छात्रा– हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.
** शोध निर्देशक– हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

दलित स्त्री-आत्मकथाओं का विकास किस तरह हुआ है, इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि सन् १९७० के बाद से ही दलित स्त्री-आत्मकथाओं ने समाज में एक हलचल पैदा करनी शुरू कर दी थी। जहाँ तक इन आत्मकथाओं की केन्द्रीय विषय-वस्तु का सवाल है, उसमें दलित स्त्रियों ने अपने बचपन के जीवन के संघर्ष से लेकर प्रौढ़ावस्था तक का जिक्र किया है। ये आत्मकथाएँ उन ज्ञान-मीमांसा पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करती है, जिनका दावा था कि सम्पूर्णता में समस्याओं का हल उनके पास है। ब्राह्मणवाद का विशेष जातीय छुआछूत से संघर्ष, शिक्षा के क्षेत्र में भेदभाव तथा पितृसत्ता की त्रासदी को इन्होंने अपनी आत्मकथाओं का विषय बनाया है। ये आत्मकथाएँ केवल अपने अतीत का अध्ययन नहीं हैं, बल्कि कई पीढ़ियों की जाँच-पड़ताल एक साथ करती चलती हैं, केवल भौतिक दैनंदिन संघर्ष ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पिछड़ेपन पर भी इनकी सूक्ष्म नजर है। अपने जीवन में सहने वाले पग-पग के दु:ख से मुक्ति के साधन के रूप में वे विभिन्न फँतासियों को जन्म देती हैं।[२] ब्राह्मणवादी व्यवस्था के शोषण के साथ शिकार के रूप में स्त्री और दलितों की साझा मुक्ति की परिकल्पना फुले और आम्बेडकर– दोनों में पायी जाती है। मराठी दलित साहित्य की अनेक स्त्री लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथा में उस दोहरे शोषण का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, जिसमें वे अछूत और स्त्री– दोनों होने के चलते, दोहरे अभिशाप को झेलते हुए संघर्ष करती हैं। लेकिन शुरू से ही शक्ति-सम्बन्धों के प्रति भी आक्रोश मिलता है। उच्चवर्णों के द्वारा दलित स्त्रियों के शोषण के साथ-साथ पारिवारिक दायरे के भीतर भी उनके शोषण का चित्र इन स्त्री-आत्मकथाओं को भिन्न स्वर देता है। पिछले एक दशक में सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, कौशल्या बैसंत्री, उर्मिला पँवार, कावेरी, अनीता भारती, रजतरानी 'मीनू', मीरा परमार, कुसुम मेघवाल आदि तमाम दलित लेखिकाओं ने हिन्दी में रचनात्मक एवं सैद्धान्तिक लेखन किया है।

दलित स्त्रियों ने अपनी आत्मकथाओं में पितृसत्ता की सर्वव्यापकता पर सवाल खड़ा किया है। दलित बुद्धिजीवियों ने दलित बहुजन पितृसत्ता को ब्राह्मण पितृसत्ता की अपेक्षा अधिक लोकतान्त्रिक घोषित किया है और श्रम से जुड़े होने के चलते सवर्ण स्त्रियों की अपेक्षा दलित स्त्रियों की स्वतन्त्रता की खोज की है। लेकिन दलित स्त्रियों ने कहीं भी सवर्ण स्त्रियों की तुलना में अपने आप को स्वतन्त्र नहीं पाया है, बल्कि जकड़न और शोषण की बहुपरतता की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है। सवर्ण द्वारा शोषण की भयावह दास्ताँ तो है, लेकिन दलित स्त्री अपनी जीवन-स्थितियों को कैसे देखती है– इसकी ज्वलन्त अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। उनके बारे में, जो जीवनानुभव अभिव्यक्त हुए हैं, उनके बारे में विमल थोराट लिखती हैं–

''दलित स्त्री-आत्मकथाओं में अभिव्यक्त हुए दलित जीवनानुभवों के सन्दर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष का स्वरूप अनेकविध स्वरूप का है। स्त्री-आत्मकथाओं में दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने के लिए किया गया संधर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से आर्थिक सफलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तीहरी मार को झेलने के प्रसंग, घटनाएँ, संघर्ष का चित्रण प्रमुख रूप से लेखिकाओं ने किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू, जो लगभग सभी आत्मकथाओं में उभरकर आया है, वह है– पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरन्तर शोषण, उसके अस्तित्व को बार-बार नकारा जाना, अस्मिता को कुचला जाना और इन प्रवृत्तियों के विरोध में स्त्री का संघर्ष। दलित स्त्री मध्यवर्गीय है अथवा निम्नवर्गीय, मजदूर है अथवा समाज कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका– दलित और स्त्री होने की पीड़ा का अहसास अभी स्त्रियों का एक जैसा है। शान्ताबाई काम्बले ने अपनी आत्मकथा 'माइया जल्माची चितर कथा' में दलित समाज की सर्वव्यापक समस्या 'भूख' के साम्राज्य का चित्रण दर्दनाक रूप में किया है,

जबकि बेबी काम्बले ने 'जीवन हमारा' में सम्पूर्ण दलित स्त्री के सांस्कृतिक शोषण-जाल में फँसे हुए सामूहिक जीवन का चित्रण किया है। वहाँ पर कथा केवल लेखिका की निजी जीवन का नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण दलित समुदाय अपनी पूरी अस्मिता और पहचान के साथ उपस्थित है। वहाँ पितृसत्ता का विरोध भी है और अपने संघर्षमयी जीवन और इतिहास पर गर्व भी है। साथ में; मुक्ति के दर्शन के रूप में, आम्बेडकर की प्रेरणा पर भरोसा और अपनी इस बदलाव की परम्परा से विमुख होती हुई नयी पीढ़ी के प्रति रोष भी है। कौशल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में तीन पीढ़ियों के संघर्ष और पितृसत्ता की फौलादी संरचना पर प्रहार भी किया है। वहाँ 'जीवन हमारा' की तरह बहुत समुदाय तो नहीं आया है, लेकिन उनके अनुभव सामुदायिक प्रवृत्ति के हैं। वहाँ सांस्कृतिक इतिहास नहीं दिखाता है।[३]

दलित स्त्री-आत्मकथाओं में से अधिकांश में प्रथम श्रेणी का अर्थात् दलित महिलाओं के ही जीवन-संघर्ष तथा सामाजिक उपेक्षा का चित्रण हुआ है। सवर्ण स्त्री या गैर दलित स्त्री अगर वर्णन में कहीं आयी भी है, तो उसका वह रूप नहीं आया है, जिसमें वह उपेक्षित और दोयम दर्जे की है, बल्कि वह दलित महिलाओं की सामाजिक उपेक्षा के जिम्मेदार कारक के रूप में आयी है। बेबी काम्बले ने अपनी आत्मकथा 'जीवन हमारा' में स्त्री को गुलाम बनाकर उसकी सहज और स्वाभाविक छवि को विकृत करने का जिम्मेदार ब्राह्मणवाद को ही माना है।[४] उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने इस बात को समझ करके ही 'हिन्दू कोड बिल' बनाया। वह लिखती हैं– ''स्त्री सत्य और शील की प्रतीक है। जिसने पैदा किया, उसे ही जीवन भर झुककर जीना है– यही स्त्री की नियति रही। वर्ण-व्यवस्था, जातीय भेद-भाव को बनाने वाले धोखेबाज विश्व-निर्माता ने हम औरतों के साथ घोर अन्याय किया। पुरुष पर इस कदर आश्रित कर दिया कि उसके मरने के बाद भी बेड़ियों में जकड़ी रही। और इस तरह पुरुष ने औरत पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। कुछ घटना-क्रम ऐसा हुआ कि औरत ही औरत की शत्रु बनी। सारे झगड़ों का कारण औरत ही बनी। औरत पर जुल्म करने वाले पुरुष को औरत ही अपने खून से सींचकर पैदा करती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अन्याय की आग में जलकर आखिरकार उसने दिव्य ज्योति को जन्म दिया। अन्याय और अपमान की जिस बेड़ी में पुरुष ने स्त्री को पकड़ा हुआ था, उस बेड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर अबला को मुक्त किया हिन्दू कोड बिल ने।''

भारतीय समाज की जातिवादी संरचना ने व्यक्ति में असुरक्षा की भावना पैदा किया। जातीय स्तरीकरण में हर तथाकथित नीची जाति अपने से ऊँची जाति के द्वारा अपमानित होती है। सामाजिक उपेक्षा की इस मानसिकता ने भारतीय समाज को आधुनिक नहीं होने दिया। व्याक्ति के सहज, काल्पनिक और सर्जनात्मक क्षमता पर प्रहार किया। दलित स्त्री तो सामाजिक रूप से सबसे निचले दर्जे में फिट हुई। उसके जीवन में उपेक्षा के विविध स्तर हैं। शैक्षणिक जगत हो या पारिवारिक या सार्वजनिक स्थल– सभी जगहों पर उसे अपमान व उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। कौशल्या बैसंत्री लिखती हैं– मैंने स्कूल के किसी कार्यक्रम में, जैसे– खेल-कूद, नाटक वगैरह में कभी भाग नहीं लिया। मुझमें हीनता की भावना भरी थी। मैं खो-खो, कबड्डी वगैरह अच्छा खेल सकती थी, परन्तु मैं आगे बढ़ने से ही डरती थी। मैं अस्पृश्य हूँ– यह भावना मेरे मन से जाती ही नहीं थी। मुझे स्कूल में पानी के घड़े से पानी निकालकर पीने में भी डर लगता था। जब कोई नहीं रहता था, तब मैं जल्दी से पानी निकाल कर पीती थी।'' यही है– एक दलित स्त्री की पीड़ा। अध्ययन-केन्द्र, जो आधुनिक मूल्यों और मानवता को बढ़ाने के केन्द्र होने चाहिए, वही अपमान के, सामाजिक उपेक्षा के केन्द्र में बदल गये। सामाजिक उपेक्षा ने दलित समाज के साथ-साथ दलित स्त्री की प्रतिभा को भी दबा दिया। उन्होंने दलित स्त्री की पर-निर्भरता और सामाजिक उपेक्षा को

इन शब्दों में व्यक्त किया है– ''अरे ओ डोमनी! दूर खड़ी रह। छुआ-छूत मत कर। हमारा धर्म भ्रष्ट होगा। हरामजादी ..... धर्म भ्रष्ट करने आई है?'' यह दृश्य उस समय का है, जब कोई डोम लड़की ब्राह्मणी बनने का नाटक करती है। लेकिन चूँकि यह समाज में यथार्थ में मौजूद है, इसलिए श्रेष्ठता-बोध की पूर्ति अपनी कल्पना और नाटकीयता के माध्यम से करती है।[५]

दलित स्त्रियों की आत्माकथाओं में आन्तरिक पारिवारिक संघर्ष की जगह बाह्य उत्पीड़न से संघर्ष ज्यादा दिखाई देता है। ब्राह्मणवादी संरचना की जटिलता और उसके मूल्यों के साथ ही टकराहट प्रमुख है। दलित स्त्री परिवार की परम्परागत जीवन-पद्धति की बेड़ियों में अपना दम तोड़ती है– ''गाल को उमेठते हुए कहती है– अरे, तेरी माँ घर सँभालती है या कुम्हार के गधे चराती है? लड़की को कोई काम नहीं सिखाया? जरा सा प्यार क्या दे दिया, सिर पर ही बैठ गयी है। खैर! माना कि दूसरी सासों की तरह नहीं हूँ मैं। मेरी सास तो आग के समान गुस्सैल थी। हाथ में जलता कोयला रख देती थी, लेकिन सास के आगे कभी मुँह नहीं खोला।''[६]

यह है– दलित परिवार में दलित स्त्री की तस्वीर। उसके श्रम को कभी श्रम नहीं समझा गया। दरअसल; भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री के श्रम का कोई मूल्य ही नहीं है। एक दलित स्त्री का श्रम-मूल्य दलित पुरुष के श्रम-मूल्य से कम लगाया जाता है। अनेक कार्यस्थलों पर मूल्य की विभेदकता बरकरार है। उसके शारीरिक श्रम को पुरुष की तुलना में कमतर आँकने के पीछे पुरुष की वर्चस्ववादी अवधारणा ही काम करती है। पारिवारिक गुलामी की तस्वीर पेश करते हुए बेबी काम्बले लिखती हैं– ''आदमी अपनी औरत को जानवरों की तरह पीटता है। किसी औरत का सिर फूट जाता है, तो कोई बेहोश हो जाती है और किसी की कमर टूट जाती है। इतनी मार खाने पर भी उन पर किसी को तरस नहीं आता है। पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं। बगैर तेल के बिखरे जटा सरीखे बाल। टूटा-थका बदन। प्रत्येक घर की बहू का यही हाल होता है और ऐसे हाल वाली बहू गुलाम होती थी– ननद, देवर, सास, ससुर और रिश्तेदारों की।''[६] ऐसे गुलाम को काम-ही-काम करना होता था। इन समस्त यातनाओं के बावजूद दलित स्त्री-आत्मकथाओं में परिवार के नकार का कोई स्वर नहीं है। विद्रोह के बाद भी जीवन का कोई स्वर नहीं है। विद्रोह के बाद भी जीवन का एक ही रास्ता है, जो चलता चला आ रहा है। दरअसल; जिस प्रकार एक दलित पुरुष की अपनी आजादी आर्थिक आजादी से भी जुड़ी हुई है, उसी प्रकार दलित स्त्री की भी। जब तक कोई दलित स्त्री आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त करती, परिवार का जनतान्त्रीकरण नहीं हो सकता। अत: दलित स्त्रियों ने अपनी आत्मकथाओं में जीवन के अनेक क्षेत्रों में झेली जाने वाली समस्यओं तथा पितृसत्ता के भीतर अपनी दमघोंटू जिन्दगी के खिलाफ संघर्ष की अभिव्यक्ति की है। दलित स्त्री की सामाजिक-पारिवारिक धर्म, जाति तथा संस्कारगत मूल्यों की आँड़ में उपेक्षा। उसका जीवन दोहरा अभिशाप बनकर रह जाता है।

सन्दर्भ-सूची

१. कौशल्या बैसंत्री– 'दोहरा अभिशाप' की भूमिका
२. कांचा इलैया– मैं हिन्दू नहीं हूँ, आरोही बुक ट्रस्ट, उत्तम नगर, दिल्ली पृ. ६३
३. कौशल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, परमेंश्वरी प्रकाशन, प्री बिहार, नयी दिल्ली, पृ. ६१
४. बेबी काम्बले– जीवन हमारा, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. ४८
५. पं. रमाबाई– हिन्दू स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. ८९
६. विमल थोराट– दलित स्त्री आत्मकथा, 'इतिहास का वर्तमान से संवाद' शीर्षक लेख अपेक्षा जुलाई-सितम्बर, २००३
७. बेबी काम्बले– जीवन हमारा, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. ५९

दलित स्त्री-जीवन की व्यथा और वास्तविकता

डॉ. देबश्री सिन्हा*

भारत में जातिवाद का स्वरूप सर्वग्रासी है। छुआछूत एक सामाजिक बीमारी है, जो अपने में सभी को समाहित कर लेती है। भारतीय समाज में छुआछूत के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। आजादी के कई वर्षों बाद भी दलितों का जीवन कई जगह हाशिए पर है। भारतीय समाज को समझने के लिए वर्ण और वर्ग को साथ-साथ ध्यान में रखना जरूरी है। हमारे यहाँ केवल वर्ग की धारणा के आधार पर भारतीय समाज की संरचना को समझने की कोशिश की जाती है। वर्ण और जाति की वास्तविकता की उपेक्षा करते हैं और इसके चलते भारतीय समाज की अधूरी समझ सामने लाते हैं। वर्ग की धारणा का आधार आर्थिक होता है, जबकि वर्ण या जाति का सम्बन्ध आर्थिक होने के साथ-साथ सामाजिक स्थिति से भी होता है। दलित को परिभाषित करते हुए आलोचक मैनेजर पाण्डे कहते हैं कि– ''मैं तत्काल दलितों के भीतर केवल उन्हें ही रखूँगा, जिन्हें गाँधी जी की भाषा में 'हरिजन' कहा जाता है। ठीक-ठीक उनकी पहचान के रूप में 'अछूत' या मराठी में 'अतिशूद्र' के नाम से जिन्हें याद किया जाता है।''[१] 'दलित' का सामान्य अर्थ है– 'दबा हुआ' या उत्पीड़ित। अर्थात् जो कुचला गया हो, जो अपमानित हो, प्रताड़ित हो, जिसका दमन या दलन किया गया हो, उसे दलित कहा जाता है। 'दलित' शब्द के अन्य अर्थ हैं– रौंदा, मसला, मर्दित, शोषित, सताया, वंचित, हतोत्साहित आदि। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी किताब 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में मानते हैं कि 'सभी वर्गों की स्त्रियाँ भी दलित हैं।'

अनादिकाल से स्त्रियाँ अभावों, अपमानों, वंचनाओं एवं निषेधों में जीने को बाध्य रही हैं। स्त्री का आक्रोश और छटपटाहट हमेशा बना रहा। भक्तिकाल में भी स्त्री की स्थिति सोचनीय ही रही। महान और प्रसिद्ध कवियों ने भी नारी को भक्ति के मार्ग में बाधक और नारी की स्वतन्त्रता को खतरा माना है। भक्तिकाल के महान कवि कबीर ने यहाँ तक कह डाला कि 'नारी कुंड नरक का', तो वहीं दूसरी ओर तुलसीदास ने स्त्री की पराधीनता की पीड़ा को पहचानते हुए भी नारी-स्वतन्त्रता को खतरनाक समझते हुए कह डाला– 'जिमि सुतन्त्र भुए बिगरहिं नारी।' कबीर एवं जायसी सती-प्रथा को भी महिमा-मण्डित करते हैं। इस तरह; कहीं-न-कहीं कबीर, तुलसी और जायसी के काव्य सामंती रूढ़ियों में जकड़े हुए हैं। सूर ही ऐसे कवि के रूप में सामने आए हैं, जिसकी कविता में स्त्री का सहज, स्वतन्त्र और तेजस्वी रूप मिलता है। जो प्रेम के अलावा लोक और वेद के किसी बन्धन को नहीं मानते। 'सूरसागर' में एक जगह सती-प्रथा का उल्लेख है और उसकी भर्त्सना के साथ-साथ उसके जघन्य रूप के त्रासद प्रभाव की ओर संकेत मिलता है–

''देख जरनि जड़ नारि की, (रे) जरति प्रेम के संग।
चिता न चित फीको भयौ, (रे) रची जु पिय के रंग।
लोक-वेद बरजत सबै, (रे) देखत नैनति त्रास।''[२]

रीतिकाल में स्त्री पतन की पराकाष्ठा तक पहुँच गई। बिहारी, मतिराम, केशव आदि ने स्त्री को देह, सौन्दर्य और प्रेम की आसक्ति में डुबो दिया। स्त्री का भोग्या रूप ही वर्णनीय था।

* हिन्दी अध्यापिका– अधरचाँद उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सिलचर-७८८००४ (असम)

स्त्री का जैसा पतन रीतिकाल में हुआ, वैसा अन्य किसी काल में नहीं हुआ। स्त्री की कामुकता के अतिरिक्त उसका कोई और रूप इन कवियों को नजर नहीं आता। स्त्री दलित से महादलित होती चली गई।

आधुनिक काल तक आते-आते भी स्त्री की स्थिति में कुछ अधिक बदलाव नहीं आया। धीरे-धीरे पाश्चात्य प्रभाव के कारण, स्त्री के अन्य रूपों पर भी कवियों की दृष्टि गयी। स्त्री-चेतना और जागरण लाने का प्रयास भी किया गया। कुछ स्त्रियाँ साक्षर होकर अपनी स्थिति भी सँभालने लगीं। प्रसाद ने छायावादी युग में स्त्री को 'श्रद्धा' माना। 'निराला' ने कहा कि स्त्री वह है, जो 'मार खा रोई नहीं'। आगे चलकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, समकालीन कविता और दलित कविता में स्त्री की नई सम्वेदनाएँ और अभिव्यंजना प्रस्तुत हुई। स्त्री के लिए भिन्न कानून, निर्वाचन, मताधिकार लागू हुआ। सदियों पुरानी दृष्टि बदली। किन्तु आज भी स्त्री को दोयम दर्जे का मानने वाले दकियानूसी भावनाओं का ही परिचय दे रहे हैं। सरकारी-गैरसरकारी कार्यालयों में काम करती और स्कूलों तथा कॉलेजों में पढ़ने वाली स्त्रियाँ उनकी विलासवृत्ति से बच नहीं पा रहीं। स्त्री बाजार बनती जा रही है। स्त्री, वास्तव में; आज भी दलित मानसिकता का शिकार होती जा रही है। मैनेजर पाण्डे जैसे विख्यात् आलोचक मानते हैं कि– ''भारतीय समाज-व्यवस्था यानी हिन्दू समाज-व्यवस्था में हत्या और आत्महत्या से बचा हुआ जीवन ही स्त्री को मिला है।''[३]

औरतों की पराधीनता वर्ग ही नहीं, वर्ण की सीमा को भी पार करता है; क्योंकि केवल उच्च वर्ग और उच्च वर्ण की स्त्रियाँ ही पराधीन नहीं होतीं, दलितों की स्त्रियाँ भी पराधीनता या गुलामी की यातनाएँ सहती हैं। जो जाति स्वयं सवर्णों की गुलाम है, वह भी अपने समाज की स्त्रियों के साथ सामंती मानसिकता वाला व्यवहार करती है। दलित कथाकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' द्वारा रचित आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' के आधार पर पुनीता जैन लेखक की माँ के सम्बन्ध में कहती हैं कि– ''माँ की जिन्दगी के इस भ्रम का पर्दाफाश करती हैं कि दलित स्त्रियों को अपेक्षित स्वतन्त्रता हासिल है। उन्हें विधवा का जीवन नहीं जीना पड़ता। विधवा होने के दु:ख नहीं झेलने पड़ते। मुखी के पति की मौत के बाद अपार दु:खों का सिलसिला शुरू हो जाता है। रामलाल के यहाँ गनीमत थी, लेकिन भिकारी ने तो जिन्दगी ही नारकीय बना दी।''[४]

पुरुष अपने शारीरिक बल का प्रदर्शन स्त्रियों पर ही ज्यादा दर्शाते हैं। एक रुपए की चोरी के शक में लेखक की माँ भिकारी तथा उनके भाई डालचन्द द्वारा लात, फरहे, लाठियों ले पीटी जा रही थी। माँ का सिर बचाकर सारा शरीर तोड़ दिया गया था– ''माँ कसाई द्वारा काटी जा रही गाय की तरह चीख रही थी.....माँ चीखते-कराहते बेहोश हो गई थी।''[५] दरअसल; यह केवल चोरी की सजा नहीं थी, बल्कि डालचन्द के कारनामों के प्रति माँ के निरन्तर विरोध करने की सजा थी। एक स्त्री किसी पुरुष का विरोध आखिर कैसे कर सकती थी? जो करती हैं, वे सजा पाती हैं। उनको सबक सिखाया जाता है। भारतीय समाज में जो पुरुष-प्रभुत्व की प्रवृत्ति है, उसका असर दलित समाज में भी है। यह सही है कि दलित स्त्रियाँ काम और श्रम से जुड़ी होने के कारण सवर्ण स्त्रियों से अधिक स्वतन्त्र होती हैं, लेकिन उन्हें भी पुरुष की अधिकार-भावना का शिकार होना पड़ता है।

इस तरह, दलित स्त्रियाँ भारतीय समाज में तीहरे शोषण को झेलती हैं– ''स्त्री होने के कारण लिंग आधारित, दलित होने के कारण जाति आधारित और गरीब होने के कारण वर्गगत

शोषण।''[६] इसलिए दलित स्त्री 'दलितों में भी दलित' है। दलित स्त्रियों की विकास-प्रक्रिया दलित पुरुषों की विकास-प्रक्रिया की तुलना में बहुत पीछे है। मलखान सिंह की कविता 'मुझे गुस्सा आता है' इस बात को प्रमाणित करती है, जहाँ कवि की माँ और पत्नी एक ही काम को दोहराते हैं–

''मेरी माँ मैला कमाती थी / बाप बेगार करता था
और मैं मेहनताने में मिली जूठन को / इकट्ठा करता था, खाता था
आज बदलाव इतना आया है कि / जोरू मैला कमाने गई है
बेटा स्कूल गया है और- / मैं कविता लिख रहा हूँ।''[७]

स्त्री-विमर्श एवं दलित वर्ग की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर साहित्यकारों की दृष्टि रही है। इसमें प्रमुख हैं– परिविंदर कौर की 'नई सदी की स्त्री कविता', सलमा खान की 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता', अमृता प्रीतम की 'चुनी हुई कविताएँ', 'स्त्री-संघर्ष का इतिहास', राधाकुमार की 'स्त्रीत्व : धारणाएँ एवं यथार्थ' आदि।

'स्त्रीवाद' में जब दलित स्त्री को कोई स्थान नहीं मिला, तो 'दलित स्त्रीवाद' अस्तित्व में आया। उच्च वर्णीय स्त्रियों ने स्त्रीवाद से आशय केवल और केवल आर्थिक सम्बल, आर्थिक सुरक्षा तथा सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त करने तक सीमित कर दिया। दलित और आदिवासी स्त्री के लिए इससे भी महत्त्वपूर्ण मुद्दा था– आत्मसम्मान का, अपने जीवन का। जब दलित प्रतिनिधित्व की बात आती है, तब दलित स्त्री उससे भी पीछे छूट जाती है। वह अपने को सिकुड़ा हुआ महसूस करती है। उसकी आवाज कभी दलित पुरुष बनता है, तो कभी सवर्ण स्त्री उसकी ओर से बोलती दिखाई देती है। हाँ, एक सवाल सामान्य स्त्रियों की ओर से देखा जाने लगा कि हम दलित और सवर्ण स्त्री में भेद ही नहीं करते। स्त्री, स्त्री होती है। ऐसी स्थिति में दलित स्त्री की स्थिति और भी सोचनीय हो जाती है। जिनका कोई अनुभव नहीं रहा, वह उसकी आधी-अधूरी बात को पीतल पर सोने का पानी चढ़ाकर कह रही हैं।

दूसरी तरफ; अशिक्षित या अल्पशिक्षित दलित स्त्रियों को मुक्ति का बोध ही नहीं है और जिन्हें बोध है, वे अपने घरों में, अपनी सुख-सुविधा के लिए उनकी सेवाएँ बेगारी की तरह ले रही हैं। दलित स्त्रियों के बच्चे सवर्ण स्त्रियों के बच्चों को खिला रहे हैं। उन्हें गोद में लेकर पाल रहे हैं। जो उनके स्कूल जाने का समय है, वह दूसरों की सेवा में जाया हो रहा है। ऐसी कई कामकाजी स्त्रियाँ देखी हैं, जो अपने बच्चों को गोद में उठाने और उनका सामान उठाने के लिए छोटी बच्चियों को साथ रखती हैं। बाजार जाती हैं, तब भी सब्जी का थैला तक उठाने के लिए उन्हें साथ रखती हैं। इस बात का अपनी सहेलियों में वे बड़े गर्व के साथ बखान भी करती हैं। इनमें कई कथित रूप से प्रगतिशील विचारों की भी होती हैं। यह व्यवहार ज्यादातर सवर्ण स्त्रियों में देखने को मिलता है। उन बच्चियों की माताएँ उनके घरों में खाना बनाने, कपड़े धोने, घर की साफ-सफाई करने जैसे काम कम पैसों में करने को मजबूर हैं। दलित और सवर्ण स्त्रियाँ कई बार दो ध्रुवों की तरह रानी और नौकरानी की तरह दिखाई देती हैं। यह विडम्बना ही है कि एक ही देश में स्त्रियों की जीवनस्थितियों में जमीन-आसमान का अन्तर है। गाँव में सफाई करने वाली स्त्रियों के साथ जातिभेद सवर्ण स्त्रियाँ ही करती हैं। वे ही अपने घर में अछूत स्त्री को अपनी चौखट के भीतर प्रवेश तक नहीं करने देतीं। नहा-धोकर सफाई के बाद साफ कपड़ों में आई अछूत स्त्रियों के हाथों में दूर से दो बासी रोटियाँ सवर्ण स्त्रियाँ ही डालती हैं, जैसे वे किसी

संक्रमण बीमारी से ग्रस्त हों, जबकि वे अपने कुत्तों को गोद में उठाए घूमती रहती हैं। गैरदलित महिलाओं के वे बच्चे, जिन्हें दलित सेविकाएँ पालती हैं, वही बच्चे आगे चलकर दलित बच्चों को शिक्षा और सेवा-क्षेत्रों से बाहर खदेड़ते हैं और उनके संवैधानिक प्रतिनिधित्व के अधिकारों को कुचलते हुए आरक्षण का विरोध करते पाए जाते हैं।

यह अकारण नहीं है कि दलित समुदाय की लेखिकाओं ने अपने समुदाय के भीतर स्त्रियों की पराधीनता और यातना पर भी ध्यान दिया है। मैनेजर पाण्डे ने हिन्दी दलित लेखन में दलित स्त्रियों की अनुपस्थिति को समझने के लिए पूरे हिन्दी साहित्य और भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति की समझ को आवश्यक माना है। अभी तो पूरे हिन्दी साहित्य में स्त्री-लेखन हाशिए पर है और वह मुख्यधारा में अपनी जगह बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। ऐसी दशा में दलित स्त्रियों के लेखन की उम्मीद नहीं की जा सकती है। मराठी की महत्त्वपूर्ण लेखिका बेबी काम्बले की रचना 'जीवन हमारा' (जिणं आमुच) मशहूर रचना है, जिसके प्रकाशन से मराठी साहित्य-संसार में काफी हलचल पैदा हुई थी। वहाँ दलित साहित्य की शक्तिशाली धारा की उपस्थिति के बावजूद यह रचना एक साहित्यिक घटना साबित हुई। इस रचना के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डे कहते हैं– ''गुलामी की इस सर्वग्रासी प्रक्रिया के विकराल रूप और उसके चंगुल में फँसे दलित समुदाय, विशेष रूप से दलित स्त्री की लाचारी तथा पीड़ा की जैसी अभिव्यक्ति इस रचना में बेबी काम्बले ने की है, वैसी कोई गैर दलित तो क्या, दलित पुरुष भी नहीं कर सकता।''[८] 'जीवन हमारा' में गुलामी का वह पेंचीदा तन्त्र भी सामने आता है, जिसमें स्वयं सवर्ण की गुलामी के शिकार दलित पुरुष अपने घर की औरतों को गुलाम समझते हैं और उन पर हर तरह के अत्याचार करते हैं। यही नहीं, घर के भीतर सास अपनी बहू के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करती है, उसे अनेक प्रकार की यातनाएँ देती है। भारतीय समाज में दलितों और स्त्रियों की गुलामी के विरुद्ध जीवन-भर कठिन संघर्ष करने वाली ज्योतिबा फुले ने 'गुलामगीरी' (१८७३) में ठीक ही लिखा है– 'जो सहता है, वही जानता है और जो जानता है, वही कह सकता है।' आलोचक मैनेजर पाण्डे ने भारतीय समाज में गुलामी से पीड़ित स्त्रियों में और अधिक पीड़ित दलित स्त्रियों के जीवन की यातनाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी साहित्य में दलित स्त्री-लेखिका के महत्त्व और आवश्यकता पर जोर दिया है। जब भी दलित स्त्री रचनाकारों को पढ़ा जाता है, तो उनकी सारी रचनाओं में एक बेचैनी, व्यग्रता, तनाव सहज ही द्रष्टव्य है। वे बहुत खड़ी भाषा में कड़ी बात कह जाती हैं।

सभी देश-काल-परिस्थितियों में न तो स्त्रियों की परतन्त्रता एक-सी रही है और न उसकी मुक्ति के प्रयास एक जैसे रहे हैं। आलोचक शिवकुमार मिश्र का कथन है कि– ''स्त्री-मुक्ति का सवाल कठिन सवाल है। आनन-फानन में वह हल नहीं होने वाला। धैर्य और लम्बे संघर्ष तथा गहरे संकल्पों के साथ उससे जूझने-टकराने की जरूरत है। स्त्री की यातना का बहुत लम्बा इतिहास है। उसकी मुक्ति का इतिहास उससे अधिक विशद्, व्यापक और लम्बा हो– प्रयास इसी के लिए होने चाहिए। पूरी नयी सदी हमारे सामने है, इसलिए स्वतन्त्रता-पूर्व की दलित स्त्री और स्वतन्त्रता के पश्चात् की दलित स्त्री-गुलामी और मुक्ति के अलग-अलग कारणों को समझना समीचीन होगा और इसी प्रकार हम आज दलित स्त्री की गुलामी और मुक्ति के प्रश्नों को समझ सकते हैं।''[९]

दलित स्त्री-विमर्श ने आज स्त्री को नए दृष्टिकोण से देखने को बाध्य किया है। साथ ही;

समकालीन यथार्थ के प्रति भी वह बोधवान करता है कि स्त्री आज भी प्रताड़ित एवं अपमानित है। इसके पीछे के कारणों की जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता है। दलित स्त्री की मानसिक स्थिति किस तरह से टूटती, सँभलती, उघड़ती और बिखरती है– इस स्थिति का अध्ययन आज जरूरी है। कौशल पँवार की कविता 'भंगी महिला' का यह अंश द्रष्टव्य है–

''सोचती है भंगी महिला / मैं, मल-मूत्र से भी गई-गुजरी / अरे! मल-मूत्र तो धन्य है / जो कम-से-कम सिर पर तो है / और भंगी महिला / उठाती है मल-मूत्र से भरा बोझा / और चल पड़ती है / तिलांजलि देने / उस सभ्य कहे जाने वाले समाज को / [illegible]''[१०]

बढ़ते बलात्कार, गैंग रेप, छेड़-छाड़, घरेलू हिंसा, अपमान आदि से उसकी मनोदशा को आँकना आज अध्ययन का विषय होना चाहिए। दलित स्त्रियों को अपने समाज और सवर्ण समाज के साथ ही गरीबी से भी लड़ना होगा, तभी उनको मुक्ति मिल सकेगी। यह सही है कि आज के समय में भी लड़कियाँ शिक्षित हो रही हैं, वे अपने परिवार को बचाना चाहती हैं, परन्तु सबसे पहले उसे स्वयं के अस्तित्व और आत्मसम्मान को बचाना होगा। इसलिए दलित पुरुषों, खासकर युवाओं को बदलने की आवश्यकता है। वे नवीन संवैधानिक जीवन-मूल्यों को अपनाएँ, जिसमें बराबर का सम्मान, समानता, अधिकार और प्रेम हो।

सन्दर्भ-सूची

१. मैनेजर पाण्डेय– साहित्य और दलित दृष्टि, सं. सर्वेश कुमार मौर्य, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१५, पृ. १९
२. मैनेजर पाण्डेय– अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००२, पृ. ८
३. मैनेजर पाण्डेय– साहित्य और दलित दृष्टि, सं. सर्वेश कुमार मौर्य, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१५, पृ-१९
४. पुनीता जैन– हिन्दी दलित आत्मकथाएँ : एक मूल्यांकन, सामयिक पेपरबैक्स, संस्करण-२०१८, पृ. २३५
५. श्यौराज सिंह 'बेचैन'– मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-२०१३, पृ. ६०
६. विमल थोरात– दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण-२०१०, पृ. १४
७. प्रीति सागर सं.– हिन्दी दलित साहित्य संचयिता, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१५, पृ. ६६
८. मैनेजर पाण्डेय– साहित्य और दलित दृष्टि, सं. सर्वेश कुमार मौर्य, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१५, पृ. ७०
९. शिवकुमार मिश्र– आलोचना के प्रगतिशील सरोकार, प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण-२०१२, पृ. १५४
१०. प्रीति सागर सं.– हिन्दी दलित साहित्य संचयिता, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१५, पृ. ५१

●

दलित जीवन की दास्ताँ : 'शिकंजे का दर्द'

डॉ. शबाना हबीब*

समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख मुद्दों में एक है– दलित विमर्श। आजकल दलित होना कोई जुर्म से कम नहीं है। उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ रहा है। आज वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। साहित्य के माध्यम से दलित जीवन की झलक देखने को मिलती है। दलित-साहित्य के अन्तर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि आते हैं। इनमें आत्मकथा सबसे सम्वेदनशील विधा बन गई है। आत्मकथा को ही दलित-साहित्य की पहचान माना जाता है और दलित-साहित्य में काफी चर्चा आत्मकथा पर ही हो रही है। सुशीला टाकभौरे द्वारा लिखी गई आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' इस अर्थ में बहुत ही सराहनीय है।

दलित जीवन की अनगिनत समस्याएँ 'शिकंजे का दर्द' में व्यक्त होती हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि दलित जीवन के सारे दु:ख और दुविधाओं का आधार ही जातिवाद है। भारतीय समाज में व्यक्ति की पहचान उसकी जाति के माध्यम से होती आयी है। जातिवाद के चक्कर में लोगों को उच्च और निम्न मानकर, निम्न पर अत्याचार का सिलसिला चलता रहता है। जाति का दंश सबसे ज्यादा दलितों को ही झेलना पड़ता है। 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका इस ओर लोगों का विशेष ध्यान आकृष्ट करती हैं। गाँव में, स्कूल में, कॉलेज में, यहाँ तक कि प्राध्यापिका बनने के बाद भी उन्हें जातिवाद एवं छुआछूत का जहर पीना पड़ रहा था। स्कूल में बच्चे उनसे दूरी बनाए रखते थे। खुद को प्रगतिवादी ठहराने वाले लोग बाहर तो बड़ा दिखावा करते फिरते हैं, लेकिन लेखिका का कहना है कि उनके मन से जातिवाद मिटाना आसान नहीं है। पढ़े-लिखे एवं उच्च नौकरी प्राप्त करने के बाद उन्हें मान-सम्मान तो मिलता है, लेकिन एक साथ सम्मान और अपमान का अनुभव होता था। जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाने वाले भी अपने आपको दलितों से दूर रखते हैं। जातिवाद बहुत गहराई से अपनी जड़ें जमा चुका है। जब लेखिका किराए के मकान में रहती थी, तब एक भिखारी भिक्षा माँगते हुए वहाँ आया। उसे देखकर पड़ोसिन कहने लगी– ''महाराज जी! इस घर की भिक्षा नहीं लेना। यहाँ जमादारन रहती है।''[१] यह सुनकर भिखारी ने यही जवाब दिया कि– ''अच्छा हुआ माता जी! आपने बता दिया। मैं भला उनके घर का आँटा कैसे ले सकता हूँ?''[२] इससे स्पष्ट होता है कि उस समाज में भिखारी भी पढ़े-लिखे और अच्छे ओहदे पर जीने वाले लोगों मात्र से ही भिक्षा स्वीकार करते हैं, दूसरों से नहीं।

भूख और गरीबी की गोद में ही दलितों का पालन-पोषण होता है। दलित हो, तो उसे भूखा रहना चाहिए और उसे गरीबी झेलनी चाहिए। यही उनकी फितरत में लिखा हुआ है। गरीबी के कारण सुशीला जी को स्कूल में भी शर्मिंदा होना पड़ता था। स्कूल में किसी का पैसा चोरी होने पर सुशीला जी पर ही शक किया गया और जब उनकी जेब से जूठी बेर पाई गई, तो सभी उनका मजाक उड़ाने लगे। उस समय उनके मन में जो दर्द हुआ, उसको उन्होंने यों व्यक्त किया है– ''मैं चोर नहीं थी, फिर भी; अभावग्रस्त परिस्थितियाँ हमें अपमानजनक स्थिति में धकेल देती थी।''[३] ये सब उन्हें गरीबी के कारण ही झेलना पड़ा। दलितों के जीवन की सबसे बड़ी समस्या भूख ही है। घरवालों द्वारा कड़ी मेहनत करने के बावजूद भी पेट भर खाना नहीं मिले, तो इसका जीवन

* सहायक आचार्या– राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरल

कैसे सुधर जाएगा?''[४]

आर्थिक विषमता के कारण दलित हमेशा पिछड़े रहते हैं। गरीब दलितों की तन-तोड़ मेहनत का फल अक्सर सवर्ण-सम्पन्न लोगों को ही मिलता था। लेखिका इस सम्बन्ध में यों कहती हैं– ''पूँजीवादी आर्थिक नीति के कारण जो धनवान थे, उनका धन बढ़ता जा रहा था। जो गरीब थे, वे अधिक गरीब और अभावग्रस्त होते जा रहे थे। हमारी सामाजिक व्यवस्था हमेशा से ही सम्पन्न लोगों के हित में ही रही है। बहुसंख्यक अमीरों द्वारा अल्पसंख्यक गरीबों पर शोषण चलता रहता था। हमारी बिगड़ी सामाजिक स्थिति ने दलितों एवं गरीबों को कहीं का नहीं छोड़ा।

आर्थिक तंगी के कारण सुशीला जी का जीवन अभावों ने घेर लिया है। वे दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए भी छटपटाती रहीं। अच्छा खाना और अच्छा वस्त्र उनके हिसाब से अमीरों को ही प्राप्त था। लेखिका अपने जीवन के अभावों के बारे में यों कहती हैं कि– ''अच्छा खाना और अच्छा पहनना, यह बात हमारे लिए नहीं थी।''[५] स्कूल में पढ़ते समय कपड़ों के अभाव से लेखिका कुढ़ती रही। उनकी अवस्था ऐसी थी कि– ''मैं नवीं कक्षा में पढ़ती थी। पिता ने मेरे लिए सैटिन सिल्क की सफेद सलवार और सफेद फूलों के प्रिंट की नीली कुर्ती सिलवाई थी। मेरे पास यह एकमात्र ड्रेस थी। तब हर दिन वही एक ड्रेस पहनने पर मुझे शर्म आती थी। शर्म के कारण कभी दो दिन स्कूल नहीं जाती थी, फिर दो दिन जाती, फिर अगले दो दिन स्कूल नहीं जाती।''[६] यह एकमात्र व्यक्ति की कहानी नहीं, प्रत्येक दलित की यही व्यथा-कथा है।

शिक्षा के अभाव में दलितों की दयनीय स्थिति है। उनके हालात को सुधारने के लिए सरकार हर मुमकिन प्रयत्न कर रही है। दलितों की शिक्षा के लिए नयी-नयी पद्धतियों को आगे ला रही है। 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका अपने शिक्षित जीवन की व्यथा पर प्रकाश डालती हैं, साथ ही; अपनी अशिक्षित नानी के दर्द पर भी। अपनी इस अवस्था का वर्णन उन्होंने ऐसे किया है– ''मुझमें और मेरी नानी में क्या फर्क है? वह अशिक्षित सफाई कर्मचारी की पीड़ा भोगती थीं, मैं शिक्षित होकर भी, उच्च पद पर आसीन होकर भी उसी पीड़ा को भोग रही हूँ। मैं अपनी पीड़ा से छटपटाती हूँ, तड़पती हूँ, खुद से अनेक प्रश्न करती हूँ....।''[७] लेखिका को शिक्षित होने के बावजूद भी अपमान सहना पड़ता है। ऐसा कहा जाता है कि– ''दलित व्यक्ति कितना भी शिक्षित हो और उच्च पद पर आसीन हो, किन्तु जाति का अभिशाप उसे आजीवन भुगतना ही पड़ता है।''[८] इस तरह; शिक्षा एक ओर जीवन की बिगड़ी हुई स्थितियों में परिवर्तन लाती है, तो दूसरी ओर; आत्मसम्मान की भावना को जगाकर, फिर बार-बार अपमान का जहर पिलाकर उस दर्द को ताजा एवं गहरा बना देती है।

साधारण तौर पर; दलित जाति के लोग शिक्षित होने के बावजूद भी अच्छी नौकरी हासिल न हो पाने के कारण आजीविका चलाने के लिए सहज रूप से अपनी जाति का ही काम अपनाने को मजबूर हो जाते हैं। अगर अशिक्षित हों, तो अपने गँवारपन और अशिक्षा के कारण अपमान सहना पड़ता है। दलितों के उद्धार के लिए, उन्हें शिक्षित कराने के साथ-साथ समाज के नजरिए को भी बदलना आवश्यक है।

सवर्णों को अपने सवर्ण होने पर कुछ ज्यादा ही घमण्ड है। अपने घमण्ड को बरकरार रखने के लिए दलितों को दबाकर रखते हैं। सन्तानहीन सवर्ण लोग तोते को अपना बच्चा समझकर पाल लेते हैं, लेकिन किसी अवर्ण बच्चे को एक वक्त का भरपेट खाना भी नहीं देते। मरे हुए कुत्ते की स्वर्ग-प्राप्ति के लिए दुआ करते हैं, लेकिन मरे हुए दलित का संस्कार करने में भी सहयोग

नहीं देते। ये इस प्रकार का पशुवत् व्यवहार करते नजर आते हैं। इन लोगों का मन दलितों के प्रति बिलकुल सम्वेदनशून्य हो गया है। एक बार ऐसा हुआ कि काम करने के बीच, असावधानी के कारण एक हादसा हो गया। एक दलित तुरन्त बेहोश हो गया। यह देखकर ठेकेदार और मालिक की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार थी– ''ठेकेदार और मालिक ने उसकी कोई चिंता नहीं की, बल्कि उसे गालियाँ दी- 'काम करना नहीं आता, तो क्यों करते हो? मरना है, तो कहीं और जाकर मरो। हमारे सिर पर क्यों मरते हो?''[९] सवर्ण लोग दलितों को आत्मसम्मान के साथ जीने नहीं देते। वह पल-पल उन्हें नीचा होने का एहसास दिलाते रहते हैं। दलितों को मानसिक तौर पर भी दलित बनाए रखने की कूटनीति कुछ इस प्रकार है–''दलित गाँव के बाहर रहें, उनके नाम अमंगल हो, वह सम्पत्ति जमा ना करें, केवल गधे या कुत्ते पालें, वे कफन का वस्त्र पहनें, वेद ना पढ़ें, संस्कृत ना सीखें, क्योंकि इससे शूद्रों को अपने शोषण की जानकारी होगी।''[१०]

अपमान और तिरस्कार– दलितों को अक्सर झेलना पड़ता है। उन्हें पग-पग पर अपनी जाति, रहन-सहन, जीवन-यापन आदि के नाम पर अपमान सहना पड़ता था। जब लेखिका स्कूल में पढ़ रही थी, तब गाँव में सुअर को काटने के लिए पकड़ा जाता था। सुशीला जी की जाति के लोग सुअर को पकड़ने के लिए उनके पीछे भागते थे। इसी कारण, बहुत हल्ला मचता था, तो स्कूल में रहकर उन्हें अपमान सहना पड़ता था। अपना अनुभव वह इस प्रकार प्रकट करती हैं कि– ''ऐसे समय कक्षा में मेरा सिर शर्म से झुक जाता था। मुझे गुस्सा आता था, क्यों हम ऐसे रहते हैं? क्यों ऐसे रहने के लिए मजबूर हैं?'' अच्छी नौकरी हासिल करने के बावजूद भी उसे शर्मिंदा होना पड़ता। इसका चित्रण देखिए– ''संस्था के व्यवस्थापक बाहर से आए प्रत्येक व्यक्ति से हमारा परिचय कराते, साथ ही; यह भी बताते थे– यह दोनों सफाई कर्मचारी जाति के हैं।''[११] ऐसे में; उन्हें बहुत अपमान का अनुभव होता था। अपनी योग्यता और काबिलियत के नाम पर जाने-जाना उन्हें पसन्द था, लेकिन यहाँ पर जाति है कि उनका पीछा ही नहीं छोड़ती।

तिरस्कार का अनुभव भी बहुत ज्यादा हुआ है। स्कूल में नृत्य का प्रशिक्षण करते समय छोटी सुशीला को सवर्ण लड़कियों के साथ नृत्य करते देखकर अध्यापिका ने गुस्से से आकर उसे उन लोगों के बीच में से हटा लिया और उसे डाँटने लगीं। बाद में; कई बार उसे केवल जाति के नाम पर तिरस्कार का सामना करना पड़ा।

दलितों का शोषण प्रमुख रूप से धर्म के नाम पर ही होता है। भूत-प्रेत, शाप, काला-जादू आदि का डर देकर उनके जीवन को अँधेरे में रखते हैं। ये लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए ढोंगी बाबाओं के पास जाते हैं। ऐसे बिगड़े कर्मकाण्ड दलितों के बीच में हैं। लेखिका कहती हैं– ''भूत, पिशाच, चुड़ैल और बाबा अछूत, शूद्र और बहुजन लोगों के शरीर में ही आते थे। जो लोग अंधश्रद्धा के साथ भूत और बाबा पर विश्वास करते थे, उन्हीं के साथ वे अपना खेल-तमाशा बताते थे।''[१२]

नशा करना गरीबों के बीच की आदत है। नशे के सहारे वे अपना गम भूलना चाहते थे, लेकिन यह हमेशा उलटा असर ही लाता है। नशा करने से परिवार में झगड़ा होता है। बच्चे, औरत डरते रहते हैं। लेखिका अपने दादा के सम्बन्ध में कहते हुए नशे के बारे में बताती हैं– ''दादा डोड़ा उबालकर उसका रस पीने लगे थे। इसके बिना उन्हें नींद नहीं आती थी। यह एक प्रकार का नशा था।''[१३]

प्राकृतिक विपदाओं से भी दलितों को जूझना पड़ता है। विकल परिस्थितियों की मार खा-

खाकर अब वे इन सबके अभ्यस्त हो गए हैं। 'शिकंजे का दर्द' में प्राकृतिक विपदा का उल्लेख इस प्रकार किया गया है– ''बाढ़! नेमावर गाँव में नर्मदा नदी की बाढ़ का प्रकोप हमेशा होता रहता है। गाँव का निचला हिस्सा बाढ़ में डूब जाता है और दलित गरीब लोग अपने सब कुछ से हाथ धो बैठते हैं।''[१४]

दलित नारी होने के कारण लेखिका को बहुत कुछ झेलना पड़ा। दलित नारी की समस्याएँ ये हैं– सवर्णों द्वारा शोषण, घर में पाबंदी, पति द्वारा उत्पीड़न, बेटों की प्रधानता, पारिवारिक विषमताएँ आदि। दलित नारियों को सवर्णों द्वारा लागातार शोषण का शिकार होना पड़ता है। दलित स्त्रियों पर हमेशा सवर्णों की बुरी नजर रहती है। इसलिए परिवार वाले अपनी लड़कियों को सुरक्षित रखने की चिंता में लगे रहते हैं। लेखिका के सम्बन्ध में उनकी माँ की बेचैनी ऐसी ही है– ''माँ हर बात से डरती थी। कहीं कोई हम पर आँख न रख ले, कहीं कोई अदावत न निकाले, कहीं कोई हमारे पीछे गुण्डे ना लगा दे। हमारी रक्षा के लिए रात-दिन प्रार्थना करती थी।''[१५] सुशीला जी बहुत ही मुश्किल से कॉलेज जा पाईं। स्कूल के बाद पिता और भाई उनको पढ़ाई छोड़ देने की बात कह रहे थे, तो वह पूछने लगीं कि– 'मेरी क्या गलती है?' पिता ने कहा कि– 'इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं, जमाना बदल गया।' लेकिन सुशीला जी उनकी एक न मानीं। अपनी बात मनवाने के लिए उन्होंने भूख हड़ताल की और आखिर उनका दाखिला हो ही गया। सवर्णों के डर से ही पिता द्वारा उनकी शिक्षा पर रोक लगा दी गयी। लेकिन भाग्यवश सुशीला जी के साथ कुछ भी अनहोनी नहीं हुई।

दलित स्त्रियों को, विशेषकर बेटियों को घर में कई प्रकार की पाबन्दी रहती है। विशेष उम्र के बाद खेल-कूद बन्द, पढ़ाई बन्द और उन्हें सुरक्षा के विशेष घेरे में रखते थे। इन पाबन्दियों के रहते उन्हें स्वतन्त्र रूप से कुछ भी करने की आजादी नहीं रहती। समाज में स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता अधिकतर कामुक रही है। इसलिए घर में ही उन्हें बाँधकर रखा जाता था। घर की पाबन्दियाँ सुशीला जी को 'शिकंजा' जैसा महसूस हुआ है। इसलिए वह कहती हैं– ''नानी और माँ ने खुद के लिए भी और अपनी बेटियों के लिए भी हमेशा घेरा बनाए रखा था। उसी सुरक्षा के घेरे के शिकंजे में मेरा बचपन बीता, किशोरावस्था बीती और युवावस्था का आरम्भ भी इसी शिकंजे के बीच हुआ।''[१६]

दलित नारी के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है– पति द्वारा उत्पीड़न। इस पितृसत्तात्मक या पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को हमेशा नगण्य माना है। इस समाज ने स्त्री के व्यक्तित्व को स्वीकारा नहीं और न ही उन्हें विस्तार पाने दिया है। लेखिका अपने घर में ही यह सब देखती थीं। भैया, भाभी से झगड़ा करते थे। उन्हें मारते हुए अपनी मर्दानगी दिखाते थे। पुरुषों का विचार ऐसा है– ''औरत पैरों की जूती है, पैरों में ही रहेगी।''[१७] नारियों की अवस्था कुछ ऐसी है कि पढ़ी-लिखी होने के बावजूद और पति से ज्यादा योग्यताएँ प्राप्त करने के बावजूद भी पति की दृष्टि से वह बिलकुल विशेष नहीं थी। पुरुषों में मनुवादी मानसिकता है– ''स्त्रियों पर शासन करना, उन्हें दासी समझना, उन्हें सम्पत्ति का अधिकारी नहीं बनने देना, उन्हें हमेशा अपने नियंत्रण में रखना, अपने दोष न देखकर स्त्रियों को ही दोष देना, स्त्रियों को अधिकारहीन बनाकर रखना।''[१८]

लेखिका कमाती थी, लेकिन उनके पास अपने खर्च के लिए भी पैसा नहीं था। उन्हें पता भी नहीं चलता था कि उनका वेतन कितना है। उन्हें हिसाब भी नहीं बताया जाता था। लेकिन आगे चलकर लेखिका ने धीरे-धीरे अपने सारे अधिकारों को वापस पा लिया। तब वे पहले जैसी

उतनी कमजोर नहीं थीं। वह खुद को सशक्त बनाती चली गईं।

उनके साथ शारीरिक ही नहीं, मानसिक उत्पीड़न भी होता था, जो उन्हें प्रोत्साहन देने के बजाय हमेशा पीछे की ओर खींचता था और उन्हें विभिन्न समस्याओं में उलझाकर रखता था। उन्हें गैरजिम्मेदार और पराजय कहा करता था। वह कहती हैं– ''मुझे उलझाकर रखा जाता था, ताकि मैं सहज ना रहूँ। अपनी मानसिक यातना में उलझी रहूँ। मैं कई बरसों तक ऐसे मानसिक शोषण से त्रस्त रहती थी।''[१९]

दलित समाज में ही नहीं, हर समाज में बेटों की, पुरुषों की प्रधानता रहती ही है। इसके फलस्वरूप; बेटियों का तो कोई वजूद ही नहीं रह जाता था। घर में, माँ-बाप द्वारा भाइयों का ज्यादा ख्याल रखा जाता था, जिस पर लेखिका विरोध करती थी। वह माँ से झगड़ा भी करती थी– ''समाज में बेटियों की अपेक्षा बेटों को अधिक सम्मान और महत्त्व दिया जाता था। जिन लड़कियों के भाई नहीं रहते थे, परिवार के लोग और रिश्तेदार उन्हें बुरा कहते थे। जिस माँ को बेटा नहीं होता, वह तो मानो अपने आप को दुनिया की सबसे दु:खी, अभागी स्त्री मानती।''[२०]

संयुक्त परिवार होने के कारण परिवार में अनेक प्रकार की विषमताएँ आती रहती हैं। कभी आर्थिक, तो कभी मन-मुटाव। ऐसी अवस्था में, आखिर स्त्री को ही यह सब सँभालना पड़ता है। लेखिका के लिए तो घर का सारा काम करना पड़ता था और बाहर भी काम-ही-काम था। सबसे बड़ी बात तो बच्चों की परवरिश की है। अपने काम में व्यस्त रहने के कारण लेखिका बच्चों के लिए उतना वक्त नहीं दे पाईं। जब वह पी-एच.डी. कर रही थीं, तब वह घर-बार छोड़कर हॉस्टल आ गई थीं, अपने शोध-कार्य को पूरा करने के लिए। लेकिन सहज रूप से अपना काम नहीं कर सकीं। उनके दिल में हमेशा बच्चे और परिवार ही थे। रचनाकर्म पर पूर्ण रूप से मग्न रहने में भी बाधाएँ उपस्थित हुईं। फिर भी; विकल परिस्थितियों से कुचलकर ही वह आगे बढ़ीं।

इस प्रकार देखें, तो 'शिकंजे का दर्द' में दलित जीवन की बारीकियों की झलक देखने को मिलती है। दलित जीवन की समस्याओं का रू-ब-रू चित्रण इस आत्मकथा में व्यक्त होता है। दलित जीवन के विभिन्न पहलुओं का, जीवन की विद्रूपताओं का सही चित्रण इस आत्मकथा के माध्यम से व्यक्त होता है। सचमुच; यह आत्मकथा दलित जीवन के हर एक पहलुओं का दिग्दर्शन कराने में सक्षम है।

सन्दर्भ-सूची

१. सुशीला टाकभौरे– शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली -२०१४, पृ.सं. १६५
२. वही– पृ.सं. १६६ ३. वही– पृ.सं. ४३ ४. वही– पृ.सं. ९२
५. वही– पृ.सं. १०५ ६. वही– पृ.सं. १०५ ७. वही– पृ.सं. २८९
८. जन विकल्प– जनवरी २०१३, पृ.सं. ९९
९. सुशीला टाकभौरे– शिकंजे का दर्द, पृ.सं. ७२
१०. ओमप्रकाश वाल्मीकि– दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली– २००७, पृ.सं. ३१
११. सुशीला टाकभौरे– शिकंजे का दर्द, पृ.सं. २२९
१२. वही– पृ.सं. ९४ १३. वही– पृ.सं. ९७ १४. वही– पृ.सं. १०१
१५. वही– पृ.सं. १२३ १६. वही– पृ.सं. १११ १७. वही– पृ.सं. ९०
१८. वही– पृ.सं. २२९ १९. वही– पृ.सं. २११ २०. वही– पृ.सं. ३८

●

ऋता शुक्ल के उपन्यासों में
सांस्कृतिक मूल्यों के विविध आयाम

प्रीति गुप्ता*

शोध-सार– साहित्य और संस्कृति का समवाय सम्बन्ध है। वही साहित्य कालजयी बन पाता है, जो अपने आप में किसी देश या काल की संस्कृति को भीतर समाये हुए होता है। ऋता शुक्ल के उपन्यास भी सांस्कृतिक मूल्यों से अनुप्राणित हैं। परस्पर रिश्तों की मर्यादा और उनकी सीमाओं का मूल्यांकन आपके उपन्यासों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। संस्कारों, पुरुषार्थ-चातुष्ट्य इत्यादि का सुन्दर समायोजन ऋता शुक्ल के उपन्यासों में मिलता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति ऋता शुक्ल के उपन्यासों की रीढ़ रही है।

बीज शब्द– भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, एकता, जीवन-दर्शन, संस्कार, प्रथाएँ, धर्म।

शोध-विस्तार– साहित्यकार जिस परिवेश में रहता है, जो कुछ देखता है, अनुभव करता है, उन सबको अपनी कलम के माध्यम से साहित्य में प्रस्तुत करता है। किसी भी काल का साहित्य उस काल की परिस्थितियों का ही परिचायक होता है। हर युग के साहित्य में तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश अर्थात् जीवन-पद्धतियों, संस्कारों, मूल्यों, चरित्रों, आवरणों और परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। सांस्कृतिक मूल्य संस्कृति से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि– ''सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्त्वों से है, जो सत्य के संधान और सिद्धि में सहायक होते हैं, जीवन की कल्याण-साधना अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक विकास में योगदान करते हैं और सौन्दर्य-चेतना को जाग्रत एवं विकसित करते हैं।''[१]

संस्कृति का व्यापक अर्थ किसी समाज की जीवन-पद्धति से है, जिसमें उसकी कला, शिल्प, विश्वास, मान्यताएँ, मूल्य, जीवन-दर्शन, संस्कार, प्रथाएँ, धर्म आदि आते हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति विश्व में वंदनीय रही है। उसमें अनेकता और विविधता होते हुए भी एकता है। दिनकर का कथन है– ''संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसीलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है। इसीलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है, जिसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभव का हाथ है।''[२] भारतीय संस्कृति की आधारशिला मानव-मूल्यों पर ही प्रतिष्ठित है। किसी भी देश, परिवार, समाज या राष्ट्र की आर्थिक उन्नति भौतिक संसाधनों पर ही नहीं; अपितु उस राष्ट्र के नागरिकों द्वारा व्यवहृत जीवन-मूल्यों पर आधारित होती है। डॉ. ज्ञान प्रकाश संस्कृति को मानव-जीवन की निधि बताते हुए लिखते हैं कि– ''संस्कृति मानव-जीवन की भूत, वर्तमान और भविष्य की निधि है, जिससे उसके और उसके पूर्वजों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक एवं कला-सौन्दर्य-बोध अर्थात् समस्त जीवन-मूल्य प्रतिध्वनित होते हैं।''[३]

ऋता शुक्ल मूलत: भारतीय संस्कृति के आख्याता हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अगाध विश्वास, स्नेह, आकर्षण एवं आस्था है। उनके उपन्यास इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से संयुक्त परिवार-व्यवस्था का चलन रहा, जिसमें एक ही परिवार में

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

कई पीढ़ियों के लोग मिल-जुल कर एक साथ रहते थे। ऋता शुक्ल ने अपने उपन्यासों में संयुक्त परिवार-व्यवस्था को अपने पात्रों के माध्यम से मूर्त्त रूप प्रदान किया है। उनके उपन्यासों में परिवार के प्रत्येक सदस्य– माता-पिता, पति-पत्नी, दादा-दादी, भाई-बहन, पुत्र-मित्र आदि सम्बन्धों की महत्ता को दिखाते हुए परिवार के प्रत्येक सदस्य का अपने कर्तव्य के प्रति समर्पण और सजगता का भाव दिखता है। उनके उपन्यासों का प्रत्येक पात्र अपने पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। 'अरुंधती' उपन्यास में 'शिवाला के बूढ़े पण्डित जी अरुंधती की माँ को उनके श्वसुर की पितृ-भक्ति के विषय में बताते हैं– ''और तुम्हारे ससुर ऐसे पितृ-भक्त कि पूछो मत। बूढ़ऊ से पूछे बिना एक डग आगे नहीं बढ़ाते हैं।''[४] इसी सन्दर्भ में 'कब आओगे महामना' उपन्यास में कुंदन देवी अपने पति के सामने अपने मनोभाव रखती हैं– ''आपके हर कार्य में परछाईं बनकर संग-संग रहूँगी मैं। अपनी ओर से किसी भी प्रकार की शिकायत का कभी कोई मौका नहीं दूँगी। मुझे पता है, आप बड़ी तपस्या करने जा रहे हैं, सो बेफिक्र होकर जाइए। आपके पीछे पूरी घर-गृहस्थी के मैनाक को अपने कंधों पर उठाने की जिम्मेवारी मेरी।''[५]

सांस्कृतिक स्वरूप मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों से सम्बन्धित रहता है, जो मनुष्य को सही दिशा दर्शाता है। भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी-सम्बन्ध अत्यन्त पावन और पवित्र माने गये हैं। पत्नी शिक्षित हो या अशिक्षित, पति को सम्मान देती है और श्रद्धा के साथ परमेश्वर-स्वरूप मानती है। पति भी पत्नी की इच्छाओं का सम्मान करता है। इसकी झलक हमें ऋता शुक्ल के उपन्यास 'कब आओगे महामना' में तब मिलती है, जब मालवीय जी की पत्नी कुंदन कहती हैं कि– ''अंग्रेजों के अत्याचार से निरीह भारतीयों को बचाने की जिम्मेवारी ली है, तो श्रीपालपुर के उस ऐयाश जमींदार से बेसहारा लोगों को बचाने की जिम्मेवारी क्यों नहीं लेते? हमारा विश्वास है कि आप एक साथ दस मुकदमें जीत सकते हैं। उस गरीब से एक धेला भी लेना गऊ हत्या के बराबर पाप होगा।''[६] तब मदन मोहन ने अपनी पत्नी से कहा कि– ''आपका यह सेवक वचन देता है, आपके आदेश को मस्तक पर धारण करते हुए श्रीपालपुर वाले किसान का मुकदमा बिना एक पैसा लिये ही लड़ेगा। अब तो प्रसन्न हुईं न आप?''[७] भारतीय संस्कृति में नारी को विशेष महत्त्व दिया गया है। उसे उपासना और आदर के योग्य माना गया है। यहाँ तक कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' नारी ही सम्पूर्ण परिवार की धुरी होती है, सभी की सुख-सुविधाओं तथा आवश्यकताओं का ध्यान रखती है। विवाह-विधि ही स्त्रियों का उपनयन है। पति के सम्बन्ध से पति की अर्धांगिनी होने से वह एक रूप हो गयी। पति के दीक्षित होते ही वह भी दीक्षिता हो गयी। वह निर्विकार भाव से करती है और परिवार की सर्वाधिक जिम्मेदारियों का निर्वाह भी वह बहुत बखूबी करती है। अरुंधती की इसी निष्ठा को देखकर विश्वजीत पूछता है– ''तुम कैसे इतना कुछ सँभाल लेती हो? किसी को पता भी नहीं चलता और सब कुछ अपने आप होता चला जाता है। तुम सबसे पहले उठती हो, रात गए तक जागती रहती हो और तब भी सबसे अधिक तेरा ताजा...।''[८] जन्मभूमि और घर-परिवार के साथ मनुष्य के अनेकानेक संस्कार जुड़े होते हैं। अपना-पराया, राग-द्वेष, स्मृति-अभ्यास और सम्पर्क-स्वभाव के कुछ प्रवाह मनुष्य के साथ इस प्रकार जुड़े होते हैं कि बहुत रोक-थाम करने पर भी मनुष्य की चिंतन-पद्धति, अभिरुचि और आदतें उसी अभ्यस्त ढर्रे में अनायास ही घूमती रहती है। जैसे भारतीय संस्कृति में नारी का उच्च स्थान है, उसी प्रकार भारतीय परिवार में माँ का स्थान सबसे ऊँचा है। ऋता शुक्ल के उपन्यास 'कब आओगे महामना' में माँ को स्वर्ग से भी अधिक अनमोल बताया है–''मेरी माँ मेरे लिए सबकुछ है। मैंने भगवान् को नहीं देखा, मेरी माँ ही मेरी भगवान् है। मेरा बस चले, तो संसार की सभी

कीमती चीजें लाकर उसके पैरों के पास रख दूँ और कहूँ–'माँ! तेरी ममता इन चीजों से तो क्या, स्वर्ग से भी अधिक अनमोल है।' मेरी माँ की बनाई रोटियों में जो स्वाद है, वह दुर्लभ है, क्योंकि उसमें उसका स्नेह सना रहता है। संसार भर की माएँ ऐसी ही होंगी न, ठीक मेरी सुमंगला माँ की तरह?''[९]

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष व चार आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का उल्लेख किया गया है। धर्म से मोक्ष और अर्थ से काम साध्य माना गया है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ जीवन में धर्म, अर्थ और काम का महत्त्व है। वानप्रस्थ और संन्यास में धर्म-प्रचार तथा मोक्ष का महत्त्व माना गया है। गृहस्थ आश्रम, जिसमें धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा के बाद विवाह कर पति-पत्नी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए काम का सुख लेते हैं। भारतीय संस्कृति में सन्तान का स्थान महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसी के माध्यम से मानव को अपने पितृ-ऋण से मुक्ति मिलती है और जिससे उसे परम मोक्ष की प्राप्ति होगी। सन्तान ही मानव की समस्त आशाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र होती है। राजा जनक अपनी पुत्रियों के विषय में कहते हैं– ''मेरे चिरसंचित पुण्यों का चतुर्वर्ग है ये मेरी सन्तानें। सीता मेरी दुःख-मुक्ति की प्रयोजन संज्ञा..... ।''[१०] सन्तान से विछोह माता-पिता के लिए असह्य होता है। ऐसी ही दशा राजा दशरथ की तब होती है, जब कैकेयी राम को वन भेजने का वर माँगती हैं। उस समय राजा दशरथ की स्थिति पुत्र-वियोग में कारुणिक हो जाती है– ''कह दो कि तुमने मिथ्याभिनय किया था। राम-वनवास का प्रसंग परिहास मात्र था। कह दो कैकेयी कि राम तुम्हारे प्राणाधिक प्रिय हैं। उनके लिए ऐसा असम्भव क्रूर चिंतन।''[११] संस्कृति में जीवन-मूल्य तो आते ही हैं, साथ ही; अन्य अनेक तत्त्व भी आते हैं। दिनकर जी के अनुसार– ''जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, यह संस्कृति रसायन की प्रक्रिया से तैयार हुई है एवं उसके भीतर अनेक औषधियों का रस समाहित है।''[१२]

भारतीय संस्कृति में विवाह को केवल भौतिक रूप से स्वीकार न करके उसे आत्मा से जोड़कर देखा गया है। 'अरुंधती' में विश्वजीत अपने प्रणय को इसी आध्यात्मिक रूप में व्याख्यायित करता है–''तुम्हें भौतिक रूप से प्राप्त कर लेना मेरी सिद्धि नहीं। तुम्हारी आत्मा के प्रत्येक अंश में मेरा वास हो और मेरे हृदय की हर शिरा में तुम अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ प्रवाहित रहो, यही हमारा सबसे सार्थक मिलन होगा।''[१३] महामना का यह कथन– ''आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्य से बड़ा कोई आधार नहीं और संकल्प-शक्ति से बड़ी कोई सम्पदा नहीं।''[१४] इसी सन्दर्भ में 'अरुंधती' में उक्त कथन मिलता है– ''आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त होना इतना सहज नहीं। इस सूक्ष्म तथ्य को जानने की पात्रता होनी चाहिए। दृढ़ निश्चय, निर्लोभ चेतन, कठोर विराग और अपार साहस ही आत्मज्ञान की सबसे बड़ी निधि है।''[१५] भारतीय संस्कृति में कहा जाता है कि जो व्यक्ति शिक्षित होंगे, वे समाज के लिए हितकारी होंगे। लेकिन जो व्यक्ति अशिक्षित होकर वेद-पुराणों की बातें करें, वह समाज के लिए हानिकारक साबित हो सकते हैं। इनके उपन्यास में यह पंक्ति मिलती है– ''अविद्या में लिप्त मनुष्य संस्कृति की बात करने लगे, तो अंधा अंधों को राह दिखाए, ऐसी ही हास्यास्पद चेष्टा प्रतीत होती है।''[१६]

प्राचीन धर्म-ग्रन्थों को देखने पर ज्ञात होता है कि माता-पिता आदि गुरुजनों का आज्ञापालन, वंदन और सेवा-पूजा करना– यह भी हिन्दू संस्कृति का एक प्रधान अंग है। इसका प्रसंग श्रुति, स्मृति, गीता, रामायण, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थों में कूट-कूट कर भरा है। उन स्थलों को पढ़ने से रोमांच होने लगता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। श्रुति कहती है– ''मातृदेवो भव! पितृ देवो

भव! आचार्य देवो भव! अतिथि देवो भव!' प्राचीन काल से ही गुरु का विशिष्ट महत्त्व रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु को भगवान् का दर्जा दिया जाता है। यह संस्कृति की अन्यतम विशेषता है। भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता को ऋता शुक्ल ने अपनी रचनाओं में आत्मसात् किया है। उनके उपन्यासों के पात्रों में अपने गुरुजनों और अपने से बड़ों के प्रति सम्मान और आदर का भाव है। नन्दिनी जब अपने विवाह की चर्चा पर अपने पिता के बड़े भाई राय वीरेश्वर को उल्टा जवाब देती है, तो उसकी माँ प्रतिवाद करती हैं– ''बड़ों से उलटकर जवाब नहीं देते अरुन! आखिर जेठजी ही इस घर के कर्ता-धर्ता ठहरे!''[१७]

भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर से महान माना गया है। यही भावना जागेश्वरी देई के व्यवहार में श्री कृष्णकान्त के लिए दिखाई देती है– ''डॉ. शर्मा पहली बार उनके घर आये थे। 'अरे, माता जी! आपने क्यों कष्ट किया? आइए बैठिए ना।' / मेरी नंदू के गुरु हो बेटा / हमारे लिए तो परमपूज्य हो तुम।।''[१८]

ईश्वर सर्वव्यापी या सर्वशक्तिमान है। वह एक अमूर्त्त है। ऋता शुक्ल के उपन्यासों में ईश्वर के प्रति यही निष्ठा और विश्वास मुखरित हुआ है। उनके पात्रों की ईश्वर के प्रति असीम श्रद्धा और विश्वास है– ''जो अघटित हुआ हैं, उसे विधाता पुरुष की इच्छा मानकर ही स्वीकार करना होगा। इस जड़-चेतन, जीव-जगत् की सम्पूर्ण सत्ता का सूत्रधार कोई और है। हमें निरभिमानी मन से इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा।''[१९] अरुंधती में ईश्वर को ही सर्वज्ञ माना गया है। उसके अतिरिक्त इस संसार में कोई कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। ''ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं.....उस सच्चिदानंद परब्रह्म की पूर्णता में कहीं कोई शंका नहीं। गुणन-अवगुणन– चाहे जिस विधि से उस के परिमापन का प्रयत्न किया जाए, वह सर्वतोभावेन पूर्ण ही होगा।''[२०] भारतीय परम्परानुसार, हम अपने प्रत्येक शुभ कार्य का भगवान् के नाम से आरम्भ करते हैं। सुबह उठते ही ईश्वर का नाम लेते हैं व पूजा-पाठ करते हैं। यह ईश्वर में हमारी गहन निष्ठा का परिचायक है। 'कितने जनम वैदेही' में नन्दिनी भी अपने साक्षात्कार के समय ईश्वर को याद करके इसी परम्परा का निर्वाह करती है। तुम्हारे (जागेश्वरी आजी) ठाकुर जी का ध्यान करके हमने भी आखिरकार अपने मन को मजबूत कर ही लिया– ''हे मेरी बड़की आजी के प्रिय ठाकुर जी! प्यारी दुर्गा माता! मेरी प्रतिष्ठा अब आप ही लोगों के हाथ है। कहीं ऐसा न हो कि जीभ लटपटाकर रह जाए और आवाज ही नहीं निकले.....! यकीन मानो! आजी! उसी कोसलाधीश ने मेरा उद्धार किया।''[२१]

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही शिक्षा का अग्रिम स्थान रहा है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य मानवीय गुणों को आत्मसात् करने में सफल होता है। ऋता शुक्ल के उपन्यास में उक्त कथन द्रष्टव्य है। 'अरुंधती' में श्रीधर शिक्षा की महत्ता को इस प्रकार व्याख्यायित करता है– ''ज्ञान-विवेक का उजाला मन में न हो, तो दौलत ठीकरा हो जाती है– शिक्षा और ज्ञान के इसी महत्त्व को समझते हुए 'अरुंधती' में राघवानंद जी, शुभंकर जी से कहते हैं– 'मैं सन्यस्त प्राणी हूँ। मेरी कोई भौतिक जागीर नहीं। लेकिन अपने पूर्वजों के पुण्य-प्रताप और बाबा विश्वनाथ की कृपा से अक्षय ज्ञान में अहर्निश अवगाहन करके जो थोडी-बहुत अनुभूतियों की रत्न सँजोई है, वह तुम्हें सौंपकर निश्चिन्त हो जाना चाहता हूँ।''[२३] शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए ऋता शुक्ल के उपन्यास में एनी बेसेण्ट का कथन– ''पहले पढ़ाई-लिखाई के संस्कार देने होंगे। धीरे-धीरे बेटियाँ अपने पैरों पर खड़ी होंगी और उनके अपने विचार होंगे। फिर; समाज में उनका स्थान बनता चला जाएगा।''[२४] अतः जैसे-जैसे शिक्षा का विस्तार होगा, स्त्री जाति को भी अपने विवेक से अपना भला-बुरा सोचने का अधिकार अपने आप प्राप्त होता चला जाएगा। भारतीय प्राचीन शिक्षा-पद्धति

में छात्रों के आन्तरिक गुणों को विकसित करने के लिए उन्हें वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता है। उनके आचरण-व्यवहार का पता चलता है। यह कथन द्रष्टव्य है– ''प्रत्येक व्यक्ति को उचित और अनुचित आचरण का ज्ञान दिया जाए तथा वह अपने चरित्र को ऊँचा उठाए– यह बात मालवीय जी के निर्भीक, सात्विक एवं उदार आचरण एवं व्यवहार से स्पष्ट है। इसीलिए वह अपने सभी छात्रों से यही कहते थे कि चरित्र ऊँचा उठाओ, ब्रह्मचर्य का पालन करो। उन्होंने लिखा है कि ब्रह्मचर्य श्रम के जिन विद्यार्थियों के चरित्र निष्कलंक पाये जायेंगे तथा जो निश्चित पाठ्यक्रम समाप्त कर लेंगे, वे स्नातक पद पाने के अधिकारी समझे जायेंगे।''[२५]

निष्कर्ष– भारतीय संस्कृति के मूल में 'अनेकता में एकता' का भाव उसे विश्व की महान संस्कृति बना देता है, अर्थात् वह सभी के सुख की कामना करती है और समस्त विश्व को एक परिवार के रूप में सहेजती है। मानव का सर्वांगीण विकास ही भारतीय संस्कृति का मुख्य उद्देश्य था, है और रहेगा। मानव ही सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र होता है। मानव सर्वश्रेष्ठ है। इस विश्व में प्रत्येक वस्तु मानव के लिए ही है। भारतीय संस्कृति में मानव को ही केन्द्र-बिन्दु माना गया है। मानव ने ही साहित्य में भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत– वेद-पुराण आदि का सृजन किया है। भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान है और उसमें आध्यात्मिक संस्कारों को प्रधानता दी गई है। भारतीय साहित्य की बात की जाये और भारतीय साहित्य को यदि वैदिक वाङ्मय से लेकर आज तक देखा जाये, तो सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन और सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्पाठ साहित्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है। संस्कृति की जड़ों से जुड़ा हुआ समाज ही परम्परा का पानी पीकर पुष्पित-पल्लवित होता है और सृजनात्मक फल प्राप्त होता है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. नगेन्द्र– नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ, पृ. सं. ८०
२. दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, पृ. सं. ७५
३. डॉ. ज्ञान प्रकाश– हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन, पृ.सं. ४९
४. ऋता शुक्ल-अरुंधती, पृ. सं. २०
५. ऋता शुक्ल - कब आओगे महामना, पृ. सं. ११४
६. वही– पृ. सं. १०५
७. वही– पृ. सं. १०६
८. ऋता शुक्ल-अरुंधती, पृ. सं. ११०
९. ऋता शुक्ल– कब आओगे महामना, पृ. सं. २०७
१०. ऋता शुक्ल– कितने जन्म वैदेही, पृ. सं. ४२
११. वही– पृ. सं. ७३
१२. दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, पृ. सं. ५
१३. ऋता शुक्ल– अरुंधती, पृ. सं. ४८
१४. ऋता शुक्ल– कब आओगे महामना, पृ. सं. ५६
१५. ऋता शुक्ल– अरुंधती, पृ. सं. १४१
१६. ऋता शुक्ल– कब आओगे महामना, पृ. सं. १७५
१७. ऋता शुक्ल– कितने जन्म वैदेही, पृ. सं. २६
१८. वही– पृ. सं. १२७
१९. ऋता शुक्ल– अरुंधती, पृ. सं. १९
२०. वही– पृ. सं. ११
२१. ऋता शुक्ल– कितने जन्म, पृ. सं. ११५
२२. ऋता शुक्ल– अरुंधती, पृ. सं. २०
२३. वही– पृ. सं. ७०
२४. ऋता शुक्ल– कब आओगे महामना, पृ. सं. १८५
२५. पं. सीताराम चतुर्वेदी– महामना पं. मदन मोहन मालवीय, पृ. सं. १३५

नयी कहानी का रचना-संसार और प्रवृत्तियाँ

अरविन्द तिवारी*, डॉ. प्रेमशंकर सिंह, डॉ. जयश्री बंसल*****

सामान्य तौर पर १९५० ई. से १९६० ई. तक के बीच लिखी गई कहानियों को नई कहानी के अन्तर्गत माना जाता है, किन्तु यह नई कहानी आन्दोलन का सतही विभाजन है। नयी कविता के नाम पर नयी कहानी का नामकरण नहीं किया गया, बल्कि अपने समय के यथार्थ को नये ढंग से व्यक्त करने की आंतरिक बेचैनी ने नई कहानी की जमीन तैयार की। नयी कहानी के नामकरण के सन्दर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है– ''नयी कविता की तरह नयी कहानी नाम की भी कोई चीज है क्या? और हम पाते हैं कि नयी कहानी नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला है। इससे क्या समझा जाए? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं कि कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है कि स्वयं कहानी के विकास-क्रम में यह नयापन बहुत स्पष्ट नहीं है कि कविता की तरह कहानी के नयेपन को अलगाने का प्रयत्न ही नहीं हुआ कि कहानी के क्षेत्र में पुरानी प्रवृत्तियाँ अब कहीं अवशिष्ट नहीं रहीं, जो नई कहानी की संज्ञा की आवश्यकता प्रतीत हो?''[१]

नयी कहानी का नयापन उसकी विद्रोह-चेतना में अन्तर्निहित है। १९४७ ई. में देश आजाद होता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में भयंकर रक्तपात ने मानवता को शर्मसार कर दिया। मानव-जीवन के सभी मूल्य इस समय विघटित होते दिखाई देते हैं। इस समय पाकिस्तान से लाखों शरणार्थी भारत में आये थे। विभाजन में कत्ल, बलात्कार और अत्याचार ही नहीं हुए थे, बल्कि व्यक्ति की आत्मा तक पूरी तरह चटक गई थी और उसके सारे मूल्य बर्बर हालात में धराशायी हो गए थे। रक्त में डूबे व्यक्तियों के काफिले देश में इधर से उधर आये-गए, करोड़ों जिन्दगियों के विश्वासों का ध्वंस हो गया था। बाहर से आने वाले शरणार्थी वे थे, जिनके मानवीय मूल्यों के साथ-साथ उनके विश्वास की भी हत्या हुई थी। इसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया।

कमलेश्वर ने बदली हुई मानसिकता का जिक्र करते हुए कहा है– ''वह त्यागी पीढ़ी, जो १४ अगस्त की रात के ग्यारह बजकर उनसठ मिनट तक बहुत संयमी, आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, सच्चरित्र और साधु थी, एक मिनट बाद ही स्वार्थलोलुप अत्याचारियों में बदल गई। चारों तरफ एक नया राजनीतिक वर्ग पनपने लगा, जो जोंक की तरह जनता का रक्त चूसने लगा और अपने लिए सुविधा बटोरने में लग गया। स्वार्थपरकता, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, कालाबाजारी, बेईमानी आदि का जो दौर चला, उसने जनता को मोहभंग की स्थिति में जबरदस्ती खड़ा कर दिया।''[२] देश की आजादी को लेकर आम जनता के मन में जो स्वप्न थे, वे चटकते दिखाई देते हैं। आम जनता का, लेखक का सत्ता से मोहभंग होता है।

नयी कहानी का लेखक सोचता है कि उसकी प्रतिबद्धता केवल समाज के प्रति होनी चाहिए। अतीत का गुणगान या भविष्य को रामराज्य बनाने की बात करना बेकार है। सम्भवत: इसीलिए इस युग में ऐतिहासिक कहानियाँ नहीं लिखी गयीं। लेखक सिर्फ वर्तमान का वाचक बन

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, दयाल बाग एजुकेशनल इंस्टिट्यूट, आगरा, उत्तर प्रदेश
** सहायक प्राध्यापक– दयाल बाग एजुकेशनल इंस्टिट्यूट, आगरा, उत्तर प्रदेश
*** सहायक प्राध्यापक– देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश

गया। भोगा हुआ यथार्थ ही उसकी रचना की अन्तर्वस्तु बन गयी। बगैर किसी दर्शन या विचारों का चश्मा लगाए हुए तत्कालीन समाज और उसकी व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों पाठक के सामने रखा गया।

स्वतंत्रता से पूर्व साहित्यकार की मूल समस्या राष्ट्रीय-मुक्ति की थी। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीयों के मन में आशा की नई किरणें तथा सुखद भविष्य की आकर्षक हिलोरें उठने लगी थीं, किन्तु भारत-पाक विभाजन, अवसरवाद, भ्रष्टाचार, बेईमानी आदि का परिणाम यह हुआ कि चारों ओर कुण्ठा, निराशा, संत्रास व्याप्त होने लगा। नये कहानीकारों ने इन स्थितियों से सीधा साक्षात्कार किया। औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण के सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों में जो तीव्र परिवर्तन हो रहा था, उससे कथा साहित्य अप्रभावित नहीं रह सकता था। नयी कहानी का कहानीकार मनुष्य के खोते हुए आत्मसम्वेदनाओं की तलाश बड़ी सतर्कता से करता है।

नयी कहानी की चर्चा सबसे पहले भैरव प्रसाद गुप्त के सम्पादन में प्रकाशित 'कहानी' पत्रिका से मानी जाती है। 'कहानी' पत्रिका के मई, १९५४ के अंक में कृष्णा सोबती की कहानी 'बदली बरस गयी' और मार्कण्डेय की कहानी 'मन का मोड़' प्रकाशित होती है। अगस्त, १९५४ के अंक में निर्मल वर्मा की कहानी 'बैगटिल' तथा महेन्द्र भल्ला की कहानी 'बाँकेलाल' प्रकाशित होती है। नबम्बर, १९५४ के अंक में अमरकांत की कहानी 'दोपहर का भोजन' और दिसम्बर, १९५४ के अंक में मोहन राकेश की कहानी 'सौदा' प्रकाशित हुई। जनवरी, १९५५ के अंक में विष्णु प्रभाकर की कहानी 'धरती अब भी घूम रही है', रांगेय राघव की कहानी 'गदल', कृष्णा सोबती की कहानी 'बादलों के घेरे' और कमलेश्वर की कहानी 'कस्बे का आदमी' प्रकाशित हुई। इन कहानियों के विषय में कमलेश्वर की टिप्पणी है कि– ''नयी कहानी' आग्रहों की कहानी नहीं है, प्रवृत्तियों की हो सकती है और उसका मूल स्रोत है– जीवन का यथार्थबोध। और इस यथार्थ को लेकर चलने वाला वह विराट मध्य और निम्न मध्यवर्ग है, जो अपनी जीवनी-शक्ति से आज के दुर्दान्त संकट को जाने-अनजाने झेल रहा है। उसका केन्द्रीय पात्र है– जीवन को वहन करने वाला व्यक्ति। नयी कहानी में व्यक्ति की सत्ता का रेखांकन इस बात का द्योतक है कि समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों के बारे में नया कहानीकार सापेक्षता के सिद्धान्त को स्वीकार करके चलता है।''[३] नयी कहानी जिन प्रश्नों को पाठक के सामने उठाकर रखती है, वे हैं– बदलते स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध, मध्य वर्ग की कुण्ठा, अवसाद, अकेलापन, अजनबियत, व्यर्थताबोध और प्रेम है। नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख हस्ताक्षरों में निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती आदि शामिल हैं। इन सभी कहानीकारों की कहानियों में उपर्युक्त प्रश्न विद्यमान हैं।

मध्यवर्ग की मोहभंग की स्थिति, खण्डित परिवार, टूटते जीवन-मूल्य– ये ऐसी सच्चाइयाँ हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। नई कहानी ने अपने कथ्य का विषय यहीं से उठाया। वही महसूस किया, जो मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतर्मन में उद्घाटित होता है। कमलेश्वर के शब्दों में– ''नई कहानी यात्रा-घटनाओं या संयोगों में से न होकर प्रसंगों की आंतरिक प्रतिक्रियाओं के बीच होती है और सम्वेदना के सूक्ष्म तन्तुओं पर धीरे-धीरे आघात करती हुई वह एक सम्पूर्ण अनुभव से गुजर जाती है। इसलिए वह कथा-यात्रा नहीं, पाठक के उस अनुभव से स्वयं की यात्रा हो जाती है। नई कहानी की यही आन्तरिक उपलब्धि है कि वह अनुभव के

धरातल पर सार्थक होती है, वर्णन या कहानी के धरातल पर नहीं।''[४]

२०० वर्षों की लम्बी अवधि के बाद देश आजाद होता है। आजाद भारत में महानगरों का विकास और पूँजीवादी सभ्यता का प्रसार लगभग एक साथ हुआ। गाँव कस्बे में और कस्बे शहरों में तब्दील होने लगे। तीव्र औद्योगीकरण के कारण जीवन के अनेक क्षेत्रों में बदलाव आने शुरू हो गए, जिनसे महानगरों में रह रहे व्यक्ति का व्यक्तित्व भी अछूता नहीं रह सका। महानगरीय बोध से उत्पन्न कृत्रिमता, यांत्रिकता, सम्वेदनहीनता, निर्ममता और तटस्थता– नई कहानी के मुख्य वर्ण्य विषय हैं और ये ही नई कहानी को प्रामाणिकता भी प्रदान करते हैं।

नई कहानी में जो अजनबीपन या अकेलापन दिखाई देता है, उसका कारण सिर्फ महानगरीय बोध से उत्पन्न कृत्रिमता, यांत्रिकता, सम्वेदनहीनता या तटस्थता ही नहीं है, बल्कि संयुक्त परिवारों का विघटन भी है। पिछली पीढ़ी के प्रति घृणा, अविश्वास और पारस्परिक सम्वादहीनता नयी कहानी के मुख्य विषय हैं। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को हेय नजरों से देखती है, परिणामस्वरूप व्यक्ति परिवार में स्वयं को अधिकाधिक अजनबी एवं अकेला महसूस करता है। अजनबीपन का एक मुख्य कारण मनुष्य का बनावटी व्यवहार भी है। व्यक्ति जिन लोगों को पसन्द नहीं करता, उनसे भी स्वार्थवश सम्बन्ध कायम रखता है। परिणामत: व्यक्ति के व्यवहार में कृत्रिमता आती है। व्यवहार की इस कृत्रिमता के कारण व्यक्ति पहले परिवार से, फिर समाज और अंत में खुद से भी अजनबी हो जाता है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू अपने ही घर में अजनबी हो जाते हैं– ''गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा... गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इसी मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब ही कुण्ठित हो चुप हो गए।''[५] गजाधर बाबू चाहकर भी अपने परिवार के साथ घुल-मिल नहीं पाते हैं, क्योंकि नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के मध्य विचारगत अन्तराल काफी गहरा है।

ज्ञानरंजन की 'पिता', 'सम्बन्ध' और 'शेष होते हुए' कहानियों में पारिवारिक रिश्तों के बीच खत्म होते मूल्य को दिखाया गया है। मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी' तथा 'सुहागिनें' कहानियों में भी अलगावबोध और अजनबीपन के दर्शन होते हैं। मोहन राकेश की कहानी 'अपरिचित' में भी अकेलापन दिखायी देता है। महानगरीय बोध से उत्पन्न अकेलेपन को भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में देखा जा सकता है– ''मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों से छल-छल आँसू बहने लगे। दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछती, पर वे बार-बार उमड़ आते, जैसे वर्षों के बाँध तोड़कर उमड़ आये हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, मगर आँसू बरसात के पानी की तरह थमने में ही नहीं आते थे।''[६] अकेलापन नई कहानी में एक नयी प्रवृत्ति के रूप में दिखलाई देता है। इस अकेलेपन का प्रमुख कारण संयुक्त परिवारों का टूटना, महानगरीयबोध, अस्तित्ववादी दर्शन और व्यक्ति की बेरोजगारी है।

आधुनिकताबोध नयी कहानी आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्तियों में से एक है। आधुनिकता औद्योगिक क्रांति से जुड़ी हुई है और नवजागरण की उस धारा से भी उसका सम्बन्ध है, जिसमें अपनी अस्मिता को नये सिरे पर व्याख्यायित और परिभाषित किया गया है। यह धारणा गलत है कि आधुनिकताबोध का सम्बन्ध शहरी परिस्थितियों से ही है। ग्राम-कथाकारों ने भी

आधुनिकता को सही सन्दर्भों में व्याख्यायित किया है। इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– ''यदि आधुनिकता का बोध नगरक्षेत्र से गहरे स्तर पर जुड़ा होता है, तो 'पूस की रात' या 'कफन' में इसे कैसे खोजा और पाया जा सकता है?... परिवेश कहीं का भी हो सकता है, देहात का भी और कस्बे का भी, नगर का भी हो सकता है, महानगर का भी, पहाड़ का भी, रेगिस्तान का भी।''[७]

नई कहानीधारा के कहानीकारों की मुख्य विशेषता यही है कि वे समाज के जिस वर्ग से आते हैं, उसका चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में पूरी तटस्थता एवं निष्पक्षता के साथ किया है। १९४७ ई. में देश आजाद होता है, किन्तु देश की आजादी के साथ देश का विभाजन भी जुड़ा हुआ है। लाखों की संख्या में लोगों का विस्थापन होता है। साम्प्रदायिकता की आग में पूरा देश खून से लथपथ हो जाता है। आजाद भारत के सम्बन्ध में देश के राजनेताओं ने जो स्वप्न आम जनता को दिखाये थे, वे चटकते हुए दिखाई देते हैं। फलत: लेखक का सत्ता से मोहभंग होता है और उसकी कहानियों में तत्कालीन सत्ता के खिलाफ व्यंग्य एवं आक्रोश देखने को मिलता है। नई कहानी न तो अतीत का गुणगान करती है और न ही सुखमय भविष्य की कल्पना करती है। नई कहानीधारा के कहानीकार को महसूस होता है कि उसकी प्रतिबद्धता सिर्फ स्वयं के प्रति है। भोगा हुआ यथार्थ ही उसकी रचना की अन्तर्वस्तु बन जाती है। देश में महानगरों के तीव्र विकास के कारण लोग रोजगार की खोज में गाँव से शहर आते हैं। शहर में आकर उनका अपना परिवार बसता है, जिसमें सिर्फ पति-पत्नी और बच्चे ही आते हैं। माँ-बाप, भाई-बहन, दादा-दादी से व्यक्ति का रिश्ता खत्म होने लगता है। संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण शहर में एकल परिवार का चलन बढ़ता है। समाज में रिश्तों के खत्म होते मूल्य को नई कहानी प्रमुखता से हमारे सामने लाती है।

व्यर्थताबोध का मुख्य कारण व्यक्ति का आर्थिक दृष्टि से कमजोर होना है। गाँवों में परिवार के बुजुर्गों के हाथ में ही मुख्य आर्थिक स्रोत रहता था, अत: परिवार के सदस्य उनकी हर इच्छा या अनिच्छा का ख्याल करते थे। लेकिन शहर में रहने वाले बूढ़ों की स्थिति दयनीय हो गई है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू नौकरी से रिटायर होने के बाद घर के बाकी सदस्यों के लिए फालतू हो जाते हैं, क्योंकि वे परिवार की आर्थिक स्थिति में कोई योगदान नहीं दे सकते थे।

ऊब एवं व्यर्थताबोध की भावना सिर्फ बुजुर्गों में ही नहीं पायी जाती है, वरन् देश की शिक्षित युवा पीढ़ी में भी देखने को मिलती है। नौकरी के अभाव में शिक्षित युवा वर्ग अपने आप को बेकार महसूस करता है। फलत: उसके भी मन में व्यर्थताबोध की भावना घर कर जाती है।

मृत्युबोध एवं संत्रास को नयी कहानी ने प्रमुखता से चित्रित किया है। वैसे तो मृत्यु जीवन का एक अटल सत्य है, फिर भी; व्यक्ति मृत्यु के भय से आक्रांत रहता है। मनुष्य स्वयं को सर्वाधिक सुरक्षित परिवार में करता है, किन्तु जब परिवार के ही सदस्य व्यक्ति की अनदेखी करने लगते हैं, तो व्यक्ति के मन में असुरक्षा की भावना घर कर जाती है। यह असुरक्षाबोध ही मृत्युबोध का कारण है। महानगरों में रहने वाले व्यक्ति की जीवन-शैली कृत्रिम हो जाती है। लोगों के बीच में रहकर भी वह अपने आप को अजनबी महसूस करता है। अजनबीपन व अकेलेपन के कारण व्यक्ति के मन में नकारात्मक विचार आते हैं और वह मृत्युबोध से ग्रसित रहता है। भीष्म साहनी की कहानी 'दहलीज' का नायक कहता है– ''मरने से पहले इंसान किसी ऐसी

जगह पहुँच जाता है, जहाँ जिन्दगी का दखल नहीं रह जाता। एक तरह की ड्यौढ़ी, जो न घर के अन्दर है, न बाहर। जिन्दगी और मृत्यु के बीच इंसान इसी ड्यौढ़ी में डोलता रहता है। मेरा बाप तीन बरस तक इसी ड्यौढ़ी में डोलता रहा था। यहाँ सारा वक्त झुटपुटा-सा छाया रहता है और हर चीज अपनी स्पष्टता खो चुकी होती है। न अँधेरा, न उजाला, न जिन्दगी, न मौत।''[८] कहानी का नायक मृत्यु के भय से इतना आक्रान्त है कि वह टेलीफोन की घण्टी बजने पर टेलीफोन को नहीं छूता है। समाचार-पत्र में मृत्यु की खबर न छपी हो, इसलिए वह अखबार पढ़ने से कतराता है। निर्मल वर्मा की कहानी 'कुत्ते की मौत' के अधिकांश पात्र मृत्युबोध की भावना से आशंकित रहते हैं।

मृत्युबोध एवं संत्रास नयी कहानी में बाहर से आरोपित दर्शन या विचार मात्र नहीं है, बल्कि यह उनके युग का यथार्थ है। देश का बेरोजगार युवा वर्ग अपने भविष्य को लेकर आशंकित रहता है, परिणामस्वरूप वह संत्रास की भावना से आक्रांत रहता है। जीवन जीने के प्रति निराशा ही मृत्युबोध का कारण है। बदली हुई सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति स्वयं को असहाय व असमर्थ पाता है।

नयी कहानी की भूमिका में कमलेश्वर कहते हैं– ''आज का मनुष्य आसन्न संकट और अपनी संश्लिष्ट परिस्थितियों की ओर अभिमुख है। उसके अस्तित्व के लिए केवल अणु-युद्ध और मौत का खतरा नहीं है– यह मौत तो बड़ी बेकार और क्रूरता से भी अर्ध प्राकृतिक मौत है। इससे भी बड़ी और बेकार मौत एक और है– वह आदमी के अपने विचारों, जीवन-स्रोतों, स्वाधीनता, निर्णय-शक्ति और जीवन-तंतुओं की मौत है। भयावहता तो इसी मौत की है। संत्रास और यातना भी इसी मौत के कारण है।''[९] मोहन राकेश की 'जख्म' और 'ठहरा हुआ चाकू', कमलेश्वर की 'मुरदों की दुनियाँ' एवं राजेन्द्र यादव की 'सम्बन्ध' कहानियों के पात्र मृत्युबोध व संत्रास की भावना से पीड़ित हैं। प्रस्तुत कहानियों के पात्रों के मन में जीवन के प्रति लगाव तो है, किन्तु उन्हें मृत्यु का भय बराबर सताता रहता है।

नई कहानी बदलते समय के साथ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में हो रहे परिवर्तनों को रेखांकित करती है। देश की आजादी के पहले महिलाओं की दशा अत्यन्त चिंताजनक थी। परिवार में या समाज में स्त्रियों की महत्ता नगण्य थी। लेकिन स्वतन्त्र भारत में महिलाएँ शिक्षित होने लगीं। घर से निकलकर स्त्री भी नौकरी करने लगती है। आत्मनिर्भर होने के कारण स्त्री अपने खिलाफ हो रहे अन्याय का खुलकर विरोध करती है। परिणामस्वरूप पुरुष का अहं जाग्रत होता है और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में दरार के मुख्य कारण बदलते सामाजिक सन्दर्भ, अति महात्त्वाकांक्षा एवं तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति व शादी के प्रति अविश्वास रहा है।

राजेन्द्र यादव की 'किनारे से किनारे तक', 'टूटना' तथा मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी' इसी भावबोध की कहानियाँ हैं। स्त्री अब पुरुष के अधीन नहीं रही। अब उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। दोनों में से किसी की भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को चोट पहुँचती है, तो रिश्तों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। श्रीकांत वर्मा की कहानी 'ट्यूमर' में पति इसी तनाव का शिकार है। पुरुष प्राचीन काल से ही स्त्री पर अपना पूर्ण अधिकार चाहता है। समाज में वह प्रगतिशील बनकर नारी-स्वतंत्रता पर उपदेश तो दे सकता है, किन्तु भीतर से वह स्त्री को अपने अधीन देखना ही पसन्द करता है।

स्त्री-पुरुष के बीच में तीसरे व्यक्ति की मौजूदगी भी दाम्पत्य-जीवन में तनाव की मुख्य

वजह है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'किनारे से किनारे तक' में पति-पत्नी के पूर्व प्रेमी के कारण हमेशा मानसिक अवसाद से ग्रस्त रहता है। पुरुष कितना भी प्रगतिशील हो, वह कभी भी अपनी पत्नी को किसी अन्य से प्रेम करने की इजाजत नहीं दे सकता। मन्नू भण्डारी की कहानी 'तीसरा आदमी' भी इसी भावबोध पर लिखी गई है। पति बाहर से अपनी पत्नी और उसके प्रेमी के सम्बन्धों पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता है, लेकिन ऑफिस से छुट्टी लेकर वह दरवाजे के बन्द सुराखों में झाँकता है, जिससे वह जान सके कि उसकी पत्नी और उसका प्रेमी क्या कर रहे हैं? कमलेश्वर की कहानी 'दु:खों के रास्ते' तथा 'जो लिखा नहीं जाता' में पुरुष की इसी शंकालु प्रवृत्ति व पत्नी के पूर्व सम्बन्ध को न सह पाने का चित्रण हुआ है।

वास्तव में; स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तो युगीन परिवेश, तात्कालिक स्थितियाँ, वातावरण और व्यक्ति की मानसिक बनावट के आधार पर निर्मित होते हैं। रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी' के पति को यह ज्ञात रहता है कि उसकी पत्नी किसी दूसरे से प्रेम करती है, लेकिन वह सहज बना रहता है। आर्थिक उन्नति के लिए भी कई पति अपनी पत्नी का उपयोग करते हैं। पति पत्नी को अपने विकास की सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल करता है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश की 'सुहागिनें', 'फौलाद का आकाश' कहानियाँ इसी विषय पर लिखी गई हैं।

नयी कहानी आन्दोलन समकालीन मान्यताओं, मूल्यों, रूढ़ियों आदि सभी का खण्डन करता है। पुरानी कहानी का लेखक अपने समक्ष कोई विचार रख लेता था और उसी के अनुसार कहानी की रचना करता था, किन्तु नयी कहानी का लेखक पहले से ही किसी तरह की भूमिका नहीं बनाता है। वह कहानी को रचता नहीं है, बल्कि अपने अनुभवों को कहानी में रूपांतरित कर देता है।

सन्दर्भ-सूची

१. नामवर सिंह– कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८, पृ. १३
२. कमलेश्वर– नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६९, पृ. ७०
३. कमलेश्वर– नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६९, पृ. ७४-७५
४. कमलेश्वर– नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६९, पृ. ७१-७२
५. उषा प्रियंवदा– जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. ९८
६. भीष्म साहनी– मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली, २०१०, पृ. २१
७. इंद्रनाथ मदान– आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७३, पृ. ७६
८. भीष्म साहनी– मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली, २०१०, पृ. १३
९. कमलेश्वर– नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६९, पृ. १७४

●

बटरोही की कहानी

'मुख्यधारा' में भारतीय राजनीति एवं मीडिया का यथार्थ

गिरजेश कुमार*

बटरोही जी का जन्म २५ अप्रैल, १९४६ ई. को उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के छाना नामक गाँव में हुआ था। इनका पूरा नाम लक्ष्मण सिंह विष्ट 'बटरोही' है। यद्यपि इन्होंने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन-कार्य किया है, जिसमें आलोचना, उपन्यास तथा कहानी प्रमुख है, परन्तु इनकी लोकप्रियता का आधार इनका कथाकार रूप ही रहा है। मुख्य रूप से इन्हें एक कहानीकार के रूप में जाना जाता है। इनकी कहानियों में सड़क का भूगोल, अनाथ मुहल्ले का ठुलदा, कटसने, हस्तान्तरण, प्रेत, किम्पुरुष, काल लैपपोट और मुख्यधारा महत्त्वपूर्ण बताई जाती है। गोपाल राय ने इनकी कहानियों के बारे में कहा है– ''बटरोही की कहानियाँ गढ़वाल के पहाड़ी जीवन के यथार्थ रूप से जुड़ी हुई हैं।''[१]

लेकिन बटरोही जी के बारे में गोपाल राय की उक्ति पूरी तरह से उचित प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि उनकी बहुत सारी ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें पहाड़ के अलावा भी बहुत कुछ है। हाँ! यह तो स्वीकारा जा सकता है कि उन्होंने बार-बार पहाड़ी गाँवों का जिक्र अपनी कहानियों में किया है, पर उनके माध्मय से पूरे भारत की ग्रामीण चेतना, वहाँ की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हुए भी दिखलाई देते हैं। एक अन्य स्थल पर गोपाल राय ने बटरोही की कहानी-कला पर निर्मम प्रहार करते हुए लिखा है– ''बटरोही के पास कोई गहरा अनुभव, जीवन-स्थितियों का तीखा एहसास, कोई तड़प, कोई कचोट, सुख या दु:ख की कोई सुकुमार सम्वेदना अथवा किसी सम्वेग की तीव्र अनुभूति नहीं है।''[२]

गोपाल राय की इस उक्ति के बारे में इतना तो नि:संदेह रूप से कह सकते हैं कि बटरोही की कहानी-कला के बारे में अपने विचार व्यक्त करते समय वह ऐसे पूर्वाग्रह से ग्रस्त दिखाई देते हैं कि उन्हें अच्छाई में भी बुराई दिखाई देती है। उनकी 'मुख्यधारा' कहानी के बारे में बात की जाए, तो गोपाल राय के तर्कों का खण्डन भी दिखाई देगा, जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने कहा है– ''बटरोही नई पीढ़ी के उन रचनाकारों में हैं, जो पीढ़ियों के बीच क्रमश: बदलती हुई मानसिकता को महसूस करते हैं और जीवन के विभिन्न सन्दर्भों के बीच इसे उकेरने और रेखांकित करने की कोशिश करते हैं।''[३]

'मुख्यधारा' बटरोही जी की बहुचर्चित कहानी होने के बावजूद भी वह लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सकी, जिसकी वह हकदार है। कहानी की कथावस्तु के केन्द्र में अल्मोड़ा जिले के चौखुरी कस्बे के धुरकी नामक गाँव को रखा गया है, जिसके माध्यम से भारतीय राजनीति और मीडिया के उस यथार्थ को उजागर किया गया है, जिसकी कथनी और करनी में अन्तर देखने को मिलता है। सरकार अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। अगर जरूरत पड़े, तो वह जनमानस की भावनाओं को भी कुरेद सकती है। जनमानस के देश-प्रेम जैसी भावनाओं के साथ भी सरकार खेलती है– ''युद्ध के समय सारा देश, सारे लोग आपसी भेदभाव को भूलकर, अपने देश की रक्षा के लिए वेतन तथा जेवर सरकार को दे दिए। उद्योगपतियों, किसानों और छोटे-बड़े व्यवसायियों ने भारी भरकम रक्षा-कोष स्थापित कर दिया और कलाकारों ने राष्ट्रीय सुरक्षा फण्ड हेतु जगह-जगह अपने प्रदर्शन किये।''[४]

* सहायक प्राध्यापक– हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गैरसैण, चमोली (उत्तराखण्ड)

कहानी की निम्न पंक्तियों के माध्यम से बटरोही जी ने भारतीयों में व्याप्त देश-प्रेम की भावना को बहुत ही मार्मिकता के साथ वर्णित किया है, जिस पर महात्मा गाँधी के 'असहयोग आन्दोलन' और 'खिलाफत आन्दोलन' का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लेकिन सरकार हमारे देश-प्रेम की भावना को हमारी कमजोरी समझने लगी है और बार-बार हमारी इसी दु:खती नस को दबाने का कार्य करने लगी है– ''सत्ताधीशों को देशवासियों की उस प्रतिक्रिया की उम्मीद नहीं थी। उनकी अपेक्षाओं से परे देश में एक नया जीवन आ गया। लाखों-करोड़ों रुपया जमा हो गया।''[५]

कुछ इसी प्रकार की स्थिति कोरोना-काल में भी देखने को मिली, जब सरकारी कर्मचारियों के खाते से पैसा काटा गया और उसके माध्यम से देश-सेवा की बात की गयी। बटरोही जी सरकार की मंशा पर सवाल उठाते हुए कहते हैं कि जब कभी देश की जनता सरकार के सामने शिक्षा, बेरोजगारी, आर्थिक स्थिति में सुधार आदि का प्रश्न उठाती है, तो उसके स्थान पर सरकार इसी युद्ध रूपी अस्त्र का प्रयोग करती है– ''भूख से व्याकुल लोग रोटी माँगते, बेरोजगार अपने लिए रोजगार के अवसर माँगते, प्रतिभाशाली लोग आर्थिक अनुदान माँगते, तो पहले उन्हें आश्वासन दिया जाता। पर पानी जब सिर तक पहुँचने लगता, तो पड़ोसी देशों के युद्ध की ललकार की दुंदुभी बजने लगती, रडार की बत्ती लाल हो जाती, उसका साइरन बज उठता और इस तरह पड़ोसी देश का युद्ध हमारे देश के सत्ताधीशों के लिए एक आवश्यक कवच बन गया।''[६]

इन पंक्तियों से ऐसा लगता है कि जो दशा देश की पहले थी, वही आज भी है। आज भी सरकार के सामने बेरोजगारी और मँहगाई की समस्या खड़ी है, पर उस ओर ध्यान देने के स्थान पर छात्रों पर लाठीचार्ज करवाया जा रहा है और उन्हें चुप रखने के तमाम साधन सरकार के द्वारा आजमाये जाते हैं। चाहे वह पटना में छात्रों पर बरसायी गयी निर्मम लाठियों का जिक्र हो या फिर प्रयागराज (इलाहाबाद) के छात्र-छात्राओं को घर से निकालकर उनके साथ बर्बरता या बुरी तरह से पीटने की घटना रही हो। कहानीकार ने लिखा है– ''यह ऐसा हथियार होता है कि देशवासी चुप हो जाते हैं और जनता के प्रतिनिधि वे लोग एकजुट होकर सुरक्षा कोष से अपना-अपना हिस्सा उगाहने के लिए संसद भवन और विधान सभाओं में एकत्र होने लगते हैं।''[६]

कहानीकार ने देश की इस बदहाली के लिए नेताओं को जिम्मेदार ठहराते हुए बताया है कि आज ऐसे नेता नहीं हैं, जो देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते थे। देश उनके लिए सर्वोपरि था, पर आज के नेताओं के लिए अपना और अपने परिवार का हित ही मुख्य है। देश उनके लिए गौंड़ है। वह केवल स्वार्थों की पूर्ति के साधन हेतु संसद और विधान सभाओं जैसे पवित्र स्थल, जो नीति-निर्धारण और देश तथा देशवासियों की बेहतरी के लिए बनाये गये हैं, उनका प्रयोग अपनी जेबों को भरने के लिए करते हैं। देश की ऐसी स्थिति है कि प्रत्येक दल अपने आपको सत्ता पर काबिज करने के लिए दूसरे दलों की आलोचना करने तक से बाज नहीं आता है– ''एक राजनीतिक दल दूसरे को धर्म-उन्मादी कहता है, तो दूसरा दल उसे जातिवादी।''[७]

कुछ इसी प्रकार की स्थिति आज भी हमारे देश के राजनैतिक दलों की है। चुनाव के समय तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं, लेकिन सत्ता-प्राप्ति के बाद सब कुछ भूल जाते हैं और अगर कुछ करते भी हैं, तो केवल वोट बैंक की राजनीति के लिए– फिर चाहे वो आरक्षण के नाम पर हो या रोजगार के नाम पर। कहानीकार ने इन बिन्दुओं को अपनी कहानी में उजागर किया है– ''नौकरी के अवसर आने से पहले वे सभी दल मेज के नीचे से रिश्वत लेकर नौकरी बाँटते और भेद खुल जाने पर वोट बैंक बताते हुए दलितों के चारों ओर नौकरी का छलावा बुनते।''[८]

सरकार के साथ-साथ मीडिया भी मुख्य भूमिका अदा करती दिखाई देती है। मीडिया को प्रजातंत्र की 'चौथी आँख' कहा जाता है, पर वर्तमान समय की मीडिया भी सच को झूठ और झूठ को सच बताने में कोई कसर नहीं छोड़ती है। वह अपने मूल्यों और आदर्शों को तिलांजलि देकर उन्हें बहुत पीछे छोड़ आयी है। आज की भ्रष्ट मीडिया केवल चटपटे समाचारों को दिखाना और छापना चाहती है, क्योंकि उनका उद्देश्य जनता के दु:ख-दर्द को समाज के सामने लाना नहीं है, बल्कि अपनी टी.आर.पी. बढ़ाना है। इससे वे सरकार की दलाली करती दिखाई पड़ती है। बहुत ही कुशलता और बारीकी के साथ कहानीकार ने इस बिन्दुओं पर अपना विचार व्यक्त किया है। इसी प्रकार, हरख राम की पत्नी की सामान्य मृत्यु को मीडिया सामूहिक बलात्कार के रूप में दिखाती है और पूरे प्रकरण को एक साम्प्रदायिक रंग देने का कार्य करती है, जिससे समाज हरिजन और सवर्णों में विभाजित हो जाए। जब बात इतने से बनती नहीं दिखती, तो सरकार के कहने पर स्थानीय समाचार-पत्र में एक और सामान्य घटना को साम्प्रदायिकता के रंग में रंग दिया जाता है– ''मामूली से स्थानीय समाचार-पत्र में छोटा-सा समाचार प्रकाशित हुआ कि धुरका कस्बे में रडार के ठीक बगल में देवी के मन्दिर को तोड़कर किसी एक नमाजी कयामत खाँ ने मस्जिद चिनवा दी थी।''[९] फिर क्या था? हिन्दू और मुसलमानों की धार्मिक भावना जाग्रत हुई। उनको मानसिक चोटें पहुँची। वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिसमें न जाने कितने बेकसूर बेमौत मारे गये, जिन्हें तो ये तक नहीं पता चला कि इतनी बड़ी घटना की वजह क्या है? पर मीडिया और सरकार की मिलीभगत से वे अपने मंसूबों पर सफल होते हैं और नये-नये फरमान जारी करवाते हैं। मीडिया उन्हीं को दिखाकर वाहवाही लूटने का प्रयास करती है तथा अपने आपको प्रजातंत्र का रक्षक घोषित करती है। सरकार भी ऐसे मौके पर पीछे नहीं रहती है और तमाम घोषणाएँ करती है, जैसे– साम्प्रदायिक ताकतों को जड़ से उखाड़ फेंकने और दलितों पर अत्याचार करने वालों को कठोर सजा देने का ऐलान और साम्प्रदायिक दंगे में मारे गये परिवार के सदस्य को सरकारी नौकरी प्रदान करने की घोषणा आदि।

इन सारे पहलुओं पर ध्यान दिया जाये, तो देख सकते हैं कि किस प्रकार सरकार अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक सामान्य घटना को मीडिया के माध्यम से साम्प्रदायिक माहौल में बदल देती है। मीडिया के इस खोखलेपन और दोगले चरित्र को उजागर करते हुए बटरोही जी कहते हैं– ''सत्ताभक्त उन खोजी पत्रकारों ने इस मामले की भिन्न घटनाओं को आपस में जोड़कर कैसे एक अभूतपूर्व घटना को जनम दिया होगा?''[१०] कहानीकार सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को सरकार और मीडिया के इस यथार्थ और खोखलेपन के प्रति जागरूक करना चाहता है कि ये अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए हमारी भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं। फिर भी; हम भारतीयों को अफवाहों पर विश्वास करने में महारत हासिल है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. गोपाल राय– हिन्दी कहानी का इतिहास, खण्ड-३, पृ. सं. २१
२. वही– पृ. सं. २३१
३. रामचन्द्र तिवारी– हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. सं. ४०६
४. प्रो. हरिमोहन– ग्यारह कहानियाँ, पृ. सं. १०२
५. वही– पृ. सं. १०३
६. वही– पृ. सं. १०३
७. वही– पृ. सं. १०३
८. वही– पृ. सं. १०३
९. वही– पृ. सं. १०६
१०. वही– पृ. सं. १०७

●

खण्ड-ग : शिक्षा, संस्कृति और समाज

बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों की वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में प्रासंगिकता

धीरेन्द्र कुमार सिंह*

सारांश :- वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों की हमारे जीवन में बहुत ही उपयोगिता है। बुद्ध के जीवन ने पूरे विश्व में ज्ञान का संचार करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में अगर बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों का समावेश न होता, तो हम अपने समाज में हो रही शिक्षा में अहिंसा, मानवतावाद, विश्व-बन्धुत्व की भावना, विश्व में शान्ति की अपील, वसुधैव कुटुम्बकम् तथा प्रजातांत्रिक संगठन की झलक को न दर्शा पाते, क्योंकि यही गुण हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था को प्रासंगिक बनाने में मदद करती है। छात्र व अध्यापकों का त्यागपूर्ण जीवन ऐसे तत्वों से है, जो आज कहीं-न-कहीं हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में कम ही परिलक्षित होते हैं। आज के परिवेश में छात्रों की धन की तरफ आकृष्टता, विलासितापूर्ण जीवन जीने की लालसा, हिंसा-युक्त परिवेश में रहने की आदत, अनुशासन की अदृश्यता जैसे विकार उत्पन्न हुए हैं। अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि छात्रों में इन समस्याओं को दूर करने के लिए नैतिक विकास, व्यक्तित्व विकास, जीविकोपार्जन की तैयारी जैसे प्रासंगिक उद्देश्यों को लेकर शिक्षा दिए जाने की सोच विकसित हो, जिससे अधुनिक समाज में भी वह पुरातन मूल्यों से विमुख न हों और सभ्य समाज का नवनिर्माण कर सकें तथा भविष्य में भारत के कर्णधार बन सकें। आज के परिदृश्य में सम्पूर्ण विश्व नवीन चुनौतियों से घिरा हुआ है, जिसमें परमाणु बम से लेकर अस्त्र-शस्त्र, रासायनिक हथियार, और-तो-और जैविक हथियार तक का खतरा बढ़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में; कहीं-न-कहीं हमें बौद्धिक शिक्षा-मूल्यों को व्यक्तिगत, सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक रूप से खतरा भंगीकृत करने की जरूरत है, क्योंकि इन सभी पक्षों पर पड़ने वाले घातक प्रभाव हमारे मानव-समाज एवं उनके जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों को वर्तमान शिक्षा-पाठ्यक्रम में विस्तार से समावेशित करना होगा, तभी मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों के पूर्णविकास की संकल्पना साकार होगी।

यह सर्वदा सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, राष्ट्र तथा समाज के विकास की संजीवनी बूटी होती है। शिक्षा का सम्बन्ध केवल साक्षरता से ही नहीं, बल्कि वह व्यक्ति में चेतना भी जाग्रत करती है। बौद्धकालीन शिक्षा काफी हद तक सभ्यता के निकट ही थी। जिस प्रकार से यज्ञ वैदिक काल में ज्ञान तथा शिक्षा के केन्द्र में थी, ठीक उसी प्रकार बौद्धकालीन शिक्षा-व्यवस्था में बिहार एवं मठों में प्रचलित शिक्षा केन्द्र में थी। पुरातन समय में बिहार में नालन्दा विश्वविद्यालय एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे संस्थानो बौद्ध धर्म की शिक्षा-दीक्षा हेतु काफी फले हुए थे। बौद्ध धर्म की शिक्षा में निर्वाण पर अधिक जोर दिया गया है। निर्वाण से तात्पर्य उस स्थिति से था, जिसमें सभी लालसाएँ समाप्त हो जाती हैं। निर्वाण की प्राप्ति वर्तमान जीवन में भी सम्भव हो सकती है। अत: बुद्धकाल की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य जीवन में निर्वाण

* सहायक आचार्य–शिक्षाशास्त्र विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

प्राप्त करने का उपाय जानना था। दूसरे शब्दों में, बौद्ध-शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को ऐसा आचरण सिखाना था, जिससें मस्तिष्क की स्थिरता व शान्ति प्राप्त हो सके। इसने वृहद् पाठ्यक्रम को स्वयं में समायोजित किया तथा समाज के एक विशेष वर्ग के शिक्षण व ज्ञान-दृष्टि का रास्ता खोला और वैदिककालीन आनुवांशिकी एकाधिकार को समाप्त किया।

बौद्धकालीन शिक्षा-व्यवस्था ने शान्ति-शिक्षा के लिए व्यापक स्तर पर पाठ्यक्रम तैयार कर दिया। यदि बौद्धदर्शन को ध्यान से देखें, तो हम पाते हैं कि उन्होंने अतिशयवादिता को त्यागकर मध्यम मार्ग पर चलने का विचार दिया, जिसमें जनमानस और लोककल्याणकारी तत्वों का समावेश हो। बुद्ध के अनुसार, जन्म-मृत्यु, संयोग-वियोग आदि सभी दु:खमय है। तृष्णा या लालसा सम्पूर्ण दु:खों का कारण है। तृष्णा के विरोध से दु:ख की निवृत्ति हो सकती है।

आधुनिक समय में भारत कई ऐसी समस्याओं से जूझ रहा है, जो मानवता एवं संस्कृति के लिए काफी हानिकारक हैं, जिसमें आतंकवाद, परमाणु बम, क्षेत्रीय भावना, बेरोजगारी, मानवाधिकार-अतिक्रमण, लिंग-भेद जैसे प्रमुख मुद्दे शामिल हैं। इन्हीं समस्याओं को समूल नाश करने के लिए बौद्धकालीन शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों का महत्त्व तब और बढ़ जाता है, जब हम शान्ति एवं सद्भाव की स्थापना के लिए बात करते हैं और छात्रों को विश्व-नागरिकता के लिए तैयार करते हैं तथा छात्रों को उन सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक तत्वों की जानकारी प्रदान करते हैं।

अत: बौद्धकालीन शैक्षणिक मूल्यों एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों को उपयुक्त माध्यम से लागू करके पारम्परिक शिक्षा के कार्यक्रमों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, जिसमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं गाँधी जी द्वारा सत्य, अहिंसा तथा महात्मा बुद्ध द्वारा स्थापित शान्ति, सद्भावना, मानवतावाद जैसे मूल्यों का समावेशन हो। बुद्ध धर्म में संघ-शिक्षा के तीन अंग थे। बुद्ध का तात्पर्य है– आचार्य तथा ज्ञानी। बालक की शिक्षा में शिक्षक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान था। सच्चा ज्ञान आचार्य के बिना सम्भव नहीं है तथा ज्ञान की प्राप्ति हेतु संघ का होना अति आवश्यक है। तत्कालीन संघ का तात्पर्य शिक्षा-केन्द्र से माना जाता है। शिक्षा-प्राप्ति हेतु संघ में प्रवेश लेना अति आवश्यक है। बौद्ध-शिक्षा संघों में सुयोग्य विद्वान् एवं आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती थी।

आधुनिक भारत की शिक्षा-प्रणाली का प्रमुख आधार समानता तथा सर्व धर्म समभाव है तथा विद्वानों द्वारा आधुनिक भारतीय शिक्षा में नवीन जीवन-मूल्यों की स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु जिन नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रयास किए जा रहे हैं, वे भारतीय भावनाओं एवं जीवन-मूल्यों को अपनाने से ही सम्भव है, क्योंकि प्राचीन भारतीय जीवनादर्श सांस्कृतिक, सभ्य, अनुशासनबद्ध एवं सदाचारी बनाते हैं। सामाजिक समानता तथा आर्थिक एवं राजनैतिक समानता प्राचीन भारतीय जीवन-मूल्यों की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में बिना समावेशन के सम्भव नहीं है। बौद्धकालीन जीवन-मूल्यों के आधार पर ही आदर्श मानव-जीवन का पूर्ण विकास सम्भव है। बौद्ध दर्शन की प्रेरणा से ही 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की कल्पना साकार की जा सकती है। वस्तुत: अहिंसा, परोपकार, त्याग, सेवाभाव एवं तपस्या– ऐसे भारतीय जीवन-मूल्य हैं, जो मानव को उसकी संकुचित विचारधारा को त्यागने तथा बन्धुत्व की विशालता एवं प्रेम का अनुभव प्रदान करते हुए उसके जीवन को आदर्शमय एवं सुख-शान्ति से परिपूर्ण बनाते हैं। वस्तुत: मानव जाति का पवित्र उद्देश्य भी आध्यात्मिक शान्ति द्वारा ही प्राप्त है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में जो शिक्षा-व्यवस्था प्राप्त होती है, वह बहुत कुछ प्ररोक्ष रूप से

बौद्ध धर्म एवं दर्शन से प्रभावित है, जहाँ पाठ्यक्रम विस्तृत, उपयोगी तथा अलग-अलग थे। नालन्दा, तक्षशिला, वल्लमी की स्थापना थी, जहाँ सुयोग्य विद्वानों तथा आचार्यों द्वारा अलग प्रकार की शिक्षा नियमबद्ध तरीके से तथा अनुशासित वातावरण में प्रदान की जाती थी।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आधुनिक मनुष्य मासिक समाज की भाँति व्यवहार कर रहा है। वर्ग-भेद, वर्ण-भेद, क्षेत्रीयतावाद, लिंग-भेद तथा अन्य कई वादों ने इस मानवतावादी जाति एवं विश्व की शान्ति को खतरे में डाल दिया है। विश्व-बन्धुत्व एवं सर्व धर्म समभाव की भावना मृतपाय है। इस कारण समस्त विश्व के विवकेशील, वैज्ञानिक, दार्शनिक, राजनयिक, शिक्षाशास्त्री तथा चिन्तक इस व्यवस्था में सुधार लाने के उपायों की खोज करने में लगे हैं कि किस प्रकार विश्व में एक संस्कृति का उदय हो, जिससे मानवमात्र का कल्याण हो तथा विश्व-शान्ति की स्थापना हो। बौद्ध शिक्षा-दर्शन का परमोद्देश्य मानवमात्र का कल्याण, विश्व-बन्धुत्व की स्थापना तथा सर्व धर्म समभाव था। बौद्ध दर्शन का अन्य आधारभूत तत्व उसका कर्मवाद है। धर्म आधारित कर्म ही जीवन का विकास करते हुए मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होता है। कर्म का फल व्यक्ति को भोगना पड़ता है।

जिस प्रकार समस्त भौतिक जगत प्रकृति के नियमों से संचालित होता है, उसी प्रकार पूर्व जन्म के अच्छे-बुरे कर्मो का फल व्यक्ति के नवीन जन्मों पर पड़ता है। सम्भवत: इसी कारण व्यक्ति अच्छे कर्म करने हेतु प्रेरित होता है। अच्छे कर्मों द्वारा ही व्यक्ति जीवन के परमलक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। इस प्रकार, मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा चारित्रिक विकास द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास बौद्ध शिक्षा-दर्शन का पवित्र उद्देश्य है। इस दृष्टि से, वर्तमान समय में बौद्धकालीन शिक्षा-मूल्यों का, वास्तव में; वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में समावेश है।

बौद्ध दर्शन न तो केवल भौतिकतावादी है और न केवल आध्यात्मिक। इसने मध्यमा प्रतिपदा सिद्धान्त को अपनाया है। एक दर्शन के रूप में इसके कई मूल्य व सिद्धान्त उपनिषदीय दर्शन से मिल जाते हैं, जिसकी वर्तमान समय में इस भौतिकतावादी समाज को आवश्यकता है। जैसे 'भव प्रपंच' के मूल में अविद्या का कारण होना, तृष्णा के नाश में राग-द्वेष आदि बन्धनों से मुक्त होना एवं कर्म-सिद्धान्त की व्यापकता। परन्तु अनात्मवाद, क्षणिकवाद एवं शून्यवाद एकदम उपनिषद-विरोधी हैं। परन्तु एक शिक्षा-दर्शन के रूप में इसने भारत के जनमानस को स्पर्श किया और शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य भारत के अन्य दर्शन नहीं कर पाये, वे कार्य इसने किये हैं। शिक्षा-प्रक्रिया के स्वरूप की चर्चा करने में बौद्ध दार्शनिकों ने शक्ति नहीं लगाई है, परन्तु उसके मूल कार्य को स्पष्ट अवश्य किया है। उनके अनुसार, शिक्षा का मूल कार्य मनुष्य को निर्वाण की प्राप्ति कराना है। निर्वाण का अर्थ है– दु:खों से छुटकारा। यह तभी मिल सकता है, जब मनुष्य ज्ञानवान हो तथा उसमें नैतिक विकास हो। आज शिक्षा द्वारा नैतिक विकास की बात पुन: दुहरायी जा रही है। हमारे देश में तो आज शिक्षा-जगत में दो ही विचार सर्वाधिक महत्त्व के हैं– रोजगार परक शिक्षा और नैतिक शिक्षा।

बौद्ध-शिक्षा के अनुसार, मानव (मनुष्य) जीवन के दो आयाम थे– एक लौकिक और दूसरा पारमार्थिक। लौकिक दृष्टि से बौद्ध दार्शनिकों ने मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, चारित्रिक, नैतिक तथा आर्थिक विकास पर बल दिया।

आज वर्तमान परिस्थितियों पर अगर हम दृष्टि डालें, तो मनुष्य अनेक प्रकार की गम्भीर बीमारियों से जूझ रहा है। ऐसी-ऐसी बीमारियों ने हमारे शरीर में स्थान ले लिया है, जो हमारी

प्राकृतिक मृत्यु को अप्राकृतिक की तरह ले जा रही है। भौतिकतावादी व यान्त्रिक संस्कृतियों ने आज मनुष्य को एक यन्त्र की भाँति बना दिया है, जिसने हमारे बौद्धिक विकास को इस समाज में स्थापित किया है। परन्तु इससे शारीरिक विकास सम्भव नहीं है, इसलिए आज हम अपने प्राचीन मूल्यों व शिक्षा की तरफ झुकाव कर रहे हैं।

आज औद्योगिकीकरण ने मानव-समाज को एक मशीन की भाँति बना दिया है। आज का मनुष्य केवल लाभ के सिद्धान्त पर जोर दे रहा है। इससे सामाजिक संरचना की कड़ी टूट रही है और मनुष्य एकाकी जीवन जीने की ओर अग्रसर है, जिससे तनाव तथा गम्भीर बीमारियों ने मानव-समाज को जकड़ रखा है। बौद्धिक शिक्षा-मूल्य ने हमेशा से इस बात पर बल दिया है कि नैतिक व चारित्रिक विकास हमेशा मानव-समाज की अग्रणी भूमिका में होना चाहिए, जिससे हम एक सभ्य समाज का निर्माण कर सकें।

शिक्षण-विधियों को लेकर भी बौद्धकालीन शिक्षा वर्तमान समय में प्रासंगिक है। इसके अनुसार, आज मन तथा चेतना की दृष्टि से सभी बच्चे समान नहीं होते, इसलिए उनके लिए शिक्षण-विधियाँ भी भिन्न-भिन्न होनी चाहिए– व्यक्तिगत शिक्षण-विधि और सामूहिक शिक्षण-विधि। व्यक्तिगत शिक्षण-विधि में हम स्वाध्याय, मनन और चिन्तन-विधि का प्रयोग करते हैं तथा सामुहिक विधियों में व्याख्यान, व्याख्या, चर्चा आदि विधियों का उल्लेख मिलता है।

आज वर्तमान शिक्षण-व्यवस्था में इन्हीं विधियों पर बल देने का प्रयास करते हैं तथा इनसे व्यक्तित्व-विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। वर्तमान समय में शिक्षा-नीति परिवर्तित हो रही है तथा आवश्यकता व क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम का विकास किया जा रहा है। अर्थात् अपनी आवश्यकता के अनुसार विद्यार्थी शिक्षण ग्रहण करें तथा क्षमता के अनुसार कौशल का विकास करें। वर्तमान समय में कला-कौशल (Skil Development) इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जिसे रोजगारपरक शिक्षा भी कहा जा रहा है। अर्थात् जिस क्षेत्र में छात्र अग्रणी हो, वही क्षेत्र उसके लिए अनुकूल है और उसी प्रकार की शिक्षा वह ग्रहण करे, जिससे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास हो सके।

बौद्धों ने सभी को नियमों के पालन का उपदेश दिया है और इसी को वे 'अनुशासन' कहते हैं। बौद्धों की अनुशासन सम्बन्धी यह अवधारणा आज लोकतान्त्रिक जीवन के लिए बड़ी आवश्यक है। लोकतन्त्र की सफलता तो इसी बात पर निर्भर करती है कि सब अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन ईमानदारी और निष्ठा के साथ करें।

शिक्षक व शिक्षार्थी– दोनों को संयमी जीवन की सलाह देकर बौद्धों ने शिक्षा-जगत को जो शुद्धता प्रदान की थी, उसकी आवश्यकता आज भी समझी जा रही है। काश! आज के शिक्षक एवं शिक्षार्थी संयमी जीवन जीना प्रारम्भ कर दें, तो शिक्षा-जगत की सारी समस्याएँ स्वत: हल हो जाएँ। बौद्धकालीन शिक्षण-व्यवस्था जन्म के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करती, इसलिए उन्होंने सबके लिए प्रारम्भिक शिक्षा का विधान किया है। स्पष्ट है कि वे जन-शिक्षा के पक्षधर थे, परन्तु मानसिक व बौद्धिक दृष्टि से वे मनुष्य-मनुष्य में भेद करते हैं और उच्च शिक्षा की व्यवस्था केवल मेधावी व योग्य लोगों के लिए ही करते हैं। काश! आज हम भी उच्च शिक्षा के द्वार केवल मेधावी एवं योग्य छात्रों के लिए ही खुले रखें, तो निश्चित रूप से; धन का दुरूपयोग रुकेगा, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों का पर्यावरण शैक्षिक बनेगा, तोड़-फोड़ व अनुशासनहीनता के स्थान पर व्यवस्था कायम होगी, शिक्षा का स्तर उठेगा और समाज को योग्यतम, चरित्रवान एवं निष्ठावान विशेषज्ञ प्राप्त होंगे। इस सबके साथ-साथ; शिक्षित बेरोजगारी भी दूर

होगी। हमें यह विश्वास है कि जिस लोकतान्त्रिक शिक्षा की व्यवस्था को हम आज स्थापित करना चाहते हैं, उसकी स्थापना बौद्धों ने आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व ही कर दी थी।

शिक्षा द्वारा मनुष्य को किसी कला-कौशल, उद्योग अथवा व्यवसाय में प्रशिक्षित करने की शुरूआत तो हमारे देश में वैदिक काल में हो गयी थी, परन्तु उसे व्यवस्थित रूप दिया बौद्ध दार्शनिकों ने। भारत में शैक्षिक प्रशासन, विद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा और समूह शिक्षण की शुरूआत कर बौद्धों ने वर्तमान शिक्षा की नींव रख दी थी। इसी के साथ, उन्होंने जन-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा की भी नींव रखी, जो वर्तमान समय में शिक्षण-व्यवस्था में प्रासंगिक है।

बौद्ध शिक्षा-प्रणाली में अध्यापकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बौद्ध शिक्षा-प्रणाली में अध्यापक, शिक्षक तथा गुरु का शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। शिक्षक छात्र की जानकारी प्रदान करके, उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं तथा व्यक्तित्व-भिन्नताओं को समझकर समुचित साधन देना और उन्हें एक अच्छा नागरिक एवं गृहस्थ बनाना शिक्षक का परम कर्त्तव्य है। शिक्षक छात्र के आध्यात्मिक, मानसिक, चारित्रिक तथा ज्ञान-कौशल सम्बन्धी विकास के लिए उत्तरदायी होता है। गुरु शिष्य के साथ पुत्र की भाँति व्यवहार करता है तथा उसके शैक्षिक विकास के लिए उत्तरदायी होता है। शिष्य के विकास के लिए गुरु की जवाबदेही होती है। इस दृष्टि से गुरु को बाल-मनोविज्ञान, समाज एवं शिक्षा-विधान का पूर्ण ज्ञान होता है। गुरु में सम्यक् संकल्प होना आवश्यक माना गया है। बौद्ध दर्शन के अनुसार, शिक्षक को चार आर्यसत्यों का स्वामित्व होता है और अष्टांग मार्ग का पालन कराने तथा शिष्यों को उसका प्रशिक्षण देने के लिए उसका सक्षम होना आवश्यक है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार, शिक्षक का जीवन सादा और सरल होता है। वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है, सदाचारी होता है तथा संयम रखने वाला होता है। शिष्य की भूमिका में जिन दस गुणों का उल्लेख किया गया है, उन गुणों का पालन गुरु को भी करना होता है तथा शिष्य उनका अनुकरण करके सीखते हैं। गुरु के मन में शिष्यों के प्रति सदृशता होती है। गुरु को शिष्यों के प्रति जाति का भेद-भाव नहीं रहता है, क्योंकि सभी जाति के शिष्य शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। इस प्रकार, सभी शिष्य गुरु के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं तथा उनका सम्मान करते हैं।

गुरुओं को शिक्षा देने के साथ-साथ धर्म-प्रचार का भी उत्तरदायित्व होता है। गुरुओं को भी उपसम्पदा संस्कार तथा 'संघं शरणं गच्छामि' की प्रतिज्ञा लेकर उनका पालन करना होता है। शिष्यों के साथ वह भी धर्म-प्रचार करते हैं। बौद्ध धर्म के अनुसार, गुरु भी शिष्यों के समान त्याग, तपस्या तथा संयम का जीवन व्यतीत करते थे। बौद्ध शिक्षा-प्रणाली में शिक्षक को आचार्य भी कहते थे और आचार्य के साथ कई उपाध्याय भी होते थे। एक उपाध्याय के साथ लगभग दस छात्रों का समूह होता था। सभी उपाध्यायों में सहयोग तथा स्नेह की भावना होती थी। आचार्य का उत्तरदायित्व उपाध्यायों एवं छात्रों के मध्य समन्वय स्थापित करना माना जाता है, जिससे दोनों में संयम तथा सन्तुलन रह सके। इस तरह के आचरण से जनतान्त्रिक मूल्यों का विकास होता था। शिक्षक तथा छात्रों को केवल अध्ययन-अध्यापनों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, अपितु सम्पूर्ण जीवन पर आधारित रहना चाहिए। उनके निकट के सम्बन्धों से, अन्त:प्रक्रिया द्वारा दोनों के व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है।

●

मानव-संसाधनों के विकास में ज्ञान-तन्त्र की भूमिका

डॉ. सन्तेश्वर कुमार मिश्र*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानव-संसाधनों के विकास में ज्ञान-तन्त्र की भूमिका प्रमुख हो गई है। मानव ज्ञान की शक्ति के कारण भौतिक उपयोग के स्तर के शिखर पर पहुँच बना चुका है। ज्ञान-तन्त्र की शक्ति के कारण वह आज अन्तरिक्ष से लेकर चाँद एवं मंगल ग्रह तक मानव के विकास को परिलक्षित करने का प्रयास कर रहा है। आज ज्ञान-तन्त्र के कारण उसने सुपर सोनिक मिसाइलों से लेकर हाइपर सोनिक मिसाइलों, क्रूज मिसाइलों, सेटेलाइटों तथा जेट प्लेनों का निर्माण कर लिया है।

आज ज्ञान-तन्त्र ने मानव-संसाधनों को जीवन्तता की मुख्य पराकाष्ठा पर ला दिया है। मानव ने इसी ज्ञान की शक्ति के कारण दूरियों को मिटा दिया है तथा एक 'वैश्विक गाँव' की संकल्पना तक की स्थिति में पहुँच गया है।

आज २१वीं सदी में इण्टरनेट ज्ञान का 'सुपर हाइवे' बनकर समाज में शिक्षा, संचार तथा संगठन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहा है। ज्ञान तन्त्र के कारण इण्टरनेट सेवा, ई-मेल सेवा, मौसम सम्बन्धी जानकारियाँ, ई-लर्निंग, ई-कामर्स, ई-लाइब्रेरी आदि अपनी उपयोगिता दुनिया के सामने सिद्ध कर रहे हैं।

सामान्य : आज के उत्तर आधुनिक युग में 'मानव संसाधनों' के वृद्धि, परिवर्द्धन एवं परिमार्जन को 'ज्ञान-तन्त्र' पर केन्द्रित किया जा रहा है। भारत की विगत दसवीं एवं वर्तमान में गतिशील तेरहवीं पंचवर्षीय योजना को भी 'मानव विकास' (Human Development) पर लक्षित करके संचालित किया गया है। वास्तव में; आज विकास का तात्पर्य मात्र प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि तक सीमित नहीं है, वरन् इसके अन्तर्गत मानव की 'आधारी आवश्यकता' (Basic Requirement) (भोजन, वस्त्र एवं आवास) तथा 'विकासमान अवसरों' (Development Opportunity) – शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सुरक्षा आदि की उपलब्धता को सम्मिलित किया जा रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. अमर्त्य सेन ने उद्घाटित किया है कि– ''विकास की यथार्थता तभी है, जब वह समाज के सबसे निम्न तबके तक पहुँचे।'' इस बात को विश्व-समुदाय स्वीकारने में व अपनाने में लगा है। किन्तु, इसको वास्तविकता के धरातल पर अधिकाधिक मूर्त्त रूप देने में वही समाज सफलता प्राप्त कर रहा है, जो अपने को 'ज्ञान-तन्त्र' के रूप में स्थापित करने की दिशा में सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ नियोजित ढंग से प्रयासरत है।

वास्तव में; २१वीं सदी के समाज का विकास मूलत: दो आधारों– 'उन्नतशील संचार व्यवस्था' एवं 'ज्ञान अधिष्ठित विकास'– पर अवस्थित है। जो समाज इन दो आधारों को जितना अधिक सुदृढ़ता प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं, वे उतना ही अधिक मानवीय कल्याण एवं प्रगति के संसाधनों को उपलब्ध कराने में सक्षम हो रहे हैं। यूरोप, अमेरिका जैसे देश इसके उदाहरण हैं। संक्षेप में; कहा जा सकता है कि वर्तमान में कोई भी समाज ज्ञान की उपेक्षा करके विकास के लक्ष्यों को हासिल नहीं कर सकता। भारत भी इस दिशा में कुछ सुदृढ़ कदम बढ़ा रहा है और इसी का फल है कि उसने पाँचवीं पीढ़ी के सुपर कम्प्यूटर का अविष्कार आणविक ऊर्जा

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

की प्राप्ति का अधिकाधिक प्रयत्न, ज्ञान-आधारित उच्च तकनीकियों का अन्वेषण, अन्तरिक्ष अनुसंधान में उन्नतशील सेटेलाइटों का प्रक्षेपण इत्यादि क्षेत्रों में अपनी सक्रियता बढ़ायी है। भारत ने सन् २००५ में ही कदम बढ़ा दिए हैं, जब तत्कालीन यूपीए सरकार द्वारा सैम पित्रोत्दा की अध्यक्षता में 'ज्ञान आयोग' का गठन किया गया और इस आयोग ने सन् २०१० में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। इस रिपोर्ट के आधार पर भारत ज्ञान की महत्ता को स्वीकार करते हुए तेजी से अग्रसर हुआ है।

ज्ञान की वर्तमान अवस्था : संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व-समुदाय की दृष्टि से विकास का अन्तिम लक्ष्य लोगों के अवसरों में वृद्धि को माना है, जिससे वे अपने 'जीवन को बेहतर' बना सकें, शिक्षा-संसाधनों को सुधार सकें, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, समाज कल्याण तथा पर्यावरण को विकसित कर सकें। स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र ने 'सामाजिक-रूपांतरण' को विकास से सम्बद्ध किया है। इसीलिए बी.एस.डी. सौजा ने कहा है कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया में एक 'सरल समाज' (Simple Society) 'जटिल समाज' (Complex Society) के रूप में परिवर्तित होता है। जे.एस. पॉन्सियान ने भी माना है कि सामाजिक विकास से तात्पर्य सम्बन्धों तथा ढाँचे में ऐसी सुदृढ़ता से है, जिससे समाज अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को व्यवस्थित ढंग से पूरा करने में सक्षम होता है। पारसन्स ने सार्वभौमिकता, सामूहिकता, विशिष्टता तथा गुणात्मकता (अर्जित) को आधुनिक समाजों की विशेषता बताया है। ये सभी ज्ञान पर आधारित हैं। पारसन्स एवं हासलिट का मानना है कि 'व्यक्तिवाद और आत्मसन्तुष्टि' (Individualism and Selfinterest) विकास के लिये आवश्यक हैं। लर्नर, कोहन तथा जानसन का भी मानना है कि 'व्यक्तिवाद' विकास का आवश्यक तत्त्व है। यह तत्त्व जापान, फ्रांस एवं यूरोपीय राष्ट्रों में विद्यमान है। डोमर ने अपने अध्ययन में पाया है कि विकास के लिए पर्यावरण, राजनीतिक ढाँचा, प्राश्रय, शिक्षा का तरीका, वैधानिक प्रारूप, विज्ञान तथा परिवर्तन की मनोवृत्ति इत्यादि का 'ज्ञान' (Knowledge) आवश्यक है। ई. हेगन ने लिखा है कि आर्थिक आधुनिकीकरण से 'प्रौद्योगिकीय आर्थिक परिवर्तन' (Technological Economic Change) के साथ 'सामाजिक रूपांतरण' भी होता है। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का मानना है कि किसी भी समाज (यथा– भारत वर्ष) को विकसित होने के लिए अपने को 'ज्ञान समाज' के रूप में रूपांतरित करना नितांत आवश्यक है। उन्होंने शिक्षा को अधिक रोजगारोन्मुख/उपयोगी बनाने हेतु तीन सूत्रीय रणनीति अपनाने पर बल दिया है– प्रथम; शिक्षण प्रणाली में उद्यमशीलता को स्थान देना चाहिए, द्वितीय; बैंकों को युवा उद्यमियों को प्रोत्साहन देना चाहिए और तृतीय; मानव-संसाधन के क्षेत्र में आर्थिक मजबूती भी होनी चाहिए। प्रो. अमर्त्य सेन का निष्कर्ष है कि विकास की माप समाज के 'निर्धनतम मानव की प्राप्तियों' के आधार पर किया जाना चाहिए। इन विद्वानों के मतों से विदित है कि मानव-संसाधनों की प्राप्ति के सर्वोत्तम साधनों में 'ज्ञान अर्थव्यवस्था' (Knowledge Economy) की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें बौद्धिकता का उपयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है। लो (स्वू) ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– ''ज्ञान-अर्थव्यवस्था का तात्पर्य कच्चे माल और पूँजी-उपकरण के भौगोलिक केन्द्र से 'सूचना एवं ज्ञान' (Information and Knowledge) की ओर परिवर्तन से है। ऐसा विशेषकर शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्रों और मनुष्यकृत दिमागी उद्योगों के लिए सही है। यह श्रम-प्रधान के निर्माण और सेवा-क्रियाओं के स्वचालन को व्यक्त करती है। यह स्वास्थ्य की देख-रेख, दूरस्थ शिक्षा, सॉफ्टवेयर उत्पादन

और बहुमाध्यम मनोरंजन के नये सेवा-उद्योगों को भी समाविष्ट करती है।'' विश्व विकास रिपोर्ट–१९९९ के अनुसार, विश्व-अर्थव्यवस्था के अग्रणी देशों के लिए जानकारी और संसाधन के मध्य सन्तुलन ज्ञान की ओर इतना अधिक झुक गया है कि जीवन-स्तर निर्धारित करने में ज्ञान-भूमि, उपकरण और मजदूरी– सभी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन गए हैं। तकनीकी तौर पर आज की सबसे ज्यादा विकसित अर्थव्यवस्था, वास्तव में; ज्ञान पर आधारित है। प्रांजल बेजबरुआ के मत में, आज ज्ञानार्जन एवं ज्ञान-सृजन श्रेष्ठ निवेश हैं इसके उपयोग, अभिगम, अर्जन, संयोजन और संचार से सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। आर. शर्मा का मानना है कि विकास कार्यों का जोर अब ज्ञान, संस्थान और संस्कृति पर है। इस अवसर का इस्तेमाल एक नवीन विकसित भारत के लिए करना आवश्यक है तथा इसके लिए 'बौद्धिक सम्पदा अधिकार' सम्बन्धी विसंगतियों को दूर करना होगा।

वास्तव में; ज्ञान की अवधारणा उस पद्धति से सम्बद्ध होती है, जिससे लोग विश्व को देखते और समझते हैं। इससे वे अपने अनुभवों को मूर्त्त रूप प्रदान करने, उन्हें नियमबद्ध बनाने, उनके वर्गीकरण, व्याख्या और उनका अर्थ तलाशने जैसी प्रक्रियाओं को अंजाम देते हैं। ज्ञान-समाज एक ऐसा समाज है, जो अपनी वृद्धि एवं विकास के लिए ज्ञान का सृजन, सम्प्रेषण और इस्तेमाल करता है। ज्ञान का अर्थ अत्यन्त सन्दर्भ-सापेक्ष है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न व्यक्ति और सामाजिक समूह अपने आस-पास के जगत के बारे में अपनी राय व्यक्त करते हैं। शिक्षा ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया और परिणाम है।

१२ जनवरी, २००५ को कोलकाता में 'भारतीय उद्योग परिसंघ' के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने घोषणा की कि सरकार देश की क्षमता और क्षमता-निर्माण के आधार को मजबूत बनाने के लिए 'ज्ञान आयोग' का गठन करेगी, ताकि भारत को २१वीं सदी की चुनौतियों के लिए बेहतर ढंग से तैयार किया जा सके। इसी संकल्पना को मूर्त्त स्वरूप प्रदान करने के लिए १३ जून को श्री सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में 'ज्ञान आयोग का गठन' किया गया।

'ज्ञान आयोग' ज्ञान के सृजन, ज्ञान के उपयोग और ज्ञान के सम्प्रेषण से सम्बन्धित समाजों में प्रधानमंत्री को परामर्श देता है। आयोग के गठन सम्बन्धी अधिसूचना के अनुसार, आयोग प्रधानमंत्री से सम्बद्ध आयोग है। यह प्रावधान आयोग को एक शक्तिशाली निकाय बना देता है, क्योंकि यह प्रधानमंत्री को सीधे रिपोर्ट करेगा, अपने प्रस्तावों के बारे में सीधे आदेश प्राप्त करेगा और उन्हें सीधे 'फीडबैक' भी देगा। आयोग के विचारणीय विषयों को 'नॉलिज पेंटागन' अर्थात् 'ज्ञान पंचभुज' कहा गया है, जो निम्नांकित हैं-

(१) २१वीं सदी की ज्ञान की चुनौतियों से निपटने के लिए शिक्षा-प्रणाली में उत्कृष्टता लाना और ज्ञान के क्षेत्र में भारत की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में वृद्धि करना
(२) विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रयोगशालाओं में ज्ञान के सृजन को बढ़ावा देना
(३) बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से जुड़े संस्थानों के प्रबन्धन में सुधार लाना
(४) कृषि और उद्योग में ज्ञान के अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करना तथा
(५) सरकार को नागरिकों के लिए एक सश्रम, पारदर्शी और जवाबदेह सेवा-प्रदाता बनाने में ज्ञान की क्षमताओं को प्रोत्साहित करना तथा अधिकतम सार्वजनिक हित के लिए ज्ञान की व्यापक भागीदारी को बढ़ावा देना।

उपर्युक्त लक्ष्यों/धारणाओं को वास्तविकता के धरातल पर उतारने के लिए चार महत्त्वपूर्ण स्तम्भों की सुदृढ़ता के लिए क्रियाशीलता पर बल दिया गया है–

(अ) आर्थिक और संस्थागत ढाँचे को मजबूती प्रदान करना
(ब) शिक्षित एवं कुशल श्रमिकों का विकास करना
(स) एक समक्ष नवाचार प्रणाली का निर्माण और
(द) गतिशील सूचना ढाँचे का निर्माण करना।

उक्त सन्दर्भ में सैम पित्रोदा की अध्यक्षता वाले 'ज्ञान आयोग' ने अप्रैल, २०१० के आखिरी हफ्ते में अन्तरिम सिफारिशें प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को सौंपी। इसमें भी उन्होंने एक तरह से भारत की मानव सम्पदा को भावी पूँजी के तौर पर विकसित करने का ही सुझाव दिया। आयोग ने जो अन्तरिम सिफारिशें सरकार को पेश की है, उनमें से मुख्य सिफारिशों को निम्नांकित रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है–

१. अगले दस वर्षों में ५० केन्द्रीय विश्वविद्यालय और खोले जाएँ
२. १५०० विश्वविद्यालय और हों
३. अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई पहली कक्षा से अनिवार्य की जाए
४. याददाश्त आधारित परीक्षा-प्रणाली के बजाय व्यक्तित्व के आंतरिक मूल्यांकन पर जोर दिया जाए
५. उच्च शिक्षा नियामक प्राधिकरण बने, जो संसद द्वारा पारित कानून के आधार पर स्वतन्त्र नियामक के तौर पर गठित हो और काम करे
६. राष्ट्रीय पुस्तकालय आयोग बने, जो सूचना-सेवाओं, प्रशिक्षण और शोध के काम भी देखे
७. व्यावसायिक शिक्षा और स्कूली शिक्षा के बीच सम्बन्ध हो
८. शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में नीतिगत दस्तावेज तैयार किया जाय
९. शिक्षा ऐसी हो, जो बदलते आर्थिक माहौल में काम आए, यानी नयी आर्थिक नीतियों के तहत नौकरियाँ दिलाने या नया उद्यम स्थापित करने में सहयोगी हो सके।
१०. सरकार को 'सबके लिए शिक्षा' के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए तुरन्त प्रभावी कानून लागू करना चाहिए।
११. परम्परागत ज्ञान के संरक्षण को प्रोत्साहन देने के साथ ही उद्योग जगत तक विश्व स्तर की अत्याधुनिक तकनीक पहुँचाने के लिए 'ग्लोबल टेक्नोलॉजी एक्यूजीशन फण्ड' स्थापित करना अनिवार्य है।

इस प्रकार, मानव-संसाधनों के विकास में ज्ञान-तन्त्र अपनी सार्वभौमिकता चारों तरफ प्रदर्शित कर रही है। ज्ञान-तन्त्र के विकास के कारण आज मानव अन्तरिक्ष की यात्रा भी कर रहा है। अन्तरिक्ष में भेजे गये उपग्रहों के कारण ही सूचना-क्रान्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। शिक्षा का प्रसार, मानचित्र एवं मौसम सम्बन्धी जानकारी उपग्रह के द्वारा प्राप्त होती है।

इस प्रकार, मानव-संसाधनों के विकास में ज्ञान-तन्त्र की भूमिका मानव-विकास को एक नये आयाम की तरफ ले जा रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

- Domar, E.D. : "Essays in the Theory of Economic growth."

- Frank, A.G. : "Sociology of Development and Underdevelopment of Sociology."
- Hegen, E.E. : "On the Theory of Social Change - How Economic Growth Begins."
- Human Development Report, 1999.
- Lemart, Cohen and Johson : "Regard Individualism as the Element of Modernity."
- Levy, Marian J.P. : " The Structure of Society", P. 1952.
- Lewis, W.A. : "The Theory of Economic Growth."
- Meir, G.M. and Boldwin, R.E. : "Economic Development : Theory, History and Policy."
- Parsons, Toward : " A General Theory of Action."
- Prasad, N. : "Change Strategy in Developing Society."
- Poninsioen, J.A. : "Social Development in Unithan's."
- Souza, V.S.D. : "Social Development, Education and Unemployment in India in Sociology of Culture in India", T.K.N. Unithan.
- United Nations Organization : "Poverty, Unemployment and Development Policy - A case study of Selected Issues with Reference to Kerala", New York, 1975.
- डॉ. अब्दुल कलाम– (अनु. वाई. सुंदर राजन) : 'भारत-२०२०', राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, २००२.
- ए.पी.जे. अब्दुल कलाम– 'ज्ञान-समाज के मापदण्ड', योजना, फरवरी-२००६.
- समाजार्थिक समीक्षा, जनपद-बलिया : कार्यालय–अर्थ एवं संख्याधिकारी, बलिया-२००५.
- सांख्यिकी पत्रिका, जनपद-बलिया : कार्यालय– अर्थ एवं संख्याधिकारी, बलिया.
- अमर्त्य सेन– (अनु. भवानी शंकर बांगला) : 'आर्थिक विषमताएँ', राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, २००१.

●

नयी शिक्षा नीति- २०२० : नयी सोच–नयी परिकल्पना

प्रो. सरोज वर्मा*, भूपेन्द्र सिंह**

शिक्षा पूर्ण मानव-क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान कर वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ में भारत की सतत् प्रगति और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और सम्वर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। भारत द्वारा २०१५ में अपनाए गए सतत् विकास एजेण्डा-२०३० के लक्ष्य-४ (एसडीजी-४) में परिलक्षित 'वैश्विक शिक्षा विकास एजेण्डा' के अनुसार, विश्व में २०३० तक सभी के लिए समावेशी और गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन-पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस तरह के उदात्त लक्ष्य के लिए सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी, ताकि सतत् विकास के लिए २०३० एजेण्डा के सभी महत्त्वपूर्ण टारगेट और लक्ष्य (एसडीजी) प्राप्त किये जा सकें।

ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। बिग डेटा, मशीन लर्निंग और आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस जैसे क्षेत्रों में हो रहे बहुत से वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के चलते एक ओर विश्व भर में अकुशल कामगारों की जगह मशीनें काम करने लगेंगी और दूसरी ओर डेटा साइंस, कम्प्यूटर साइंस और गणित के क्षेत्रों में ऐसे कुशल कामगारों की जरूरत और माँग बढ़ेगी, जो विज्ञान, समाज विज्ञान और मानविकी के विविध विषयों में योग्यता रखते हों। जलवायु-परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण तथा घटते प्राकृतिक और संसाधनों की वजह से हमें ऊर्जा, भोजन-पानी, स्वच्छता आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के नए रास्ते खोजने होंगे और इस कारण भी जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, कृषि, जलवायु विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में नए कुशल कामगारों की जरूरत होगी। महामारी और महामारी के बढ़ते उद्‌भव संक्रामक रोग तथा प्रबंधन की आवश्यकता को बढ़ाते हैं। मानविकी और कला की माँग बढ़ेगी, क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर अग्रसर है।

रोजगार और वैश्विक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तन की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चे, जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही और साथ ही; वे सतत् रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषयवस्तु को बढ़ाने की जगह जोर इस बात पर अधिक देने की जरूरत है कि बच्चे समस्या-समाधान तथा तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें, विविध विषयों के बीच अन्त:सम्बन्धों को देख पाएँ, नया सोच पाएँ और नयी जानकारी को नए और बदलती परिस्थितियों या क्षेत्रों में उपयोग में ला पाएँ। जरूरत है कि शिक्षण-प्रक्रिया शिक्षार्थी-केन्द्रित हो, जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित हो, लचीली हो और

* शोध-निर्देशक– एल.एस.एम.पी.जी. कॉलेज, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड
** शोधार्थी– एल.एस.एम. पी.जी. कॉलेज, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड

समग्रता तथा समन्वित रूप से देखने-समझने में सक्षम बनाने वाली और रुचिपूर्ण हो। शिक्षा शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे– इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, शिक्षा से चरित्र-निर्माण होना चाहिए। शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और सम्वेदनशीलता विकसित करनी चाहिए और साथ ही; रोजगार के लिए सक्षम बनाना चाहिए। सीखने के परिणामों की वर्तमान स्थिति के लिए आवश्यक है कि उनके बीच की खाई को प्रारम्भिक बाल्यावस्था, देखभाल और उच्चतर शिक्षा के माध्यम से शिक्षा में उच्चतम गुणवत्ता, इक्विटी और सिस्टम में अखण्डता लाने वाले प्रमुख सुधारों के जरिए बाँटा जाना चाहिए।

सन् २०४० तक भारत के लिए ऐसी शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य होना चाहिए, जो कि किसी से भी पीछे नहीं रहे। एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था, जहाँ किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हो।

यह 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२०' २१वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है, जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए २१वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिनमें एसडीजी-४ शामिल है, के संयोजन में शिक्षा-व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेंस सहित सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्या-ज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ उच्चतर स्तर की तार्किक और समस्या-समाधान सम्बन्धी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए, बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।

प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान तथा विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में यह नीति तैयार की गयी है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार-परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान-अर्जन नहीं, बल्कि पूर्ण आत्म-ज्ञान और मुक्ति के रूप मे माना गया था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसी प्राचीन भारत की विश्वस्तरीय संस्थानों ने अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊँचे प्रतिमान स्थापित किये थे और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को लाभान्वित किया था। इसी शिक्षा-व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेवी, मैत्रेयी, गार्गी और थिरुवल्लुर जैसे अनेक महान् विद्वानों को उत्पन्न किया, जिन्होंने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों, जैसे– गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, भवन-निर्माण, नौकायन-निर्माण और दिशा ज्ञान, योगजनित कला, शतरंज इत्यादि में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान किया। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्त्व की इस समृद्ध विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेज कर संरक्षित रखने की जरूरत है, बल्कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था द्वारा उस पर शोध-कार्य होने चाहिए, उसे समृद्ध किया जाना चाहिए और नए-नए उपयोग भी सोचे जाने चाहिए।

शिक्षा-व्यवस्था में किये जा रहे बुनियादी बदलावों के केन्द्र में अवश्य ही शिक्षक होने चाहिए।

शिक्षा की नयी नीति को निश्चित तौर पर, हर स्तर पर, शिक्षकों को समाज के सर्वाधिक सम्माननीय और अनिवार्य सदस्य के रूप में पुन: स्थान देने में सहायता करनी होगी, क्योंकि शिक्षक ही नागरिकों की हमारी अगली पीढ़ी को सही मायने में आकार देते हैं। इस नीति द्वारा शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए हर सम्भव कदम उठाये जाने की आवश्यकता है, जिससे वे अपने कार्य को प्रभावी रूप से कर सकें। नयी शिक्षा-नीति को हर स्तर पर शिक्षण के पेशे में सबसे होनहार लोगों का चयन करने में सहायता करनी होगी, जिसके लिए उनकी आजीविका, सम्मान, मान-मर्यादा और स्वायत्तता सुनिश्चित करने का बड़ा माध्यम है और इसके द्वारा समाज में ऐसे समूहों के सभी बच्चों के लिए, परिस्थितिजन्य बाधाओं के बावजूद, हर सम्भव पहल की जानी चाहिए, जिससे वे शिक्षा-व्यवस्था में भी प्रवेश पा सकें और उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकें।

इन सभी बातों का नीति में समावेश भारत की समृद्ध विविधता और संस्कृति के प्रति सम्मान रखते हुए और साथ-ही-साथ देश की स्थानीय और वैश्विक सन्दर्भ में आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए होना चाहिए। भारत के युवाओं को भारत देश के बारे में और इसकी विविध सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आवश्यकताओं सहित यहाँ की अद्वितीय कला, भाषा और ज्ञान-परम्पराओं के बारे में ज्ञानवान बनाना राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, परस्पर सहयोग और एकता की दृष्टि से और भारत की सतत् ऊँचाइयों की ओर बढ़ने की दृष्टि से अतिआवश्यक है।

जीवन में शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए वर्तमान सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में नए बदलावों के साथ 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२०' को मंजूरी दे दी। इससे पूर्व १९८६ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई थी और वर्ष १९९२ में इसमें संशोधन किया गया था। नयी शिक्षा नीति को प्रस्तुत करते हुए शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने कहा था–''देश के प्रधानमंत्री ने एक नए भारत के निर्माण की बात की है, जो स्वच्छ भारत होगा, श्रेष्ठ भारत होगा, सशक्त भारत होगा। उस नए भारत के निर्माण में यह 'नयी शिक्षा नीति-२०२०' मील का पत्थर साबित होगी। आगे फिर उन्होंने कहा कि यह शिक्षा नीति ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, नवाचार, प्रौद्योगिकी से युक्त, मूल्यपरक, हर क्षेत्र में, हर परिस्थिति का मुकाबला करने वाली, पूरी दुनिया के लिए भारत में ज्ञान की महाशक्ति के रूप में उभर करके आएगी।'' शिक्षा नीति किसी भी राष्ट्र की मूलभूत आवश्यकता होती है, जिसमें अतीत का विश्लेषण, वर्तमान की आवश्यकता तथा भविष्य की सम्भावनाएँ निहित होती हैं–

''विद्या वितर्को विज्ञान स्मृतिः तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणातस्य नासाध्यमतिवर्तते।।''

'नयी शिक्षा नीति-२०२०' का मुख्य उद्देश्य भाषा-दक्षता, वैज्ञानिक स्वभाव, सौन्दर्य-बोध तथा नैतिक तर्क-चेतना का विकास करना है। साथ ही; राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा में सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं को महत्त्व, पाठ्यक्रम को और अधिक गुणवत्तायुक्त, लचीला/एकीकृत और मूल्यांकनपरक करने की बात कही गई है।

नयी शिक्षा नीति भारतीय जीवन-मूल्यों पर आधारित होने के साथ-साथ भारतीय परम्पराओं, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन, पुनर्स्थापन एवं प्रसार पर जोर देती है, जिससे यह भारत को एक समर्थ, गौरवशाली तथा आत्मनिर्भर बनाने में निश्चय ही; प्रमुख भूमिका निभाएगी।

भारतवर्ष के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि शिक्षा नीति बनाने के लिए देश की लगभग २.५ लाख ग्राम पंचायतें, ६६०० ब्लॉक और ६५० जिलों से विचार लिए गए। इसमें शिक्षाविदों, अध्यापकों, अभिभावकों, जनप्रतिनिधियों एवं व्यापक स्तर पर छात्रों से भी सुझाव लेकर उनका

मन्थन किया गया। जन-आकांक्षाओं के अनुरूप एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों के अनुरूप 'नयी शिक्षा नीति-२०२०' की घोषणा की गई है। इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा– ''यह शिक्षा के क्षेत्र में बहुप्रतिक्षित सुधार है, जिससे लाखों लोगों का जीवन बदल जाएगा। 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' पहल के तहत इसमें संस्कृत समेत सभी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाएगा।

नयी शिक्षा नीति के कुछ प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं– (क) इस नयी शिक्षा नीति के सम्बन्ध में कैबिनेट के फैसलों की जानकारी देते हुए रमेश पोखरियाल और प्रकाश जावडेकर ने बताया कि अब 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' का नाम 'शिक्षा मंत्रालय' होगा, क्योंकि यह मंत्रालय शिक्षित करने और शिक्षा देने का ही है। (ख) इसमें शिक्षा-व्यवस्था के चार प्रमुख आयामों को रेखांकित किया गया है– विद्यार्थी, अध्यापक, पाठ्यक्रम और ढाँचागत सुविधाएँ।

अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में मातृभाषा का विशेष महत्त्व होता है, जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है और उसके सीखने की गति भी बढ़ती है। मनोविज्ञान के अनुसार, बालक अपनी मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा में सरलता एवं शीघ्रता से सीखता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए नयी शिक्षा नीति में भाषाई विविधता को महत्त्व दिया गया है– १. नयी शिक्षा नीति के अनुसार, पाँचवी कक्षा तक मातृभाषा, स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई का माध्यम रखने की बात कही गई है। इसमें कक्षा आठ या उससे आगे भी पढ़ाया जा सकता है। विदेशी भाषाओं की पढ़ाई सेकेण्डरी लेबल से होगी। बाकी विषय, चाहे वह अंग्रेजी में ही क्यों ना हों, एक सब्जेक्ट के तौर पर ही पढ़ाया जाएगा। इससे विद्यार्थियों को सांस्कृतिक मूल्यों के साथ जोड़े रखा जाएगा। २. ३ वर्ष से ६ की आयु के बच्चों के लिए आँगनवाड़ी /बालवाटिका / प्री-स्कूल के माध्यम से मुफ्त, सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा होगी। ३. प्रारम्भिक शिक्षा को बहुस्तरीय खेल और गतिविधि आधारित बनाने को प्राथमिकता दी जाएगी। नयी शिक्षा नीति स्वामी विवेकानन्द, रविन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा-दर्शन पर आधारित है, जिससे विद्यार्थियों को जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्यक्ष स्रोत से ज्ञान-प्राप्ति का मौका मिलेगा।

एक नयी व्यवस्था (५+३+३+४) : इस नयी शिक्षा नीति में १०+२ के ढाँचे की जगह ५+३+३+४ नयी पाठयक्रम-संरचना को लागू किया जाएगा, जो क्रमश: ३-८, ८-११, ११-१४ तथा १४-१८ उम्र के बच्चों के लिए है। इसमें अब तक दूर रखे गए ३-६ साल के बच्चों को स्कूली पाठ्यक्रम के तहत लाने का प्रावधान है, जिसे विश्व स्तर पर बच्चों के मानसिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में मान्यता दी गई है।

नयी प्रणाली में प्री-स्कूलिंग के साथ-साथ १२ साल की स्कूली शिक्षा और तीन साल की आँगनवाड़ी शिक्षा होगी। इसके तहत छात्रों की शुरुआती स्टेज की पढ़ाई के लिए तीन साल की प्री-प्राइमरी और पहली तथा दूसरी कक्षा को रखा गया है। इसके बाद मिडिल स्कूल यानी ६-८ कक्षा में सब्जेक्ट का इंट्रोडक्शन कराया जाएगा। सभी छात्र केवल तीसरी, पाँचवीं और आठवीं कक्षा में परीक्षा देंगे। १०वीं और १२वीं की बोर्ड परीक्षा पहले की तरह जारी रहेगी, लेकिन बच्चों के समग्र विकास करने के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इन्हें नया स्वरूप दिया जाएगा। एक नया राष्ट्रीय आकलन केन्द्र 'परख' (समग्र विकास के लिए कार्य-प्रदर्शन, आकलन, समीक्षा और ज्ञान का विश्लेषण) आँगनवाडी/बालवाडी और प्री-स्कूल के माध्यम से मुफ्त में सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कल्पना है।

१. छठीं कक्षा से वोकेशनल कोर्स, इंटर्नशिप करवायी जाएगी। म्यूजिक और आर्ट्स को

बढ़ावा दिया जाएगा। २. उच्च शिक्षा में भी कई तरह के बदलाव किये गए हैं। अगर कोई छात्र दूसरे कोर्स में जाना चाहता है, तो निश्चित समय तक ब्रेक लेकर जा सकता है। ३. रिसर्च करने वाले छात्रों के लिए चार साल की डिग्री और नौकरी करने वाले के लिए तीन साल की डिग्री होगी। ई-पाठ्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं में होंगे। पिछड़े वर्गों के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ अथवा मुफ्त शिक्षा का प्रावधान कर उन्हें आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन नयी शिक्षा-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण आयाम हैं, जिसमें पाठ्यक्रम के बोझ को कम करने और छात्रों के विकास, अनुभव-आधारित शिक्षण और तार्किक चिंतन को बढ़ावा देना है, जिसमें व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ इंटर्नशिप भी होगी।

१. इस नीति में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार, कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठ्यक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अन्तर नहीं होगा। २. कक्षा-६ से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ इंटर्नशिप (Internship) की भी व्यवस्था की जाएगी। ३. 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' (National Council of Educational Research and Trainig –NCERT) द्वारा स्कूली शिक्षा के लिए 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा' (National Curriculum Framework for School Education) तैयार की जाएगी। ४. छात्रों के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कक्षा-१० और कक्षा-१२ की परीक्षाओं में बदलाव के रूप में भविष्य में सेमेस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारों को शामिल किया जा सकता है। ५. छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन के लिए मानक-निर्धारक निकाय के रूप में 'परख' (PRAKASH) नामक एक नए राष्ट्रीय आकलन केन्द्र (National Assessment Center) की स्थापना की जाएगी। ६. छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन तथा छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिए 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' (Artificial Intelligence-A I) के तहत NEP -२०२० में कक्षा-५ तक की शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अध्ययन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। साथ ही; इस नीति में मातृभाषा को कक्षा-८ से आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।

शारीरिक शिक्षा– विद्यालयों में सभी स्तरों पर छात्रों को बागवानी, नियमित रूप से खेल-कूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की कोशिश की जाएगी, ताकि बच्चे शारीरिक गतिविधियों एवं व्यायाम वगैरह में भाग ले सकें।

शिक्षण-व्यवस्था से सम्बन्धित सुधार : १. शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन किया जाएगा। उनके द्वारा समय-समय पर किए गए कार्य-प्रदर्शन के आकलन के आधार पर उनकी पदोन्नति का प्रावधान रहेगा। २. मानक (National Professional Standards for Teachers-NPST) का विकास किया जाएगा। ३. 'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्' द्वारा NCERT के परामर्श के आधार पर अध्यापक-शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (National Curriculum Framework for Teacher Education-NCFTE) का विकास किया जाएगा। ४. वर्ष २०३० तक अध्यापन के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता ४-वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

NEP-२०२० के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में 'मल्टीपल एंट्री एण्ड एक्टिव' व्यवस्था को अपनाया जाएगा और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाएगा (१ वर्ष के बाद स्नातक की डिग्री तथा ४ वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने

के लिए 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (Acadmic Bank of Credit) दिया जाएगा, ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान किया जा सके।

भारतीय उच्च शिक्षा आयोग– नई शिक्षा नीति (NEP) में देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् 'भारतीय उच्च शिक्षा परिषद्' (Higher Education Commission of India-HECI) की परिकल्पना की गई है, जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होंगे। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक 'एकल निकाय' (Single Umbrella Body) के रूप में कार्य करेगा। HECI के कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु चार निकाय होंगे- **१. राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद्** (Higher Education Regulatroy Council-NEHRC) : यह शिक्षक-शिक्षा सहित उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक नियामक का कार्य करेगा। **२. सामान्य शिक्षा परिषद्** (Genrel Education Council-GEO) : यह उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित सीखने के परिणामों का ढाँचा तैयार करेगा अर्थात् उनके मानक निर्धारण का कार्य करेगा। **३. राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद्** (National Accriditation Council- NAC) : यह संस्थानों के प्रत्यायन का कार्य करेगा, जो मुख्य रूप से बुनियादी मानदण्डों, सार्वजनिक स्व-प्रकटीकरण, सुशासन और परिणामों पर आधारित होगा। **४. उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद्** (Higher Education Grants Council-HGFC) : यह निकाय कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के लिए वित्तपोषण का कार्य करेगा।

आज भारतवर्ष में दिव्यांग छात्रों की एक बडी संख्या है। उनकी आवश्यकता की पूर्ति हेतु नयी शिक्षा-नीति शिक्षण-सामग्री और आधारभूत ढाँचा तैयार करने पर बल देती है।

इस नयी नीति में विकलांग बच्चों के लिए क्रास विकलांगता प्रशिक्षण, संसाधन केन्द्र, आवास, सहायक उपकरण, उपयुक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारम्भिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से स्कूली शिक्षा-प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाया जाएगा।

डिजिटल शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधान : १. एक स्वायत्त निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' (National Educational Technology Foruem) का गठन किया जाएगा, जिसके द्वारा शिक्षण-मूल्यांकन योजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकेगा। २. डिजिटल शिक्षा संसाधनों को विकसित करने के लिए अलग प्रौद्योगिकी इकाई का विकास किया जाएगा, जो डिजिटल बुनियादी ढाँचे, सामग्री और क्षमता-निर्माण हेतु समन्वय का कार्य करेगी।

पारम्परिक ज्ञान-सम्बन्धी प्रावधान– भारतीय ज्ञान-प्रणालियाँ, जिनमें जनजातीय एवं स्वदेशी ज्ञान शामिल होंगे, को पाठ्यक्रम में सटीक एवं वैज्ञानिक तरीके से शामिल किया जाएगा।

१. आकांक्षी जिले (Aspirational Districts) जैसे क्षेत्र, जहाँ बड़ी संख्या में आर्थिक, सामाजिक या जातिगत बाधाओं का सामना करने वाले छात्र पाए जाते हैं, उन्हें विशेष शैक्षिक क्षेत्र (Special Educational Zones) के रूप में नामित किया जाएगा। २. देश में क्षमता-निर्माण हेतु केन्द्र सभी लड़कियों और ट्रांसजेण्डर छात्रों को समान गुणवत्ता प्रदान करने की दिशा में एक 'जेण्डर इंक्लूजन फण्ड' (Gender Inclusion Fund) की स्थापना करेगा। ३. गौरतलब है कि ८ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए प्रारम्भिक बचपन देखभाल और शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढाँचे का निर्माण एनसीईआरटी द्वारा किया जाएगा।

वित्तीय सहायता– एससी, एसटी, ओबीसी और अन्य सामाजिक तथा आर्थिक रूप से वंचित समूहों से सम्बन्धित मेधावी छात्रों को प्रोत्साहन के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-१९८६' का उद्देश्य असमानताओं को दूर करने, विशेष रूप से भारतीय महिलाओं, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जाति समुदायों के लिए शैक्षिक अवसर की बराबरी करने पर विशेष जोर देना था। इस नीति ने प्राथमिक स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' लॉन्च किया था। इस नीति ने 'इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय' के साथ 'ओपन यूनिवर्सिटी प्रणाली' का विस्तार किया। ग्रामीण भारत में जमीनी स्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए महात्मा गाँधी के विजन पर आधारित 'ग्रामीण विश्वविद्यालय मॉडल' के निर्माण के लिए नीति का आह्वान किया गया।

शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों? शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि 'मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।' जरूरी हो जाता है कि पूर्ववर्ती शिक्षा नीति में परिवर्तन कर उसे किसी प्रकार एक नए बदलाव के रूप में रखा जाए। सबसे अहम बात बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी। भारतीय शिक्षण-व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुँच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि आज भारत ज्ञान-विज्ञान, सूचनाप्रौद्योगिकी एवं तकनीकी के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ रहा है। कौशल के आधार पर आत्मनिर्भर भारत का संकल्प प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा संकल्पित किया गया है। ऐसे में; नयी शिक्षा नीति प्रभावी होगी और यह नए भारत की नींव सिद्ध होगी, जिससे भारत का हर विद्यार्थी आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो सके और भारत विज्ञान, कला, सूचना प्रौद्योगिकी तथा तकनीक में एक महाशक्ति के रूप में उभरे।

सन्दर्भ-सूची

१. www.uttamhindu.com/politics/150172/new-education-policy-foundation (नई शिक्षा नीति- नए भारत की नींव, २ अगस्त २०२०)
२. www.drishtiias.com दृष्टि the vision (राष्ट्रीय शिक्षा नीति : महत्त्व व चुनौतियाँ, ३१ जुलाई, २०२०)
३. दृष्टि the vision (चर्चित मुद्दे) नई शिक्षा नीति-२०२०
४. www.dridhti.com नई शिक्षा नीति, २५ अगस्त-२०२०
५. https://www.yttamhindu.com/politics/150172new-education-plicy-foundationof-new-india
६. https;//www.bbc.com/hindi/india-53581084
७. नई शिक्षा नीति-२०२०
८. अमर उजाला
९. दैनिक जागरण

●

उच्च शिक्षा : एक प्रबुद्धकारी शक्ति
महिला सशक्तीकरण के सन्दर्भ में

डॉ. लालिमा सिंह * अपूर्वा सिंह**

सारांश– प्रत्येक विकसित समाज के विकास-क्रम को शिक्षा महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। मानवीय सभ्यता के विकास-क्रम में शिक्षा को एक आवश्यक कारक के रूप में उभर कर सामने आते देखा जा सकता है। चूँकि महिला और पुरुष– समाज के दो महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं, जिनके माध्यम से कोई भी समाज और देश विकास-पथ पर अग्रसित होता है, अत: किसी भी समाज की प्रगति दोनों की असमानता पर नहीं; अपितु समानता और सहयोग पर निर्भर करती है और शिक्षा ही वह आधार है, जिससे इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। महिला-शिक्षा की बात करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि महिला-शिक्षा के वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना शेष है। परन्तु यह भी सत्य है कि महिला-शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता के प्रति सामाजिक जागरूकता क्रमश: बढ़ रही है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा महिला सशक्तीकरण में एक प्रबुद्धकारी शक्ति सिद्ध हो रही है।

प्रस्तावना– प्रत्येक विकसित समाज के विकास-क्रम को शिक्षा महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। मानवीय सभ्यता के विकास-क्रम में शिक्षा को एक आवश्यक कारक के रूप में उभर कर सामने आते देखा जा सकता है। यह व्यक्ति को अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दायित्वों के निर्वहन योग्य बनाती है। शिक्षा ही वह साधन है, जो व्यक्ति की कार्यकुशलता, निपुणता, ज्ञान और चेतना के विकास में सहायक है। चूँकि महिला और पुरुष– समाज के दो महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं, जिनके माध्यम से कोई भी समाज और देश विकास-पथ पर अग्रसित होता है, अत: किसी भी समाज की प्रगति दोनों की असमानता पर नहीं; अपितु समानता और सहयोग पर निर्भर करती है और शिक्षा ही वह आधार है, जिससे इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षित महिला समाज में अपनी सशक्त तथा समान उपयोगी भूमिका का निर्वहन कर सकती है। शिक्षा के आधार पर महिला में दक्षता, कौशल-ज्ञान और विभिन्न क्षमताओं का विकास हो पाता है। शिक्षित महिला न केवल स्वयं लाभान्वित होती है, बल्कि उससे भावी पीढ़ी भी लाभान्वित होती है। इसलिए हम महिला-सशक्तीकरण के सन्दर्भ में शिक्षा की भूमिका की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि शिक्षा जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश को फैला कर अज्ञान रूपी अँधेरे को दूर करती है। शिक्षा के द्वारा एक महिला असहाय व अबला से सशक्त और सबला बनती है। देखा जाए, तो उच्च शिक्षा विकास-प्रक्रिया में पूरी तरह से भाग लेने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास के साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के सबसे महत्त्वपूर्ण साधनों में से एक है। प्रस्तुत शोध-पत्र भारत में उच्च शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तीकरण के विश्लेषण का एक प्रयास है।

उच्च शिक्षा का अर्थ : उच्च शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षण और प्रशिक्षण से है, जो महाविद्यालय व विश्वविद्यालय द्वारा उपाधि-स्तर पर दिया जाता है। यह शिक्षा ज्ञान व योग्यता

* प्राचार्य– एस.एस. खन्ना गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
** शोध छात्रा– विधि सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज इहाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

को विकसित करने में सहायक होती है।

महिला उच्च शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य : भारतीय सामाजिक विकास एवं शैक्षणिक विकास की प्रक्रिया का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि शिक्षा महिला सशक्तीकरण में एक प्रबुद्धकारी शक्ति रही है। यह सामाजिक सशक्तीकरण के लिए प्रथम एवं मूलभूत साधन है। सामान्य तौर पर भारत में शिक्षा सामान्य लोगों के लिए अरण्य देने की तरह सिद्ध हुई है और यह बात महिला-शिक्षा के सन्दर्भ में भी सार्थक सिद्ध हुई है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। वैदिक समाज भारतीय इतिहास के आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें महिलाओं को विद्याभ्साय का अधिकार पूर्णता से प्राप्त था। इस सन्दर्भ में; स्त्री-पुरुष को मिले अधिकारों में कोई अन्तर हमें देखने को नहीं मिलता। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा जैसी विदुषियाँ प्राचीन काल में शिक्षित एवं सशक्त भारतीय महिलाओं का उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। पी. एन. प्रभु ने अपनी पुस्तक– 'हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन' में लिखा है कि प्राचीन भारत में शिक्षा के स्तर पर स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं था। प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालंदा, और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों का निर्माण शिक्षा की उन्नत दशा का चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है, जो उस समय शिक्षा के लिए विश्व-विख्यात् थे। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ महिला-शिक्षा के स्तर में गिरावट आने लगी और मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो गया। मध्य युग में पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, बाल-विवाह जैसी कुरीतियों का विकास हुआ, जिसका नकारात्मक प्रभाव महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक दशा में देखने को मिलता है। मुगल काल में अकबर के प्रयासों से शिक्षा में विकास देखने को मिलता है। विदेशी कम्पनियों के आगमन के साथ भारतीय शिक्षा के स्वरूप में बदलाव आया। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की नींव ब्रिटिश काल में (१८५४ में) वुड डिस्पैच द्वारा पड़ी। कालान्तर में, लार्ड रिपन ने १८८२ में 'भारतीय शिक्षा आयोग' नियुक्त किया तथा आगे चल कर १९०२ में लार्ड कर्जन ने 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' का गठन किया। इस आयोग द्वारा उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में दिए गए सुझाव भविष्य में अर्थपूर्ण सिद्ध हुए। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने उच्च शिक्षा के विकास के लिए उल्लेखनीय कार्य किये, जिसके कारण स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली एक उल्लेखनीय तरीके से विकसित हुई। १९४८ में भारत सरकार ने 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' (राधाकृष्णन् कमीशन) नियुक्त किया और उसके बाद; १९५३ में विश्वविद्यालय अनुदान समिति को 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के रूप में समुन्नत किया, जो भारत में उच्च शिक्षा के स्तरमान को बनाये रखने के सन्दर्भ में सार्थक पहल साबित हुआ। वर्तमान में भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बाद दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी व्यवस्था है। भारत सरकार ने स्वतंत्रता के बाद उच्च शिक्षा पर काफी धन भी लगाया और बड़े-बड़े संस्थान खोले, जिसका लाभ भारतीय महिलाओं को भी मिला। २०११ की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार, भारत में महिला-साक्षरता का स्तर ६५.४६ प्रतिशत है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इस दिशा में हुई उल्लेखनीय प्रगति को दर्शाता है, जब महिलाओं की साक्षरता मात्र ८ प्रतिशत थी। यद्यपि इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि बढ़ती आबादी की गति के साथ तालमेल बनाये रखने के लिए महिलाओं की शिक्षा का वर्तमान स्तर पर्याप्त नहीं है, जिसमें सुधार की आवश्यकता है, परन्तु यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण

है कि उपलब्ध ऑकड़े इस दिशा में उत्तरोत्तर वृद्धि को दर्शाते हैं, जो महिला सशक्तीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण है।

महिला सशक्तीकरण और उच्च शिक्षा : महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। यह पुरुष सम्प्रभुता के स्थान पर महिला सम्प्रभुता स्थापित करने का प्रयास नहीं है, बल्कि समानता के आधार पर सामंजस्यपूर्ण भागीदारी का एक प्रयास है, जो उपलब्ध संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता का विकास कर उन्हें अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। सबलता एवं सुयोग्यता नारी-सशक्तीकरण की प्रमुख पहचान है, जिसका आधार शिक्षा तैयार करती है। शिक्षा ही वह उपकरण है, जिसके द्वारा महिलाएँ समाज में अपनी सशक्त, समान और उपयोगी भूमिका का निर्वहन कर सकती हैं। शिक्षा किसी भी प्रकार के कौशल की प्रगति एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के लिए आवश्यक प्रतिमान है, जिसके माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन व विकास सम्भव है। यही कारण है कि मानव-अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र में शिक्षा को प्रत्येक मनुष्य के मूल अधिकारों में से एक माना गया है।

भारतीय सन्दर्भ में विचार करने पर ज्ञात होता है कि भारतीय संविधान में भी शिक्षा को मूल अधिकारों की श्रेणी में रख कर पुरुष एवं महिला– दोनों के लिए समान शिक्षा-अधिकार की व्यवस्था की गई है। संवैधानिक प्रावधानों, सरकारी योजनाओं और व्यक्तिगत प्रयासों से महिला उच्च शिक्षा को एक सकारात्मक दिशा मिली है। वर्तमान में; भारत में १०४३ विश्वविद्यालय, ४२३४३ कॉलेज हैं, जिनमें १७ विश्वविद्यालय महिला विश्वविद्यालय हैं। यह तथ्य इस बात को उद्घाटित करता है कि महिला उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए देश में महिला शैक्षणिक संस्थानों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, जिसका सीधा सम्बन्ध उच्च शिक्षा में महिला अभ्यर्थियों के नामांकन से है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट (AISHE २०१९-२०) के अनुसार, उच्च शिक्षा के कुल नामांकन में महिला छात्राओं का नामांकन ४९ प्रतिशत रहा। विगत वर्षों में उच्च शिक्षा में प्रति १०० पुरुषों पर महिला नामांकन का यदि अध्ययन किया जाए, तो ज्ञात होता है कि १९९०-९१ में प्रति १०० पुरुषों पर ४६ महिला अभ्यर्थियों का नामांकन उच्च शिक्षा में हुआ। २०००-०१ में १०० पुरुषों पर ५८ महिला अभ्यर्थियों का नामांकन उच्च शिक्षा में हुआ। २००५-०६ में यह संख्या ६२, २०१०-११ में ७८, २०१५-१६ में ८६ और २०१९-२० में ९६ हो गयी। ये आँकड़े उच्च शिक्षा में महिला-नामांकन में वृद्धि को दर्शाते हैं, जो समाज के सामञ्जस्यपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार, विगत वर्षों में उच्च शिक्षा के विभिन्न स्तरों में भी महिला अभ्यर्थियों के नामांकन में वृद्धि दर्ज की गई है। महिला-नामांकन में वृद्धि के साथ-साथ उच्च शिक्षा के सकारात्मक परिणाम के रूप में मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट (AISHE २०१९-२०) में उल्लिखित है कि २०१९-२० में भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों में कुल १५,०३,१५६ शिक्षक हैं, जिसमें ५७.५ प्रतिशत पुरुष एवं ४२.५ प्रतिशत महिलाएँ हैं। प्रति १०० पुरुष शिक्षकों पर ७४ महिला शिक्षिका का होना उच्च शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के सशक्तीकरण के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

महिला उच्च शिक्षा और सरकारी प्रयास : भारत सरकार द्वारा संचालित महिला-शिक्षा एवं महिला-अधिकारों से सम्बन्धित नीतियों और योजनाओं से भी महिला उच्च शिक्षा में सकारात्मक परिणाम सामने आये हैं, जिसे महिला सशक्तीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कहा जा

सकता है। २०११ की जनगणना के अनुसार, केन्द्र सरकार द्वारा देश के ६४० जिलों में 'बेटी बचाओं', बेटी पढ़ाओ।'[3] योजना चलाई जा रही है, जिसे अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया है। इस योजना ने बालिकाओं के महत्त्व के प्रति राष्ट्र की मानसिकता को बदलने की दिशा में सामूहिक चेतना को जगाया है। यह राष्ट्रीय स्तर पर जन्म के समय लिंग-अनुपात में १९ अंकों के सुधार में परिलक्षित होता है। २०१४-१५ में लिंग-अनुपात ९१८ था, जो २०२०-२१ में बढ़ कर ९३७ हो गया। इसी योजना के तारतम्य में, बालिकाओं के लिए धन-संचय की लघु बचत योजना– 'सुकन्या धन समृद्धि योजना' भी महत्त्वपूर्ण है। लड़कियों को उच्च शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता होने पर, धन की उपलब्धता के सन्दर्भ में छोटे, लेकिन महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों के साथ ही घरेलू बचत का प्रतिशत बढ़ाने के सन्दर्भ में यह योजना सराहनीय है, जो अभिभावकों को अपनी बेटियों के बेहतर भविष्य और शिक्षा के लिए धन-संचय का प्रोत्साहन प्रदान करती है। उच्च एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर रही एकल बालिका हेतु 'इन्दिरा गाँधी छात्रवृत्ति योजना' उच्च शिक्षा में छात्राओं को सहयोग प्रदान करने के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है।

सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा महिलाओं के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी कार्यक्रम चलाया जा रहा है और रिपोर्ट में इस बात पर हर्ष व्यक्त किया गया है कि बीपीएल, पिछड़े जिलों, ग्रामीण जिलों, आतंकवाद तथा माओवाद प्रभावित क्षेत्रों से सम्बन्धित महिलाओं की एक बड़ी संख्या को इस योजना से लाभ प्राप्त हुआ है।

देश के उच्चतर शिक्षा, अनुसन्धान और विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। महिलाएँ समाज का एक ऐसा हिस्सा हैं, जो विभिन्न रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से पीड़ित हैं। अनुसन्धान और विकास की गतिविधियों में उनकी समान भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए करुणा, सहानुभूति और सम्वेदना द्वारा निर्देशित एक प्रयास की आवश्यकता होती है। इस दिशा में सरकारी मंत्रालय विभिन्न महिला विशिष्ट कार्यक्रमों के बारे में महिलाओं में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए सम्वेदीकरण कार्यशाला आयोजित करता है और अनुसन्धान हेतु समर्थन प्राप्त करने के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों के तहत आवेदन करने तथा साथ ही; अन्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़ी गतिविधियों के लिए उनको प्रेरित करता है, जिससे उनकी शिक्षा के आधार पर फेलोशिप या अनुसन्धान परियोजना अनुदान मिलता है। इन कार्यो से लाभार्थियों को वित्तीय सहायता मिलती है और महिलाओं की उच्चतर शिक्षा के लिए परिवार का वित्तीय बोझ भी कम होता है।

'किरण' (नॉलेज इंवाल्मेण्ट इन रिसर्च एडवांसमेण्ट थ्रू नरचरिंग) योजना महिला वैज्ञानिकों से सम्बन्धित उत्तम सरकारी प्रयास है। यह योजना बड़ी संख्या में ऐसी महिलाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम रही है, जिनके कैरियर में अंतराल हो गया है, अर्थात् जिन्होंने बीच में काम छोड़ दिया है और जो पिछड़े तथा आतंकवाद तथा माओवाद क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

'क्यूरी' (नवप्रवर्तन एवं उत्कृष्टता के लिए विश्वविद्यालय अनुसन्धान का सुदृढ़ीकरण) कार्यक्रम के तहत अत्याधुनिक सुविधाओं के विकास के माध्यम से केवल महिला विश्वविद्यालयों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में उच्चतर शिक्षा अनुसन्धान को सुदृढ़ किया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी विभाग का अधिदेश विज्ञान में महिलाओं और महिलाओं के लिए विज्ञान को प्रोत्साहित करना है। विज्ञान में महिलाओं को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से और जैव प्रौद्योगिकी

अनुसंधान में महिला वैज्ञानिकों की भागीदारी बढ़ाने के लिए डी. बी. टी. महिला वैज्ञानिकों के लिए जैव प्रौद्योगिकी कैरीयर सम्वर्धन एवं पुनरभिविन्यास कार्यक्रम संचालित करता है। इस योजना का उद्देश्य विश्वविद्यालयों और लघुअनुसंधान प्रयोगशालाओं में पूर्णकालिक रूप से नियोजित महिला वैज्ञानिकों अथवा कैरीयर में अन्तराल के पश्चात् अनियोजित महिला वैज्ञानिकों की क्षमता का निर्माण करना है, ताकि आर. एण्ड डी. परियोजनाओं पर कार्य प्रारम्भ करने में उनकी सहायता की जा सके। इस कार्यक्रम के माध्यम से डी. बी. टी. भारत के ३१५ महिला वैज्ञानिकों को स्वतंत्र आर. एण्ड डी. परियोजना उपलब्ध करा पाया है। २८ महिला वैज्ञानिकों को विभिन्न संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा उद्योगों में अब तक स्थायी नियोजन मिला है। इस योजना के तहत निधीयन प्राप्त विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत २५० अनुसन्धानरत छात्रों को सहायता दी जा रही है।

इसी प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० में भी बालिकाओं और महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी बढ़ाने के लिए अनेक घोषणाएँ की गई हैं, जिसमें 'जेण्डर-समावेशी कोष', (पैरा ६.८, एन. ई. पी-२०२०), एकेडेमिक क्रेडिट बैंक (ए. बी. सी.) की भी स्थापना एक नया और क्रांतिकारी कदम है।

उपर्युक्त योजनाएँ महिला उच्च शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तीकरण की दिशा में एक सार्थक पहल है। इसके माध्यम से केवल शिक्षा एवं साक्षरता का स्तर ही विकसित नहीं हुआ, बल्कि महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति भी जागरूक होकर जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सफल हो रही हैं। परन्तु इस दिशा में और प्रयास करने की आवश्यकता है। भविष्य में विकास की ओर प्रयास करते हुए हमको आगे बढ़ना है, ताकि मौजूदा कमियों को सुधार कर महिलाओं की स्थिति को और सशक्त किया जा सके।

सुझाव : देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाओं की उच्चतर शिक्षा, अनुसन्धान और विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। चूँकि महिलाएँ समाज का एक ऐसा हिस्सा हैं, जो विभिन्न रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से पीड़ित हैं, अत: अनुसन्धान और विकास की गतिविधियों में उनकी समान भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए करुणा, सहानुभूति और सम्वेदना द्वारा निर्देशित एक प्रयास की आवश्यकता है। ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्र में महिला उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थापना इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास सिद्ध हो सकता है। इसी प्रकार, सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का उचित कार्यान्वयन सम्बन्धित एजेंसियों द्वारा किया जाना चाहिए। वित्तीय सहायता के माध्यम से स्वरोजगार के अवसरों का सृजन भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान वर्ग के साथ-साथ कला एवं अन्य वर्ग की छात्राओं के लिए भी योजनाओं के द्वारा अनुसन्धान एवं उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना एक महत्त्वपूर्ण प्रयास हो सकता है।

निष्कर्ष : इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा के द्वारा महिलाओं के कदम प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ रहे हैं और वह न केवल पुरुषों के साथ बराबरी से देश की उन्नति में अपना योगदान दे रही हैं, बल्कि अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर महिला सशक्तीकरण और महिला-उत्थान में अपना योगदान दे रही हैं तथा समग्र रूप में वह महिलाओं के आर्थिक एवं राजनैतिक सशक्तीकरण का महत्त्वपूर्ण आधार बन रही हैं। भविष्य में विकास की ओर प्रयास करते हुए हमको आगे बढ़ना है, ताकि मौजूदा कमियों को; सुधार कर महिलाओं की स्थिति को

और सशक्त किया जा सके, क्योंकि एक शिक्षित माँ परिवार को शिक्षित करने में सक्षम होगी, जिससे अंतत: एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ-सूची

१. एफ. हुसैन एण्ड एम. एस. जाधव– 'रोल ऑफ हायर एजूकेशन इन विमेन एम्पावरमेण्ट : अ स्टडी', इण्टरनेशनल जर्नल फॉर एडमिनिस्ट्रेशन इन मैनेजमेण्ट, कॉमर्स एण्ड इकोनॉमिक्स (२०१३)

२. एम. सोवजन्य, एस. शेट्टी एण्ड रमेश सालियाँ– 'विमेन्स एक्सेस टू हायर एजूकेशन इन इण्डिया : एशियन रिव्यू ऑफ सोशल साइंसेज', वॉल्यूम ८, नंबर १, २०१९, पृष्ठ ११९-१२२ (२०१९)

३. यू. जी. सी. वार्षिक रिपोर्ट– २०१९-२०. website: www.ugc.ac.in

४. मानव संसाधन विकास मंत्रालय– शैक्षिक सांख्यिकी रिपोर्ट-२०१५-१६

५. उच्च शिक्षा पर अखिल भारतीय सर्वेक्षण– २०१९-२०, भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, उच्च शिक्षा विभाग, नई दिल्ली (२०२०)

६. महिलाओं को शक्तियाँ प्रदान करने सम्बन्धी समिति (२०१९-२०), (सत्रहवीं लोकसभा) तीसरा प्रतिवेदन, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, मार्च-२०२०

●

एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव : एक अध्ययन

डॉ. रमेन्द्र तिवारी*

सारांश– प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य 'एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन' करना है। प्रस्तुत अध्ययन विषय की समस्या की प्रकृति के अनुसार, अनुसंधान के लिए 'सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत् एम.एड. के छात्र-छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन-विधि का प्रयोग करते हुए २०० एम.एड. विद्यार्थियों (१०० छात्र एवं १०० छात्राओं) का चयन किया गया है। अध्ययनकर्त्ता ने प्रोफेसर बाकर मेंहदी का शाब्दिक सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अलका सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय-सक्सेना सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए टी-अनुपात एवं प्रसरण विश्लेषण (एफ-अनुपात) का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव विद्यार्थियों के सृजनात्मकता एवं शैक्षिक उपलब्धि पर नहीं पाया गया। प्राप्त परिणाम के समान पूर्व परिणाम रानी (२०१६) के अध्ययन-निष्कर्ष में पाया गया कि उच्च माध्यमिक स्तर पर सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं सृजनात्मकता में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया गया। शर्मा एवं शर्मा (२०१७) के अध्ययन-परिणाम बताते हैं कि ग्रामीण एवं शहरी– दोनों ही क्षेत्र के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा उनकी सृजनात्मकता में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

बीज शब्द : एम.एड. स्तर, छात्र-छात्राएँ, सृजनात्मकता, सामाजिक-आर्थिक स्तर, प्रभाव।

प्रस्तावना– भारतीयता की कल्पना करते ही हमारे सामने महान भारतीय परम्पराओं, व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं का सहज ही बोध हो जाता है। भारतीय संस्कृति की समस्त विशेषताओं में से एक विशेषता ऐसी है, जो इसे अन्य संस्कृतियों से अलग करती है और वो है– समय के परिवर्तन के साथ-साथ अपनी प्रासंगिकता को अक्षुण्ण बनाये रखना। आदिकाल से अद्यतन सामाजिक व्यवस्थाओं तक के अत्यन्त लम्बे सफर में भी भारत की मौलिकता, अनगिनत परिवर्तनों के बावजूद, अपने मूल स्वरूप एवं कलेवर में विद्यमान है। हमारा इतिहास इस बात का गवाह है कि हम सृजनकर्ता रहे हैं। हमने विश्व को बहुत कुछ दिया है। हमारे सृजन का गौरवगान किसी समय विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में होता रहा है। किसी को 'विश्वगुरु' जैसा सम्मान यूँ ही नहीं मिल जाता। विश्व भर के लोग यूँ ही नहीं हमसे सीखने आते। इसके पीछे हमारी एक अद्‌भुत विशेषता रही हैं और वो है– हमारी सृजन की क्षमता। वर्तमान में शिक्षा-जगत जब मानवीय गुणों को परिभाषित करने की प्रक्रिया में है, तो इसी क्षमता को सृजनात्मकता का नाम दिया गया है। सृजनात्मकता का गुण हम भारतीयों को विरासत में मिला है। कालान्तर में; अनेकानेक विसंगतियों के आ जाने के कारण हमारी शैक्षिक परम्परा एवं शैक्षिक विधा में अनेक

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– शिक्षक-शिक्षा संकाय, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

अनचाहे परिवर्तन आये। परिणामत: हमें जहाँ होना चाहिए था, वहाँ हम नहीं पहुँच पाये।

मानव-विकास के विभिन्न चरणों में विकास की गति, दिशा एवं दशा अलग-अलग होती है। वैज्ञानिकों का भी मानना है कि किशोरावस्था में सीखना अत्यन्त तीव्र गति से होता है। साथ-ही-साथ; अन्तर्निहित गुणों के प्रस्फुटन के लिए भी यही चरण उत्तरदायी है। इसी प्रकार, सृजनात्मकता के विकास के लिए भी किशोरावस्था अत्यन्त उपयुक्त काल है। उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों में अनेकानेक सामाजिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी तीक्ष्णता एवं तीव्रता के कारण उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा अन्य स्तर के शैक्षिक-पद्धतियों एवं प्रविधियों से बहुधा भिन्न होती है। इस स्तर पर आकर छात्र समाज, परिवार एवं विभिन्न समूहों के प्रति अपने नवीन दृष्टिकोण की रचना करता है। यही दृष्टिकोण उसके व्यवहारों के लिए दिशा-निर्देश बनते हैं। इस स्तर पर सीखने एवं सिखाने की परिस्थितियाँ भी बदलती हैं। यहीं आकर छात्र अपने भावी जीवन के लक्ष्य तय करता है एवं अपने लिए उन प्रविधियों का भी चयन करता है, जिनके द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। व्यक्तिगत भिन्नता के कारण हर छात्र अपनी गति एवं विधि के साथ आगे बढ़ता है। परन्तु प्राय: यह देखा जाता है कि किसी क्षेत्र विशेष में विशेष ख्याति प्राप्त करने के लिए कुछ नया करना या नये तरीके से करना आवश्यक हो जाता है। यही नयापन 'सृजनात्मकता' कहलाता है। अन्य गुणों की ही भाँति सृजनात्मकता का भी विकास इस स्तर पर तीव्र गति से होता है। सृजनात्मक बालक अपने आने वाले समय में अपनी नयी एवं अद्‌भुत पहचान बनाने में सफल होता है। वर्तमान विश्व अपने चारों तरफ नवीनता की खोज कर रहा है। हम अपने उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों को उचित परिस्थितियाँ उपलब्ध कराकर विश्व की इस खोज के सापेक्ष कुशल व्यक्ति उपलब्ध करा सकते हैं। शिक्षाशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले लोग सहजता से अनुभव कर सकते हैं कि एक सृजनात्मक बालक अपने समकक्षों से अलग दिखाई देता है। यद्यपि हमारे विकासशील स्वरूप के कारण एवं मानवीय संसाधनों पर कम ध्यान दे पाने के कारण हम अपने किशोरों की सृजनशीलता को यथा आवश्यक स्तर तक विकसित नहीं कर पा रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों में सृजनात्मकता का विकास अनेक कारणों से प्रभावित होता है। छात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त; अनेक बाह्य कारक भी उनकी सृजनात्मकता को बढ़ाते या घटाते हैं। बाह्य कारकों की लम्बी शृंखला में उन संस्थाओं के वातावरण को एक महत्त्वपूर्ण प्रभावक के रूप में समझा जा सकता है। यह बता पाना कि सामाजिक-आर्थिक स्तर सृजनात्मकता के उन्नयन में किस हद तक और कितना प्रभावकारी कारक है; कठिन है, परन्तु नि:सन्देह कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता के विकास में इसकी महती भूमिका है। एक पक्षपातरहित वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन द्वारा किया जा रहा है कि सामाजिक-आर्थिक स्तर सृजनात्मकता पर किस प्रकार का प्रभाव डालता है?

समस्या-कथन– 'एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन।'

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है– १. एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना। २. एम.एड. स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना तथा ३. एम.एड. स्तर की छात्राओं की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ-

१. एम. एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव है।

२. एम.एड. स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव है।

३. एम.एड. स्तर की छात्राओं की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव है।

शोध-प्रविधि– प्रस्तुत अध्ययन विषय की समस्या की प्रकृति के अनुसार, अनुसंधान के लिए 'सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत् एम.एड. के छात्र-छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन-विधि का प्रयोग करते हुए २०० एम.एड. विद्यार्थियों (१०० छात्र एवं १०० छात्राओं) का चयन किया गया है। अध्ययनकर्त्ता ने प्रोफेसर बाकर मेंहदी का शाब्दिक सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अलका सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय-सक्सेना सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए टी-अनुपात एवं प्रसरण-विश्लेषण (एफ-अनुपात) का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

१. एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–

H_{01} एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-सं. १

एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का एफ-अनुपात

स्रोत	df	ss	Ms	F
समूहों के मध्य	२	६०३.६०	३०१.८०	१.४३
समूहों के अन्दर	१९७	४१६०६.४८	२११.२०	
योग	१९९	४२२१०.०८	५१३.००	

*.०५ स्तर पर असार्थक

सारणी-१ के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ-अनुपात का मान १.४३ है, जो .०५ स्तर पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना कि 'एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर है', .०५ स्तर पर स्वीकृत की जाती है।

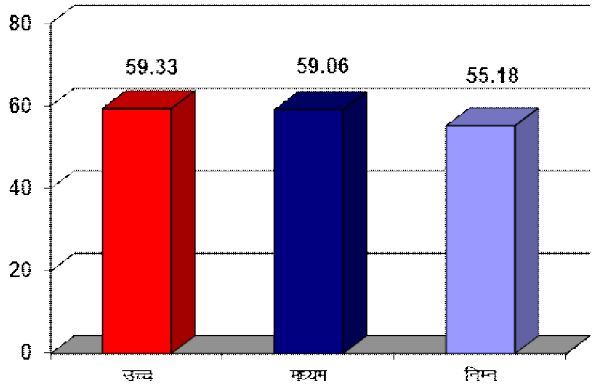

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। परिणामत: कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

२. एम.एड. स्तर के छात्रों क़ी सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन-

H_{02} एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-सं. २

एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता का एफ-अनुपात

स्रोत	df	ss	Ms	F
समूहों के मध्य	२	२१३.२३	१०६.६१	१.०५
समूहों के अन्दर	९७	९८८८.०८	१०१.९४	
योग	९९	१०१०१.३१	२०८.५५	

*.०५ स्तर पर असार्थक

सारणी-२ के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ-अनुपात का मान १.०५ है, जो .०५ स्तर पर असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना कि 'एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर है', .०५ स्तर पर स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। परिणामत: कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

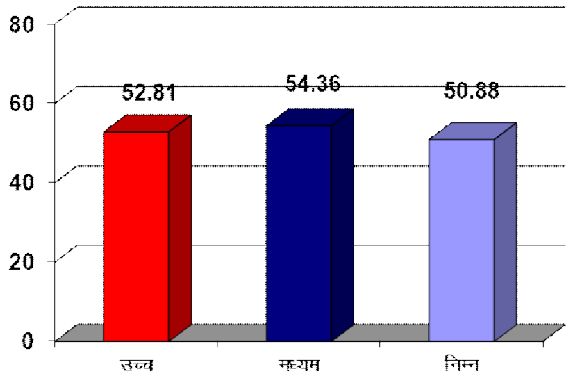

३. एम.एड. स्तर की छात्राओं की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–

H_{03} एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-सं. ३

एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता का एफ-अनुपात

स्रोत	df	ss	Ms	F
समूहों के मध्य	२	८६८.५९	४३४.३०	१.६१
समूहों के अन्दर	९७	२६२२०.१६	२७०.३१	
योग	९९	२७०८८.७५	७०४.६१	

*.०५ स्तर पर असार्थक

सारणी-३ के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ-अनुपात का मान १.६१ है, जो .०५ स्तर पर असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना कि 'एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर है', .०५ स्तर पर स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। परिणामत: कहा जा सकता है कि एम.एड. स्तर के छात्राओं की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

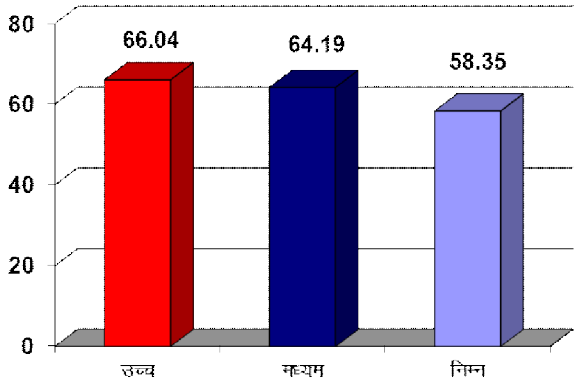

निष्कर्ष- अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

- एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। निष्कर्षत: एम.एड. स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।
- एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। निष्कर्षत: एम.एड. स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।
- एम.एड. स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता भिन्नता नहीं है। निष्कर्षत: एम.एड. स्तर के छात्राओं की सृजनात्मकता पर सामाजिक-आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।
- अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं शैक्षिक उपलब्धि पर नहीं पाया गया। प्राप्त परिणाम के समान पूर्व परिणाम रानी (२०१६) ने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– उच्च माध्यमिक

स्तर पर सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं सृजनात्मकता में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया गया। शर्मा एवं शर्मा (२०१७) के अध्ययन–परिणाम बताते हैं कि ग्रामीण एवं शहरी– दोनों ही क्षेत्र के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा उनकी सृजनात्मकता में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

- सारी सलेम अलफुहैगी– स्कूल इन्वायरमेण्ट एण्ड क्रियेटिव डेवलपमेण्ट : ए रिव्यू ऑफ लिट्रेचर, जर्नल ऑफ एजुकेशनल एण्ड इस्ट्रक्शनल स्टडीज इन द वर्ल्ड, ५(२), पृ. ३३-३७, (२०१५)
- वाई. के. गुप्ता– कन्टेम्पोरी रिसर्च ऑफ टीचर इफैक्टिवनेस, नई दिल्ली : श्री पब्लिशिंग हाउस, मॉडल बस्ती, (१९८६)
- ए. गरेड– उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन, पी-एच.डी. बियानी गर्ल्स बी.एड. कॉलेज, जयपुर, राजस्थान, (२०१७)
- बी. के. पासी– मैनुअल फॉर पासी टेस्ट ऑफ क्रियेटिविटी, नेशनल साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन, आगरा
- के. रैना– साइकोसोशल कोरिलेट्स ऑफ सांइटिफिक क्रिएटिविटि एण्ड हाईस्कूल स्टूडेण्ट्स, पी-एच. डी. एजु., कुरुक्षेत्र यूनि., (१९८६)
- एच. रिडंरमान, ए.सी. न्यूबर– प्रोसेसिंग स्पीड, इण्टेलीजेंस, क्रियेटिविटी एण्ड स्कूल परफारमेंस टेस्टिंग ऑफ कॉजल हाइपोथेसेस यूजिंग स्ट्रक्चरल इक्वेशन मॉडल्स इंटेजीजेंस, अंक ३२ सं. ६, पृ. ५७३-५८९, ई. आर. आई. सी. वेब पोर्टल, (२००४)
- लार्स लिण्डस्टॉर्म– क्रियेटिविटी व्हॉट इज इट 'कैन यू एसेस इट' कैन इट बी टॉट,? इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट एण्ड डिजाइन एजुकेशन, अंक २५, सं. १, पृ. ५३-६६, ई. आर. आई. सी. वेब पोर्टल
- गजाथीश्वरी वेजेन एवं अन्य स्कूल-क्रिएटिव क्लाइमेट : फैक्टर्स इन्फ्लुऐशन्स पोस्टिंग क्रिएटिविटी स्कूल, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग, वाल्यूम-२, http://www.injet.upm. edu.my, (२०१६)
- वी. शर्मा एवं एस. व्यास– विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का उनकी चिन्तन-शैली एवं सृजनात्मकता के सन्दर्भ में अध्ययन, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवान्सड रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट, वैल्यूम-३ (२), (२०१८)
- डी. शुक्ला– साइटेड इन साल्वी, आर. (२०१७) आदिवासी एवं गैरआदिवासी विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन, शृंखला : एक शोधपरख वैचारिक पत्रिका, वैल्यूम-५ (२), (२०१५)
- एस. सिंह– उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सृजनात्मकता का उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन, 'सम्वाद' ई जर्नल, पृष्ठ-६१-६८, (२०१८)
- सैमा सिद्दिकी– ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ क्रियेटिविटी एमंग ब्वायज एण्ड गर्ल्स ऑफ क्लास-VII, इण्डियन एजुकेशन रिव्यू, ४९ (२), ५-१४, (२०११)
- कसवार हाफिज– लर्निंग स्टाइल एण्ड सेल्फ-कन्सेप्ट ऑफ हाई एण्ड लो क्रियेटिव स्टूडेण्ट्स ऑफ नवोदय विद्यालय स्कूल्स ऑफ कश्मीर वैली, ऐन इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च, II (१), १-१४, (२०१६)

कौशल विकास कार्यक्रम के समक्ष चुनौतियाँ

मनोज कुमार*

सारांश– भारत एक युवा नौजवान देश है। यहाँ की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग हमारे देश को जनसांख्यिकीय लाभ पहुँचा सकता है, यदि ये युवा एक कौशल युक्त युवा बन कर देश के आर्थिक विकास में सहभागी बनें। भारत सरकार द्वारा कौशल विकास पर जोर देना इसी दिशा में एक सकारात्मक कदम है। लेकिन इसके साथ ही; कौशल विकास कार्यक्रम के सामने उपस्थित चुनौतियों पर भी हमारी नजर होना आवश्यक हो जाता है। हमें यह भी ध्यान देना होगा कि इतनी बड़ी संख्या में युवाओं को केवल संगठित क्षेत्र में ही समाहित करना एक चुनौती से कम नहीं है। इस चुनौती से निपटने के लिए हमें स्वरोजगार एवं उद्यमिता के क्षेत्र में भी सम्भावनाओं को ढूँढ़ना होगा। यह शोध-पत्र कौशल विकास के इस मिशन में सामने आ सकने वाली इसी प्रकार की चुनौतियों को सामने रखने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है।

कूट शब्द– कौशल विकास, स्वरोजगार, उद्यमिता।

प्रस्तावना– वर्ष २०११ में हुई भारत की जनगणना के अनुसार, देश की जनसंख्या १२१ करोड़ है, जिसमें ६७.२ करोड़ की जनसंख्या की आयु १५-५९ वर्ष की है। इन्हें सामान्यत: हम एक कार्यबल जनसंख्या के रूप में मानते हैं। इनमें से भी करीब २५ करोड़ लोगों की आयु १५-२४ वर्ष के बीच है, जो वर्ष २०११ में हुई जनगणना का २१ प्रतिशत है। अगर हम इतनी बड़ी युवा शक्ति की ऊर्जा का सदुपयोग कर सकें, तो यह भारत की एक विशिष्ट मानव-सम्पदा के रूप में देश की आर्थिक उन्नति में अत्यधिक उपयोगी साबित होगी तथा साथ-ही-साथ; विश्व के अन्य देशों में हो रही कुशल श्रम की कमी व बढ़ती हुई आउट सोर्सिंग की आदत के कारण विदेश में भी भारतीयों के लिए रोजगार पाने के अवसर बढ़ेंगे। योजना आयोग (१२वीं पंचवर्षीय) के अनुसार, आने वाले अगले २० वर्षों में भारत की श्रम-शक्ति में ३२ प्रतिशत की बढ़ोत्तरी देखने को मिलेगी, जबकि अन्य देशों में ४ प्रतिशत की और चीन में ५ प्रतिशत की कमी होने की पूरी सम्भावना है। इसीलिए देश की आर्थिक वृद्धि के लिए कौशल विकास में उच्च स्तर प्राप्त करना और आजीविका के लिए गुणवत्तापूर्ण साधन उपलब्ध करना अति आवश्यक है।

माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का कहना है कि अगर इस युवा शक्ति को वांछित कौशलों द्वारा प्रशिक्षित नहीं किया गया, तो यही युवा शक्ति देश के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकती है और बेरोजगारी की समस्या और भी विकराल रूप धारण कर सकती है। इसीलिए देश के कौशल विकास कार्यक्रम के सामने अत्यधिक चुनौतियाँ भी हैं, जो निम्न हैं–

अत्यधिक बड़ा लक्ष्य– कौशल विकास नीति में वर्ष २०२२ तक लगभग ४० करोड़ लोगों को कौशल-प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया है। सबसे बड़ी चुनौती इसी बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने की ही है। निश्चित ही; यह लक्ष्य किसी भी देश के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र में अभी तक निर्धारित लक्ष्यों में से सबसे बड़ा लक्ष्य है। इतने बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने में राष्ट्र के सभी लोगों के सामूहिक प्रयास की अत्यधिक आवश्यकता पड़ेगी। निजी क्षेत्र के प्रयासों,

* शोध-छात्र (NET-JRF)– समाजकार्य विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समाज के नीति-निर्धारकों के प्रयासों, रोजगार-प्रदाताओं के प्रयासों, युवाओं के प्रयासों अर्थात् सभी के सामूहिक प्रयासों से इस लक्ष्य को प्राप्त करना आसान हो जायेगा। इतने बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए देश की प्रशिक्षण-क्षमता में वर्ष-दर-वर्ष ४ से ५ करोड़ की वृद्धि करनी होगी। राष्ट्रीय कौशल विकास निगम में ४९ प्रतिशत की हिस्सेदारी सरकार की एवं ५१ प्रतिशत की हिस्सेदारी निजी क्षेत्रों की होती है, इसीलिए दोनों को मिलाकर ही इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

आधारभूत संरचना– भारत में तकनीकी प्रशिक्षण के संसाधन भी उतने प्रर्याप्त नहीं हैं, जितने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें चाहिए। वर्तमान में देश की तकनीकी संस्थाओं में ३१ लाख लोगों को प्रति वर्ष प्रशिक्षित करने की क्षमता है, जबकि हर साल १ करोड़ २८ लाख युवा रोजगार की तलाश में 'वर्कफोर्स' में जुड़ रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास नीति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए नये आईटीआई, पॉलिटेक्निक संस्थानों की स्थापना की जानी है। इसमें निजी सहभागिता के भी प्रावधान शामिल हैं। साथ ही; संस्थाओं को जनसंख्या की क्षेत्रीय आवश्यकता के आधार पर भी भौगोलिक वितरण की असमानता को दूर करना होगा, तभी हम इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाएँगे।

असंगठित क्षेत्र– असंगठित क्षेत्र के बारे में इसी के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग का कहना है कि असंगठित क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बहुत अहम् एवं बड़ा भाग है, जिसकी कुल कार्यरत जनसंख्या में ९० प्रतिशत व्यक्ति एवं कुल राष्ट्रीय उत्पाद में ५० प्रतिशत उत्पाद की भागीदारी है। गरीब एवं आर्थिक रूप से पिछड़े लोग इसी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति आंशिक एवं मौसमी बेरोजगारी से ग्रस्त होता है। उसके पास आजीविका के स्थायी साधनों की कमी होती है। बँधुआ मजदूरी, कम आय, ऋण-ग्रस्तता आदि अन्य समस्याएँ भी होती हैं। असंगठित क्षेत्र के व्यक्ति अनौपचारिक माध्यमों से कौशल-प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जिससे उनका कहीं से भी प्रामाणीकरण नहीं होता है। नई कौशल विकास नीति में इस प्रकार की कुशलता को देने का प्रावधान है, जिससे उन्हें लघु एवं मध्यम उद्योगों की स्थापना के लिए कम ब्याज पर और सही समय पर ऋण प्राप्त हो सके एवं उनकी समस्याओं को कम किया जा सके।

कुशल प्रशिक्षकों की कमी– इतने बड़े निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हमें केवल संख्यात्मक रूप से ही नहीं प्राप्त करनी है, बल्कि हमें इसे गुणात्मक दृष्टि से भी हासिल करना है। इसके लिए हमें बड़े पैमाने पर कुशल प्रशिक्षकों की आवश्यकता है। कुशल प्रशिक्षकों की सहायता से हम कुशल व्यक्तियों का निर्माण कर सकेंगे, जो कार्यस्थल पर जाकर, अपने कौशल की सहायता से अपना योगदान देश की अर्थव्यवस्था में पूर्ण रूप से दे सकें।

शिक्षा सम्बन्धी चुनौतियाँ– देश की जनसंख्या में युवाओं का इतना बड़ा प्रतिशत ही केवल एकमात्र कारण नहीं है, जिसने हमें कौशल विकास कार्यक्रम शुरू करने को प्रेरित किया, बल्कि वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था से जुड़े कारणों ने भी अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है। आज उच्च शिक्षा में गैर तकनीकी विषयों– कला, वाणिज्य एवं विज्ञान की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिससे अधिकांश युवा उत्पादन एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने हेतु वांछित कौशल-ज्ञान अर्जित नहीं कर पाते हैं। इस कारण; बेरोजगारी तेज रफ्तार से बढ़ रही है। इसीलिए आज देश में एक ऐसे शिक्षा-तंत्र की आवश्यकता है, जिसमें कौशल-विकास के लिए माध्यमिक

शिक्षा की आवश्यकता न हो। बिना माध्यमिक शिक्षा के यदि विद्यार्थी कौशल प्राप्त करना चाहता है, तो उसके लिए ऐसे अकादमिक विकल्प मौजूद रहें।

सुझाव– कौशल विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में हमारे सामने चुनौतियों की एक बहुत बड़ी बाधा है। परन्तु अगर हम सब मिल कर अपने हिस्से का प्रयास करेंगे, तो इस बड़े से लक्ष्य को प्राप्त करने एवं अपने देश की इतनी बड़ी युवा शक्ति को विश्व की एक सर्वश्रेष्ठ कौशलपूर्ण कार्यात्मक वर्कफोर्स में तब्दील कर सकेंगे। इसके लिए हमें अपने शैक्षिक ढाँचे में, अपने नीतिगत प्रयासों में कुछ अहम् बदलाव लाने की आवश्यकता है और अपने देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति को और मजबूत बनाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-सूची

१. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/the-problem-of-skilling-india
२. http://gemindiaconsortium.org/reports/GEM_INDIA_REPORT
३. https://censusindia.gov.in/census.website
४. htt ps://www..ni t i .gov.in
५. htt ps://www.ski l l i ndi a.gov.in
६. 'योजना' पत्रिका– मार्च २०१९, पृ. ४-९
७. https://rural.nic.in
८. India skill capital- become a money making machine
९. http://ddugky.gov.in/hi/content/about-us
१०. Rural youth in modern India
११. के. ए. महेश्वरी– रोजगार एवं लोकवित्त
१२. https://www.jansatta.com/editorial/jansatta-editorial-column-on-unemployment/1230759/
१३. डॉ. जी. के. अग्रवाल एवं एस. एस. पाण्डेय– ग्रामीण समाजशास्त्र
१४. https://www.upsdm.gov.in

●

सांस्कृतिक नगरी काशी की पत्रकारिता : दशा और दिशा

डॉ. साधना श्रीवास्तव*

प्रस्तावना– देश की सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक राजधानी के रूप में विख्यात् वाराणसी का ही एक उपनाम 'काशी' है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, काशी भगवान् शिव के त्रिशूल पर बसी है। यह शहर अपने में अनेक रहस्य और प्रेरणा के इतिहास को समाये है। यहाँ की संस्कृति और इतिहास भव्य है। किसी भी स्थान की विरासत व परम्परा, संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करने का सशक्त माध्यम पत्रकारिता भी रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र काशी और यहाँ की पत्रकारिता पर किए गए अध्ययन का लेखा-जोखा है। काशी में पत्रकारिता को पनपने-सँवरने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हुए हैं। प्रेमचन्द की जन्मस्थली और पं. महामना मदन मोहन मालवीय की कर्मभूमि रही काशी ने समय-दर-समय पत्रकारिता के इतिहास में अनेक नामों को स्वर्णाक्षरों से अंकित किया है। यहाँ अनेक महान साहित्यकारों, पत्रकारों और कलाकारों ने जन्म लिया है तथा बहुत सी महान विभूतियों ने समय-समय पर इस पावन भूमि को कार्यस्थल के रूप में चुना है। गौतम बुद्ध, जैन तीर्थंकर, शैव और वैष्णव सन्तों या कबीर और तुलसी जैसे पवित्र सन्तों की कर्मस्थली भी रही है ।

इनमें अनेक महात्माओं और विद्वानों, जैसे– महर्षि अगस्त्य, धन्वंतरि, बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध, अघोराचार्य बाबा कीनाराम, पाणिनि, पार्श्वनाथ, पतंजलि, सन्त रैदास, स्वामी रामानन्दाचार्य, बल्लभाचार्य, शंकराचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, महर्षि वेदव्यास और वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई का नाम प्रमुख है। इसके अतिरिक्त; गीत-संगीत और कला के क्षेत्र में भी काशी का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का 'बनारस घराना' वाराणसी में ही जन्मा एवं विकसित हुआ है। भारत के कई दार्शनिक, कवि, लेखक, संगीतज्ञ वाराणसी में रहे हैं, जिनमें कबीर, बल्लभाचार्य, रविदास, स्वामी रामानन्द, तैलंग स्वामी, शिवानन्द गोस्वामी, मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पण्डित रविशंकर, गिरिजा देवी, पण्डित हरिप्रसाद चौरसिया एवं उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ आदि कुछ प्रमुख हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू धर्म का परमपूज्य ग्रन्थ 'रामचरितमानस' यहीं लिखा था और गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन बनारस के ही पास सारनाथ में दिया था।

कला-साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता के विकास-क्रम में काशी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। काशी प्रारम्भ से ही जागरण, अध्यात्म व शिक्षा की नगरी रही है। यहाँ से ऐसी बहुत सी महत्त्वपूर्ण पत्र और पत्रिकाएँ निकली हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता की अलख से आजाद भारत की नींव रखी और जिनका पत्रकारिता के इतिहास में अग्रिम स्थान है। यद्यपि हिन्दी पत्रकारिता के अंकुर सर्वप्रथम बंगाल में प्रस्फुटित हुए और उत्तर प्रदेश, जो कि हिन्दी भाषी प्रान्त था, वहाँ इसका अंकुरण विलम्ब से हुआ, परन्तु जब हुआ, तो ऐसा हुआ कि काशी की पत्रकारिता के इतिहास में अनेक समाचार-पत्रों की लम्बी शृंखला स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गयी। काशी में पत्रकारिता के बीज को समय के साथ-साथ अनेक पत्रकारों की कलम की स्याही ने सींचकर वर्तमान का विशाल वटवृक्ष बना दिया,

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ. प्र.

जिस वटवृक्ष की शाखाएँ आज भी पत्रकारिता के नये आयामों को छाँव दे रही है।

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन के अग्रलिखित उद्देश्य हैं–

- काशी का इतिहास समझना।
- काशी की विशेषता को समझना।
- काशी की पत्रकारिता का अध्ययन करना।
- काशी की पत्रकारिता की विशेषता को समझना।

शोध-विधि– प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जायेगा। इसमें हमें काशी का इतिहास, काशी की विशेषता और काशी की पत्रकारिता का अध्ययन करना है। उनको एकत्र करके, अपने उद्देश्य के अनुसार क्रमबद्ध रूप में बिखरे तथ्यों का संकलन करके उनका वर्णन किया जायेगा।

काशी का इतिहास– किसी भी स्थान का इतिहास वहाँ की भौगोलिक संरचना और लोगों के साथ-साथ अभिलेखों पर निर्भर करता है। काशी एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल है, जिसका वर्णन पौराणिक कथाओं में भी मिलता है। काशी नगर के लिए किंवदंती है कि स्वयं भगवान् शिव ने लगभग ५००० वर्ष पूर्व इसकी स्थापना की थी। यह हिन्दुओं की पवित्र सप्तपुरियों में से एक है। प्राचीनतम ग्रन्थों जैसे वेद– ऋग्वेद, स्कन्द पुराण, रामायण, महाभारत और अनेक हिन्दू ग्रन्थों में इस नगर का उल्लेख आता है। गौतम बुद्ध का समय हो या सोलह महाजनपद का काल– काशी राज्य का उल्लेख है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने नगर को धार्मिक, शैक्षणिक एवं कलात्मक गतिविधियों का केन्द्र बताया है और इसका विस्तार गंगा नदी के किनारे ५ किलोमीटर तक लिखा है। मोहित पारीख ने अपने लेख में लिखा है कि बनारस, काशी और वाराणसी इत्यादि नामों से बाबा विश्वनाथ की नगरी दुनियाभर में सांस्कृतिक महत्त्व के लिए जानी जाती है। वाराणसी का सबसे पुराना नाम काशी ही है। धार्मिक ग्रन्थों में भी इस शहर का महिमामण्डन काशी के नाम से ही किया गया है। यह नाम करीब ३००० वर्षों से बोला जा रहा है। काशी को कई बार 'काशिका' भी कहा गया, जिसका मतलब है– चमकता हुआ। कहा जाता है कि भगवान् शिव की नगरी होने के कारण यह हमेशा चमकती हुई थी। काशी शब्द का अर्थ उज्ज्वल या दैदिप्यमान से भी है। वैसे कई धार्मिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख है। कई रिपोर्टों में बताया गया है। प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी काशी का उल्लेख है। इसके अलावा; स्कन्दमहापुराण में काशीखण्ड है, जिसमें इस शहर का जिक्र है। पुराणों के अनुसार, यह आद्य वैष्णव स्थान है। बौद्ध जातक कथाओं और हिन्दू पुराणों में भी काशी का उल्लेख है।

काशी का नामकरण– जैसा कि विदित है कि काशी नगर का अस्तित्व प्राचीन काल से है। बनारस सहित अनेक नामकरणों से इस नगर को जाना जाता है। वर्तमान में यह नगर वाराणसी के नाम से जाना जाता है। वास्तव में; गंगा नदी के किनारे बसी काशी नगरी का एक नाम उत्तरी भाग में वरुणा और दक्षिण भाग में अस्सी नदी होने के कारण 'वाराणसी' भी पड़ा है। भारत की आजादी अर्थात् १९४७ से पहले ही बनारस के तत्कालीन महाराजा विभूति नारायण सिंह थे। आजादी के बाद जब अलग-अलग रियासतों का विलय हो रहा था, उसी समय ही महाराजा विभूति नारायण सिंह ने भी भारत के विलय के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए थे। आजादी के बाद जब उत्तर प्रदेश बना, तो इसमें टिहरी गढ़वाल, रामपुर और बनारस रियासत को मिलाया गया। २४ मई, १९५६ को शहर का नाम बदला गया। काशी, बनारस तथा वाराणसी के अलावा इस शहर को

अविमुक्त क्षेत्र, आनन्दकानन, महाश्मशान, रूद्रावास, काशिका, तप:स्थली, मुक्तिभूमि, शिवपुरी, त्रिपुरारिराजनगरी, विश्वनाथनगरी, मन्दिरों का शहर, भारत की धार्मिक राजधानी, भगवान् शिव की नगरी, दीपों का शहर, ज्ञान नगरी इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। इसके अलावा; कई जगह इसका नाम शंकरपुरी, जित्वारी, आनन्दरूपा, श्रीनगरी, अपूर्णभावाभावभूमि, शिवराजधानी, गौरीमुख, महापुरी, धर्मक्षेत्र, विष्णुपुरी, हरिक्षेत्र, अलर्कपुरी, नारायणवास, ब्रह्मवास, पोतली, सुदर्शन, जयनशीला, रम्यनगर, सुरुंधन, पुष्पवती, केतुमती, मौलिनी, कासीपुर, कासीनगर, कासीग्राम भी है। संक्षेप में कहें, तो घाटों की नगरी, मोक्ष की नगरी और अलग-अलग उपनाम है । यह आध्यात्मिक और धार्मिक नगरी है। इसे धर्म-स्थान एवं पूजन-पद्धतियों के महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थान और संस्थान के लिए जाना जाता है।

मध्य युग के माध्यम से, मुस्लिम शासन के दौरान, शहर हिन्दू-भक्ति, तीर्थयात्रा, रहस्यवाद और कविता के एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में जारी रहा, जिसने सांस्कृतिक महत्त्व और धार्मिक शिक्षा के केन्द्र के रूप में अपनी प्रतिष्ठा में और योगदान दिया। तुलसीदास ने राम के जीवन पर अपना महाकाव्य ग्रन्थ वाराणसी में ही लिखा, जिसे रामचरितमानस कहा जाता है। भक्ति आन्दोलन के कई अन्य प्रमुख सन्त, जैसे– कबीरदास और रविदास वाराणसी में पैदा हुए थे। गुरु नानक ने १५०७ में महाशिवरात्रि के दिन वाराणसी का दौरा किया। यह एक ऐसी यात्रा थी, जिसने सिख धर्म की स्थापना में बड़ी भूमिका निभाई। वाराणसी के मन्दिरों में श्री काशी विश्वनाथ मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। अन्य मन्दिरों में संकट मोचन हनुमान मन्दिर, दुर्गा मन्दिर, अन्नपूर्णा मन्दिर, भैरवनाथ मन्दिर तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर के अन्दर स्थित काशी विश्वनाथ मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। काशी नरेश (काशी का महाराजा) वाराणसी के मुख्य सांस्कृतिक संरक्षक हैं और सभी धार्मिक समारोहों का एक अनिवार्य हिस्सा हैं। वाराणसी में अन्य प्रसिद्ध मन्दिर भी हैं। एक और अपेक्षाकृत नया मन्दिर १९६४ में भगवान् राम के सम्मान में निर्मित तुलसी मानस मन्दिर है, जहाँ तुलसीदास ने रामायण के महाकाव्य के स्थानीय संस्करण रामचरितमानस की रचना की थी। इन मन्दिरों के अतिरिक्त वाराणसी में ही भारत माता मन्दिर है, जो 'मदर इण्डिया' को समर्पित है। इसका १९३६ में महात्मा गाँधी द्वारा उद्घाटन किया गया था। इसमें संगमरमर में नक्काशीदार भारत का एक बड़ा-सा मानचित्र है।

शिक्षा में अलग पहचान–'तीनों लोकों से न्यारी काशी और सुज्ञान गंगा और सत्य राशि'– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलगीत की ये पंक्तियाँ काशी को तीनों लोकों से अलग बनाती है। जैसी अनोखी व अनूठी है काशी की संस्कृति और परम्परा, उतनी ही गरिमामय भी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी वाराणसी की अहमियत शुरू से ही रही है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने क्षेत्र में अलग पहचान बनाई है, तो महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, सेण्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ हायर तिब्बतियन स्टडीज और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय जैसे वाराणसी में चार बड़े विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिक्ति; सुधाकर महिला महाविद्यालय, उदय प्रताप कॉलेज, अग्रसेन महाविद्यालय, धीरेन्द्र महिला महाविद्यालय इत्यादि जैसी निजी शिक्षण संस्थाएँ भी है।

काशी के महत्त्व पर विभिन्न मत– समय-समय पर अनेक विद्वानों ने काशी के बारे में अपने-अपने विचार रखे हैं। प्रसिद्ध अमरीकी लेखक मार्क ट्वेन लिखते हैं कि– ''बनारस इतिहास से भी पुरातन है, परम्पराओं से भी पुराना है, किंवदंतियों से भी प्राचीन है और जब इन सबको एकत्र कर दें, तो उस संग्रह से भी दोगुना प्राचीन है।'' दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के पूर्व

कुलपति प्रो. राममोहन पाठक के अनुसार– ''काशी साहित्य और पत्रकारिता के सम्मिलन की धरती है। दोनों विधाओं की यह एकता देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और यहाँ तक कि राजनीतिक चेतना को भी स्वस्थ, सन्तुलित एवं प्रगतिशील दृष्टि प्रदान करती रही है।'' मार्च, २०१९ में डीजल रेल इंजन कारखाना परिसर में स्थित राजकीय महिला महाविद्यालय में 'काशी एक शाश्वत नगर : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में' विषय पर सम्पन्न हुई दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के मुख्य अतिथि के रूप में उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रो. ईश्वर शरण विश्वकर्मा ने काशी के महत्त्व पर कहा था कि काशी की प्राचीनता व ऐतिहासिकता किसी परिचय का मोहताज नहीं है। यह शहर विश्व में अलग पहचान रखता है। शोडष महाजनपद में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली काशी न केवल काशीवासियों के लिए, बल्कि भारतवासियों के लिए भी गौरव का विषय है। 'एक्सर्ट हिन्दी वेबसाइट' में लेखक सौरभ श्रीवास्तव के प्रकाशित निबन्ध के अनुसार यह हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म में सात पवित्र शहरों (सप्त पुरी) में सबसे पवित्र है। यह बौद्ध धर्म और रविदासिया धर्म के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माना जाता है कि यहाँ पर बुद्ध द्वारा ५२८ ईसा पूर्व के आस-पास बौद्ध धर्म की स्थापना की गई थी। उन्होंने अपना पहला उपदेश 'धर्म के पहिये की गति' वाराणसी के सारनाथ में दिया था। ८वीं शताब्दी में शहर का धार्मिक महत्त्व बढ़ता जा रहा था, जब आदिशंकर ने शिव की पूजा वाराणसी के आधिकारिक सम्प्रदाय के रूप में की थी।

काशी से प्रकाशित समाचार-पत्र 'बनारस अखबार'– यह वह समाचार-पत्र था, जिसे प्रथम साप्ताहिक हिन्दी का गौरव प्राप्त था। 'बनारस अखबार' का प्रकाशन राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने किया था। पत्र के सम्पादक गोविन्दनाथ थत्ते मूल रूप से मराठी भाषी थे। इस पत्र की एक विशेषता यह भी थी कि यह पत्र हिन्दी लिपि में प्रकाशित होता था, परन्तु अनेक बार उर्दू भाषा का प्रयोग भी होता था। इसका प्रमुख कारण राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का उर्दू भाषा के प्रति प्रेम व समर्थन था। अनेक विद्वान् इस पत्र को अरबी-फारसी और उर्दू भाषा की अधिकता से हिन्दी का पत्र मानने से इंकार करते थे। वे इसे हिन्दी क्षेत्र का पहला समाचार पत्र मानते थे, न कि हिन्दी भाषा का। १८४५ ई. में प्रकाशित इस समाचार पत्र ने काशी की पत्रकारिता की भव्य इमारत की नींव डाली थी।

सुधाकर– काशी की पत्रकारिता की अगली कड़ी में, १८५० ई. में श्री तारामोहन मैत्रेय के 'सुधाकर' नामक समाचार-पत्र का नाम आता है। अगर भाषा की दृष्टि से देखा जाए, तो सुधाकर को ही हिन्दी प्रदेश का प्रथम पत्र माना जाना चाहिए। यह पत्र हिन्दी और बंगला– दोनों भाषाओं में छपता था। १८५३ के बाद से यह पत्र सिर्फ हिन्दी में ही निकलने लगा था। पत्र का नाम 'सुधाकर' काशी के विख्यात् ज्योतिषी सुधाकर द्विवेदी के नाम पर पड़ा था। समाचार पत्र के मुद्रक रत्नेश्वर तिवारी थे।

काशी की पत्रकारिता व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र– 'स्वतत्व निज भारत गहे, नारी-नर सम होई' की विचारधारा रखने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने न सिर्फ काशी की पत्रकारिता, बल्कि हिन्दी पत्रकारिता को भी नयी दशा व दिशा प्रदान की। दूसरे शब्दों में कहें, तो भारतेन्दु जी ने हिन्दी पत्रकारिता के नये युग का प्रारम्भ किया था। उन्होंने १५ अगस्त, १८६७ ई. को 'कवि वचन सुधा' और १५ अक्टूबर, १८७३ ई. में 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' निकाला, जिसका १८७४ ई. में नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया था। जनवरी, १८७४ ई. में ही 'बालाबोधिनी'

पत्रिका का प्रकाशन किया था। यह पत्रिका महिलाओं की मासिक पत्रिका थी। इन समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने हिन्दी पत्रकारिता के नये युग का सूत्रपात्र किया। भारतेन्दु जी ने समाज के शिक्षित और प्रबुद्ध वर्ग के साथ-साथ ही आम जनता की भावनाओं व विचारों का आदर किया। उन्होंने पत्रकारिता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, साहित्य, कविता, स्वदेशी आन्दोलन तथा दर्शन पर विशेष जोर दिया। महिलाओं की शिक्षा व विकास के भारतेन्दु जी प्रबल समर्थक थे। 'बालाबोधिनी' पत्रिका विशेष रूप से महिलाओं की ही मासिक पत्रिका थी। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने स्त्री-शिक्षा, नारी-चेतना व महिला-विकास पर विशेष ध्यान दिया। काशी की भूमि पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन व जागरूकता हेतु विशेष कार्य किये। काशीवासी ऐसे सजग पत्रकार एवं साहित्यकार के प्रति कालान्तर तक कृतज्ञ रहेंगे व शत्-शत् नमन करेंगे। यह कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्रकारिता का स्थान उनके प्रयत्नशील कदमों से सुदृढ़ हुआ। उनके बाद उच्च साहित्यिक पत्रों की बाढ़ आ गयी, लेकिन उनमें से अधिकांश केवल कुछ ही वर्षों तक चल सके थे, क्योंकि उन्हें जन-समर्थन नहीं मिला। डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन है कि– 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन से लेकर भारतेन्दु के अस्त होने तक हिन्दी पत्रकारिता के विकास का दूसरा उत्थान पूरा हो जाता है। इस अवधि में हिन्दी भाषा परिमार्जित हुयी, जागरण और सुधार-भावना का प्रसार हुआ तथा अनेक वर्गों और धर्मों में विभाजित भारतवासियों ने अपने जाति-वर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया। क्रमश: पत्र-पत्रिकाओं में गम्भीर लेख प्रकाशित होने लगे और कुछ शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ। इनके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आयी। 'कवि वचन सुधा' का आरम्भिक प्रकाशन काशी के लाइट प्रेस से हुआ था।

काशी की साहित्यिक पत्रकारिता– काशी साहित्यिक नगरी है। यहाँ से, जो अनेक साहित्यिक पत्र निकले, उनमें 'तरंगिणी' नामक एक प्रमुख पत्र का प्रकाशन भी हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। पहली बार काशी से रंगीन पत्रिका का प्रकाशन हुआ। पण्डित केदार शर्मा इसकी साज-सज्जा और चित्रों को मूर्त्त रूप देते थे। इस पत्रिका के १२ अंक निकले। इसके सम्पादक पण्डित बसन्तराव व्यास थे। इस पत्रिका को काशी के तेजस्वी साहित्यकार पण्डित ज्वालाराम नागर का वरदहस्त प्राप्त था। इसमें तत्कालीन सभी बड़े साहित्यकारों के लेख छपा करते थे। इस पत्रिका के १२ अंक निकलने के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। छायावाद युग का बहुचर्चित प्रधान मासिक पत्र 'हंस' था। इसके संचालक मुंशी प्रेमचन्द थे। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ इसका प्रकाशन १९३० ई. में किया था। इस पत्रिका के 'काशी अंक', 'द्विवेदी अभिनन्दन अंक' 'आत्मकथा' अंक, 'अभिनंदन अंक' आदि उल्लेखनीय हैं। सन १९३६ तक इसका सम्पादन प्रेमचन्द ने किया। बाद में इसके अनेक सम्पादक हुए। १९४३ के बाद यह पत्रिका बन्द हो गयी। कुछ वर्षों बाद इस पत्रिका का पुन: प्रकाशन शुरू हुआ और बाद में यह पत्रिका राजेन्द्र यादव के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती रही। ११ फरवरी, १९३२ में काशी से पाक्षिक 'जागरण' का प्रकाशन हुआ, पर कुछ ही दिनों तक प्रकाशित होने के बाद जुलाई, १९३२ में यह पत्रिका बन्द हो गयी। बाबू शिवपूजन सहाय इसके सम्पादक थे। इसे हम हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पाक्षिक पत्रिका कह सकते हैं। इसमें जितनी अधिक मात्रा में पठनीय सामग्री होती थी, उतनी मात्रा में अन्य पत्रों में सामग्री नहीं होती थी। समकालीन सभी बड़े साहित्यकारों के लेख इसमें छपा करते थे।

भारत जीवन– ३ मार्च, १८८४ ई. को 'भारत जीवन' का काशी से प्रकाशन बाबू रामकृष्ण

वर्मा ने किया था।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका– काशी की पत्रकारिता के इतिहास की बात करें और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का जिक्र न करें, तो बात अधूरी रहेगी। यह काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा १८९६ ई. में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका थी। तत्पश्चात् १९०० में प्रकाशित 'सरस्वती' ने हिन्दी पत्रकारिता को नये आयाम दिये। गौरवपूर्ण अतीत को सँजोने वाली इस पत्रिका का त्रैमासिक प्रकाशन इण्डियन प्रेस द्वारा किया जाता था। गुलामी की बेड़ियों में जकड़े भारत को भाषिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रता दिलाने के लिए करीब १२२ वर्ष पहले, सन् १९०० में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था। जून, १९८० ई. में आर्थिक कारणों से पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया था। सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन संस्थापक बाबू चिंतामणि घोष ने जनवरी, १९०० ई. में आरम्भ कराया। इसके सम्पादक-मण्डल में श्यामसुन्दर दास, किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, जगन्नाथदास रत्नाकर तथा बाबू राधाकृष्ण दास थे। पत्रिका का सम्पादन १९०१ ई. में श्यामसुन्दर दास को मिला। इन्होंने बिना पारिश्रमिक लिए काम किया। जनवरी, १९०३ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पत्रिका का सम्पादन शुरू किया। आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती के जरिए खड़ी बोली को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। फिर; १९२१ से १९२५ ई. तक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, १९२७ में पं. देवीदत्त शुक्ल, १९२८ में पुनः पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, १९२९ से १९४६ तक पं. देवीदत्त शुक्ल सम्पादक रहे। तत्पश्चात् १९४६ में उमेशचन्द्र मिश्र व देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' सम्पादक बने। उमेशचन्द्र बाद में हट गए और देवीदयाल चतुर्वेदी १९५५ तक सम्पादक रहे। १९५६ से १९७६ तक श्रीनारायण चतुर्वेदी 'भइया साहब' सम्पादक थे। जून, १९८० में धनाभाव के चलते पत्रिका का प्रकाशन पुनः बन्द हो गया। उस समय निशीथ राय सम्पादक थे। इसके बाद; जनवरी २०२० में पत्रिका का पहला अंक प्रकाशित किया गया।

पराड़कर जी और 'आज'– ५ सितम्बर, १९२० ई. को बनारस से 'आज' समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। 'आज' का प्रकाशन शिवप्रसाद गुप्त ने किया था। वे इस पत्र के माध्यम से स्वतन्त्रता-आन्दोलन व शैक्षणिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा देना चाहते थे। १९२० से १९४७ ई. के मध्य स्वतन्त्रता-आन्दोलन की जो लड़ाई लड़ी गयी, 'आज' उसका चश्मदीद गवाह है। दूसरा; इसने हिन्दी भाषा को मानक स्वरूप दिया। काशी से ही लक्ष्मीनारायण गर्दे ने 'नवनीत' और बाबू गंगा प्रसाद गुप्ता ने 'हिन्दी साहित्य' को प्रकाशित किया। काशी से १९४६ में दूसरा दैनिक पत्र 'सम्मार्ग' का प्रकाशन हुआ। पण्डित गंगाशंकर मिश्र इसके सम्पादक थे। पण्डित मिश्र वाराणसी के साथ ही दिल्ली, जयपुर व कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले सन्मार्ग के भी सम्पादक रहे। आपके सहयोग के लिए १९५७ ई. में वाराणसी से प्रकाशित 'सन्मार्ग' में स्थानीय सम्पादक पद सृजित हुआ और श्री आनन्द बहादुर सिंह इस पद पर नियुक्त हुए। तब से अग्रलेख-लेखन का भार सँभाले श्री सिंह के सम्पादकत्व में सन्मार्ग नियमित प्रकाशित होता रहा। पचास के दशक में यह हिन्दी का महत्त्वपूर्ण हिन्दी दैनिक पत्र था।

काशी में हिन्दी पत्रकारिता की एक धारा हास्य-व्यंग्य की भी रही है। इस धारा में 'तरंग' (१९३५), 'खुदा की राह पर' (१९३८), 'अजगर' तथा 'करेला' (१९५०) का भी प्रकाशन हुआ। 'तरंग' के प्रथम सम्पादक कृष्णदेव प्रसाद गौड़ थे। बाद में; यह पत्र काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर' ने वर्षों तक सम्पादित किया। 'खुदा की राह पर' और 'करेला' का भी सम्पादन गौड़ जी ने किया था। पर बाद में 'खुदा की राह पर' का सम्पादन १९५० ई. तक पुरुषोत्तम लाल दवे

करते रहे। केदार शर्मा के व्यंग्य-चित्रों से इन पत्रिकाओं की गरिमा और भी बढ़ जाती थी। जाने-माने कार्टूनिस्ट मनोरंजन कांजिलाल की बात ही निराली थी। 'आज' अखबार में उनके कार्टून का अलग महत्त्व था।

काशी की पत्रकारिता व वर्तमान स्थिति– वर्तमान में काशी से सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। इनमें प्रमुख रूप से दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, अमर उजाला, आज, राष्ट्रीय सहारा, जनवार्ता, काशीवार्ता, काशी सन्देश, नवभारत टाइम्स, जनसन्देश टाइम्स आदि दैनिक समाचार-पत्र हैं। सान्ध्यकालीन पत्रों में गाण्डीव एवं सन्मार्ग समाचार-पत्र प्रमुख हैं। वर्तमान में काशी से कई अंग्रेजी अखबार भी निकलते हैं। उनमें प्रमुख रूप से टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स एवं पायनियर हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी काशी की पत्रकारिता की लम्बी शृंखला रुकी नहीं, बल्कि और विस्तृत होती गयी है। वर्तमान में सिर्फ प्रिंट मीडिया ही नहीं, बल्कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के रूप में बड़े चैनलों के ब्यूरो आफिस व स्थानीय लोकल चैनलों के बीच प्रतिस्पर्धा की जंग छिड़ी रहती है। ऑल इण्डिया रेडियो के स्थानीय कार्यक्रमों के अलावा एफ.एम. चैनलों में रेडियो मिर्ची, रेडियो मंत्रा, एसएफएम आदि श्रव्य माध्यमों में एक अनोखी पैठ बना रहे हैं। गत कुछ वर्षों से प्रकाशित टेब्लॉयड समाचार-पत्रों ने एक नयी तरह की पत्रकारिता का आगाज किया है। इन टेब्लॉयड समाचार-पत्रों को पसन्द करने वालों का वर्ग नयी सोच, विचारधारा व कुछ परिवर्तन को खोजने वाला है। गाण्डीव, सन्मार्ग, जनमुख, वाराणसी टाइम्स जैसे सान्ध्य दैनिकों का भी अपना एक वर्ग है। इलेक्ट्रॉनिक चैनलों में डेन काशी, सिटी, एसटीवी, आई कॉन, म्यूजिक मस्ती, अभी तक जैसे लोकल चैनल नये प्रयोग करते रहते हैं। यद्यपि तकनीक व कार्यशैली की दृष्टि से यह चौनल अभी अपने शैशवकाल में हैं, परन्तु यह सत्य है कि वाराणसी की जनता को स्थानीय खबरों से रू-ब-रू कराने में इन चैनलों की अहम भूमिका है।

काशी की पत्रकारिता की विशेषता- उपर्युक्त अध्ययन के बाद यह स्पष्ट है कि काशी किसी एक सम्प्रदाय या एक समाज का नगर नहीं है, बल्कि सभी प्रांतों के लोग यहाँ के अलग-अलग मोहल्लों में बसे हुए हैं। यहाँ सभी सम्प्रदाय और जाति-धर्म के लोग एक साथ रहते हैं। पुरातन संस्कृति और आधुनिकता का समावेश लिए काशी की पत्रकारिता ने अनेक रंग देखे हैं। घाटों का सौन्दर्य, बाजारों की रौनक, कला-संस्कृति की भव्य विरासत, मेलों का शहर, संगीत का नगर तथा शैक्षणिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ यहाँ हमेशा होती हैं। आजादी की जंग में कुर्बानी और अब देश-विदेश में भारतीयता के गौरव के इतिहास का एहसास कराती काशी मोक्ष की नगरी है। स्वतन्त्रता की रणभेरी और राष्ट्रीय चेतना के सृजन के साथ ही आजादी पाने के संघर्ष में काशी की पत्रकारिता की उल्लेखनीय भूमिका रही है। साहित्य और व्यंग्य के साथ-साथ जीवन के हर रंग काशी की पत्रकारिता में मिलते हैं।

अध्ययन की चुनौती– प्रस्तुत अध्ययन में कम समय में सटीक और सही जानकारी जुटा पाना सबसे बड़ी चुनौती थी। साथ ही; अध्ययन के बारे में प्राप्त जानकारी को सही और कम शब्दों में लिखना भी चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। यद्यपि तिथियों के स्रोत का उल्लेख है, तथापि सन् और तिथियों में इतिहास-लेखन में भ्रम और दुविधा हो जाती है। सावधानीपूर्वक लिखे गये शोध-पत्र के अन्त में तथ्य के स्रोतों का भी उल्लेख है। यह कार्य चुनौतीपूर्ण निश्चित रहा है, परन्तु काशी की पत्रकारिता का यह एक भव्य और गौरवपूर्ण इतिहास है, जिसे इस शोध-पत्र के माध्यम से

एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

काशी की पत्रकारिता की दशा और दिशा– काशी में पत्रकारिता के बीज-अंकुरण के पश्चात् पुष्पित-पल्लवित होने के पर्याप्त अवसर मिले हैं। बनारस अखबार, सुधाकर, कवि बचन सुधा से जहाँ काशी की पत्रकारिता का उद्‌भव होता है, वहीं बाला बोधिनी, आज, हंस से यह सफर आगे बढ़ते हुए आज, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, अमर उजाला, गाण्डीव, सन्मार्ग सहित अनेक दैनिक व सान्ध्य दैनिक पत्रों के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी पाँव पसारने शुरू कर दिये हैं। सभी प्रमुख चैनलों के संवाददाता व आकाशवाणी और दूरदर्शन वाराणसी– सभी सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। यहाँ पत्रकारिता-प्रशिक्षण के भी पर्याप्त अवसर हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिश्चन्द्र कॉलेज, जगतपुर डिग्री कॉलेज और मलदहिया स्थित माइक्रोटेक कालेज में पंजाब टेक्निकल यूनिवर्सिटी के सौजन्य से पत्रकारिता को विषय के रूप में पढ़ाया भी जाता है। इस तरह, मीडिया के प्रति लोगों में दीवानगी बढ़ रही है और पत्रकारिता आम जन तक पहुँच रही है। भले ही वर्तमान में पत्रकारिता का स्वरूप व्यावसायिक हो गया हो, फिर भी; काशी की भूमि पर पत्रकारिता अपने नये आयाम तलाश रही है। यहाँ की संस्कृति और परम्परा उतनी ही भव्य है और वैसे ही यहाँ की पत्रकारिता की विरासत समृद्ध है। स्वतंत्रता की चेतना से लेकर वर्तमान सामाजिक समस्याओं तक उसने धर्म, आस्था और अध्यात्म को नयी दिशा देने का कार्य किया है।

'मिशन' से 'व्यवसाय' बन चुकी पत्रकारिता में सेवा-भाव का विलोप भले ही हो गया है, लेकिन वर्तमान में आधुनिकता की प्रतिस्पर्धा में अपना स्वरूप बदल रही काशी की पत्रकारिता का अतीत जितना स्वर्णिम है, उतना ही उज्ज्वल है– यहाँ की पत्रकारिता का भविष्य। बस आवश्यकता पत्रकारिता की मर्यादा, समर्पण व वर्तमान की आवश्यकताओं को समझने की है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

- डॉ. अर्जुन तिवारी– पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण (२०००) ISBN 81-8595 7-17-7()
- डॉ. अर्जुन तिवारी– सम्पूर्ण पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण २००५, ISBN 81-7124-411-4
- डॉ. सुशीला जोशी– हिन्दी पत्रकारिता, विकास और विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, चतुर्थ संस्करण २०००, पृष्ठ २७, ISBN 81-7173-343-7
- एन. सी. पन्त– पत्रकारिता का इतिहास, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (२००२), पृष्ठ ८४ ISBN 81-7965-026-X
- कुश चतुर्वेदी– भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता, साहित्य संगम, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण (१९९५)
- कृष्णबिहारी मिश्र– हिन्दी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि, भारतीय ज्ञानपीठ, नौवाँ संस्करण (२०१९) ISBN 81-263-0542-8
- प्रो. नीरज कर्ण सिंह– यासिर अराफात– १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की पत्रकारिता, प्रभात पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण (२०२२) ISBN 978-93-5521-385-3
- साधना श्रीवास्तव– नये आयामों को तलाशती काशी की पत्रकारिता, ८ नवम्बर, शनिवार गाण्डीव, (२००८)
- डॉ. हिमांशु शेखर सिंह– हिन्दी पत्रकारिता और काशी, संजय बुक सेण्टर, वाराणसी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का वैचारिक दर्शन

डॉ. उमेश कुमार राय*

सारांश– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक स्वयंसेवी हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन (समूह) है, जिसकी स्थापना १९२५ ई. को विजयदशमी के शुभ दिवस पर पाँच स्वयंसेवकों के साथ डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने की थी। संघ की अवधारणा सदैव राष्ट्र के सभी नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने की रही है। संघ का कार्यक्षेत्र सभी को जोड़ना है, जिसका भाव पारिवारिक है। व्यक्ति को अपने राष्ट्र के प्रति अगाध स्नेह व समर्पण रखना ही 'राष्ट्रीयता' नहीं है, बल्कि कर्त्तव्य का पालन करना एवं सकारात्मक कार्य के द्वारा परिवार-समाज को जोड़ना प्रथम राष्ट्रीयता है। राष्ट्र को मजबूत व सुदृढ़ बनाने के लिए जो भी राष्ट्रहित में आवश्यक हो, उस पर कार्य किया जाए। इस भारतीय भू-क्षेत्र पर निवास करने वाले सभी भारतीयों का विचार-ज्ञान 'बोध दर्शन' से 'कर्मबोध दर्शन' में क्रियान्वित भी हो– इस कार्य हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सदैव प्रत्यनशील रहता है, जिससे 'परम वैभव' स्थापित किया जा सके।

मुख्य शब्द– हिन्दुत्व, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, परम वैभव।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक स्वयंसेवी हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन (समूह) है, जिसके सिद्धान्त का आधार 'हिन्दुत्व' में निहित है, जिसे प्राय: लोग साधारण बोलचाल की भाषा में 'संघ' या आर.एस.एस कहते हैं। २७ सितम्बर, १९२५ ई. को विजयदशमी के शुभ दिवस पर पाँच स्वयंसेवकों के साथ डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने मोहिते का बाड़ा (नागपुर, महाराष्ट्र प्रांत) नामक स्थान पर शुरू किया था, जो आज कई करोड़ स्वयंसेवकों के समूह रूपी संगठन के रूप में, एक विशाल वटवृक्ष के रूप में, हमारे सामने दिखाई पड़ रहा है। संघ की विचारधारा हिन्दू राष्ट्र, हिन्दुत्व, राष्ट्रवाद, धारा-३७० की समाप्ति व अखण्ड भारत, समान नागरिक संहिता जैसे विषयों से प्रदर्शित होती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आज विश्व का सबसे विशाल स्वयंसेवी संगठन है।[१] संघ की अवधारणा सदैव राष्ट्र के सभी नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने की रही है, इसलिए 'समान नागरिक संहिता' की आवश्यकता को संघ ने महसूस किया है और मजबूती के साथ इसका पक्षधर भी रहा है। संघ ने एक राष्ट्र में 'दो प्रधान, दो विधान, दो निशान' को उचित नहीं माना है, फिर भी; राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राष्ट्रीयता को राष्ट्र की समृद्धि एवं विकास में समाविष्ट करता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को समझना आसान नहीं है। संघ एक प्रकार का 'विशिष्ट बोध' है। संघ की उपमा किसी अन्य संगठन से नहीं की जा सकती है। संघ का कार्यक्षेत्र सभी को जोड़ना है, जो 'संगठन ही शक्ति' के मूर्धन्य मंत्र से कार्य करने वाला गतिशील संगठन है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक सांस्कृतिक संगठन है, जो समाज में फैली कुरीतियों के खिलाफ मजबूती से खड़ा है। संघ के वर्तमान स्वरूप में पहुँचने के पीछे कारण– 'संगठन का स्वरूप' ही है, जिसका भाव– 'पारिवारिक' है। इसमें संविधान नहीं, बल्कि परम्परा, त्याग, कर्त्तव्य-पालन तथा सभी के हितों के कल्याण की भावना छिपी हुई है, जो एक दूसरे के लिए अधिकाधिक समर्पण का 'आत्मीय भाव' रखते हैं। यहाँ किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं है।[२]

* पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (ICSSR)– राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ. प्र.

समाज से भेद-भाव दूर करने का कार्य बहुत अधिक प्रामाणिक तरीके से व बहुत अधिक तीव्र-गति से करने की आवश्यकता है। मन से भेद-भावना निकालने का काम तो शासन अथवा अन्य कोई व्यवस्थागत तंत्र कर भी नहीं सकता। इसे तो समाज के उद्यम के द्वारा ही सम्भव किया जा सकता है।[३] इस भाव को प्रभावी रूप से निश्चित करने के लिए संगठन की आवश्यकता है, जो राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहायता करने को अग्रसर हो– यद्यपि उसका स्वरूप किसी भी प्रकार का हो।

भैय्या जी जोशी ने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की धारणा को स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा कि हिन्दू समाज जातियों में बँटा हुआ है। भगवान् की कोई जाति नहीं, धर्मग्रन्थ की कोई जाति नहीं, तीर्थस्थलों की कोई जाति नहीं, तो हम क्यों जातियों में बँटे हैं? हमें अपने मन में यह भाव जगाना होगा कि हम सब एक समाज के अंग हैं।[४] इसी 'एकत्व' के भाव के लिए सांस्कृतिक संगठन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इस प्रकार के सांस्कृतिक संगठन की अवधारणा को समझाने का प्रयास डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार से प्रारम्भ होकर क्रमश: सदाशिव माधवराव गोलवलकर 'गुरु जी', बाला साहब देवरस, प्रो. राजेन्द्र प्रसाद सिंह 'रज्जू भैय्या', सुदर्शन जी से होते हुए वर्तमान में डॉ. मोहन मधुकरराव भागवत तक हुआ, जो अब इस विशाल वृक्ष की अवधारणा को मजबूती प्रदान कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी अपने निर्माण के प्रारम्भ से ही युगीन परिवेशों से प्रभावित था, जिसका स्थायी भाव 'राष्ट्रबोध' का मंत्र है। व्यक्ति का अपने राष्ट्र के प्रति अगाध स्नेह व समर्पण रखना ही 'राष्ट्रीयता' नहीं है, बल्कि उसका वास्तविक लक्ष्य राष्ट्र को आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से उन्नत एवं मजबूती प्रदान करना होना चाहिए। राष्ट्रीयता का बीज सभी व्यक्तियों के मध्य पाया जाता है, जिसके अभाव से व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता है। भारतीय समाज में इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरणा-पुञ्ज के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की निष्ठा प्रशंसनीय है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन मधुकरराव भागवत ने कहा कि– ''हम संघ का वर्चस्व नहीं चाहते, हम समाज का वर्चस्व चाहते हैं। समाज में अच्छे कामों के लिए संघ के वर्चस्व की आवश्यकता पड़े– संघ इस स्थिति को वांछित नहीं मानता, अपितु समाज के सकारात्मक कार्य समाज के सामान्य लोगों द्वारा ही पूरे किए जा सकें, यही संघ का लक्ष्य है।''[४]

भारतीय समाज में जिस आधुनिकीकृत विचारधारा का उदय हुआ है, उसे संघ ने भारतीय सन्दर्भ में समझाने का प्रयास किया है। अस्पृश्यता, हुआछूत की समाप्ति, अंहिसा, जातिवाद का अंत, शिक्षा की उचित व्यवस्था, बेरोजगारी, दहेज, आतंकवाद, संस्कारों की कमी इत्यादि विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए स्वयं प्राथमिक स्तर पर प्रयासरत है। दूसरी तरफ; 'राष्ट्र-निर्माण' की अन्य समस्याएँ हैं, जो भारतीय समाज को प्रतिबंधित करती हैं और 'राष्ट्रीय एकता' को राष्ट्र-विरोधी विचारों से खण्डित करती हैं, जैसे- १. साम्प्रदायिकता, २. क्षेत्रवाद, ३. अलगाववाद, ४. समाजवाद की अवधारणा की गलत व्याख्या, ५. नक्सलवाद, ६. किसानों की समस्या, ७. युवाओं की समस्या आदि।

उपर्युक्त समस्याएँ भारतीय राष्ट्रवाद के सामने नवीन चुनौतियाँ बनकर उपस्थित हो रही हैं। इन सभी समस्याओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 'सेवा-त्याग-समर्पण' का तीन आयामों से युक्त रास्ता बताया है, जिस पर चलकर ऐसे व्यक्तियों का निर्माण होगा, जो उत्तम चरित्रवान होंगे। संस्कारवान व्यक्ति ही इन समस्याओं के सम्मुख खड़ा हो सकेगा।

बाल्यकाल में सिखाए गए संस्कार जीवन-पथ का प्रदर्शक बनते हैं, इसलिए डॉ. हेडगेवार के द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नामक स्वयंसेवी संगठन का निर्माण किया गया, जो भारतीयों को भारतीय की तरह समझे, न कि यूरोपीय सोच व विचारधारा पर समझे। नैतिकता से निर्मित जीवन-शैली उन मनोभावों को यथेष्ठ ऊँचाई प्रदान करती है। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास, जैसा कि बेनेडिक्ट एण्डरसन ने सोचा है, उस तरह से पश्चिमी प्रभावों का परिणाम नहीं रहा है।[५]

राष्ट्रवाद की राजनीतिक दिशा-क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचार-दृष्टि स्पष्ट है– ''राजनीति का उद्देश्य राष्ट्र की उन्नति के लिए हो, न कि राष्ट्र की अवनति के लिए। ऐसी कोई गतिविधि, जिससे राष्ट्र के नागरिकों के मध्य वैमनस्यता फैले, वो गलत है। सैद्धांतिक व व्यावहारिक राजनीति के दोनों स्वरूपों में एक सांमजस्यता का भाव सदैव स्थापित हो। जनतंत्र में जनता सरकार की सहचरी है। सरकार का उद्देश्य जनकल्याणकारी हो।'' 'राष्ट्र नागरिकों के लिए, नागरिक राष्ट्र के लिए'– इस विचार की प्रासंगिकता को स्वीकार करते हुए संघ कार्यरत है। सन् १९४७ में विभाजन के बाद देश के विभिन्न हिस्से दंगों की आग से झुलस रहे थे, तब आर.एस.एस. ने पाकिस्तान से अपनी जान बचाकर भारत पहुँचे शरणार्थियों के लिए तीन हजार से ज्यादा शिविर लगाए थे। यही नहीं; पाकिस्तानी सेना ने घुसपैठ की कोशिश की, तो स्वयंसेवकों ने देश की रक्षा करते हुए लड़ाई में प्राण दिए थे।[६]

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा १९४७, १९६२ तथा १९६५ चीन-युद्ध में प्रशासन की मदद की गयी और निगरानी करके सेना का साथ दिया गया। कारगिल-संघर्ष के दौरान भी संघ का दृष्टिकोण जनता में सरकार व सेना के प्रति कदम-से-कदम मिलाने के ही भाव को उद्वेलित करता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने देश की आंतरिक व बाह्य– दोनों प्रकार की समस्याओं व चुनौतियों में अपेक्षा से अधिक समर्पित होकर कार्य किया है। उसने पश्चिम की तरफ निर्भरता को कम करने के लिए स्वदेशी व आत्मनिर्भर अभियान चलाया तथा गाँवों की समृद्धि के लिए कार्य किया। उत्पादन व वितरण का उचित अनुपात रहे, इसके लिए व्यक्तिगत स्तर पर कार्य किया। भारतीयों को आर्थिक रूप से मजबूत करने का सदैव प्रयास किया, जिससे सभी भारतीय स्वावलम्बी बनें। जब तक आर्थिक हितों की पूर्ति नहीं होती, तब तक राष्ट्र के नवनिर्माण में कठिनाई उत्पन्न होती है। आज के बालक ही कल के विश्व (इक्कीसवीं सदीं) के नागरिक होंगे। उनके निर्माण में ही 'भारत का भविष्य' है। वर्तमान युग विज्ञान और अर्थ का युग है। भारत के लिए वैज्ञानिक तथा आर्थिक उन्नति परमावश्यक है।[७] अतः राष्ट्र को मजबूत व सुदृढ़ बनाने के लिए जो भी राष्ट्रहित में आवश्यक हो, उस पर कार्य किया जाए। इस क्रम में 'युवाओं की भूमिका' महत्त्वपूर्ण है। युवा राष्ट्र का संरचनात्मक और कार्यात्मक ढाँचा है। हर राष्ट्र की सफलता का आधार उसकी युवा पीढ़ी और उनकी उपलब्धियाँ होती हैं। राष्ट्र का भविष्य युवाओं के सर्वांगीण विकास में निहित है।[८] युवाओं की एकमेव अधिकार-सम्पन्न सोच ही 'राष्ट्रवाद' को समेकित करती है। ऐसी 'समानता की भावना' सांस्कृतिक राष्ट्रवादी चेतना से जाग्रत होती है। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' भारतीय संस्कृति का सेतु-बंध करने वाला है। हिन्दू संस्कृति का इतिहास संस्कारों से निर्मित है, जिसमें आत्मीय बंधुता है, जिसका स्थायी भाव 'सबका विकास' है। इस धारणा पर जनजातियों का विकास सुदूर क्षेत्रों में संघ के द्वारा किया जा रहा है। एकात्मक समाज की व्यवस्था में 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[९] की अवधारणा अंतर्निहित है। यह एक सामाजिक दर्शन है,

जो आध्यात्मिक सोच से निकली है। 'प्रेम, सद्भाव और सहयोग' की संस्कृति हिन्दू धर्म-संस्कृति का मूल ध्येय है। इस भावना से परिपूर्ण होकर जब राष्ट्र की सेवा की जाएगी, तब वह श्रेयस्कर होगी। इसी भाव से प्रभावित होकर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद'[१०] का विचार भारतीयों को प्रेषित किया, जिसका आधार 'चरैवेति दर्शन'[११] है। इसका अर्थ निरन्तर गतिशील रहना है। जिस पल सीखने का अवसर प्राप्त हो, उस विद्या को अभ्यास में लाकर सभी के विकास के लिए कार्य किया जाए। इस भारतीय भू-क्षेत्र पर निवास करने वाले सभी भारतीयों का विचार-ज्ञान 'बोध दर्शन' से 'कर्मबोध दर्शन' में क्रियान्वित भी हो– इस कार्य हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सदैव प्रत्यनशील रहता है, जिसे इस मंत्र की सहायता से समझा जा सकता है–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।[१२]

इसका भावार्थ है– 'मैं राज्य की कामना नहीं करता। मुझे स्वर्ग और मोक्ष नहीं चाहिए। दुःख से पीड़ित प्राणियों के दुःख दूर करने में सहायक हो सकूँ– यही मेरी कामना है।' इस प्रकार की दर्शन-दृष्टि से सहयुक्तभाव को सम्पूर्ण भारतीय समाज में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा स्वयंसेवकों के सहयोग से प्रदर्शित व क्रियान्वित किया जा रहा है।

परमपूज्य डॉ. हेडगेवार जी का कथन है– ''संगठन ही राष्ट्र की प्रमुख शक्ति है। संसार में कोई भी समस्या हल करनी है, तो वह शक्ति के बल पर ही हल हो सकती है। शक्तिहीन राष्ट्र की कोई भी आकांक्षा कभी भी सफल नहीं होती, परन्तु सामर्थ्यशील राष्ट्र जब चाहे, कोई भी कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है। जो शक्तिशाली है, विजय उसी की होती है।''[१३] अर्थात् शक्ति-सम्पन्न सामर्थ्य ही राष्ट्र को मनोवांछित मंतव्य की ओर ले जाता है, जिससे 'परम वैभव' स्थापित किया जा सके।

निष्कर्षतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 'विचार-दर्शन' का प्रेरणा-पुञ्ज 'सकारात्मक मनोवृत्ति' से परिपूर्ण 'मानवतावादी दर्शन' पर आधारित एक ऐसा सांस्कृतिक संगठन है, जिसके विचार-भाव के अन्तर्मन में राष्ट्रप्रेम– त्याग-तपस्या-समर्पण– का भाव निर्मित करके भारतीयों का विकास करना है तथा अखण्ड भारत का निर्माण करना है, जिससे भारत की पताका विश्व में लहराए। भारतीय राष्ट्र की नवनिर्माण-प्रक्रिया में स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर माहौल बनाए जाने की आवश्यकता है, जिसके अभाव में राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता है। राष्ट्र की प्रगति सभी भारतीयों की प्रगति में अन्तर्निहित है। इसी वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई। संघ अपने लक्ष्यों को अपने सम्मुख रखकर इस दिशा में प्रयत्नशील व गतिशीलता के साथ समाज-निर्माण व राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता व उपस्थिति दर्ज करा रहा है, जिससे भारत का प्राचीन गौरव पुनः स्थापित हो सके।

सन्दर्भ-सूची

१. bbc.com # भारत में आरएसएस के १० योगदान
२. epaper.livehindustin.com # राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ किसी का विरोधी नहीं– भैय्या जी जोशी ९/१२/२०२१.
३. सरसंघचालक डॉ. मोहनराव भागवत के विजयदशमी उत्सव के अवसर पर शुक्रवार दिनांक ०३ अक्टूबर, २०१४ को दिए गए उद्बोधन के अंश।
४. शाश्वत राष्ट्रबोध, अक्टूबर २०१८– 'हम संघ का नहीं, समाज का वर्चस्व चाहते हैं, पृष्ठ -३

५. रानी प्रीति– 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन : राष्ट्रवादी इतिहास-दृष्टि'' International Journal of Scientific Research in Science and Technology, Vol-4, Issue -11, 2018, Page No.-496.
६. haribhoomi.com देश-निर्माण में आर.एस.एस. का रहा महत्त्वपूर्ण योगदान, जानिए दस बड़ी बातें
७. essaysinhindi.com 'आधुनिक भारत के नवनिर्माण में विद्यार्थियों का योगदान', मित्र प्रकाश.
८. From hindikiduniya.com राष्ट्र-निर्माण में युवाओं की भूमिका
९. thesimplehelp.com वसुधैव कुटुम्बकम्
१०. कुमार मनीष व मनीषा गुप्त– 'पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का शैक्षिक एवं सामाजिक चिन्तन' IJRAJ January 2022, Vol. 9, Issue 1, Page No. 23
११. रमेश जी– प्रांत प्रचारक काशी प्रांत का उद्‌बोधन, संघ शिक्षा वर्ग पर विश्व संवाद केन्द्र, सिगरा, वाराणसी में आयोजित।
१२. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ काशी प्रान्त, 'शाखा दर्शिका', वर्ष २०१६, सुभाषित-१, पृ.-२४
१३. वही– अमृत वचन, क्र.-१, डॉ. हेडगेवार, पृ. २२

●

राष्ट्रऋषि भारतरत्न

नानाजी देशमुख का ग्रामीण-विकास में योगदान

डॉ. कीर्ति विक्रम सिंह*, डॉ. रमेश चन्द्र शुक्ल**

मानव-जीवन के लक्ष्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कोई धनोपार्जन कर अपने को धनाढ्य बनने का पिपासु होता है, कोई विद्या-धन को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर उसकी ओर प्रयत्नशील होता है, कोई पद-प्रतिष्ठा को ही सब कुछ मानकर चलता है और कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिन्हें न राज्य चाहिए, न स्वर्ग का सुख चाहिए। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता है– पीड़ितों की सेवा करना।

धन-पिपासु व्यक्तियों की यह धारणा होती है कि पैसे के द्वारा स्वर्ग का टिकट खरीद लेंगे। ऐसे व्यक्ति अपना सारा जीवन कुबेर बनने में लगा देते हैं। विद्या की साधना में हर व्यक्ति का उद्देश्य होता है– समस्त शास्त्रों का रहस्य उद्घाटित कर अगली पीढ़ी को ज्ञानराशि उड़ेलना। किसी का उद्देश्य शास्त्र-निर्माण, काव्य-रचना या साहित्य का सृजन हो सकता है, जिनसे उनकी काव्य-साधना का प्रकाश समस्त संसार को आलोकित करे और वह अमरता प्राप्त करें।

पद-प्रतिष्ठा के भूखे लोग तो यही सोचते हैं कि यदि मैं किसी उच्च पद पर स्थापित हो जाऊँगा, तो कलाकार, कवि, वैज्ञानिक आदि सभी लोग मेरे कृपा-कटाक्ष के भिखारी होंगे। ऐसे व्यक्ति नीति-अनीति नहीं सोचते। वे तो येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाने के चक्कर में रहते हैं। परन्तु जो पीड़ितों की सहायता एवं सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, उनमें किसी स्वार्थ-सिद्धि की भावना नहीं रहती। वे दिन-रात कष्टों को झेलते हुए मानव-सेवा के व्रत में लीन रहना चाहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति संसार में अमर हो जाते हैं। समाज के उद्धारक एवं प्रेरक होते हैं।

ऐसे ही महापुरुष थे– श्री नानाजी देशमुख, जिन्होंने धन, पद, प्रतिष्ठा को नकारते हुए गरीबों, असहायों, निर्बलों व आदिवासियों की सेवा का व्रत लिया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति को पूरा समर्थन दिया। जनता पार्टी के संस्थापकों में नानाजी प्रमुख थे। काँग्रेस को सत्ताच्युत कर जनता पार्टी सन् १९७७ ई. में सत्ता में आई। आपातकाल हटने के बाद चुनाव हुए, जिसमें बलरामपुर लोकसभा सीट से नानाजी सांसद चुने गए। उन्हें पुरस्कार के तौर पर मोरार जी मंत्रिमण्डल में उद्योग-मंत्री शामिल होने का न्यौता भी दिया गया, लेकिन नानाजी ने साफ इन्कार कर दिया। उनका सुझाव था कि साठ साल से अधिक आयु वाले सांसद राजनीति से दूर रहकर संगठन और समाज का कार्य करें। १९८० ई. में, साठ साल की उम्र में, उन्होंने सक्रिय राजनीति से सन्यास लेकर आदर्श की स्थापना की। बाद में; उन्होंने अपना पूरा जीवन सामाजिक और रचनात्मक कार्यों में लगा दिया। अपना सम्पूर्ण जीवन ग्रामीण विकास और आदिवासियों की सेवा में लगा दिया।

नानाजी के कार्यों का मूल्यांकन करें, इससे पहले उनके बारे में भी कुछ जान लें। नानाजी का पूरा नाम है– श्री चंद्रिकादास अमृतराव देशमुख। इनके पिता जी का नाम श्री अमृतराव देशमुख तथा माताजी का नाम श्रीमती राजाबाई अमृतराव देशमुख था। इनका जन्म ११

* सहायक क्षेत्रीय निदेशक– इग्नू क्षेत्रीय केन्द्र, लखनऊ
** केन्द्र प्रबन्धक– ज्ञानवाणी एफ.एम. चैनल, लखनऊ

अक्टूबर, सन् १९१६ ई. में महाराष्ट्र के हिंगोली जिले के एक छोटे से कस्बे काडोली में एक देशमुख ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा (उच्च शिक्षा) राजस्थान के पिलानी स्थित 'बिरला इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी एण्ड साइंस' में हुई।

नानाजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन ग्राम-विकास एवं आदिवासियों की सेवा में लगा दिया। नानाजी के अनुसार, गाँव के सन्दर्भ में भारतीय परम्परा में दो मजबूत तथा सर्वमान्य पक्ष हैं– एक पक्ष विषमता, अन्याय, अन्धविश्वास, छुआछूत से सम्बन्धित है और दूसरा पक्ष कई पीढ़ियों और शताब्दियों से किसानों, मजदूरों, हस्तकारों, वैद्यों, जल-संग्रहण की व्यवस्था से जुड़े विशेष समुदायों, पशुपालकों आदि द्वारा ज्ञान से सम्बन्धित है। स्थानीय परिस्थितियों और जलवायु की आवश्यकता के अनुसार यह ज्ञान अमूल्य है। नानाजी ने प्रथम प्रकार की परम्परा के उन्मूलन से गाँव को शोषण, अज्ञान, अन्धविश्वास से मुक्ति दिलाने के वैचारिक प्रयास किए। वहीं दूसरी परम्परा के अनुरक्षण के माध्यम से परम्परागत संस्कृति से विकास के आयामों को खोजने का प्रयास कर ग्रामीण-विकास के अनूठे प्रयोग किए। नानाजी का मानना था कि भारतीय ग्रामों की हमेशा से ऐसी ही दुर्गति नहीं रही, बल्कि गुलामी के लम्बे कालखण्ड के दौरान ही इनकी अवनति हुई।

नानाजी का मानना था कि स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में गाँव स्वायत्त और आत्मनिर्भर हुआ करते थे। इस देश को ग्राम-गणराज्यों के रूप में ही जाना जाता था। भगवान् बुद्ध के समय उत्तरी भारत में सोलह गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में इस व्यवस्था का सुन्दर वर्णन किया है। इन्हीं ग्राम-गणतन्त्रों के बल पर भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था और भारतवासियों ने समाज-जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति की ऊँचाइयों को छुआ था। यह व्यवस्था लम्बे समय तक चलती रही। कुछ बदले स्वरूप में अंग्रेजों के आने तक भी जारी रही। ब्रिटिश लेखक चार्ल्स मेटकॉफ ने लिखा है– ''भारतीय गाँव आदर्श गणतन्त्र हैं। ये स्वतन्त्र आत्मनिर्भर इकाई के रूप में बाह्य प्रभाव से पूर्णत: मुक्त हैं। ये सभी उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जो इनके उपयोग के लिए आवश्यक है तथा प्रशासनिक दृष्टि से अपनी सम्पूर्ण समस्याओं और विवादों का हल पंचायत के माध्यम से निकाल लेते हैं।

नानाजी ने ग्राम-विकास का अपना मॉडल बहुत ही छोटे रूप से शुरू किया। उनकी ग्राम-विकास की संकल्पना देखकर बया पक्षी की याद आ जाती है। छोटे-छोटे तिनकों को जोड़कर बया नाम का पक्षी एक अति खूबसूरत घोंसला बनाता है। ऐसा सुन्दर घोंसला, जिसे देखकर हमको बहुत आश्चर्य होने लगता है। छोटे-छोटे रेशों और रसों को आपस में बँटकर मजबूत रस्सी भी बना ली जाती है। वह रस्सी चाहे मूँज की हो अथवा जूट की, उनके अन्तर में जुटे हुए हैं सहस्त्रों छोटे-छोटे रेशे, जो मिलकर इतने शक्तिशाली रस्से के रूप में बदल गए हैं, जिससे बलवान हाथी को भी बाँधा जा सकता है। इसी तरह, किसी विशाल इमारत को देखें। उसकी विशालता एवं भव्यता के मूल में आखिर क्या है? यही न कि छोटी-छोटी लाखों-करोड़ों ईंटें, गिट्टियाँ अथवा कंकरीट, जिन्हें चूने अथवा सीमेण्ट से जोड़ दिया गया है, एक निश्चित योजना के अनुसार। बड़े-बड़े सागर और महासागरों को देखें। इनके अन्तस्थल में अन्तत: क्या छिपा है? जल की नन्हीं-नन्हीं बूँदें। असंख्य और अकल्पित इन्हीं बूदों का यह बृहद् रूप है। संसार की ये सभी पार्थिव वस्तुएँ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि छोटी चीजें, वस्तुएँ अथवा बातें मिलकर कालान्तर में एक विशाल रूप धारण कर लेती हैं।

नानाजी की सोच भी इसी तरह की थी। उनका मानना था कि जीवन में यदि कुछ करना है, तो छोटे से कार्य से करो, ताकि प्रारम्भ में कोई विशेष कठिनाई न हो। इसीलिए नानाजी ने जो भी शुरू किया, छोटे स्तर से शुरू किया, जो बाद में बड़े वटवृक्ष के रूप में प्रकट हुआ। ग्रामीण निर्धनों को आय-उत्पादक गतिविधियों में संलग्न कराना व महिलाओं और युवाओं को विभिन्न प्रशिक्षण व रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना ग्रामीण-विकास की रणनीति का हिस्सा है। प्रशिक्षण व रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए नानाजी के नई प्रकल्प हैं, जिनके द्वारा ग्राम-विकास को एक नई दिशा मिली। नानाजी ने ग्राम-विकास व अन्य समाजोपयोगी उत्थान हेतु 'दीनदयाल शोध संस्थान' की स्थापना की, जिसके द्वारा उन्होंने ग्राम-विकास का नया मॉडल प्रस्तुत किया।

नानाजी देशमुख ने महर्षि अरविन्द घोष की जयन्ती २० अगस्त, १९७२ ई. को 'दीनदयाल शोध संस्थान' की स्थापना की। इसके पूर्व संस्था को 'दीनदयाल उपाध्याय स्मारक समिति' के नाम से जाना जाता था, जिसमें पंजीयन १८ मार्च, १९६८ ई. को हुआ था। इस दिन संस्थान के ७-ई., स्वामी रामतीर्थ नगर, नई दिल्ली स्थित बहुमंजिला कार्यालय भवन का विधिवत उद्घाटन सम्पन्न हुआ। इस संस्थान का उद्देश्य निश्चित हुआ– 'पं. दीनदयाल जी के एकात्म मानव-दर्शन को व्यवहार में लाने की दृष्टि से शोध संस्थान द्वारा विकास के कई प्रकल्प, गोण्डा प्रकल्प, बीड प्रकल्प, नागपुर प्रकल्प, चित्रकूट प्रकल्प आदि की स्थापना।

प्रारम्भ में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के दिल्ली प्रकल्प के अन्तर्गत सामाजिक अनुसंधान एवं अनुप्रयोग केन्द्र संचालित हुआ, जो राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक गतिविधियों का केन्द्र बना। सामाजिक और ग्रामीण विकास के प्रमुख आधारभूत बिन्दुओं पर नियमित व्याख्यान, समूह-चर्चा, सेमिनार और कार्यशालाओं का दौर शुरू हुआ। इसके साथ-साथ; विकासोन्मुखी समन्वय हेतु भी यहाँ से काम किया जाने लगा। यहाँ से विकास को समर्पित 'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया, जो वर्तमान में 'युगानुकूल नवरचना' के नाम से हो रहा है। स्थापना के तुरन्त बाद 'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा १९७३ ई. में महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात राज्य में पड़े सूखे तथा उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान में आई बाढ़ से प्रभावित लोगों को राहत और पुनर्वास के लिए उल्लेखनीय कार्य किया गया। नवम्बर, १९७७ ई. में चक्रवाती तूफान ने आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में भारी कहर बरपाया। यहाँ भी 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने राहत-पुनर्वास कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

अब हम नानाजी के गोण्डा-प्रकल्प पर चर्चा कर रहे हैं। अपने ग्रामीण-विकास की संकल्पना को मूर्त्त रूप देने के लिए नानाजी ने 'समग्र ग्राम विकास' का प्रयोग सन् १९७८ ई. में उत्तर प्रदेश के एक अत्यन्त पिछड़े जिले गोण्डा (Gonda) में प्रारम्भ किया। गोण्डा जिले की उस समय आबादी, सन् १९७१ ई. की जनगणना के अनुसार, लगभग २८ लाख थी। इस आबादी की ९४ प्रतिशत जनसंख्या सर्वथा कृषि-कार्य पर निर्भर थी। जिले के लगभग ९० प्रतिशत किसान अलाभकर जोतों के मालिक थे। जमींदारी-उन्मूलन के बावजूद जिले की केवल ६१ प्रतिशत कृषि भूमि पर इन ९० प्रतिशत छोटे-छोटे किसानों का अधिकार था और बाकी बची ३९ प्रतिशत भूमि पर सम्पन्न जमींदारों और ताल्लुकेदारों का कब्जा था। किसान-वर्ग साहूकारों के कर्ज तले दबा था।

ऐसी स्थिति में, पहली आवश्यकता थी कि इन अभावग्रस्त किसानों को रोज के खाने की

चिंता से और निरन्तर बढ़ रहे कर्ज के बोझ से मुक्ति दिलाई जाए। इसके लिए इन साधनहीन गरीब किसानों की भूमि की उपज बढ़ाना ही एकमात्र विकल्प नजर आया। सिंचाई की उचित व्यवस्था से ही सीमित भूमि की उपज बढ़ाई जा सकती थी। सिंचाई के प्रबंध का उचित परिणाम होगा कि किसान अपने खेत से सालाना दो-तीन फसलें ले सकेगा। इससे उसकी आमदनी तिगुनी और चौगुनी तक बढ़ सकेगी। निर्धनता से मुक्ति पाकर वह खुशहाली की ओर कदम बढ़ा सकेगा, तभी वह समाज का उपयोगी अंग बन पाएगा।

इस अवसर पर 'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा गोण्डा जिले में दो साल में बीस हजार नलकूप लगवाने की घोषणा की गई। लेकिन दो वर्षों में गोण्डा जिले के २००१ गाँवों में ५ एकड़ या उससे कम भूमि वाले किसानों के खेतों में २७५१६ नलकूप लगवाकर 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया। इस अभूतपूर्व अभियान का बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू था– स्थानीय जनता की रचनात्मक क्षमता का सार्थक उपयोग। नलकूप के लिए महँगे स्टील पाइप के स्थान पर स्थानीय बाँसों का प्रयोग उनकी प्रतिभा के उपयोग का एक माध्यम बना।

सिंचाई के क्षेत्र में इस उपलब्धि के साथ-साथ सन् १९८९ ई. में 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने गोण्डा जिले में 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' के तत्वावधान में कृषि-प्रयोगों के लिए ३९ एकड़ भूमि पर एक 'कृषि विज्ञान केन्द्र' स्थापित किया। ०१ अगस्त, १९८० ई. को 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने गोण्डा में 'दीनदयाल औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र' की भी स्थापना की। १७ जुलाई, १९८१ ई. को 'चिन्मय ग्रामोद्योग विद्या मन्दिर' और २० मई, सन् १९८५ ई. को 'भक्तिधाम' प्रकल्प शुरू किया गया। ०१ जुलाई, १९८८ ई. को इमलिया कोडर में 'ट्राइफेड जूनियर हाईस्कूल' और २० मार्च, १९९४ ई. को 'रामनाथ आरोग्यधाम' का उद्घाटन हुआ। वर्ष २००० ई. में मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय) के सहयोग से 'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा जिले में 'जन शिक्षण संस्थान' की शुरूआत की गई। इसके अलावा; गोण्डा प्रकल्प के अन्तर्गत थारू विकास केन्द्र, जय संचालित की गई। इन केन्द्रों के माध्यम से समग्र ग्राम विकास के प्रयोगों को आशातीत सफलता हासिल हुई, जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई।

गोण्डा जिले में ग्रामीण विकास को मिली सफलता को देखकर दूसरे जिले, महाराष्ट्र में मराठवाड़ा के 'बीड' में भी ३१ मई, १९८७ ई. को सामूहिक सहयोग से कार्य प्रारम्भ किया गया। यहाँ ३० दिवसीय 'श्रम साधना शिविर' लगाया गया। ३६० युवाओं सहित बड़ी संख्या में पढ़े-लिखे नौकरी-पेशा लोगों ने नानाजी की प्रेरणा से इसमें भाग लिया। शिविर के अनुभव बेहद रोचक रहे। ५ लाख क्यूबिक मीटर गाद तालाब से निकाली गई तथा आस-पास के खेतों में डाली गई। इस काम से जहाँ सोनदरा तालाब का पुनरुद्धार हुआ, वहीं दूसरी ओर तालाब की गाद से आस-पास के खेत अधिक उर्वर हुए। नानाजी ने इस काम के माध्यम से यह भी सिद्ध कर दिया कि जनसहभागिता ही विकास की असली कुञ्जी है। यहाँ 'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा एक गुरुकुल की स्थापना की गयी। सन् १९९२ ई. में 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' के माध्यम से गोण्डा की तरह यहाँ भी 'कृषि विज्ञान केन्द्र' की स्थापना की गई। मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय), भारत सरकार द्वारा बीड जिले के लिए 'जन शिक्षण संस्थान' संचालित करने का दायित्व भी 'दीनदयाल शोध संस्थान' को प्राप्त हुआ। इसके

अलावा; 'गोकुल शिशु वाटिका' और 'गोकुल पालना घर' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर विकास को एक नया आयाम मिला।

'बीड' के बाद नागपुर को 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने अपना विकास-प्रकल्प बनाया। यहाँ पर 'दीनदयाल शोध संस्थान' ने 'बाल जगत' के नाम से एक अभिनव बाल केन्द्र की स्थापना की, जिसका विधिवत उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर द्वारा ११ फरवरी, सन् १९९१ ई. को किया गया। 'बाल जगत' में २८ मण्डपों के माध्यम से सुरम्य वातावरण में बालक-बालिकाओं की जन्मजात प्रतिभा को विकसित करने का प्रयास किया गया। इसके लिए उन्हें योगासन, घरेलू मैदानी खेल, चित्रकला, मूर्तिकला, मेरी बचत योजना, विज्ञान के प्रयोग, पुस्तकालय, वाचनालय, अभिनय, शास्त्रीय एवं सुगम संगीत आदि का प्रशिक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त; नागपुर शहर की उपेक्षित बस्तियों में बच्चों के लिए 'बाल संस्कार केन्द्र' व 'व्यक्तित्व विकास शिविरों' का समय-समय पर आयोजन किया गया।

नानाजी का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकल्प है– चित्रकूट प्रकल्प। गाँधी जी की तरह भगवान् राम नानाजी के आराध्य थे। भगवान् राम ने राजसत्ता का सुख छोड़कर, यहीं चित्रकूट में, पीड़ित बनवासियों एवं ग्रामवासियों की सेवा की थी। इसी कार्य को लक्ष्य कर नानाजी ने भी चित्रकूट को अपनी कर्मभूमि बनाया। उन्होंने सर्वप्रथम गनीवां राजापुर में 'तुलसी कृषि विज्ञान केन्द्र' की स्थापना की। १२ फरवरी, सन् १९९१ ई. को 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' का शुभारम्भ किया गया। नानाजी इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति बने, लेकिन राजनैतिक व्यस्तता के कारण उन्होंने २४ मई, १९९५ ई. को विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया तथा जनता की पहल एवं पुरुषार्थ तथा सामूहिक प्रयत्नों के आधार पर ग्राम-स्वावलम्बन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके लिए उन्होंने चित्रकूट के चारों ओर पचास कि.मी. की परिधि में अवस्थित ग्रामों को अपने समग्र विकास के प्रयोग हेतु चुना।

नानाजी के आह्वान पर देश के अलग-अलग प्रान्तों से कुल ४० युवाओं ने गाँवों में रहकर काम करने का निश्चय किया। इन्हें 'समाज शिल्पी' नाम दिया गया। इन ग्राम-शिल्पियों के काम का परिणाम उत्साहवर्धक था, लेकिन ग्रामीण महिलाओं के लिए समान रूप से काम नहीं हो पा रहा था। इसलिए नानाजी ने सन् १९९१ ई. से इस काम में दम्पत्तियों (पति-पत्नी के जोड़ों) को संलग्न किया। इन समाजसेवी दम्पत्तियों के काम ने गाँव में उत्साह और आशा का संचार किया। परन्तु नानाजी ने देखा कि कार्य में प्रगति बहुत अच्छी नहीं है, अत: उन्होंने २६ जनवरी, २००२ ई. से 'स्वावलम्बन अभियान' की शुरूआत की। इस प्रकार, सन् २००२ ई. तक शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य, रोजगार, कृषि, पशुपालन जैसे विविध वैकासिक आयामों में काम करने के लिए आवश्यक सभी प्रकल्पों की योजना-रचना का काम नानाजी के मार्गदर्शन में पूरा हो गया था।

नानाजी ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। १२ फरवरी, १९९१ ई. को ग्रामीण बालक-बालिकाओं को उत्तम शिक्षा उपलब्ध कराने की दृष्टि से 'सुरेन्द्र पाल ग्रामोदय विद्यालय' की शुरूआत की। जनजातीय बालक-बालिकाओं के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से १५ अगस्त, सन् १९९२ ई. को 'रामनाथ आश्रमशाला' प्रारम्भ की गई। जनजाति समाज के बालक और बालिकाओं के रहने एवं पढ़ने का समुचित प्रबंध इस आवासीय विद्यालय में किया गया। महिला-साक्षरता की अत्यन्त दयनीय स्थिति को देखते हुए २२ जुलाई, सन्

१९९४ ई. से 'कृष्णादेवी बनवासी बालिका आवासीय विद्यालय' प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में ५२ गाँवों की १२० बालिकाएँ यहाँ अध्ययनरत हैं। विद्यालय से न केवल क्षेत्र में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है, बल्कि यह विद्यालय बनवासी बालिका शिक्षा के लिए मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। यहाँ की पढ़ी बालिकाएँ स्नातक, स्नातकोत्तर, इंजीनियरिंग और मेडिकल की भी पढ़ाई कर रही हैं। यहाँ की बालिकाओं ने राष्ट्रीय स्तर की खेल-कूद प्रतियोगिताओं में भी भाग लिया है। विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर चुकी अनेक बालिकाएँ शासकीय सेवा में कार्यरत हैं।

'दीनदयाल शोध संस्थान' ने १३ जनवरी, सन् १९९६ ई. को संस्थान द्वारा चित्रकूट में आजीवन स्वास्थ्य-संवर्धन हेतु 'आरोग्यधाम अनुसंधान केन्द्र' स्थापित किया है, जो ५३ एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। केन्द्र के द्वारा आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से उपचार एवं स्वास्थ्य-क्षेत्र में अनुसंधान का कार्य शुरू हुआ। आरोग्यधाम ने 'दादी माँ का बटुआ' नाम से स्थानीय जड़ी-बूटियों से ३३ दवाएँ निर्मित कीं। अब गाँव-गाँव में 'दादी माँ का बटुआ' प्रचलित हुआ, जिससें गाँव की सभी प्रकार की सामान्य बीमारियों को ठीक होने में मदद मिली।

'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा 'गो-वंश विकास एवं अनुसंधान' केन्द्र की स्थापना भी वर्ष १९९६ ई. में की गई। संस्थान के इस केन्द्र ने गाय की देशी नस्लों के संरक्षण-सम्वर्धन के साथ-साथ चयनित गाँवों में गोपाल और जैविक खेती को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस केन्द्र द्वारा गाय, भैंस, भेंड़, बकरी आदि पशुओं की नस्ल सुधारने में काम किया गया।

६ जून, सन् १९९६ ई. को 'उद्यमिता विद्यापीठ' का शुभारम्भ किया गया। इस केन्द्र के अन्तर्गत १९ उत्पादन सह-प्रशिक्षण इकाइयाँ और ४ छात्रावास संचालित किए गए। इस केन्द्र के अन्तर्गत चयनित आदिवासियों के युवक-युवतियों को, जिनकी आयु ४० वर्ष या इससे कम है तथा जिनकी आय का स्रोत नगण्य है, उन्हें इस केन्द्र द्वारा औद्योगिक प्रशिक्षण के माध्यम से स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर आत्मनिर्भर बनाने का अभियान शुरू किया गया है।

'दीनदयाल शोध संस्थान' द्वारा ११ नवम्बर, २००० ई. को 'रामदर्शन प्रकल्प' का शुभारम्भ तत्कालीन रक्षामंत्री श्री जार्ज फर्नांडीज द्वारा किया गया। रामदर्शन मन्दिर में प्रभु राम के जीवन के वे प्रसंग विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों के माध्यम से प्रदर्शित किए गए हैं। वास्तव में; ये मानव-मात्र के लिए हर कदम पर प्रेरक बन सकते हैं।

वर्ष २००० ई. में 'दीनदयाल शोध संरचना' द्वारा 'गुरुकुल संकुल' का निर्माण-कार्य पूर्ण हुआ। संस्थान ने अवकाश प्राप्त, किन्तु सक्षम एवं सुशिक्षित दम्पत्तियों के दस जोड़े खोजकर, उन्हें दस गुरुकुलों के इस संकुल के 'कलयुग दम्पत्ति' के रूप में दायित्व सौंपा। हर एक गुरुगृह में चार कक्ष छात्रों के लिए तथा एक कक्ष कलयुग दम्पत्ति के लिए निर्धारित है। पाँच-पाँच छात्र एक कक्ष में रहते हैं। हर कक्ष के साथ शौचालय एवं स्नानगृह की पूर्ण व्यवस्था है। सबके लिए एक सामूहिक कक्ष का भी निर्माण किया गया है। इस आवासीय व्यवस्था में एक ही रसोईघर एवं भोजन-कक्ष रहता है। सबका जलपान एवं भोजन गुरुकुल दम्पत्ति के साथ ही होता है। प्रत्येक गुरुगृह स्वतन्त्र-उद्यान में अवस्थित है। प्रतिदिन उपयोग के लिए साग-सब्जियाँ, फल-फूल इसी उद्यान में सब मिलकर उगाते हैं। हर एक गुरुकुल में दूध देने वाली एक गाय भी रहती है। इन गुरुकुलों में स्वावलम्बन अभियान के अन्तर्गत चयनित गाँवों के अभावग्रस्त एवं पिछड़े परिवारों में से दस प्रतिशत बालकों को नि:शुल्क प्रवेश दिया जाता है। शेष छात्रों से शुल्क लिया जाता है।

स्वावलम्बन-अभियान के प्रथम चरण में चयनित अस्सी ग्रामों में १५ अगस्त, २००५ ई. को पूर्ण हुआ। ०६ अक्टूबर, २००५ ई. को तत्कालीन राष्ट्रपति माननीय डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने इस क्षेत्र के गाँवों में पहुँचकर प्रथम चरण की सफलता देखी। इसके बाद उन्होंने विभिन्न मंचों से संस्थान के कार्यों की सराहना की। २६ जनवरी, सन् २०११ ई. को इस अभियान के अन्तर्गत शेष ग्रामों में भी कार्य पूर्ण हुआ। २७ फरवरी, सन् २०११ ई. को डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम सहित सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों के देश के प्रमुख व्यक्तियों और ५१८ ग्रामों से आए ग्रामीणजनों की उपस्थिति में स्वावलम्बन-अभियान के कार्यों को निरन्तर व स्थायी बनाने के लिए आगे की जिम्मेदारी ग्रामों में पूर्व गठित 'ग्राम विकास समितियों' को सौंपते हुए कार्यक्रम का लोकार्पण किया गया।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रयासों ने ग्रामीण-विकास को एक नई दिशा दी। यद्यपि ग्रामीण-विकास के नियोजित कार्यक्रम शासन के उद्देश्य के अनुरूप होते हैं, जैसे– गरीबी-उन्मूलन, साक्षरता-वृद्धि, स्वास्थ्य-जागरूकता आदि, लेकिन 'दीनदयाल शोध संस्थान' के पीछे इन उद्देश्यों के अलावा एक वैचारिकी भी है, जिसमें विकास के साथ ग्रामीण पुनर्निर्माण का उद्देश्य निहित है। इस उद्देश्य का केन्द्र-बिन्दु था– स्थानीय जनता में वैचारिक परिवर्तन लाना। जिन छह उद्देश्यों को लेकर संस्थान ने ग्रामीण-विकास के लिए काम किया है, वे हैं– कोई गरीब न हो, कोई बेकार न हो, कोई बीमार न हो, कोई अशिक्षित न हो, कोई विवाद न हो तथा गाँव साफ-सुथरा और खुशहाल हो।

'दीनदयाल शोध संस्थान' के माध्यम से नानाजी देशमुख ने ग्रामीण-विकास के लिए जो कार्य किया, उसके लिए वे हमें युगों-युगों तक स्मरण रहेंगे। नानाजी के जीवन से हमें कर्तव्याकर्तव्य का बोध होता है। उन्होंने अपने जीवन में स्वार्थ को हेय समझा। मानव-कल्याण के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को तत्पर रहे। वे हमारे लिए आदर्श हैं। नानाजी के कार्यों को भारत की जनता ने और सरकार ने भी सराहा। वर्ष १९९१ ई. में उन्हें 'पद्मविभूषण' तथा वर्ष २०१९ ई. में 'भारतरत्न' से सम्मानित किया गया। सन् १९९९ ई. में एन. डी. ए. सरकार ने उन्हें राज्यसभा का सदस्य बनाया। २७ फरवरी, २०१० ई. को नानाजी ने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। ऐसे महापुरुष को शत्-शत् नमन्।

सन्दर्भ-सूची

१. DRI. (2002). Sustainable watershed management for national prosperity, Deendayal Research Institute and District Rural Development Agency, Satna, Madhya Pradesh, June 2002, p.6.

२. DRI. (2021). Deendayal Research Institute. WeWite: http:// www.chitrakoot.org/html/index.htm. Accessed on 27/09/2021.

३. Manjunatha, B.L., Rao, D.U.M. and Sharma. J.P. (2011). Socio-psychological characteristics of Samaj Shilpi Dampatis vis-à-vis the performance of Village Self Reliance Campaign. Journal of Community Mobilization and Sustainable Development. 6(1): 001-008.

४. Namdev,Govind (2019) Gramin Vikas ka Chitrakoot Model, Notion Press, N. Delhi

●

२१वीं सदी में
डॉ. राममनोहर लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता

अरुण कुमार*

शोध-सारांश– डॉ. राममनोहर लोहिया आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक थे, जिन्होंने स्वाधीनता और समाजवादी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। उनका चिन्तन कभी भी राजनीति तक सीमित नहीं रहा, वरन् व्यापक दृष्टिकोण व दूरदर्शिता उनके वैचारिक दर्शन की मुख्य विशेषता थी। उनके विचारों की सीमा कभी भी देश-काल तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने अपने चिन्तन में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनके विचार व्यापक हैं, जिसमें व्यक्ति व समाज से सम्बन्धित अनेक पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है। डॉ. लोहिया का वैचारिक दर्शन देश व दुनिया में स्वतन्त्रता, न्याय, लोकतन्त्र, समानता और सम्पन्नता की एकजुटता के लिए समर्पण की रोमांचक महागाथा है। उनका जीवन निराशा के कर्त्तव्य-दर्शन, इतिहास-चक्र के सिद्धान्त, सप्तक्रान्ति आदि के माध्यम से प्रेरित था। विश्व-रचना व विकास में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी। वैश्विक नागरिकता का सपना देखते हुए उन्होंने मनुष्य की स्थिति में सुधार लाने का निरन्तर प्रयास किया। प्रस्तुत शोध-आलेख २१वीं सदी में लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता के आयामों को उद्घाटित करने का प्रयत्न है।

शब्द-बीज– लोहिया, दृष्टिकोण, प्रासंगिकता, चिन्तन, समाजवाद, जाति-प्रथा, वैश्विक परिप्रेक्ष्य।

प्रस्तावना– व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में सभ्यताओं का विकास होता है। इसी विकास-क्रम के साथ चिन्तन की धारा भी लगातार सक्रिय रहती है। विभिन्न काल-खण्डों में विविध दार्शनिकों एवं चिन्तकों ने इस धारा में अपना वैचारिक योगदान देकर, व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों के विविध स्वरूपों का विश्लेषण कर, उसे हमेशा ही परिशुद्ध एवं परिष्कृत करने का प्रयास किया है। महापुरुषों की स्मृति एवं मूल्यांकन से ही कोई राष्ट्र व समाज ऊर्जा प्राप्त कर अपने स्वरूप एवं व्यक्तित्व में चमक लाता है। यद्यपि आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में राज्य व समाज सम्बन्धी तथ्यों के प्रति लोगों में अनास्था का भाव प्रकट रहता है, फिर भी; डॉ. लोहिया के विचार भौतिकवादी समाज को नई दिशा का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। गाँधी जी के पश्चात् डॉ. लोहिया ही ऐसे चिन्तक थे, जो अपने विचारों में अपनी माटी एवं खुशबू को समाहित किये हुए हैं। लोहिया के विचारों का मौलिक आधार उन्हें गाँधी जी, अस्तित्ववाद व ईशावास्योपनिषद् के कर्त्तव्य-केन्द्रित जीवन से प्राप्त होता है। २१वीं सदी की प्रारम्भिक बेला से ही वैश्विक जगत में व्याप्त अनेक संकटों, यथा– पर्यावरणीय संकट, युद्ध की विभीषिका का भय व विभिन्न विकास-योजनाओं के विरोध का स्तर आदि डॉ. लोहिया के विचारों की सार्थकता में रुचि का पुनरुद्धार करता है। शायद यह इस कारण से है कि डॉ. लोहिया ने विकास-योजना एवं विज्ञान पर एक वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है।

डॉ. लोहिया की जाति-व्यवस्था की व्याख्या और भारत के सामाजिक परिवर्तन की गूँज

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी, उ. प्र.

६०-७० के दशक के समाज वैज्ञानिकों के कानों में सुनाई पड़ती है। अपने विश्लेषण में उन्होंने वर्गों के उन्मूलन को जाति-उन्मूलन का आधार बताया। अपने विचारों में उन्होंने वर्ग-व्यवस्था को कोई स्थान नहीं दिया तथा नागरिकों की उन्नति के लिए समान अवसर दिये जाने की वकालत की। वे व्यक्तिगत स्पर्धा एवं पूँजीवाद का विरोध करते हुये भूमि के आधिपत्य पर अंकुश व समान वितरण में विश्वास प्रकट करते हैं। उनका मानना था कि असमानता न केवल आर्थिक, वरन् सामाजिक भी है। भारत में जहाँ जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता समाज का हिस्सा है, वहाँ आर्थिक समानता के साथ-साथ जाति एवं लैंगिक समानता के लिए लड़ना पड़ता है। उन्होंने विभिन्न धार्मिक समूहों में महिलाओं तथा पिछड़े लोगों के लिए सार्वजनिक जीवन में आरक्षण की माँग की।

नई दुनिया के निर्माण की घटती प्रतिबद्धता, राष्ट्रीय एकता को कायम रखने वाले आवश्यक तत्त्वों की उपेक्षा, कृषि के स्थान पर औद्योगिकीकरण को प्राथमिकता पर रखने वाली प्रतिबद्धता का रहस्य, आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया के बावजूद भी बढ़ती गरीबी व दरिद्रता, शैक्षणिक स्तर में व्याप्त असमानता, समान नागरिक अधिकारों की उपलब्धता के बावजूद महिलाओं का दोयम स्तर का जीवन, भाषा की राजनीति, आँग्ल भाषा के माध्यम से तैयार किये गये कुलीन वर्ग के प्रभुत्व की निरन्तरता, ग्रामीण समाज में उच्च जातियों की बढ़ती प्रभुता का महत्त्व, लोकतन्त्र में बढ़ती साम्प्रदायिकता के स्तर, आंशिक आधुनिकीकरण तथा उत्तर औपनिवेशिक राज्य-सत्ता के प्रति अत्यधिक लगाव जैसे मुद्दों को लोहिया ने अपने विचारों का आधार बनाया और २१वीं सदी में यही मुद्दे विचारकों एवं दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।

यह तथ्य हमारा संज्ञान लाने के लिए पर्याप्त है कि सत्तर के दशक में नव वामपंथी विचारक ए. जी. फ्रेंक ने अपनी पुस्तक 'अण्डर डेवलपमेण्ट ऑफ डेवलपमेण्ट', समीर अमित द्वारा रचित 'एक्यूम्ले शन ऑन वर्ल्ड स्केल' तथा जिओवानी आरिधी की 'ज्योमिट्री ऑफ इम्पीरियलिज्म' ने लोहिया द्वारा मार्क्स के आर्थिक विचारों सम्बन्धी सिद्धान्त पर जो आपत्तियाँ उठायी थीं, उनकी जाने-अनजाने में पुष्टि की गयी थी। इसी तरह, प्रमुख मार्क्सवादी विचारक एरिक हास्यबाम की १९वीं सदी में लिखी प्रमुख पुस्तकों– 'एज ऑफ रिवोल्यूशन', 'एज ऑफ कैपिटल' और 'एज ऑफ एम्पायर' में भी विचारकों द्वारा लोहिया के साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद सम्बन्धी विश्लेषणात्मक निष्कर्षों के सन्दर्भ में कदम उठाने की बात को स्वीकार किया गया। 'वर्ल्ड सिस्टम एप्रोच' के सिद्धान्तकार इमानुएल वालस्टाईन ने १९७४ तथा १९८९ के मध्य अपना जो अध्ययन प्रस्तुत किया, उसमें उन्होंने समकालीन पूँजीवादी कृषि के माध्यम से आर्थिक परिवर्तन लाने व विश्व-व्यवस्था के निर्माण की महागाथा का संकल्प वैश्विक जगत के समक्ष रखा। उन्होंने अपने विश्लेषण में यह सिद्ध किया कि सम्पूर्ण विश्व में यूरोपीय देशों का जो साम्राज्यवादी विस्तार हुआ, वह सिर्फ वैश्विक श्रम-विभाजन के शोषण-तन्त्र पर आधारित था।

शोषण-तन्त्र पर आधारित साम्राज्यवादी विस्तार की महागाथा का प्रकरण जब वैश्विक जगत के समक्ष आया, तो लोहिया द्वारा प्रस्तुत 'इतिहास-चक्र' की संकल्पना से विद्यमान सभ्यताओं के उत्थान-पतन के विश्लेषण से नई प्रासंगिकता मिली। इस विश्लेषण से यूरोप केन्द्रित समाज बेपर्दा हो गया और विश्व के समक्ष विद्यमान प्रगति का यूरोपीय मॉडल अर्द्ध सत्य सिद्ध हुआ। अपने विश्लेषण में लोहिया ने व्यक्त किया कि पश्चिमी यूरोप का औद्योगिकीकरण

उनके उपनिवेशों के शोषण के कारण हुआ है। उन्होंने औद्योगिकीकरण एवं साम्राज्यवाद के मध्य व्याप्त सम्बन्धों को नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत किया। श्रम-विभाजन के सिद्धान्त को प्रमुखता प्रदान करते हुए उन्होंने कहा कि यद्यपि भारत में पूँजी की कमी है, फिर भी; श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अत: भारत के नीति-निर्माता पश्चिम की गहन पूँजी तकनीक के स्थान पर अपनी आर्थिक नीतियों को श्रम की गहन तकनीक के आधार पर केन्द्रित करने का प्रयास करें। भारत के पास समयाभाव व उपनिवेश जैसे संसाधन नहीं हैं, इसलिए वह व्यापक स्तर पर उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करें तथा भूमि-सुधार जैसे नियमों को क्रियान्वित कर, भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धार कर, शोषण को समाप्त करें। डॉ. लोहिया के इतिहास-चक्र एवं श्रम-विभाजन जैसे विचारों के कारण यूरोप-केन्द्रित विचारधाराओं का मोह समाप्त होना प्रारम्भ हो गया है। केन्द्र और परिधि के रूप में संगठित असमानता भरी विश्व-व्यवस्था, जिसमें केन्द्र के रूप में ब्रिटेन व फ्रांस तथा अमेरीका व चीन परिधि के मध्य स्थानों के परस्पर स्थानान्तरित बदलाव के रहस्यमय विश्व का भेद खुला।

इसी के समानान्तर साहित्य-संसार व भाषा-विमर्श के आधार पर 'उत्तर-उपनिवेशवाद' फलने-फूलने लगा। इसकी व्याख्या फ्रान्ज फैनन, सी.एल.आर. जेम्स, चितुआ अचेबे तथा नूगी व थिर्आगो में अलग-अलग प्रकार से की है। एण्टीनियो ग्रामशी, मिशेल फूको तथा एडवर्ड सईद के द्वारा क्रमश: 'वर्चस्व और प्रमुख' के सांस्कृतिक आधारों, ज्ञान-विमर्श में निहित शक्ति तथा प्राच्यवाद के यूरोप केन्द्रित निहितार्थों को पहले ही विरोधात्मक स्वरूप में वैश्विक जगत के समक्ष रखा जा चुका है। भारत में गणेश देवी जैसे विचारकों द्वारा भव्य स्वराज के अधूरेपन के भयानक सच को रेखांकित किया गया है। १९६० के दशक में डॉ. लोहिया द्वारा विश्लेषित भाषा-विमर्श के संकल्प को देशी साहित्यकारों ने, राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान, गाँधी के स्वराज-धारा को बल प्रदान करने के लिए प्रयोग किया। डॉ. लोहिया विदेशी भाषाओं के स्थान पर स्थानीय भाषाओं का समर्थन करते हैं। वह चाहते थे कि देश का शासन-प्रशासन, न्यायिक व्यवस्था तथा कुलीन व्यवसाय जनता से अलग-थलग न रहे। वह उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा, प्रशासन एवं न्यायपालिका के कार्यों के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को जारी रखने के विरुद्ध थे। 'अंग्रेजी हटाओ' आन्दोलन में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की सहभागिता का स्तर व्यापक था। भाषा को लेकर आज अफ्रीकी राष्ट्रों में व्याप्त नवउपनिवेशवाद एवं मानसिक गुलामी के विरुद्ध जो आवाज मुखर हुई है, उसके पीछे लोहिया के ही विचार हैं। अत: डॉ. लोहिया को 'विऔपनिवेशीकरण' के प्रथम नायक के रूप में पहचाना जाना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। डॉ. लोहिया की पुस्तक 'भाषा' के विश्लेषण ने आज मातृभाषा की सार्थकता को सिद्ध किया और वैश्विक जगत के अति पिछड़े देश भाषायी गुलामी की बेड़ियों से शनै:-शनै: मुक्ति का संग्राम संचालित करने में लगे हुए हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो २०वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लोहिया द्वारा पेश किये गये इतिहास-चक्र भाषा, जाति-प्रथा व मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म आदि से जुड़े दृष्टिकोण को २१वीं सदी के पूर्वार्द्ध में नई महत्ता प्राप्त हुई और आज लोहिया के पुनर्विवेचन को बल प्राप्त हो रहा है।

दरिद्रता, अभाव व विषमता की एकजुटता व मानवों के बीच परस्पर विरोधी रिश्तों को डॉ. लोहिया ने पूँजीवाद व साम्राज्यवाद के जुड़वापन का महादोष माना था। वर्तमान समय में इस तथ्य को अमर्त्य सेन से लेकर ज्यांद्रेज अभिजीत बनर्जी ने अपने आर्थिक शोध-कार्यों में समझाने

का प्रयास किया है। जयप्रकाश नारायण ने १९७५-७७ के दौरान संचालित 'जन आन्दोलन' में यह समझाया कि उनकी 'सम्पूर्ण क्रान्ति' व डॉ. लोहिया की 'सप्त क्रान्ति' का स्वरूप एक जैसा ही है। वास्तव में; इतिहास-चक्र, भाषा व सप्त क्रान्ति जैसे विचार समय की कसौटी पर आज भी नि:सन्देह प्रासंगिक हैं और संयुक्त राष्ट्र के १७ सूत्रीय स्थायी प्रगति के लक्ष्य व लोहिया के वैचारिक दर्शन की तुलना अप्रासंगिक नहीं होगी।

डॉ. लोहिया को वैश्विक जगत के प्रत्येक स्थान में हो रहे अन्याय व हिंसात्मक गतिविधि से पीड़ा होती थी। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अन्याय के प्रतिकार के लिए समर्पित किया और यही कारण है कि पहले तो उन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने, तत्पश्चात् नये भारत के निर्माण के लिए सही नीतियों के निर्माण से जुड़े आन्दोलनों तथा संघर्षों का नेतृत्व किया। इसके साथ ही; उन्होंने तिब्बत की चीन से मुक्ति तथा नेपाल की राजशाही से स्वतन्त्रता से लेकर कोरिया, जर्मनी, वियतनाम के साथ ही हिन्दुस्तान के विभाजन को समाप्त करने के लिए ठोस कार्य किया। डॉ. लोहिया ने नेपाल के प्रति भारत के रवैये का निरन्तर विरोध किया और नेपाल की राजशाही को समाप्त करवाने में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभायी। देश से दरिद्रता, वंचनाओं की समाप्ति तथा भेदभाव व असमानता पर लगाम उनका सपना था। इसके लिए उन्होंने लोकतन्त्रीकरण, विकास व विऔपनिवेशीकरण की त्रिधारा को प्रवाहमान करने के लिए जन-राजनीति का मार्ग चुना। उनका कथन कि 'जिन्दा कौमें पाँच साल इन्तजार नहीं करतीं।' दुनिया के भविष्य को स्वतन्त्रता, न्याय व समानता की प्रगति के माध्यम से बेहतर बनाने का निहितार्थ लिये हुए है। उन्होंने मार्क्स, गाँधी और समाजवाद के त्रिकोण को बुनियादी महत्त्व का बताया और योगवादी भूमण्डलीकरण और क्रोनी कैपिटलिज्म की विफलता के बाद इस त्रिकोण के सम्बन्धों की नई समझ की आवश्यकता हो गयी है।

स्त्री-विमर्श पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने सावित्री के स्थान पर द्रोपदी को आदर्श माना है। आज से कई दशक पूर्व जब देश की राजनीति की चिन्ता में स्त्री-विमर्श परिवार-नियोजन, स्त्री-शिक्षा, समान वेतन आदि मुद्दों तक ही सीमित था और स्वयं भारतीय स्त्रीवाद भी अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत नहीं था, तभी लोहिया ने भारतीय राजनीति के स्त्री-विरोधी स्वर को पहचान कर उस पर प्रहार किया। स्त्री-पुरुष के भेदभाव को लोहिया सभी तरह के भेदभाव का आधार मानते हैं। लोहिया ने अपने विचारों में व्यक्त किया कि समतामूलक समाज के निर्माण के लिए लैंगिक विषमता को समाप्त करना अनिवार्य है। वास्तव में; लोहिया स्त्री को एक अलग इकाई के रूप में नहीं, बल्कि समाज के अभिन्न हिस्से के रूप में देखते हैं, जैसा कि आमतौर पर स्त्रीवादी चिंतक नहीं देख पाते हैं। शायद इसीलिए, उनके महिलाओं के प्रति होने वाले भेदभाव के समाधान में वह व्यापकता और स्थायित्व नहीं है, जो लोहिया द्वारा सुझाये गये विचारों में पाया जाता है। पूर्ण रूप से वे महिलाओं पर लगाई जाने वाली बंदिशों को समाप्त कर स्त्री-पुरुष-समानता को उद्घाटित करते हैं।

डॉ. लोहिया की स्वातन्त्रोत्तर राजनीति राष्ट्र-निर्माण की नीतियों से बने चतुर्भुज पर आधारित थी। वे जाति नीति, भाषा नीति, दाम नीति तथा रक्षा नीति को अपने विचारों में केन्द्रीय स्थान प्रदान करते हैं। इसके साथ ही; देश-काल की सीमा से अलग लोहिया विश्व-दृष्टि को बनाने का सपना सँजोए थे। 'विश्व नागरिकता' की अवधारणा देने वाले डॉ. लोहिया पहले चिन्तक थे, जिनका मानना था– देशों को विभाजित करने वाली भौगोलिक सीमाएँ न हों और

प्रत्येक व्यक्ति को हर स्थान पर आने-जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो। आज जब साम्राज्यवादी शक्तियाँ निरन्तर आक्रमण की टोह में रहती हैं तथा प्रत्येक राष्ट्र अपनी सीमाओं की सुरक्षा में करोड़ों रुपये खर्च करता है, ऐसे अमानवीय समय में लोहिया की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। सम्भवत: 'विश्व नागरिकता' का आदर्श लोगों को आधारहीन व अव्यावहारिक लगे, परन्तु यह सत्य है कि आज वैश्विक जगत अराजकता व विध्वंस के जिस मोड़ पर खड़ा है, उस मोड़ पर डॉ. लोहिया का यह विचार सुकूनमय भविष्य का निर्माण कर सकता है।

विपक्ष की राजनीति करते हुए डॉ. लोहिया ने विदेश नीति की सार्थक, स्थायी व सशक्त रूपरेखा निर्मित की। वास्तव में; लोहिया का चिन्तन भारतीय समाज के प्रति जिस प्रकार स्पष्ट एवं सशक्त रहा, ठीक उसी तरह वैदेशिक मामलों में भी बेबाक और सजग था। उन्होंने गुटनिरपेक्ष नीति एवं राष्ट्र मण्डल की सदस्यता के सन्दर्भ में नेहरू का विरोध किया तथा वे गुटनिरपेक्षता के स्थान पर एक सक्रिय तीसरी शक्ति के निर्माण के पोषक थे। उन्होंने साम्यवादी चीन की विस्तारवादी नीति की आलोचना के साथ ही हिटलर के लोकतन्त्र-विरोधी सत्ता-संचालन और अत्याचारों की निन्दा की। लोहिया का अटूट विश्वास वर्गहीन, जातिहीन, धर्महीन, भेदभाव रहित व गुटविहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था में था। मानव को सर्वोपरि महत्त्व देते हुए उन्होंने अपनी राजनीति को अशिक्षितों, अभागों, पिछड़ों व शोषितों के लिए आधार बनाया। लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत लोहिया राजनीतिज्ञों के लिए आचार संहिता चाहते थे, ताकि व्यवस्था में भ्रष्टता को आने से रोका जा सके।

वास्तव में; लोहिया की समग्र राजनीतिक आस्था मानव-मूल्यों को संस्थापित करती है। वे स्वस्थ राजनीतिक मूल्यों के पक्षधर थे। वे राजनीति को घटकों से ऊपर तथा भेदभाव से परे प्रयोग में लाते हैं। उनके राजनीतिक विचार किसी देश की राजनीतिक सीमाओं से आबद्ध न होकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संस्थापना की दृष्टि से विस्तृत व गहरे थे।

निष्कर्ष– भारतीय राजनीति के व्यावहारिक आयामों के पुरोधा डॉ. लोहिया की प्रासंगिकता गाँधी जी के पश्चात् सबसे अधिक है। आज जब हम भारतीय राष्ट्रवाद को हाईजैक करने के सबसे कपटी प्रयास का सामना कर रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में; डॉ. लोहिया की सांस्कृतिक राजनीति का विचार आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। उदारवादी धर्मनिरपेक्षता की आधुनिकतावादी संवैधानिक भाषा कट्टरवादी व साम्प्रदायिक हमले का मुकाबला करने में असमर्थ है। इस परिप्रेक्ष्य में लोहिया का यह सूत्रीकरण कि– ''राजनीति अल्पकालिक धर्म व धर्म दीर्घकालिक राजनीति है'' –राजनीति को पुन: आकार देने के लिए हिन्दू धर्म और अन्य धार्मिक परम्पराओं के संसाधनों को आकर्षित करने के लिए द्वार खोलता है। डॉ. लोहिया ने अपने समय के राजनीतिक वैज्ञानिकों से अधिक रचनात्मक दिमागों को आकर्षित किया और उनका वैचारिक दर्शन २१वीं सदी में भी विश्व-समुदाय को सँवारने व सँभालने के लिए उपयोगी दिखता है। उनके चिन्तन से विविधतापूर्ण स्त्री-पुरुष की एकजुटता के संकल्प को साधा जा सकता है। आज लोहिया की गाँधी व जयप्रकाश नारायण के साथ सिद्धान्तों व कार्य-पद्धति की एकजुटता स्वीकारी जा चुकी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. आनन्द कुमार– गाँधी, लोहिया, जयप्रकाश और हमारा समय, नयी किताबें प्रकाशन, नई दिल्ली (२०२०)

२. डॉ. संजय सिंह– भारतीय समाजवादी आन्दोलन, कला प्रकाशन, वाराणसी (२०१२)
३. प्रो. जी. पी. नेमा– भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली (२००९)
४. पी. आर. भाटिया– भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनिवर्सल बुक डिपो, आगरा (२०१३)
५. ताराचन्द दीक्षित– डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (२०१५)
६. ओंकार शरद– समता और सम्पन्नता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (१९९९)
७. आनन्द कुमार– तिब्बत, हिमालय, भारत, चीन और डॉ. राममनोहर लोहिया, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली (२०१३)
८. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर– लोहिया का समाजवाद और उसका पुनर्मूल्यांकन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (२०१६)
९. लक्ष्मी नारायन अग्रवाल– इक्कीसवीं सदी में लोहिया, मेधा बुक्स प्रा. लि. शाहदरा, नई दिल्ली (२००७)
१०. इन्दुमति केलकर– लोहिया : सिद्धान्त और कर्म, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद (२००३)
११. उज्ज्वल कुमार जैन– राममनोहर लोहिया : कन्सेप्ट ऑफ सिविल लिबर्टी, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली पत्रिका, पृष्ठ ७१-७७, ११ नवम्बर (२००९)
१२. योगेन्द्र यादव– ऑन रिमेम्बरिंग लोहिया, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली पत्रिका, पृष्ठ ४७, २ अक्टूबर (२०१०)
१३. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव– भारत में समाजवाद के उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ, प्रशांत बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली (२०१४)
१४. गिरिजा शंकर– भारत में लोकतांत्रिक समाजवादी आन्दोलन, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली (२००८)
१५. www.sablog.in

●

मानवाधिकार का दुरुपयोग : एक गम्भीर चुनौती

प्रखर पाण्डेय*

मनुष्य की अस्मिता, स्वतन्त्रता, गरिमा और सम्मान की स्थापना हेतु आधुनिक सभ्यता और संस्कृति में अनेक ठोस प्रयास किये गये हैं। इनमें से मानवाधिकार की अवधारणा तथा इसे लागू करने की पद्धति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विश्वनिकाय द्वारा इसकी सार्वभौम घोषणा को अंगीकार किया जाना अति प्रशंसनीय पहल रही है। दुनिया के विभन्न देश किसी-न-किसी रूप में इसे स्वीकार करते हैं। मानवाधिकार अपने आप में एक उत्कृष्ट घोषणा और व्यवस्था है। इसके बावजूद; इसका दुरुपयोग करने वालों की भी पर्याप्त संख्या देखी जा सकती है। मानवाधिकार के नाम पर मानवाधिकार-हनन करने की प्रवृत्ति की विवेचना करना तथा मानवाधिकार का दुरुपयोग कैसे रोका जाय– इस लेख का केन्द्रीय विषय है। भारत के जम्मू-कश्मीर राज्य, विशेष रूप से कश्मीर घाटी में लगभग तीन दशकों तक आतंकवादियों और पृथकतावादियों द्वारा मानवाधिकार का दुरुपयोग किये जाने की तथ्यात्मक विवेचना को एक 'केस स्टडी' के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पृष्ठभूमि : मानवाधिकार विश्व के किसी भी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के वे अधिकार हैं, जो उनके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। इन अधिकारों का उद्‌भव मानव की अन्तर्निहित गरिमा से हुआ है। विश्वनिकाय ने १९४८ में मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार और उद्‌बोधित किया। इस घोषणा के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान जाग्रत करता है। अधिकारों की विश्वव्यापी एवं प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।

मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के पश्चात् मानव-अधिकारों की अभिवृद्धि और पालन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक प्रसंविदा, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा-१९६६ और अन्तर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार पर प्रसंविदा के वैकल्पिक प्रोटोकाल को अंगीकार किया।

मानव-अधिकारों के अतिक्रमण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपचारों के भी प्रावधान हैं। मानव अधिकार आयोग, मानव अधिकारों के मानकों को लागू करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। अत: शान्ति बनाए रखने, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिरता को बढ़ाने, आर्थिक व सामाजिक विकास में सहायता करने के लिए इन मानवाधिकारों को महत्त्वपूर्ण बनाने पर दृढ़तापूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है।

मानव-अधिकार के प्रकार : मानव-अधिकार को मुख्य रूप से निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) प्राकृतिक अधिकार : मनुष्य अपने जन्म से ही कुछ अधिकार प्राप्त कर लेता है, जो उसे प्रकृति से ही प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए ऐसे अधिकार मानव-स्वभाव में अन्तर्निहित होते हैं। यथा– जीवन जीने का अधिकार, स्वतन्त्रता आदि ऐसे अधिकार हैं, जो मानव के जन्म लेते

* शोध-छात्र– समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२२१००२

ही उसे प्रकृति-प्रदत्त होते हैं।

(ख) नैतिक अधिकार : इसका मुख्य स्रोत समाज का विवेक होता है। यह अधिकार मानव के नैतिक आचरण से होता है। समाज एक नैतिक समुदाय है। नैतिकता के मूल्य सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान विविध अभिकरणों द्वारा व्यक्ति में आरोपित किये जाते हैं। परिवार, शिक्षण-संस्थाओं, शिक्षा-व्यवस्था, धर्म, संस्कृति आदि जैसे प्रमुख अभिकरणों द्वारा नैतिक मूल्यों को व्यक्ति में आरोपित किया जाता है।

(ग) कानूनी अधिकार : ऐसे अधिकार राज्य द्वारा औपचारिक स्तर पर व्यक्ति को प्राप्त कराए जाते हैं। प्रत्येक राज्य किसी-न-किसी संविधान, नियम, कानून आदि द्वारा संचालित होता है। ऐसे विधिक प्रावधानों के माध्यम से राज्य अपने नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी देता है। व्यक्ति को प्राप्त कानूनी अधिकारों का उल्लंघन होने की स्थिति में न्यायपालिका सहित अन्य विधिक संस्थाएँ और विभाग आदि दण्ड और न्याय सुनिश्चित करते हैं। कानून के समक्ष समानता तथा कानून का समान संरक्षण ऐसे अधिकारों का उल्लेखनीय उदाहरण है।

(घ) नागरिक अधिकार : राज्य का नागरिक होने के कारण व्यक्ति को जो नागरिक, राजनीतिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त होते हैं, उन्हें नागरिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इन्हीं अधिकारों के आलोक में व्यक्ति अपने देश के शासनतन्त्र में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्मिलित होता है। उदारवादी प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक और नागरिक अधिकारों का विशेष महत्त्व होता है। दुनिया में विद्यमान अनेक इस्लामिक स्टेट जैसे धर्मतन्त्रीय व्यवस्था वाले देशों में स्थिति भिन्न है। इनमें उस देश के धर्म के अनुरूप उनके नागरिक अधिकारों की व्याख्या की जाती है।

(ङ) मौलिक अधिकार : आज प्रत्येक सभ्य राज्य अपना संविधान बनाते समय उसमें मूल अधिकारों का प्रावधान करते हैं। जनतान्त्रिक व्यवस्था व्यक्ति तथा उसके मौलिक अधिकार पर विशेष बल देती है। संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान होने से स्वतन्त्रता का दायरा स्पष्ट होता है, जिसे राजनीतिक मतभेदों से ऊपर रखा जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास के लिए इन अधिकारों को अपरिहार्य माना जाता है। भारत के विशाल आकार और विविधता, विकासशील तथा सम्प्रभुता-सम्पन्न, धर्म-निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा तथा एक भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप भारत में मानवाधिकारों की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल सी रही। भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जिसमें धर्म की स्वतन्त्रता भी अन्तर्भुक्त है। संविधान की धाराओं में बोलने की आजादी के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका का विभाजन तथा देश के अन्दर और बाहर आने-जाने की स्वतन्त्रता दी गयी है।

समय-समय पर कुछ राजनीतिक दल तथा कुछ सामाजिक कार्यकर्ता भारत में भेद-भाव की बात करते हैं। मानवाधिकार की समस्याएँ भारत में विद्यमान हैं, तथापि दक्षिण एशिया के दूसरे देशों की भाँति भारत में मानवाधिकारों की गम्भीर समस्या नहीं है। इन विचारों के आधार पर फ्रीडम हाउस द्वारा 'फ्रीडम इन द वर्ल्ड-२००६' को दिये गये रिपोर्ट में भारत को राजनीतिक अधिकारों के लिए दर्जा-२ और नागरिक अधिकारों के लिए दर्जा-३ दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप; भारत ने स्वाधीनता का सम्भवत: उच्चतम दर्जा (रेटिंग) अर्जित किया है।

भारत में मानवाधिकार कानून : भारत में २८ सितम्बर, १९९३ से मानवाधिकार

कानून लागू किया गया और १२ अक्टूबर, १९९३ में सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' का गठन किया गया। मानव-अधिकारों और मूल अधिकारों के मध्य शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। भारतीय संविधान में न सिर्फ मानवाधिकारों की गारण्टी दी गयी है, बल्कि इसका उल्लंघन करने पर दण्ड का भी प्रावधान किया गया है। भारत के संविधान में मानवाधिकारों को पर्याप्त मान्यता देते हुए मानव-अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र को प्रत्याभूत किया गया है और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण की दृष्टि से तथा मौलिक अधिकारों के रूप में प्रतिष्ठापूर्ण और गरिमामयी वातावरण में जीवन जीने का अधिकार प्रदान करने की गारण्टी दी गयी है। भारतीय संविधान का उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है, जो विधि-सम्मत तथा मानव-हितकारी हो। इसके अन्तर्गत समस्त नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के समान अवसर, शान्ति और सुरक्षा के वातावरण में गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिल सके।

मानवधिकार का दुरुपयोग– मानवाधिकार को एक दोधारी तलवार के रूप में देखा जा सकता है। इसका सदुपयोग मानवीय चेतना, गरिमा, सम्मान और अस्मिता सुनिश्चित करता है। मानवाधिकार का दुरुपयपोग समाज और मानवता को आघात पहुँचा रहा है। नरसंहार, आतंकवाद, हिंसा, बलात्कार तथा धर्म और संस्कृति विशेष को नष्ट करने वाले अपने बचाव में सर्वाधिक मानवाधिकार का दुरुपयोग करते पाये जाते हैं। इसके प्रमाणस्वरूप अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक केस स्टडी के रूप में कश्मीर घाटी का उदाहरण उल्लेखनीय है।

कश्मीर में विगत तीन दशकों तक मानवाधिकार का कवच पहनकर आतंकवादी और अलगाववादी बचते रहे, फलते-फूलते रहे और उनके द्वारा बड़े पैमाने पर निरीह-निर्दोष लोगों का मानवाधिकार हनन किया जाता रहा। पाकिस्तान की सेना, गुप्तचर इकाई, आई.एस.आई. तथा सरकार द्वारा आतंकवादी तथा अलगाववादी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए प्रशिक्षण तथा हथियार उपलब्ध कराये जाते रहे हैं। प्रशिक्षित आतंकियों को जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ करायी जाती रही है। भारत तथा विशेष रूप से इसके जम्मू-कश्मीर राज्य में आतंक फैलाने के निर्देश के साथ उनकी भारत में घुसपैठ कराई जाती थी। आतंकियों तथा अलगाववादियों को फंण्डिग की जाती रही।

भारत के तत्कालीन जम्मू एवं कश्मीर राज्य में तीन दशकों से अधिक अवधि तक मानवाधिकार-हनन का एक भयंकर चेहरा दुनिया ने देखा और सुना। सन् १९८८ के बाद से कश्मीर में आतंकवाद और अलगाववाद की बाढ़ आ गयी। इसे संगठित रूप से संचालित करने हेतु वैचारिक जामा पहनाया गया। कश्मीर की आजादी के नाम पर गैर मुस्लिम आबादी के खिलाफ जेहाद आरम्भ हुआ। इसे पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित किया जाता रहा। जेहाद और अलगाववाद के नाम पर हर स्तर पर सुनियोजित ढंग से गैर मुस्लिम आबादी के मानवाधिकार का हनन किया गया। आश्चर्य की बात यह रही कि मानवाधिकार हनन करने वाले लोग और संगठन खुद के मानवाधिकार की बात करते रहे। वास्तविकता सिर्फ यही रही कि गैर मुस्लिमों, विशेष रूप से निर्दोष और निरीह हिन्दुओं और सिक्खों की हत्या करना, अपहरण करना, लूट और जबरन उनकी सम्पत्ति पर कब्जा करना, उनके आवासों, रोजगार-स्थलों तथा धार्मिक स्थलों को जला देना, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करना जैसे जघन्य काण्ड बड़े पैमाने पर आरम्भ

किये गये।

तत्कालीन जम्मू-कश्मीर विधानसभा में जारी सरकारी आँकड़ों के अनुसार जुलाई, २००९ तक लगभग ३४०० निरीह लोग लापता थे। अपहरण के बाद से उनका कोई अता-पता नहीं चला। ४७००० निर्दोष लोगों की आतंकवादियों द्वारा हत्या कर दी गयी थी। लगभग ७००० पुलिस कर्मियों तथा अन्य सुरक्षाबलों की आतंकवादियों द्वारा हत्या कर दी गयी थी। मानवाधिकार-हनन के मामले इससे कहीं अधिक चौंकाने वाले थे। हजारों गैर मुस्लिम : विशेष रूप से हिन्दू और सिक्ख स्त्रियों के अपहरण और बलात्कार हुए। इनके अपहरण और बलात्कार इस कारण से हो रहे थे, क्योंकि वे हिन्दू अथवा सिक्ख धर्म को मानने वाले थे। कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में संचालित हिन्दू मन्दिरों, आश्रमों, मठों तथा सिक्खों के गुरुद्वारों को जला दिया गया अथवा नुकसान पहुँचाया गया। गैर मुस्लिम, विशेष रूप से हिन्दुओं और सिक्खों को उनके घर-बार, सम्पत्ति, व्यापार, नौकरी आदि से जबरन बेदखल कर दिया गया। उनके खिलाफ ऐसा भयंकर आतंक, भय, शोषण, द्वेष, हिंसा का वातावरण निर्मित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप बचे हुए गैर मुस्लिम लोग कश्मीर छोड़ने के लिए विवश हो गये। १९८९ ई. से १९९५ के बीच अर्थात् महज ५ वर्षों में कश्मीर के मूल निवासी, जो गैर मुस्लिम; विशेष रूप से हिन्दू और सिक्ख की ९८ प्रतिशत आबादी कश्मीर से पलायन कर गयी। लगभग ५ लाख से अधिक कश्मीरी हिन्दुओं तथा सिक्खों को कश्मीर घाटी से पलायन करने के लिए विवश किया गया। कुछ दूसरे देश चले गये, कुछ अपने ही देश में शरणार्थी बन गये। विडम्बना यह रही कि जम्मू-कश्मीर में गैर मुस्लिम लोग, विशेष रूप से शान्तिप्रिय, निरीह, निर्दोष हिन्दुओं और सिक्खों के विरुद्ध होने वाले उक्त वर्णित मानवाधिकार-हनन खुले आम दशकों तक होते रहे। इसके बावजूद; भारत सहित दुनिया के तमाम देशों के मानवाधिकार आयोग तथा मानवाधिकार के लिए लड़ने वाले कार्यकर्ता मौन, निष्क्रिय और सम्वेदनहीन बने रहे। अधिकांश ने न तो मजबूती से आवाज उठाई और न ही उक्त मानवाधिकार-हनन को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाए।

इस सन्दर्भ में एक गम्भीर चिन्ता का विषय उभर कर सामने आया। कश्मीर में हो रही आतंकवादी घटनाओं को रोकने के लिए पुलिस और सुरक्षा बल जब कार्रवाई करते थे, तो आतंकवादियों, उनके सहयोगी तथा संरक्षण प्रदान करने वालों द्वारा अपने बचाव में मानवाधिकार की दुहाई दी जाती थी। आतंकवादियों तथा उनके सहयोगियों के मारे जाने पर उनके मानवाधिकार की वकालत की जाती थी और उन्हें शहीद के रूप में पेश किया जाता था। आतंकवादियों तथा उन्हें बचाने वाले पत्थरबाजों के मानवाधिकार की जोर-शोर से दुहाई दी जाती थी। इस दौर में मानवाधिकार ने, वास्तव में; कलंकित करने वाला तुष्टीकरण का रूप धारण कर लिया।

जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट, हरकत-उल-जिहाद-ए-इस्लामी, लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद, हिजबुल मुजाहिदीन, हरकत-उल-मुजाहिदीन, अल-बद्र जैसे अनेक आतंकवादी संगठन खुले रूप से कश्मीर में आतंकवाद फैला रहे थे। जम्मू-कश्मीर के दर्जनों अलगाववादी नेता आतंकवाद और उसके प्रायोजक पाकिस्तान के साथ खड़े थे। जम्मू एवं कश्मीर के कुछ प्रमुख राजनीतिक परिवार दोहरा खेल खेल रहे थे। वे पर्दे के पीछे से आतंकवाद को पाल-पोस रहे थे। ये नेता मानवाधिकार को ढाल बनाकर आतंकियों तथा अलगाववादियों को सुरक्षा प्रदान

कर रहे थे। ऐसे नेता अपने समर्थकों के साथ मिलकर सुरक्षा बलों का मनोबल कमजोर कर रहे थे। आतंकवादियों और अलगाववादियों के खिलाफ जब भी कोई कार्रवाई सुरक्षा बलों द्वारा की जाती थी, तो मानवाधिकार को ढाल बनाकर उसे रोकने का षड्यन्त्र किया जाता था। यह वास्तव में; तुष्टीकरण का एक ऐसा जहर था, जिसने मानव-अधिकार को एक दूसरी ही तस्वीर पेश की, जिससे मानवता शर्मसार हुई।

जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम-२०१९ और मानवाधिकार

जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम-२०१९ द्वारा भारतीय संविधान की अस्थायी धारा ३७० तथा ३५ए का उन्मूलन हो गया। यह कानून ३१ अक्टूबर, २०१९ से लागू हो चुका है। इसके परिणामस्वरूप; दो नए केन्द्रशासित प्रदेश अस्तित्व में आ चुके हैं– पहला जम्मू-कश्मीर और दूसरा लद्दाख। नवसृजित जम्मू-कश्मीर राज्य में नए सिरे से परिसीमन का कार्य २०२२ में पूर्ण हो चुका है। जम्मू सम्भाग में ४३ सीटें तथा कश्मीर घाटी में ४७ विधानसभा सीटें हैं। इनमें से अनुसूचित जाति के लिए ७ सीटें तथा अनुसूचित जनजाति के लिए ९ सीटें आरक्षित हैं। लोकसभा की ५ सीटें हैं। इनके अतिरिक्त; पाकिस्तानी कब्जे वाले कश्मीर हेतु १६ सीटें रिजर्व मे रखी गयी हैं।

२६ जनवरी, १९५० को भारतीय संविधान लागू हुआ था। इसमें कमजोर वर्ग को विशेष अवसर सिद्धान्त के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए सीटें आरक्षित करने का प्रावधान है। देशभर में यह तभी से लागू रहा है। प्रान्तों की विधान सभा सीटों पर बारी-बारी से अर्थात् रोस्टरिंग व्यवस्था के तहत अनुसूचित जाति और जनजाति का प्रतिनिधित्व होता रहा है। इस अधिकार से जम्मू कश्मीर में अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग २०१९ तक वंचित रहे। मानव-अधिकार की वकालत करने वालों द्वारा कभी इस विषय पर संघर्ष नहीं किया गया। इस अधिकार-हनन को कानूनी जामा पहनाया गया था। कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देकर अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को धारा ३७० तथा ३५ए की आँड़ में उनके अधिकारों से वंचित करने की साजिश सात दशकों तक चली। प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने दृढ़तापूर्वक धारा ३७० तथा ३५ए समाप्त करके जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जाति और जनजाति को उनका अधिकार दिलाया है। यह तथ्य सिद्ध करते हैं कि धारा ३७० तथा ३५ए की आँड़ में जम्मू-कश्मीर का तत्कालीन नेतृत्व तथा कुछ तथाकथित संगठन दूसरों के अधिकार-हनन भी कर रहे थे और अपने अधिकार-हनन की दुहाई भी दे रहे थे। विशेष राज्य का दर्जा के नाम पर अधिकार-हनन के साक्ष्य से इतिहास को समझना होगा कि मानव-अधिकार के नाम पर इसका किस हद तक दुरुपयोग भी होता है।

'जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम-२०१९' लागू होने के पूर्व पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादियों तथा अलगाववादियों द्वारा जम्मू-कश्मीर में आम नागरिकों के अधिकारों का व्यापक पैमाने पर हनन किया गया और अधिकार-हननकर्ताओं ने सुनियोजित रूप से दुनिया को दिखाया कि उनके अधिकारों का हनन हो रहा है। इस कथन के पक्ष में कुछ तथ्य उद्धृत करना प्रासंगिक है। आतंकी संगठन 'जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट' (जे.के.एल.एफ.) का चेयरमैन १९८८ से जम्मू-कश्मीर के निर्दोष लोगों की हत्या, अपहरण, देशद्रोह, आतंक फैलाने जैसे गम्भीर अपराधों को अंजाम दे रहा था। अपने साथियों के साथ मिलकर, जेहाद के नाम पर हिन्दुओं और सिक्खों का कत्लेआम उसने तथा उसके साथियों ने किया तथा १९९० में

एयरफोर्स के ४ जवानों की हत्या कर दी। १९८९ में तत्कालीन गृहमन्त्री की बेटी का अपहरण किया। १९८९ में न्यायाधीश न्यायमूर्ति नीलकण्ठ गंजू की हत्या कर दी। दशकों तक टेरर फंण्डिग करता रहा। विदेश से बड़ी मात्रा में धन-उगाही करता था। उसमें से कुछ धन कश्मीर के नवजवानों को देकर उसके एवज में सुरक्षाबल पर उन नौजवानों से पत्थर फेंकवाता था, जिससे दुनिया में भ्रामक सन्देश दिया जाता था कि कश्मीरी नवजवानों का गुस्सा सुरक्षाबलों के खिलाफ है। सुरक्षाबल ही मानवाधिकार-हनन कर रहे हैं। ऐसा तथ्यहीन आरोप सिद्ध करने का षड्यन्त्र दशकों तक चला। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जे.के.एल.एफ. के इसी चेयरमैन (आतंकी एवं अलगाववादी) ने वर्ष २०१३ में पाकिस्तान के आतंकी संगठन लश्करेतैयबा के सरगना के साथ मिलकर कश्मीर में सुरक्षाबलों पर आम कश्मीरियों के मानवाधिकारों के हनन का आरोप लगाते हुए धरना दिया था। मानवाधिकार के दुरुपयोग की यह प्रायोजित घटना एक ऐसा प्रमाण है, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणित और सत्यापित हो चुकी है। २०१९ में भारत सरकार ने जे.के.एल.एफ. को आतंकी संगठन घोषित करके प्रतिबन्धित किया तथा इसके चेयरमैन को जेल में बन्द करके उस पर केस चलाया। १९ मई, २०२२ को न्यायालय द्वारा उसे दोषी पाया गया तथा २५ मई, २०२२ को कोर्ट ने उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई। जे.के.एल.एफ. के चेयरमैन उक्त आतंकी पर 'गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम कानून' (यूएपीए) की धारा १६ (आतंकी गतिविधि), धारा १७ (आतंकी फण्डिंग), धारा १८ (आतंकी गतिविधि की साजिश) और धारा २० (आतंकवादी गिरोह या संगठन का सदस्य होना) सहित आईपीसी की धारा १२०-बी (आपराधिक साजिश) और १२४-ए (राजद्रोह) के तहत केस दर्ज किया गया था। इन आरोपों को जे.के.एल.एफ. के उक्त आतंकी चेयरमैन ने न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया है। यह एक उदाहरण है। ऐसे अनगिनत आतंकी व अलगाववादी विगत चार दशकों से जम्मू-कश्मीर के नागरिकों के अधिकारों का हनन करते रहे और सुरक्षाबलों पर आरोप लगाने में भी सबसे आगे रहते थे।

कुछ चुनिन्दा पत्रकार, तथाकथित बुद्धिजीवी, टुकड़े-टुकड़े गैंग तथा अर्बन नक्सल लगातार इस बात का षड्यन्त्र करते रहते हैं कि जम्मू-कश्मीर में मानवाधिकार-हनन करने वाले आतंकियों और अलगाववादियों के साथ अन्याय हो रहा है। उनके मानवाधिकारों का हनन किया जा रहा है। तुष्टीकरण के रोग से ग्रसित ऐसे लोगों को सावधान होना होगा कि मानवाधिकार का दुरुपयोग करने वालों से किसी भी प्रकार की सहानुभूति से राष्ट्रीय और सामाजिक हित प्रभावित होते हैं। अत: मानवाधिकार का दुरुपयोग नहीं, वरन् सदुपयोग होना चाहिए।

दृष्टिकोण-परिवर्तन की आवश्यकता :

'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-१९९३' की धारा-२ के अनुसार, मानवाधिकार का अर्थ संविधान के अन्तर्गत प्रदान की गयी गारण्टी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित तथा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय जीवन, स्वतन्त्रता, समानता तथा व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित अधिकार हैं।

इस परिभाषा के आलोक में विचारणीय बिन्दु यह है कि भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत जीवन, स्वतन्त्रता, समानता तथा व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित अधिकारों का प्रावधान किया गया है। यह सभी नागरिकों को समान रूप से उपलब्ध है। प्रत्येक नागरिक इसका लाभ उठा सकता है। किसी प्रकार के व्यवधान की स्थिति में न्यायालय के माध्यम

से मानवाधिकार की सुरक्षा और संरक्षा कर सकते हैं। मानवाधिकार का हनन होने पर न्याय के लिए उचित मार्ग भी प्रशस्त किये गये हैं, अर्थात् कोई ऐसा भी है, जो दूसरों के अधिकारों का हनन कर रहा है। यहाँ कार्य-कारणता का सम्बन्ध है। एक कार्य है, तो दूसरा उसका कारण है। कारण को समाप्त करके कार्य की बाधा दूर होनी है। मानवाधिकार-हनन करने वाले व्यक्ति अथवा संगठन को रोकना होगा, तभी उसके द्वारा किया जा रहा मानवाधिकार-हनन समाप्त होगा। उसे कैसे रोका जा सकता है, क्योंकि उसे रोकने अथवा नियन्त्रित करने के दौरान वह स्वयं को क्षतिग्रस्त (विक्टिम) के रूप में पेश करने का षड्यन्त्र करता है? मानवाधिकार-हनन करने वाला स्वयं को विक्टिम के रूप में प्रस्तुत करते हुए अपने मानवाधिकार की माँग प्रस्तुत करता है। वह अपने मानवाधिकार की माँग की आँड़ में अपना कानूनी और सामाजिक बचाव करने में कई बार सफल हो जाता है और दूसरों का मानवाधिकार-हनन जारी रखता है। इसके परिणामस्वरूप; मानवाधिकार अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता है। यह एक बड़ी चुनौती है। इसका समाधान खोजना होगा।

मानवाधिकार-हनन करने वाले दोषी और अपराधी हैं। ऐसे लोगों को कानून के दायरे में लाना होगा। इसलिए ऐसे लोगों के मानवाधिकार को सीमित करना होगा, जिससे मानवाधिकार-हनन करने वाले स्वयं को इसकी आँड़ लेकर बचा न सकें। दोषियों के पक्षकार अक्सर दलील देते हैं कि अपराधियों को पकड़ने और सजा देने के लिए पर्याप्त कानूनी प्रावधान हैं। यह सत्य भी है, परन्तु बात मानवाधिकार की आँड़ लेकर इसका हनन करने की चुनौती का है। ऐसे प्रकरण में मानवाधिकार आयोग और कार्यकर्ताओं तथा जनमत को सजग, सम्वेदनशील और आब्जिक्टिविटी के साथ सोचने-कार्य करने की आवष्यकता है, जैसा कि उक्त वर्णित जम्मू एवं कश्मीर राज्य में आतंकवादी तथा पृथकतावादियों द्वारा किया गया। सेना अथवा पुलिस से आतंकी को छुड़ाने के लिए पत्थर चलाने वालों, आतंकी मारे जाने पर उसे शहीद का दर्जा देने वालों, आतंकियों को सुरक्षा प्रदान करने वालों, भारतीयों को मारने, लूटने वाले, पाकिस्तान का जिन्दाबाद करने वालों को कानूनी दायरे में लाना होगा। मानवाधिकार-हनन करने वालों के मानवाधिकार स्वत: समाप्त हो जाते हैं– इस बात को समझना और समझाना होगा।

तीन दशकों से अधिक समय तक कश्मीर के हिन्दू और सिक्ख आतंकवाद से पीड़ित रहे। सभी विक्टिम निरीह और निर्दोष रहे हैं। विक्टिम हिन्दू और सिक्खों के पक्ष में मानवाधिकार आयोग और कार्यकर्ता दमदार ढंग से खड़े नहीं हुए– यह भी मानवाधिकार का एक प्रकार से मजाक उड़ाया गया। पूरी कश्मीर घाटी को हिन्दू और सिक्ख आबादी से साफ कर दिया गया। भयंकर नरसंहार हुए। फिर भी; राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय– दोनों स्तरों पर मानवाधिकार आयोग, कार्यकर्ता, एजेन्सीज मौन रह कर तमाशा देखते रहे। ऐसे एकपक्षीय मानवाधिकार में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है।

'द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग' (एआरसी) ने अपनी रिपोर्ट में कुछ सिफारिशें की हैं, जिससे कि मानव अधिकार आयोग को तुलनात्मक दृष्टि से कहीं अधिक प्रभावी बनाया जा सके। प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना है कि एन.एच.आर.सी. को विभिन्न सांविधिक आयोगों के समक्ष शिकायतें करने के लिए एक समान प्रारूप तैयार किया जाय। इसके लिए पीड़ितों और शिकायतकर्ताओं का विवरण इस ढंग से दिया जाये, जिससे विभिन्न आयोगों के बीच डेटा का तालमेल बेहतर ढंग से बैठ जाये।

मानवाधिकार आयोग और कार्यकर्ताओं को चयनित दृष्टि अर्थात् 'सेलेक्टिव अप्रोच' त्यागना होगा। लक्ष्य-प्राप्ति हेतु व्यक्तिपरक (Subjective) दृष्टिकोण के बजाए निष्पक्षतावादी (Objectivity) दृष्टिकोण अपनाना होगा। मानवाधिकार की आँड़ में मानवाधिकार-हनन करने वालों को चिह्नित करके कानूनी दायरे में लाने वाले कठोर कानूनी प्रावधान करने होंगे।

मानव अधिकार आयोग को शिकायतों का निबटारा करने के लिए उपयोगी मानदण्ड निर्धारित करने चाहिए। ऐसे मुद्दों में कार्रवाई तथा उसके समन्वयन के लिए आयोग में नोडल अधिकारी नियुक्त किये जाएँ। प्रभावपूर्ण कार्रवाई हेतु प्रत्येक सांविधिक आयोग के अन्दर एक आन्तरिक प्रणाली विकसित की जाय।

मानव अधिकार उल्लंघन के प्रकरणों का त्वरित निस्तारण करते हुए न्याय दिलाने की दिशा में केन्द्र और राज्य सरकार को तीव्र गति से कार्य करना चाहिए। मानवाधिकार सुनिश्चित करने के मार्ग में बाधक व्यक्ति, संगठन अथवा तन्त्र के विरुद्ध कठोर कानून निर्मित करने की आवश्यकता है। सरकार, मीडिया तथा अन्य तन्त्र को मानवाधिकार के मामले में उदासीनता त्याग कर सम्वेदनशीलता बढ़ानी चाहिए।

देश में मानवाधिकार की रक्षा के निमित्त विविध आयोगों को अपना दायरा विस्तृत करना होगा। सीमा की बाध्यता के नाम पर उदासीनता अथवा निष्क्रियता को समाप्त करना होगा। मानवाधिकार-उल्लंघन का मुद्दा आयोगों द्वारा स्वत: संज्ञान में लेते हुए न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में सरकार को अपने स्तर से सहयोग के लिए क्रियाशील होना चाहिए।

मानवाधिकार और तुष्टीकरण के मध्य विभाजक-रेखा खींचनी होगी। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि मानवाधिकार की आँड़ में तुष्टीकरण को बढ़ावा दिया जाता है। इससे समाज में असन्तुलन उत्पन्न होता है, जिससे अन्याय और विद्रोह जन्म लेता है। अत: सरकार और आयोग को इस विषय पर सावधानी बरतनी होगी। मानवाधिकार की आँड़ में तुष्टीकरण को रोकना होगा।

मानवाधिकार-हनन करने वाले अथवा वालों को मानवाधिकार की माँग करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। मानवाधिकार लागू करते समय चयनात्मक दृष्टिकोण (Selective Approach) नहीं होना चाहिए, जैसा कि कश्मीर में आतंकवाद के दौर में हुआ था। मानवाधिकार-हनन करने वालों तथा उनके पक्षकारों के विरुद्ध अपेक्षित और त्वरित कार्रवाई करके मानवाधिकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

●

जल-संघर्ष और राष्ट्रीय सुरक्षा

भारत-चीन के विशेष सन्दर्भ में

बृजेश चन्द्र श्रीवास्तव*, डॉ.शांतेष कुमार सिंह**

राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दों के बारे में सोचते समय नदियाँ, झीलें और ग्लेशियर आमतौर पर दिमाग में नहीं आते हैं, लेकिन जल का तनाव, वास्तव में; कई देशों के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अक्सर अनदेखा और बढ़ता हुआ खतरा है। जल के तनाव से जल पर विवादों की सम्भावना बढ़ जाती है, क्योंकि लोग और देश दुर्लभ संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। जल के तनाव का अधिक बढ़ने का अनुमान है इससे। दुनिया के अत्यधिक आबादी वाले और रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों वाले देशों को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीतियों में जल के जोखिमों का अध्ययन शामिल करना चाहिए। बेहतर जल-प्रबंधन के लिए बेहतर डेटा और प्रभावी पूर्व-चेतावनी प्रणाली की भी आवश्यकता होती है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक और कई राष्ट्राध्यक्षों के नेतृत्व में जल पर एक नया उच्चस्तरीय पैनल, बेहतर डेटा को जल-सुरक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में देखता है। जल-जोखिम और पूर्व-चेतावनी उपकरण, जैसे कि एक्वाडक्ट और अकाल प्रारम्भिक चेतावनी प्रणाली नेटवर्क (FEWS NET) निर्णय-निर्माताओं को दोनों छोटी और लम्बी अवधि में कार्रवाई को प्राथमिकता देने में मदद कर सकते हैं। (OTTO, २०१७)

पानी में इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक होने की क्षमता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के मुताबिक, २०२५ तक दुनिया की आधी से ज्यादा आबादी पानी के संकट वाले या पानी की कमी वाले देशों में रहेगी। इनमें से ज्यादातर लोग चीन और भारत में होंगे। (International decade for action 'water for life' २००५-१५, २०१४) इन देशों में निरन्तर आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तन, जिनमें सिंचित खेती में वृद्धि, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, बढ़ते मध्यम वर्ग में खपत का विस्तार और विशेष रूप से चीन में अधिक माँस-केन्द्रित आहार के लिए जानवरों को पालना आदि, जिससे पानी की आपूर्ति पर अधिक दबाव होगा। जलवायु-परिवर्तन और प्रदूषण जैसी वृहत् चुनौतियाँ मीठे पानी के संसाधनों को और अधिक प्रभावित करेंगी। चीन और भारत जैसे-जैसे विकास के लिए संघर्ष कर रहे हैं और विश्व मंच पर प्रमुख खिलाड़ियों के रूप में अपनी-अपनी भूमिकाओं का विस्तार कर रहे हैं, दोनों देश तेजी से पानी की कमी का सामना कर रहे हैं। इस चुनौती को इसकी साझा प्रकृति द्वारा और अधिक जटिल बना दिया गया है, क्योंकि भारत का अधिकांश नदी जल चीन में उत्पन्न होता है। भारत-चीन सीमा को पार करने वाली नदियों में सबसे महत्त्वपूर्ण ब्रह्मपुत्र है। (Sharma, २०१८)

चीन दुनिया की लगभग २०% आबादी का घर है, लेकिन जल-संसाधनों का लगभग केवल ७% है। देश को पानी की कमी का सामना करना पड़ रहा है और इसकी पानी की जरूरतें प्रदूषण से और अधिक प्रभावित होती हैं। वर्तमान में, चीन के पर्यावरण-संरक्षण मंत्रालय ने चीन

* शोधार्थी– राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा
** सहआचार्य– राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश, हरियाणा

की नदी के पानी का एक चौथाई हिस्सा इतना गंदा माना है कि पीने, कृषि या यहाँ तक कि औद्योगिक उपयोग के लिए अनुपयुक्त है। इसके अलावा; हालाँकि चीन लगभग पूरी तरह से पानी के लिए आत्मनिर्भर है, यानी देश की लगभग सभी नवीकरणीय मीठे पानी की आपूर्ति नदियों से होती है, जो देश के भीतर उत्पन्न होती है, लेकिन सतही जल का वितरण भौगोलिक रूप से असमान है। देश के मीठे पानी के संसाधनों का बड़ा हिस्सा देश के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में स्थित है, जो उस क्षेत्र के खेतों और कारखानों को लाभान्वित करता है, लेकिन गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्रों को सूखा छोड़ देता है। इस असन्तुलन को दूर करने के लिए बीजिंग ने एक असाधारण महत्त्वाकांक्षी हाइड्रोलॉजिकल इंजीनियरिंग योजना शुरू की है, जिसे दक्षिण से उत्तर जल डायवर्जन कहा जाता है। २०५० तक चीन को सुरंगों, कृत्रिम जल सेतु और नहरों की एक शृंखला के माध्यम से प्रति वर्ष ४५ बिलियन क्यूबिक मीटर पानी स्थानांतरित करने की उम्मीद है। इंजीनियर देश के चार प्रमुख जलमार्गों को भी जोड़ना चाहते हैं– हुआंग हे, यांग्त्जी, हुआई हे और है हे। जल मोड़ योजना में तीन मार्ग– पूर्वी, मध्य और पश्चिमी शामिल हैं, जिनकी कुल अनुमानित कीमत लगभग ६२ बिलियन अमेरिकी डॉलर है। ब्रह्मपुत्र के चीनी हिस्से पर जल-विभाजन योजनाएँ पश्चिमी मार्ग के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। (Zheng, २००२)

भारत दुनिया की आबादी का लगभग १७% लेकिन ४% से कम जल-संसाधनों का घर है और देश अपने सतही जल के लगभग एक तिहाई के लिए विदेशी मूल की नदियों पर निर्भर है। भारत की आबादी और पानी की जरूरतें लगातार बढ़ रही हैं। भारत की मीठे पानी की आपूर्ति भी मौसम के मिजाज से काफी प्रभावित होती है, जिसमें देश की वार्षिक वर्षा के बड़े हिस्से के लिए मानसून का मौसम जिम्मेदार होता है। राष्ट्रव्यापी वर्षा का लगभग आधा हिस्सा केवल १५ दिन में ही हो जाता है। (India's Water Economy : Bracing for a Turbulent Future, २००५)

चीन दुनिया का सबसे आक्रामक बाँध-निर्माता है और चीनी जल परियोजनाओं पर पहले से ही पर्यावरणीय क्षति और पड़ोसी देशों में लोगों के जबरन विस्थापन का आरोप लगाया गया है। (Richardson, २०१३) २००६ में, चीन की ३५ सदस्यीय कैबिनेट, स्टेट काउंसिल ने ग्रेट बेंड में त्सांगपो परियोजना के लिए विस्तृत योजना को अधिकृत किया। पूरी योजना में दो परियोजनाओं को शामिल करने की सूचना है– ग्रेट बेंड पर एक बाँध का निर्माण थ्री गोरजेस डैम के आकार के दोगुने से अधिक (वर्तमान में स्थापित उत्पादन-क्षमता द्वारा मापा गया दुनिया का सबसे बड़ा बाँध) और ब्रह्मपुत्र के बहाव क्षेत्र के रूप में दक्षिण-उत्तर परियोजना के ग्रेट वेस्टर्न रूट का हिस्सा है। एक विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रेस रिपोर्ट थी, जो हिमालय के माध्यम से नदी के प्रवाह को फिर से शुरू करने के लिए १० मील लम्बी सुरंग को विस्फोट करने के लिए परमाणु विस्फोटों का उपयोग करने के बारे में पिछली चर्चाओं को पुनर्जीवित करती थी। ब्रह्मपुत्र मार्ग पर परमाणु विध्वंस में चीन की दिलचस्पी एक कारण है कि व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी) का अनुसमर्थन, किसी भी परमाणु उपकरण को विस्फोट नहीं करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय समझौता, १९९० के दशक के अंत से रुका हुआ है। हाइड्रोलॉजिकल इंजीनियरिंग (कभी-कभी शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट, या पीएनई के रूप में सन्दर्भित) के लिए परमाणु विस्फोटों का उपयोग करने के विकल्प को संरक्षित करने की बीजिंग की इच्छा ने चीन को

एकमात्र देश बना दिया है, जो अनुरोध करता है कि संधि की भाषा में पीएनई अपवाद जोड़ा जाए। इस प्रस्तावित पीएनई अपवाद में अप्रसार के बाद से दक्षिण एशिया में पहले से ही कमजोर अप्रसार व्यवस्था को और कमजोर करने की क्षमता है। (China Taps Tibetan Waters, २००६)

अप्रैल २०१० में, भारतीय विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा के बीजिंग दौरे के दौरान, एक चीनी अधिकारी ने पहली बार ब्रह्मपुत्र पर उस स्थान के नाम की पहचान की, जहाँ प्रारम्भिक बाँध-निर्माण होगा, जो तिब्बत में जांगमु तक होगा। चीनी अधिकारियों ने भारत को आश्वासन दिया कि ये परियोजनाएँ नदी के किनारे होंगी और नीचे की ओर पानी की कोई कमी नहीं होगी। जवाब में; योजनाओं के बारे में अतिरिक्त जानकारी के लिए भारत के बाद के अनुरोधों पर, चीन के विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता होंग लेई ने कहा– ''चीन सीमा पार जल-संसाधनों के विकास के प्रति एक जिम्मेदार रवैया अपनाता है। हम एक ऐसी नीति अपनाते हैं, जो डाउनस्ट्रीम देशों के हित और विकास के साथ-साथ सुरक्षा को पूरा करती है और पूरी तरह से विचार करती है।'' (Will Adopt 'Reasonable' Attitude on Cross-Border River Issues: China, २००६)

जनवरी, २०१३ में प्रख्यापित चीन की पंचवर्षीय ऊर्जा योजना के हिस्से के रूप में बाँध-निर्माण योजना के बारे में और जानकारी जारी की गई थी। इस योजना में यारलुंग जंगबो पर तीन मध्यम आकार के बाँधों के प्रस्ताव शामिल हैं। यह एक ऐसा कदम था, जिसने दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ा दिया। योजना के जारी होने से पहले भारत से परामर्श नहीं किया गया था और केवल चीनी प्रेस से परियोजनाओं के बारे में भारत को पता चला था। इसने भारत सरकार को जोरदार विरोध करने के लिए प्रेरित किया। उसने बीजिंग को याद दिलाया कि भारत ''नदी के पानी के लिए स्थापित उपयोगकर्ता अधिकारों के साथ एक निचला तटवर्ती राज्य'' है। (Krishnan, २०१३)

फिलहाल; यह मुद्दा चीन के साथ भारत के द्विपक्षीय एजेण्डे में सबसे ऊपर है। मार्च, २०१३ में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और चीन के नए नेता शी जिनपिंग के बीच 'ब्रिक्स शिखर सम्मेलन' के दौरान हुई पहली बैठक में, प्रधानमंत्री सिंह ने ब्रह्मपुत्र पर चीनी गतिविधि का अध्ययन करने के लिए एक संयुक्त तंत्र के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उन्होंने बातचीत के बारे में भारतीय मीडिया से बात की– ''मैंने सीमा पार नदी-प्रणालियों के मुद्दे को उठाने का अवसर भी लिया और मैंने चीनी सरकार से एक संयुक्त तंत्र प्रदान करने का अनुरोध किया, ताकि हम निर्माण-गतिविधि के प्रकार का आकलन करने में सक्षम हो सकें। तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में चीन के राष्ट्रपति ने मुझे आश्वासन दिया कि वे अपनी जिम्मेदारियों और निचले तटवर्ती देशों के हितों के प्रति काफी जागरूक हैं। जहाँ तक उस विशिष्ट तंत्र के सम्बन्ध में, जिसका मैंने सुझाव दिया था, उन्होंने कहा कि वे इस पर और गौर करेंगे।'' (India, २०१३) अगले महीने, चीन ने भारत के साथ एक नए जल वार्ता तंत्र के निर्माण को खारिज कर दिया। (PTI, २०१३)

भारतीय जल सुरक्षा विशेषज्ञ ब्रह्म चेलानी ने 'वाशिंगटन पोस्ट' से बात की और बताया (Denyer, २०१३) कि २०१३ की पंचवर्षीय योजना जारी होने के बाद यांग्त्जी से मेकांग तक और अब ब्रह्मपुत्र में चीनी बाँध निर्माण एक अच्छी तरह से स्थापित पैटर्न का पालन करता है। ब्रह्मपुत्र के ऊपरी फैलाव और सहायक नदियों पर १२ छोटे बाँध हैं और नदी पर निर्माणाधीन

एक मध्यम आकार का बाँध है। अगला कदम उन स्थानों पर बड़े बाँध होंगे, जहाँ नदी भारी मात्रा में पानी को करीब लाती है। वे बाँध न केवल जल-प्रवाह को प्रभावित कर सकते हैं, बल्कि पोषक तत्त्वों से भरपूर गाद को भी हटा सकते हैं, जो कृषि को नीचे की ओर पोषण में मदद करता है। बड़े पैमाने पर बाँध-निर्माण के समग्र प्रभावों को अच्छी तरह से समझा जाता है। इनमें डाउनस्ट्रीम उपयोग के लिए उपलब्ध पानी की घटी हुई मात्रा शामिल है और प्राकृतिक बाढ़ चक्रों में व्यवधान-पोषक तत्त्वों से भरपूर तलछट को रोकनाय और रिपेरियन, समुद्री और मत्स्य पारिस्थितिकी और अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है। भविष्य के वर्षों में, जलवायु-परिवर्तन इन प्रभावों को अच्छी तरह से बढ़ा सकता है, विशेष रूप से ब्रह्मपुत्र जैसी ग्लेशियर से प्रभावित नदियों में। उच्च तापमान से ग्लेशियरों के पिघलने की दर में वृद्धि होने की सम्भावना है, जिससे अल्पावधि में नदी का प्रवाह बढ़ जाता है, लेकिन लम्बे समय तक कम हो जाता है। यदि चीन अपने बाँध निर्माण के साथ आगे बढ़ता है, तो परिणामस्वरूप बीजिंग लगातार सिकुड़ती नदी के बड़े प्रतिशत पर नियंत्रण करेगा। यह सम्भावना है कि बीजिंग और नई दिल्ली ब्रह्मपुत्र नदी को लेकर टकराव पर हो सकते हैं।

जैसा कि उल्लेख किया गया है, व्यावहारिक कारणों से पहले पानी का उपयोग करना (डी फैक्टो) और कानूनी कारणों से पहले इसका उपयोग करना (डी ज्यूर) बेहतर है और चीन दोनों करता है। लेकिन बीजिंग ने अपने पड़ोसियों के साथ औपचारिक जल-साझाकरण समझौतों में प्रवेश करने से इन्कार करके अपने पैंतरेबाजी को और अधिक बढ़ाने के लिए चुना है। दरअसल; जब चीन ने २०१० में ब्रह्मपुत्र के लिए अपनी बाँध-निर्माण योजनाओं की घोषणा की, तो उसने यह भी कहा कि चूँकि वह भारत के साथ किसी भी जल-साझाकरण संधि के पक्ष में नहीं था, इसलिए उसकी बाँध-निर्माण योजनाओं पर कोई भी जानकारी साझा करने के लिए कोई औपचारिक दायित्व नहीं था। (ठींज, २०११) भारत और अन्य जगहों के अधिकारियों ने निर्माण और इसके प्रभावों की प्रभावी निगरानी को सक्षम करने के लिए आवश्यक योजना डेटा प्रदान करने के लिए चीन के इन्कार पर बार-बार निराशा व्यक्त की है, लेकिन चीन अब तक इन विरोध-प्रदर्शनों से मुँह फेर रखा है और जब तक बीजिंग ने कोई संधि या समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, तब तक नई दिल्ली को अपनी अपील सुनने के लिए अधिकार-क्षेत्र के साथ एक अंतरराष्ट्रीय कानूनी निकाय के बिना छोड़ दिया गया है। (Christopher, २०१३)

भारतीय रणनीतिकार विशेष रूप से चीन के साथ, बाध्यकारी जल समझौते तक पहुँचने में नई दिल्ली की विफलता से निराश हैं, क्योंकि भारत ने १९६० में स्वेच्छा से अपने डाउनस्ट्रीम पड़ोसी और स्थायी प्रतिद्वन्द्वी पाकिस्तान के साथ जल संधि में प्रवेश किया था। सिंधु जल संधि के प्रावधानों के अनुसार, भारत सिंधु नदी प्रणाली के पानी का ८० प्रतिशत पाकिस्तानी उपयोग के लिए अलग रखता है। इसके अलावा, १९९६ में भारत ने बांग्लादेश के साथ गंगा संधि में प्रवेश किया। यह संधि बांग्लादेश में सीमा-पार प्रवाह के न्यूनतम स्तर की गारण्टी देती है और गंगा के जल को दोनों देशों के बीच लगभग समान रूप से विभाजित करती है। भारत सरकार के पानी के मुद्दों से निपटने के आलोचक पूछते हैं कि नई दिल्ली ने अपने अपस्ट्रीम पड़ोसी चीन से इसी तरह के खुले हाथों के वादे प्राप्त करने का रास्ता खोजे बिना देश के डाउनस्ट्रीम भागीदारों के प्रति उदारता स्वेच्छा से क्यों दिखाया हैं? (Chellaney, २०११) इस प्रकार, हालाँकि अंतरराष्ट्रीय नदी कानून के दायरे और महत्त्व के बढ़ने की गुंजाइश है,

ब्रह्मपुत्र बेसिन के सामने समस्या यह नहीं है कि न्यायसंगत जल-साझाकरण समाधानों पर बातचीत करने के लिए कोई मिसाल मौजूद नहीं है। बांग्लादेश और पाकिस्तान के साथ भारत की अपनी संधियाँ कम-से-कम एक सन्दर्भ-बिन्दु के रूप में काम कर सकती हैं, जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी के बाद से ४०० से अधिक अन्य मीठे पानी-साझाकरण समझौतों और संधियों में से कोई भी हो सकता है। (Oregon State University, २०११) इसके बजाय, संघर्ष को कम करने के लिए द्विपक्षीय या बहुपक्षीय संस्थानों की शक्ति में विश्वास करने वालों के लिए, सच्चाई यह है कि जल-साझाकरण समझौतों में भागीदारी वैकल्पिक बनी हुई है। चीन ने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया और भारत ने अभी तक खुद को चीन को मनाना या मजबूर करने और बाध्यकारी या लागू करने योग्य रियायतें निकालने में सक्षमता नहीं दिखाया है। इस मुद्दे पर बीजिंग का अड़ियल रवैया क्षेत्र में एक नियम और मानदण्ड आधारित अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध प्रणाली के निर्माण में कई बाधाओं में से एक है। जब तक इस तरह की व्यवस्था नहीं की जाती, तब तक चीन बाँध-निर्माण के साथ आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र होगा, जैसा कि वह उचित समझता है, क्योंकि चीन संधि या अंतरराष्ट्रीय कानून से मुक्त है। (Singh, R. N.)

खाद्य सुरक्षा : 'आभासी पानी' की अवधारणा

एक रणनीतिक वस्तु के रूप में पानी अद्वितीय है, क्योंकि पानी के व्यापार के लिए कोई बड़ा विश्व-बाजार नहीं है। यह समझने के लिए कि आज दुनिया भर में पानी कैसे चलता है, आभासी पानी की अवधारणा को पेश करते हुए अन्य सामानों में व्यापार को देखना आवश्यक है। सभी तैयार उत्पादों को उनके उत्पादन के लिए अधिक या कम डिग्री तक पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए, मध्यवर्ती या तैयार उत्पादों का आयात करना, उन्हें उगाने या बनाने के लिए आवश्यक अंतर्निहित पानी के आयात का एक परोक्ष तरीका है। चीन और भारत में, जहाँ कृषि वर्तमान में पानी की खपत का क्रमश: ७० प्रतिशत और ५० प्रतिशत से अधिक है, पानी के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापार योग्य वस्तुएँ खाद्य पदार्थ हैं। (World Food Summit, १९९६)

वर्तमान में, चीन और भारत– दोनों ही खाद्य पदार्थों के शुद्ध निर्यातक हैं। ब्रह्म चेलानी के अनुसार– ''चीन और भारत एक साथ दुनिया के चावल उत्पादन का ५२.८ प्रतिशत, गेहूँ का ३०.१ प्रतिशत, मक्का का २१ प्रतिशत और कुल अनाज का २८.५ प्रतिशत हिस्सा हैं।'' (Chellaney, Water : Asia's New Battleground, २०११) पानी की कमी की अवधारणा, जिसके कारण खाद्य असुरक्षा होती है, सीमा पार जल-विवादों में सबसे कठिन मुद्दों में से एक है और ब्रह्मपुत्र पर संघर्ष कोई अपवाद नहीं है। बाँध और मोड़ के माध्यम से नदी के प्रवाह को नियंत्रित करने की चीन की क्षमता सम्भावित रूप से बीजिंग को अपने सबसे बड़े पड़ोसी को खाद्य-आपूर्ति बन्द करने की क्षमता दे सकती है। इसकी तुलना अपनी सीमा को पार किए बिना दुश्मन के महल की घेराबंदी करने की क्षमता से की गई है। इसका परिणाम यह होता है कि बाँध-निर्माण के साथ आने वाले खाद्य-सुरक्षा के मुद्दे एक फ्लैशपॉइंट और तनाव के स्रोत को जन्म देते हैं, जो एक बार बन जाने के बाद, पूर्ववत करना मुश्किल होगा। यह खाद्य-सुरक्षा को उन ड्राइवरों में से एक बनाता है, जो नई दिल्ली को नदी पर बीजिंग की चाल पर कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करते हैं। (D. Steven, २०१४)

जल-शासन (वॉटर गवर्नेंस) एक साथ घरेलू और अंतरराष्ट्रीय है : सीमा पार

नदियों के साथ, ऊपरी नदी तट राज्य द्वारा किए गए पानी की खपत के विकल्प डाउनरिवर राज्य को प्रभावित करते हैं। हालाँकि, वास्तविक पानी की खपत के फैसले आम तौर पर या तो स्थानीय स्तर पर या केन्द्र सरकार के योजनाकारों द्वारा किए जाते हैं, जो स्थानीय खपत को ध्यान में रखते हैं। (यह चीन की विशाल जल डायवर्जन परियोजनाओं के बारे में भी सच है, जो वर्तमान में पानी की कमी से पीड़ित क्षेत्रों में स्थानीय उपयोग के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए है।) इस कारण से, घरेलू राजनीति अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों की तुलना में एक समान या अधिक भूमिका निभा सकती है, जब यह प्रश्न आता है कि कैसे जल-संसाधनों का, वास्तव में; उपयोग किया जाता है। (Gleick, २०००)

चीन में, राज्य-नियोजित आर्थिक मॉडल में बड़े पैमाने पर जलविद्युत परियोजनाओं में भारी पूँजी निवेश पर ध्यान केन्द्रित करने वाली मानसिकता रही है। निर्णयों को लेने के लिए सीमित स्थानीय जल-संसाधनों को आवण्टित करने या स्थानीय स्तर पर अधिकार देने के बारे में कठिन विकल्प बनाने के बजाय बीजिंग ने दक्षिण से उत्तर जल डायवर्जन परियोजना, जैसे– बड़े, पूँजी गहन समाधान प्रख्यापित किए हैं।

भारतीय हित समूह बड़ी परियोजनाओं को अवरुद्ध करने के लिए चीन में जितना सम्भव है, उससे कहीं अधिक प्रभावी ढंग से विरोध करते हैं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत ने लगभग उतने ही पूँजी-संसाधन नहीं दिए हैं, जितने चीन के पास हाइड्रोलॉजिकल इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए हैं। चीन ने जहाँ २५,८०० से ज्यादा बड़े बाँध बनाए हैं, वहीं भारत ने ब्रह्मपुत्र पर ४३०० बाँध बनाए हैं। (क्वदहीनंद, २०११) हालांकि भारत ने और अधिक जल कार्यों को पूरा करने की इच्छा व्यक्त की है। देश अब तक प्रमुख बाँध या नदी सुधार परियोजनाओं को सफलतापूर्वक शुरू करने में असमर्थ रहा है। हालाँकि यह बड़े पैमाने पर भारतीय जलविद्युत कार्यों का विरोध करने वाले पारिस्थितिक समूहों के लिए एक अच्छी खबर का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन यह भारत को नदी के उपयोग के लिए कानूनी दावा करने या बिजली पैदा करने या नदी के प्रवाह को नियंत्रित करने की अनुमति देने में मदद करने के लिए बहुत कम सहायता करता है। यह देखा जाना बाकी है कि भविष्य में प्रमुख भारतीय ब्रह्मपुत्र परियोजनाएँ सफल होंगी या नहीं, लेकिन जब तक तिब्बत में नदी का स्रोत चीन के अधीन है और स्थानीय तिब्बती बाँध परियोजनाओं का विरोध करते हैं, तब तक पानी को बाँधने और बदलने में महत्त्वपूर्ण निवेश सीमा के चीनी हिस्से में बना रहेगा। (Naik,२०१४)

तिब्बत : एक जल मुद्दे के रूप में– चीन एक ऐसा देश है, जहाँ अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक सीमा पार नदियाँ प्रवाहित होती हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश नदियों का उद्‌गम स्थल चीन के अल्पसंख्यक क्षेत्र में है। विशाल हिमनद और हिमालय की ऊँचाई इस क्षेत्र को ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलज, सालवीन और मेकांग सहित एशिया की अधिकांश महान नदी प्रणालियों का स्रोत बनाती है। ये नदियाँ ११ देशों से होकर गुजरती हैं और लगभग २ अरब लोगों का पोषण करती हैं, लेकिन ये सभी तिब्बत से निकलती हैं। यह तिब्बती पठार को एशिया का जलस्रोत बनाता है और इस पर बीजिंग का नियंत्रण है। (Zhang,२०१८)

अमेरिकी नीति-निर्माताओं के लिए, तिब्बत मुद्दे का महत्त्व तिब्बतियों के अधिकारों पर केन्द्रित है। इसके ऐतिहासिक कारणों में तिब्बत के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार की चिंता, दलाई लामा का करिश्माई नेतृत्व और वाशिंगटन में प्रभावी पैरवी शामिल हैं। चीन के लिए तिब्बत

अपने जल-स्रोतों की वजह से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चीन भारत को भी लाभ उठाने हेतु एक सम्भावित विकल्प हेतु प्रस्तुत करता है। १९५९ में चीन से भागने के बाद से, दलाई लामा ने भारत के धर्मशाला में अपना घर और निर्वासित सरकार को बनाया है। परिणामस्वरूप; चीन की तिब्बती आबादी के साथ भारत के सम्बन्ध मजबूत बने हुए हैं। भारत ने लम्बे समय से तिब्बत पर चीन के नियंत्रण को स्वीकार किया है, लेकिन क्या नई दिल्ली को यह तय करना चाहिए कि पानी के अधिक उपयोग के अधिकारों के लिए बीजिंग के क्रोध को झेलना उचित है? तिब्बत के साथ बीजिंग के व्यवहार और दलाई लामा के साथ सम्बन्ध का मुद्दा आगे बढ़ने का एक सम्भावित मार्ग प्रस्तुत करता है। यह सम्भावित रूप से जोखिम भरा कदम है, क्योंकि इसे निश्चित रूप से; चीन के विरोध के साथ सबसे मजबूत सम्भव शर्तों में पूरा किया जाएगा। हालाँकि, अगर चीन आक्रामक बाँध-निर्माण का कार्य जारी रखता है और पानी तक पहुँच भारत के लिए एक अस्तित्वगत चिंता बन जाती है, तो तिब्बत की स्थिति भारत-चीन सम्बन्धों में एक अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन सकती है। (Sahu, २०२०)

निष्कर्ष– ब्रह्मपुत्र के उपयोग पर विवाद द्वारा प्रस्तुत मुद्दों को देखते हुए, हमें पहला प्रश्न यह पूछना चाहिए कि यह वास्तव में कितना मायने रखता है? क्या यह भारत के लिए एक स्पष्ट और वर्तमान खतरा है या चुनौतीपूर्ण द्विपक्षीय सम्बन्धों में कई घर्षण बिन्दुओं में से एक है? क्या ब्रह्मपुत्र के पानी का उपयोग भारत और चीन को सीमा पर झड़प पर धकेल देगा या चौतरफा युद्ध को भड़काएगा या यह जीवन का एक परेशान करने वाला, लेकिन सहनीय तथ्य है? चीन जिस तरह से अपने बाँध-निर्माण के बारे में जताता है, वह स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करने में बहुत मायने रखता है कि भारत कितनी विकट स्थिति का सामना कर रहा है। एक तरफ, अगर बीजिंग अपने इस वचन पर खरा उतरता है कि सभी ब्रह्मपुत्र परियोजनाएँ छोटी और नदी के बहाव वाली होनी हैं, तो भारत को डरने की कोई जरूरत नहीं है। पर दूसरी ओर, जैसा कि पुरानी कहावत है– 'आशा करना कोई रणनीति नहीं है' और बीजिंग के पास इस बात पर जोर देने का एक ट्रैक रिकॉर्ड है कि सब ठीक हो जाएगा और फिर एक कम आकर्षक वैकल्पिक परिदृश्य का अनावरण करना, जो पहले से ही विकास के अधीन है। चीन की कार्रवाइयों से भारत को कितना खतरा है यह एक ऐसा सवाल है, जिसका जवाब केवल नई दिल्ली ही दे सकती है। लेकिन अगर इतिहास कोई मार्गदर्शक है, तो चीन से बड़ी बाँध परियोजनाओं के साथ आगे बढ़ने की उम्मीद की जा सकती है। यदि फिर भारत किसी बिन्दु पर यह निर्धारित करता है कि ब्रह्मपुत्र के चीनी-नियंत्रित हिस्से पर बाँध और पानी के मोड़ एक खतरा पेश करते हैं, तो सवाल यह बन जाता है– निर्माण को रोकने या परिणामों को कम करने के लिए भारत के पास राष्ट्रीय शक्ति के कौन से साधन हैं? यह प्रश्न एक खतरनाक सुझाव देने के लिए नहीं है कि भारत-चीन जल-युद्ध आसन्न है। जैसा कि नई दिल्ली में चीनी अध्ययन संस्थान के डॉ. जाबिन जैकब ने सटीक रूप से नोट किया– ''चीन और भारत खुद को जिम्मेदार क्षेत्रीय और वैश्विक शक्तियों के रूप में देखते हैं और उनके बीच किसी भी तरह का युद्ध न केवल द्विपक्षीय सम्बन्धों को खराब करेगा, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनकी प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुँचाएगा। फिलहाल; यह कोई ऐसी कीमत नहीं है, जिसे कोई भी पक्ष भुगतान करने को तैयार है। फिर भी; यह तलाशने लायक है कि भारत किन विकल्पों को चुन सकता है।'' (Beeson, २०१८)

भविष्य में; भारत को यह निर्धारित करना चाहिए कि उसे ब्रह्मपुत्र के विषय पर अधिक

मुखरता से कार्य करने की आवश्यकता है। सम्भावित प्रतिक्रियाओं में कूटनीति, अंतरराष्ट्रीय कानून, आर्थिक दबाव, गुप्त कार्रवाई और अंततः सैन्य बल सहित अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध– टूलबॉक्स में सभी उपकरण शामिल हैं। अगर भारत इस मुद्दे को और सख्ती से उठाने का फैसला करता है, तो जारी कूटनीति पहली प्रतिक्रिया होगी। दुर्भाग्य से, प्रभावी जल-संघर्ष समाधान-तंत्र की तलाश में भारत-चीन सम्बन्धों का इतिहास आशावाद का कारण नहीं बनता है। स्वतंत्रता के बाद के तीन संघर्षों ने– १९६२ के चीन-भारत युद्ध तथा १९६७ की चोल घटना, १९८७ की चीन-भारतीय झड़प ने अविश्वास की विरासत छोड़ी है। चीन और भारत अभी भी अरुणाचल प्रदेश और अक्साई चिन के पारस्परिक रूप से विवादित क्षेत्रों पर एक समझौते पर नहीं पहुँचे हैं। सीमा के दोनों किनारों का सैन्यीकरण किया गया है और भारत पाकिस्तान के साथ चीन के घनिष्ठ सम्बन्धों के बारे में चिंतित है। विश्वास-निर्माण यात्राओं और वरिष्ठ नेताओं के बयानों ने हाल के वर्षों में सम्बन्धों को मधुर बनाने में मदद की है, लेकिन दोनों देशों के पास न तो विश्वास का एक ऐतिहासिक भण्डार है और न ही पानी के मुद्दों को सम्बोधित करने के लिए एक साझा ढाँचा है। इन कारणों से, यदि भारत सरकार यह निर्णय लेती है कि चीन द्वारा पानी का उपयोग एक खतरा प्रस्तुत करता है, जिससे और अधिक मजबूती से निपटा जाना चाहिए, तो आज की राजनयिक संरचना इस मुद्दे को सम्बोधित करने के कार्य के बराबर नहीं हो सकती है। जब तक चीन जल-बँटवारा समझौतों में प्रवेश करने से इन्कार करता है, तब तक एक अंतरराष्ट्रीय कानूनी निकाय या संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतर सरकारी संगठन के लिए अपील एक बेकार अभ्यास रहेगा। ब्रह्मपुत्र दुनिया की सबसे बड़ी नदी नहीं है, लेकिन इसका पानी दो सबसे अधिक आबादी वाले देशों द्वारा साझा किया जाता है। इसलिए वहाँ क्या होता है, यह बहुत मायने रखता है। नदी का प्रबंधन क्षेत्रीय अखण्डता, खाद्य-सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय कानून, घरेलू और विदेश नीति के प्रतिच्छेदन, विशाल आबादी और महान आकांक्षाओं वाले पड़ोसी राज्यों की असीमित शक्ति सहित कई महत्त्वपूर्ण और जटिल मुद्दों को छूता है। जिस तरह से नदी-विवाद का प्रबंधन या कुप्रबंधन किया जाता है, हमें चीन-भारत सम्बन्धों की दिशा के बारे में बहुत कुछ बताएगा कि क्या जल-युद्ध इक्कीसवीं सदी की प्रमुख अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों की चुनौतियों में से एक के रूप में उभरेंगे? (Christopher, २०१३)

सन्दर्भ-सूची

- Beeson, M. (2018). Geoeconomics with Chinese characteristics: the BRI and China's evolving grand strategy. *Economic and Political Studies*, *6*(3), 240-256.
- Briscoe, J. (2005). India's water economy, bracing for a turbulent future.

  Chellaney, B. (2013, February 7). China's hydro-hegemony. The New York Times. Retrieved from http://www.nytimes.com/2013/02/08/opinion/global/chinas-hydrohegemony.html — (2011). Water: Asia's new battleground. Washington, DC: Georgetown University Press.
- Chellaney, B. (2013). Water, Peace, and War: Confronting the Global Water Crisis. Plymouth, United Kingdom: Rowman & Littlefield.
- Christopher, M. (2013). Water Wars: The Brahmaputra River and Sino-Indian Relations.

- Gleick, P. H. (2000). A look at twenty-first century water resources development. *Water international*, *25*(1), 127-138.
- Krishnan, R., Sabin, T. P., Ayantika, D. C., Kitoh, A., Sugi, M., Murakami, H., ... & Rajendran, K. (2013). Will the South Asian monsoon overturning circulation stabilize any further?. *Climate dynamics*, *40*(1), 187-211.
- Liu, C., & Zheng, H. (2002). South-to-north water transfer schemes for China. *International Journal of Water Resources Development*, *18*(3), 453-471.
- Naik, M. (2014). Transboundary implications of damming river brahmaputra and response of indian government.
- Richardson, M. (2013). China and the potential for conflict over water among Eurasian states. *Water Issues in Southeast Asia. Present Trends and Future Directions; Onn, LP, Ed*, 27-55.
- Sahu, A. K. (2020). A framework for the analysis of the China-India water conflict and South Asia. *Re-imagining Border Studies in South Asia*, 89.
- Sharma, R., Nguyen, T. T., & Grote, U. (2018). Changing consumption patterns—Drivers and the environmental impact. *Sustainability*, *10*(11), 4190.
- Singh, L. G. R. CHINA'S WATER DIVERSION PROJECTS ANALYSIS & IMPACT.
- Singh, V. P., Sharma, N., & Ojha, C. S. P. (2004). The Brahmaputra Basin Water Resources. Dordrecht; Boston: Kluwer Academic Publishers.
- Steven, D., O'Brien, E., & Jones, B. D. (Eds.). (2014). *The new politics of strategic resources: Energy and Food Security Chaòenges in the 21st century*. Brookings Institution Press.
- "Water Wars?" (2013, April 25) [video]. The Stream, Al Jazeera, April 25, 2013, http://stream.aljazeera.com/story/201304250019- 0022703
- Zhang, H., & Li, M. (2018). A process-based framework to examine China's approach to transboundary water management. *International Journal of Water Resources Development*, *34*(5), 705-731.

●

पिण्डदान : अनुष्ठान : मनो-सामाजिक परिप्रेक्ष्य

पीयूष देउरकर*, डॉ. नरसिंह कुमार, डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह*****

सारांशिका : पिण्डदान-अनुष्ठान एक विशेष आध्यात्मिक और धार्मिक अनुष्ठान के रूप में भारतीय संस्कृति में अपनी पहचान बनाये हुए है। प्रत्येक वर्ष भारत से ही नहीं, अपितु विश्व के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में तीर्थयात्री गया (बिहार, भारत) में आकर अपने पूर्वजों की आत्मा की मोक्ष-प्राप्ति के लिए पिण्डदान-अनुष्ठान को सम्पन्न करते हैं। बीते वर्षों में भारतीय धार्मिक संस्कृति पर काफी मात्रा में शोध-कार्य सम्पन्न किये गये हैं, किन्तु पिण्डदान-अनुष्ठान पर सामाजिक दृष्टिकोण से बहुत ही सीमित शोध उपलब्ध हैं। धार्मिक परिप्रेक्ष्य से पिण्डदान-अनुष्ठान की सन्तोषजनक व्याख्या उपलब्ध है, हालाँकि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पिण्डदान-अनुष्ठान पर व्यवस्थित अध्ययन अपर्याप्त है। अतएव इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पिण्डदान-अनुष्ठान के मनो-सामाजिक पक्ष पर प्रकाश डालना है। पिण्डदान अनुष्ठान की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार, पिण्डदानकर्ता अपने पूर्व निर्धारित भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक विचारों और विश्वासों की पूर्ति करने के लिए अनुष्ठान सम्पन्न करता है। शोधकर्ता यह आशा करते हैं कि इस शोध-आलेख के माध्यम से मनोविज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में, जैसे– समाजशास्त्र, धार्मिक अध्ययन, मानव विज्ञान, दर्शन आदि विषयों में पिण्डदान-अनुष्ठान से सम्बन्धित अध्ययन में होने वाले शोध-कार्यों में सहायता मिलेगी।

मुख्य शब्द– अनुष्ठान, पिण्डदान, समाज, मनोविज्ञान, धार्मिकता।

परिचय– अनुष्ठान एवं कर्मकाण्ड मानव-जीवन के लिए एक स्वाभाविक क्रिया के रूप में मानी जाती है। यह व्यक्तिगत और सांस्कृतिक पहचान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनुष्ठान भावनाओं को आकार देने के साथ ही; मानव-जीवन की प्रमुख घटनाओं के साथ, मानसिक एवं आत्मिक जुड़ाव करने में मदद करते हैं। सामान्यत: पारिवारिक अनुष्ठानों को अर्थ देने के लिए भी उन्हें धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मनाया जाता है। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि को गहरा करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान को आमतौर पर अपरिहार्य माना गया है। अनुष्ठानों की पुनरावृत्ति उपासकों के जीवन में धार्मिक मूल्यों और दृष्टिकोणों को स्थापित करती है। अनुष्ठान उन चीजों को भी व्यक्त करता है, जो एक विश्वास समुदाय को एक साथ बाँधते हैं और अनुष्ठान के माध्यम से व्यक्ति और समुदाय– दोनों अपनी सबसे बुनियादी धार्मिक जरूरतों, मूल्यों और आकांक्षाओं को प्रकट करते हैं। अनुष्ठान को परिभाषित करते हुए बोकॉक (१९७४) लिखते हैं कि– ''अनुष्ठान अर्थ को व्यक्त करने और स्पष्ट करने के लिए सामाजिक सन्दर्भ में शारीरिक गति और हाव-भाव का प्रतीकात्मक उपयोग है।'' यह वे औपचारिक व्यवहार होते हैं, जो रोजमर्रा की जिन्दगी से अलग रखे जाते हैं। प्राय: यह समुदायों को अनुयोजन के माध्यम से

* प्रथम एवं सम्बन्धित लेखक, शोधार्थी - मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार (भारत)

** सह-लेखक, सह-प्राध्यापक– मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश (भारत)

*** सह-लेखक, सह-प्राध्यापक– मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार (भारत)

अपने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का अन्वेषण करने की अनुमति प्रदान करते हैं। प्राय: विश्व के सभी धर्मों में जीवन-चक्र को महत्त्व देने वाली प्रमुख घटनाओं को अनुष्ठान के माध्यम से चिह्नित किया जाता है। बहुत सी घटनाएँ, जो प्राकृतिक चक्र से जुड़ी हो या न भी हों, लेकिन उन्हें धार्मिक विश्वासों से जुड़े वार्षिक अनुष्ठानों के माध्यम से मनाया जाता है। ऐसे ही; मृत्यु उपरान्त मनाये जाने वाले अनुष्ठान के रूप में भारतीय संस्कृति में पिण्डदान-अनुष्ठान को विशेष स्थान प्राप्त है।

धार्मिक अनुष्ठान दोहराव और समान प्रतिमान वाला व्यवहार होता है, जो कि किसी भी धार्मिक संस्था, विश्वास या रिवाज द्वारा निर्धारित और नियंत्रित होता है। (जॉर्ज एवं पार्क, २०१३) अक्सर देवता या अलौकिक शक्ति के साथ जुड़ाव या संवाद करने के उद्देश्य से अनुष्ठान को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से पूर्व निर्धारित समय के दौरान किया जाता है। उदाहरणार्थ, दिन के विशिष्ट समय पर प्रार्थना करना, मृत्यु के बाद शोक-अनुष्ठान, श्राद्धकर्म-अनुष्ठान और पिण्डदान-अनुष्ठान करना आदि। अनुष्ठान के उद्भव के रूप में यह कहा जाता है कि शुरूआत में देवताओं ने इसे किया था। फिर; उसे देवताओं के रचनात्मक कार्य की पुनरावृत्ति के रूप में देखा जाने लगा और इंसानों द्वारा उनके अनुकरण के रूप में किया जाने लगा।

अनुष्ठान के कार्य एवं विशेषताएँ– दुर्खीम (१९९९) के अनुसार, अनुष्ठान का सन्दर्भ एवं विषय-वस्तु एक समाज की विश्वास-प्रणाली होती है, जो पवित्र और अपवित्र के दो क्षेत्रों में हर चीज के वर्गीकरण द्वारा गठित होती है। इस वर्गीकरण को धर्म की एक सार्वभौमिक विशेषता के रूप में लिया जाता है। विश्वास-प्रणाली, मिथक और इसी तरह, पवित्र क्षेत्र की प्रकृति को अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है, जिसमें अनुष्ठान पवित्र और अपवित्र के सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले समाज में व्यक्ति का निर्धारित आचरण बन जाता है। पवित्र और अपवित्र विचार और क्रिया के द्वन्द्ववाद से परे अनुष्ठान-क्रिया को निर्दिष्ट करने के लिए आम तौर पर तीन और विशेषताओं का उपयोग किया जाता है। पहली विशेषता पवित्र के सम्बन्ध में सम्मान, भय, मोह या भय की भावना है। अनुष्ठान की दूसरी विशेषता में एक विश्वास-प्रणाली पर इसकी निर्भरता शामिल है, जिसे आमतौर पर मिथक की भाषा में व्यक्त किया जाता है। कर्मकाण्ड की तीसरी विशेषता यह है कि यह अपने सन्दर्भ के सम्बन्ध में प्रतीकात्मक है। इन विशेषताओं पर सहमति अनुष्ठान के कार्यों के अधिकांश विवरणों में पाई जा सकती है। सामान्यत: कर्मकाण्ड और आस्था के बीच सम्बन्ध देखा जा सकता है। अनुष्ठान का कार्य उसके सन्दर्भ पर निर्भर करता है। अनुष्ठान को अक्सर वास्तविक सामाजिक सम्बन्धों, स्थिति या समाज में व्यक्तियों की भूमिका की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में वर्णित किया जाता है। अनुष्ठान को एक उत्कृष्ट, संख्यात्मक (आध्यात्मिक) वास्तविकता और एक समुदाय के अन्तिम मूल्यों के सन्दर्भ में भी वर्णित किया गया है।

पिण्डदान एक अनुष्ठान कैसे?– पिण्डदान प्रारम्भ से ही पौराणिक इतिहास का हिस्सा रहा है। इसे भारतीय संस्कृति में एक प्राचीन पारम्परिक अनुष्ठान के रूप में मनाया जाता रहा है, जिसमें प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में हिन्दू और अन्य धार्मिक तीर्थयात्रियों द्वारा भारत एवं विश्व के विभिन्न भागों से गया (बिहार, भारत) में आकर एक निश्चित समयावधि में पिण्डदान-अनुष्ठान किया जाता है। (विद्यार्थी, १९६१; सिंह, २०११) भारत में मुख्य रूप से हिन्दू

श्रद्धालुओं का विश्वास है कि गया एक पवित्र स्थान है। यहाँ आकर पिण्डदान-अनुष्ठान करने से पितरों की आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह देखा जाता है कि अन्य हिन्दू परम्पराओं में पूर्वजों के लिए कोई मुख्य स्थान नहीं दिया जाता है हालाँकि गया (बिहार, भारत) में पूर्वजों के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण एकल पवित्र प्रदर्शन होता है। पिण्डदान-अनुष्ठान को गया श्राद्ध-अनुष्ठान के नाम से भी जाना जाता है। पौराणिक इतिहास के अनुसार, गया स्थल का नाम दानव के राजा, 'गयासुर' के नाम से पड़ा है। ऐसी मान्यता है कि गया में ही दिवंगत पिता और पूर्वजों को श्रद्धांजलि देने से उनकी आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है। पिण्डदान-अनुष्ठान एक घरेलू या स्थानीय पवित्र स्थल के बजाय सार्वजनिक पवित्र भूमि पर किया जाता है और इसकी सफलता से पूर्वजों को मुक्ति मिलती है। साथ-ही-साथ; जीवित लोगों को खुशी और संतोष का अनुभव होता है। (विद्यार्थी, १९६१)

भारतीय परम्परा में पिण्डदान के शाब्दिक अर्थ के रूप को पूर्वजों का पिण्ड या एक तरह के चावल के गोले को अर्पित करने के रूप में लिया जाता है। दान को मोक्ष का मार्ग भी माना जाता है। जुंगियन विचार के अनुसार, तीर्थयात्रा अनुभवों की एक मानस वास्तविकता है। (क्लिफ्ट एण्ड क्लिफ्ट, १९९६) हिन्दू जीवन-चक्र को चार आयाम– धर्म (नैतिक कानून), अर्थ (भौतिक उपलब्धि), काम (जीवन के साथ आनन्द) और मोक्ष (मुक्ति) में विमुख किया गया है। इन्हें सामूहिक रूप से 'पुरुषार्थ' (मानव-अनुसरण का उद्देश्य) के रूप में जाना जाता है। पिण्डदान तीर्थयात्री मुख्य रूप से पैतृक रीति-रिवाज को निर्धारित पवित्र समय पर करने के लिए गया आते हैं। हालाँकि, हिन्दू कैलेण्डर में अश्विन (सितम्बर-अक्टूबर) महीने के पखवाड़ा को सबसे शुभ अवधि के रूप में उल्लिखित किया गया हैं हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार, गया में पिण्डदान उन पैतृक आत्माओं की मदद करता है, जिन्हें अभी तक स्वर्ग में ठीक से स्थान की प्राप्ति नहीं हुई है और उनकी आत्माएँ भटक रही हैं। इसलिए मान्यता है कि पिण्डदान करने से उन्हें मुक्ति मिल जाती है।

पिण्डदान-अनुष्ठान का महत्त्व– गया (बिहार, भारत) वह स्थान है, जिसे देवताओं और पूर्वजों की पूजा करने के लिए उच्च धार्मिक महत्त्व के रूप में जाना जाता है। यहाँ पूजा सहित पिण्डदान और वार्षिक श्राद्ध अनुष्ठान किया जा सकता है। हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, तो उसका नश्वर भौतिक शरीर सूक्ष्म शरीर में बदल जाता है और वह आत्मा रूपी स्थूल शरीर प्रेतलोक को चली जाती है। यह माना जाता है कि यदि मृतक के परिवार के सदस्यों द्वारा इन पवित्र अनुष्ठानों को किया जाता है, तो पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो सकता है और आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है। पिण्डदान-अनुष्ठान को एक अनिवार्य अनुष्ठान माना जाता है, जिसे मृत्यु के पश्चात् किया जाता है, जिससे दिवंगत आत्मा को परम राहत मिलती है और वह मोक्ष प्राप्त करती है।

समाज के बदलते स्वरूप में पिण्डदान-अनुष्ठान– भारतीय समाज की पृष्ठभूमि में दिन-प्रतिदिन बढ़ती आधुनिकता, बाजारवाद, शहरीकरण एवं वैश्वीकरण की व्यापकता के कारण समाज के स्वरूप में भी बदलाव को देखा जा सकता है। वर्तमान में समाज एवं व्यक्तियों के जीवन जीने के तौर-तरीके में परिवर्तन में कई मायने में पूरब का ज्ञान पश्चिम के लोगों की जीवनशैली को बदल रहा है। (गाथिया, १९४६) भारतीय समाज में अनुष्ठानों का अपना एक अलग स्थान है। वे मनमाने नहीं हैं। वे एक समूह की विश्वास-प्रणाली के भीतर से आते हैं।

प्रत्येक प्रतीकात्मक सन्देश, जो किसी दिए गए अनुष्ठान को भेजता है, उसकी अपनी संज्ञानात्मकता में सांस्कृतिक विश्वास और मूल्य अंतर्निहित होते हैं। अक्सर ये गहरे विश्वास, जो अनुष्ठान व्यक्त करते हैं, प्राय: वे मान्यताएँ होती हैं, जो होशपूर्वक के बजाय अनजाने में या दबाव से आयोजित की जाती हैं। अनुष्ठान का प्राथमिक उद्देश्य प्रतीकात्मक रूप से अधिनियमित करना है और इसी तरह समूह के लोगों के साथ उनकी व्यक्तिगत मान्यताओं और मूल्यों को संरेखित करने के साथ ही; समूह की विश्वास-प्रणाली को अपने प्रतिभागियों के मानस में संचारित करना है, क्योंकि संस्कृति की विश्वास-प्रणाली अनुष्ठान के माध्यम से लागू की जाती है और अनुष्ठान का विश्लेषण सीधे उस विश्वास-प्रणाली की गहन समझ की ओर ले जाता है। इस कारण से, विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन करने वाले मानवविज्ञानी, समाजशास्त्री एवं मनोविज्ञानी अक्सर उस संस्कृति के अनुष्ठानों एवं मूल्यों की व्याख्या करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

पिण्डदान-अनुष्ठान के मनो-सामाजिक पक्ष– अनुष्ठान प्राय: वह व्यवहार होते हैं, जिसकी पुनरावृत्ति बारम्बार होती है और यह प्रक्रिया समय एवं पीढ़ियों के साथ चलते रहते हैं। इस तरह, व्यक्तियों में धार्मिक व्यवहार एवं विश्वास-प्रणाली को सुदृढ़ बनाया जाता है। आज के आधुनिक समाज में, व्यक्ति अपनी भौतिक जरूरतों की पूर्ति एवं आधुनिकता की दौड़ में अनुष्ठानों को करने की आवश्यकता महसूस नहीं करता है। यद्यपि अभी भी अनुष्ठान व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए आवश्यक है। अनुष्ठान व्यक्ति को यह एहसास करवाता है कि वह कौन है, क्यों है और उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? व्यक्तियों में किसी प्रकार की हानि, संक्रमण, अकेलापन और वियोग के समय में अनुष्ठान परिवर्तनकारी शक्ति प्रदान करते हैं। यह प्राय: माना जाता है कि अनुष्ठान व्यक्ति के आध्यात्मिक विश्वास-प्रणाली में निहित होते हैं। कर्मकाण्डों की जड़ें धर्म से अविभाज्य रूप से जुड़ी होती हैं और वह समुदाय में व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित एवं संचालित करने का कार्य करती हैं। इन्हीं कर्मकाण्डों के माध्यम से व्यक्ति समूह के लिए अपनेपन की भावना का विकास करता है। सामान्यत: अनुष्ठान इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि व्यक्ति जिस मार्ग का अनुसरण कर रहा है, वह कैसा है?

पिण्डदान-अनुष्ठान को एक तरह के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुष्ठान के रूप में भी देखा जा सकता है, जिससे मृत् व्यक्ति के साथ-साथ अनुष्ठान का लाभ उस परिवार एवं समुदाय को भी मिलता है, जो इस अनुष्ठान को सम्पन्न, करवा रहा होता है। यह अनुष्ठान एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक घटना भी है, जिसमें व्यक्ति द्वारा अपने पूवर्जों की मृत्यु होने पर उनके नाम पर, उनकी दिवंगत आत्मा के लिए, पिण्डदान करवाया जाता है और उनके आह्वान के साथ ही पूजा में पिण्डा प्रवाहित करने का भी रिवाज होता है। अगर हम इसके सार के रूप में प्रतिफल की बात करें, तो हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार, मृत् व्यक्ति की आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है और उस व्यक्ति से जुड़े अन्य व्यक्तियों को आत्मिक शान्ति एवं पितृऋण से मुक्ति की भावना का अनुभव होता है। (सिंह, २०१९) और अन्य जीव-जन्तु, जैसे– पशुओं, पक्षियों, चींटियों एवं अन्य जीवों को भोजन की प्राप्ति होती है। आर्थिक रूप से पिण्डदान-अनुष्ठान से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े व्यक्तियों को रोजगार की आपूर्ति सुनिश्चित होती है। इस तरह, यह अनुष्ठान अपने में अनेक आर्थिक एवं सामाजिक पक्ष को सम्मिलित किए हुए है।

पिण्डदान के मनो-सामाजिक पक्ष की बात की जाए, तो कहा जा सकता है कि समाज में कुछेक समूह वह भी होंगे, जो किसी प्रत्यक्ष या परोक्ष सामाजिक या पारिवारिक दबाव, कलंक, सामाजिक अनुरूपता, अनुनय, सामाजिक वांछनीयता, अनुपालन, सामाजिक अनुभूति, प्रतिष्ठा या मनोवैज्ञानिक रूप से तिरस्कृत होने के भय से भी अनुष्ठान को सम्पन्न करते होंगे।

सामाजिक भागीदारी के रूप में पिण्डदान-अनुष्ठान– अनुष्ठान एक सांस्कृतिक विश्वास या मूल्य का एक तरीका, दोहराव और प्रतीकात्मक अधिनियम है। अनुष्ठान आमतौर पर सामाजिक एकजुटता को बढ़ाने के लिए काम करते हैं, क्योंकि ज्यादातर मामलों में उनका प्राथमिक उद्देश्य व्यक्ति की विश्वास-प्रणाली को समूह के साथ संरेखित करना है। जितना अधिक एक विश्वास-प्रणाली को अनुष्ठान के माध्यम से लागू किया जाता है, वह उतनी ही मजबूत होती जाती है। यह जितना कम लागू होती है, उतना ही कमजोर होती जाती है। इस कारण से, धार्मिक नेता अक्सर अपने सदस्यों को नियमित रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं – उदाहरण के लिए, प्रत्येक रविवार को चर्च आना और प्रत्येक बुधवार की रात प्रार्थना-समूह में आना। यदि लोग जाना बन्द कर देते हैं, अर्थात् यदि वे धर्म के अनुष्ठानों को लागू करना बन्द कर देते हैं, तो समय के साथ उनके लिए धर्म का महत्त्व कम होता जाएगा। अनुष्ठानों को, आमतौर पर धार्मिक माना जाता है, लेकिन वे धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं और मूल्यों को धार्मिक रूप से प्रभावी रूप से लागू कर सकते हैं। एक आम गलत धारणा यह मानती है कि अनुष्ठान एक ऐसी चीज है, जो केवल 'आदिम' संस्कृतियों में चलती है, जबकि तथाकथित आधुनिक विकसित समाजों में, वैज्ञानिक ज्ञान से लाभान्वित होने वाले नागरिक तर्कसंगत, व्युत्पन्न जीवन जीते हैं। लेकिन तथ्य कुछ और ही सुझाते हैं। सभी संस्कृतियों और पूरे इतिहास में, सभी मानव-संस्कृतियाँ शारीरिक और मनोवैज्ञानिक साधनों के रूप में कर्मकाण्डों का उपयोग करती हैं। प्राकृतिक, सामाजिक और ब्रह्माण्डीय क्षेत्रों के रहस्य और अप्रत्याशितता से निपटने के लिए अनुष्ठान की सांस्कृतिक भूमिकाएँ असंख्य हैं, जैसे– उनमें विश्वास पैदा करना, धार्मिक जीवन-शक्ति बनाए रखना, आर्थिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना, साहस को बढ़ाना, उपचार को प्रभावित करना और व्यक्तिगत चेतना को बदलना। अक्सर इसे समूह-मूल्यों के साथ संरेखण में लाने के साथ-साथ सामाजिक संरचना में व्यक्तिगत और समूह-निवेश को तेज करना शामिल है।

पिण्डदान-अनुष्ठान एवं मनो-सामाजिक कारक– भारतीय समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार के साथ-साथ समाज की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, क्योंकि पूर्व के देशों में सामूहिक समाज की अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति से पहले समाज आता है। सामान्यत: व्यक्तिगत समाज की तुलना में यहाँ पर व्यक्ति समाज के कल्याण और विकास पर अधिक जोर देता है। भारतीय संस्कृति को धार्मिक संस्कृति के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ 'सर्व धर्म समभाव' की अवधारणा है, अत: सभी धर्मो को समान रूप से देखा जाता है। अगर हम तीज-त्योहार की बात करें, तो मुख्य रूप से हिन्दू धर्म में त्योहारों का अत्यधिक प्रचलन है। प्रत्येक माह में कोई-न-कोई त्योहार आ ही जाता है। इसी वजह से, व्यक्ति के व्यवहार में भी प्राय: धार्मिकता की झलक देखने को मिलती है और साथ ही; यह सामूहिकता व्यवहार एवं सहभागिता को भी बढ़ावा देता है। हिन्दू धर्म में पिण्डदान-अनुष्ठान को मुख्य रूप से व्यक्ति के दायित्व एवं ऋण के रूप में देखा जाता है। हालाँकि कुछ अन्य कारक भी हैं, जो पिण्डदान-अनुष्ठान एवं व्यक्ति के मनोभाव को भी प्रभावित करते हैं, ताकि वह इसी अनुष्ठान को पूर्ण कर

सके। कुछ प्रमुख मनो-सामाजिक कारक निम्नलिखित हैं–

अभिवृत्ति और व्यवहार (Attitude and Behavior)– अभिवृत्ति का सामान्य अर्थ किसी व्यक्ति, वस्तु, समूह, विचार या कुछ और, जिसके बारे में भाव आ सके, के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक भाव की उपस्थिति है। अभिवृत्तियों को सामान्यत: सीखा जाता है। किसी घटना की पुनरावृत्ति होने के कारण उस घटना का प्रभाव मस्तिष्क में स्थायी हो जाता है, जो कि व्यक्ति या समूह के व्यवहार को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। (स्मिथ एवं टेरी, २०१२) ऐसे ही; धार्मिक अनुष्ठान एवं पिण्डदान-अनुष्ठान के विषय में भी कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति के परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है, तो उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा यह धारणा बना ली जाती है कि अमुक व्यक्ति का पिण्डदान-अनुष्ठान किया जाना होगा या नहीं। और जब कभी पितृ-तर्पण या इससे सम्बन्धित बात की जाती है, तब यह अवधारणा तीव्र होकर अभिवृत्ति में बदलने लगती है और जब बाह्य वातावरण से किसी भी प्रकार का अनुकूल वातावरण मिलता है, तो यह व्यवहार के रूप में स्पष्टत: दिखाई देता है।

सामाजिक सुविधा (Social Facilitation)– यह एक जटिल मनोवैज्ञानिक अवधारणा है, जो कि किसी कार्य के निष्पादन पर अन्य व्यक्तियों या समूह की उपस्थिति में बेहतर होने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। (ट्रिपलेट, १८९८) इस अवधारणा का बुनियादी रूप में पहली बार १८९८ में शोधकर्ता नॉर्मन ट्रिपलेट द्वारा अध्ययन किया गया था। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले एक साइकिलिंग एसोसिएशन के रिकॉर्ड को देखकर साइकिल रेसिंग का अध्ययन किया और उसके बाद फिर मछली पकड़ने की रील की प्रतियोगिता में बच्चों के प्रदर्शन का अध्ययन किया। परिणामस्वरूप; उन्होंने बताया कि जो व्यक्ति तुलना या प्रतिस्पर्धा के विचार से कार्य कर रहे थे, उन्होंने ज्यादा बेहतर निष्पादन किया, बजाय उनके, जो अकेले कार्य कर रहे थे। (कुन्सिक, २०२१; ट्रिपलेट, १८९८) इस सिद्धान्त का मूल उद्देश्य यह देखना था कि समूह में या दूसरे लोगों की उपस्थिति में निष्पादन में क्या अन्तर पड़ता है? अगर हम इस सिद्धान्त को वर्तमान परिस्थिति में, भारत के परिप्रेक्ष्य में, व्यक्ति में दान देने, धार्मिकता एवं अभियोगात्मक व्यवहार को देखें, तो यह अनुमान लगा सकते हैं कि यह सामाजिक सुविधा की ही तरह दिखाई देता है। परन्तु; अगर हम पिण्डदान-अनुष्ठान के बारे में देखें, तो यह कहा जा सकता है कि प्राय: पिण्डदानकर्ता अकेले आने की बजाय समूह में आने को वरीयता देते हैं एवं उनका व्यवहार अन्य व्यक्तियों को पिण्डदान करने के लिए प्रेरित करता है, जिसे सामान्यत: समूह-प्रभाव या अनुपालन-व्यवहार के रूप में भी माना जा सकता है, जो कि एक तरह का साम्प्रदायिक व्यवहार होता है।

निष्कर्ष– निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पिण्डदान-अनुष्ठान एक प्रकार का मनो-सामाजिक अनुष्ठान है, जिसमें पिण्डदानकर्ता अपने पूर्व निर्धारित भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक विचारों और विश्वासों की पूर्ति करता है, साथ ही; इस अनुष्ठान में व्यक्ति के धार्मिक, आध्यात्मिक एवं विश्वास-प्रणाली का भी काफी हद तक योगदान होता है। पिण्डदान-अनुष्ठान को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करने वाले कारकों में मुख्य रूप से महामारी, प्रवास, निजीकरण, बाजारवाद, प्रमुख विश्व-धर्मों के बढ़ते प्रभाव और वैश्वीकरण के कारण से इन प्रथाओं पर विशेष रूप से असर पड़ा है।

पिण्डदान-अनुष्ठान अपने आप में हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता की अमिट छाप समेटे हुए

है। इसे केवल व्यक्ति के धार्मिक विश्वास के रूप में न देखकर सामाजिक दायित्व के रूप में भी देखने की आवश्यकता है, जिससे बिखरती हुई भारतीय संस्कृति के क्षय को रोका जा सके और साथ ही; अनुष्ठानों को मिथकीय अर्थ में न देखकर वैज्ञानिकता के रूप में देखा जाना चाहिए। जैसा कि पार्सन्स ने कहा है, 'पूर्व-वैज्ञानिक गलत ज्ञान' से 'पूरी तरह से अलग चरित्र' के रूप में अनुष्ठान को देखा जाता है, जबकि अनुष्ठान सबसे स्पष्ट रूप से एक प्रकार के छद्मविज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि विज्ञान के विकल्प या एक उपक्रम के रूप में देखा जा सकता है। (पार्सन्स, १९४९; बीट्टी, १९६६)

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. Beattie, J. (1966). Ritual and Social Change. Man, 1(1), 60-74. https://doi.org/10.2307/2795901 In Parsons, T. (1949). The structure of social action. Glencoe, Ill.: The Free Press.

२. Bocock, R. (1974). Ritual in industrial society: a social analysis of ritualism in modern England. London: George Aòen & Unwin

३. Clift, J. D., And Clift, W. B. (1996). The archetype of pilgrimage. Outer action with inner meaning. Paulist press, marwah, nj.

४. Cuncic, A. (2021, August 27). What Is Social Facilitation? Verywellmind.Com. https://www.verywellmind.com/an-overview-of-social-facilitation-4800890

५. Durkheim, E. (1999). The elementary forms of the religious life, trans. Qu Dong and Ji Zhe. Shanghai: Shanghai People's Publishing House. In Wu, Q. (2018). The structure of ritual and the epistemological approach to ritual study. The Journal of Chinese Sociology, 5(1), 1-19.

६. George L. S., Park C. L. (2013). Religious Ritual. In: Gellman M.D., Turner J.R. (eds) Encyclopedia of Behavioral Medicine. Springer, New York, NY. https://doi.org/10.1007/978-1-4419-1005-9_1592

७. Singh, R. P. B. (2011). Ritualscapes of Gaya, the City of Ancestors; in, Singh, Rana P.B. (ed.) Holy Places and Pilgrimages: Essays on India. Planet Earth & Cultural Understanding Series, Pub. 8. Shubhi Publications, New Delhi: pp. 207-238.

८. Smith, J. R., & Terry, D. J. (2012). Attitudes and behavior: Revisiting LaPiere's hospitality study.

९. Triplett, N. (1898). The Dynamogenic Factors in Pacemaking and Competition. The American Journal of Psychology, 9(4), 507. https://doi.org/10.2307/1412188

१०. Vidyarthi, L. P. (1961)– The sacred complex in Hindu Gaya. Concept publishing company.

११. जोसेफ गाथिया– मीडिया और सामाजिक बदलाव : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भूमण्डलीकरण एवं मानवाधिकार, कॉन्सेप्ट पब्लिकेशन कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. ३-१७ (१९४६)

१२. राधानंद सिंह, विष्णुपदी पितृतीर्थ गया : परम्परा, प्रवृत्ति और संस्कृति, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ९४-१०० (२०१९)

●

उराँव जनजाति की स्थानिक से सार्वभौम की यात्रा

डॉ. संजय यादव*

सारांश– मानव ने आदि मानव से आधुनिक मानव तक की यात्रा तय की है। आग, पहिया तथा आधुनिक प्रगतिशील व्यवस्था उसकी विकास-यात्रा के प्रमाण हैं, पड़ाव नहीं। जैसे-जैसे मानव की बौद्धिक क्षमता का विकास होता गया, वैसे-वैसे उसकी समस्याएँ बढ़ती गयीं और वह उसका समाधान खोजता गया। कबीलों से वह समाज में आया, फिर जाति और वर्ण भी आये। आज का मानव बौद्धिक मानव कहा जाता है। आज का मानव नयी दुनिया बना चुका है। आज हम ऐसे संसार में जी रहे हैं, जिसे विकसित संसार कहा जाता है। आज पारस्परिक निर्भरता बढ़ती जा रही है। यह पारस्परिक निर्भरता विभिन्न लोगों में, क्षेत्रों में और देशों में देखने को मिलती है। यह निर्भरता सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भी पायी जाती है। इस पारस्परिक निर्भरता को तकनीकी भाषा में सार्वभौमीकरण, वैश्वीकरण तथा भूमण्डलीकरण आदि संज्ञा दी जाती है। भूमण्डलीकरण के कारण सामाजिक स्तरीकरण का नवीन प्रतिमान उपस्थित हुआ है, जिसमें खुला बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, राजनैतिक तथा सामाजिक प्रजातन्त्र, अधिकार तथा स्वतन्त्रता जैसे विचारों का उद्‌भव हुआ है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियाँ एक दूसरे से इस प्रकार अवगुण्ठित हैं कि इन्हें अलग करना कठिन लगता है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत एक राष्ट्र स्वयं को विश्व के शेष हिस्से से जोड़ना चाहता है। वैश्वीकरण के इस दौर में बाजारीकरण प्रभावी है। बाजारीकरण में मेल-भाव की जगह मोल-भाव ने स्थान ले लिया है। जहाँ मोल भाव, वहाँ बाजार। जहाँ मेल भाव, वहाँ मेला। मोल भाव ने प्रतिद्वन्द्विता को जन्म दिया। आधुनिक संसाधन की होड़ में अतिशय वृद्धि हुई। मंगल ग्रह पर आवास बनाने की अभीप्सा जाग उठी। आधुनिक संसाधनों की उत्कट इच्छा मानव पर हावी हो गयी। खान-पान, रहन-सहन, सभ्यता-संस्कृति, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार और प्रथा-परम्पराएँ– सब पर वैश्वीकरण का प्रभाव दिखने लगा। वैश्वीकरण एक जटिल आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया है। इसमें एक तरफ विकास की असीम सम्भावनाएँ हैं, तो दूसरी तरफ विनाश के पर्याप्त अवसर भी। ऐसी परिस्थिति में; यह भी विचारणीय है कि सामाज का एक बड़ा हिस्सा सुदूर घने जंगलों, पहाड़ों और बीहड़ों में सीमित संसाधनों में अपना जीवन-बसर करने को वाध्य है। उनको इसे वैश्वीकरण कितना सकारात्मक और नकारात्मक रूप से प्रभावित किया, इसकी भी विवेचना एवं विश्लेषण समीचीन प्रतीत होता है।

कुञ्जी शब्द– वैश्वीकरण, जनजातीय प्रभाव, सकारात्मक-नकारात्मक प्रभाव, पंचायत, सांस्कृतिक, राजनीतिक।

उद्देश्य– वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने जनजातीय समाज को कितना प्रभावित किया, विशेषकर उराँव जनजाति के धार्मिक संस्कार, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक गतिविधियाँ तथा आर्थिक संसाधनों को किस प्रकार प्रभावित किया है– इसका अध्ययन प्रस्तुत शोध-पत्र का मूल उद्देश्य है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में उनके शैक्षिक उन्नयन का भी अनुशीलन करने का प्रयास

* सहायक आचार्य– जनजातीय अध्ययन, कला, संस्कृति एवं लोक साहित्य, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय

किया जायेगा।

सामान्य शब्दों में कहा जाता है कि जो प्रक्रिया सम्पूर्ण विश्व पर लागू होती है, वह सार्वभौम है। वैश्विक फलक पर व्यापक विविधता है। विविध सांस्कृतिक क्षेत्र हैं। विविध विचार-प्रकार के लोग हैं। अनेक देश हैं। इन सबकी अपनी सामाजिक संस्थाएँ हैं। सबके अपने गठबन्धन हैं। इन सबमें जो समायोजन और अनुबन्ध (Linkage) स्थापित करता है, वह सार्वभौमिक है। इसने आत्मनिर्भरता का क्षरण किया और इसकी जगह पारस्परिक निर्भरता ने ले लिया है। भारत गाँवों का देश है। गाँव अपने आप में गणतन्त्र थे। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेते थे। आत्मनिर्भर थे। आज आत्मनिर्भरता अन्तरनिर्भरता हो गयी है। चाय, साबुन, तेल, मंजन दातून की जगह टूथ ब्रश आदि सभी बाहर से आते हैं। गाँव में उत्पन्न अनाज, दाल-सब्जी– सब बाहर जाते हैं। यह अन्तरनिर्भरता सार्वभौमिकता है। इस वैश्वीकरण ने सामाजिक स्तरीकरण के नये प्रतिमान को जन्म दिया, जिसमें खुला बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, राजनैतिक तथा सामाजिक प्रजातन्त्र तथा स्वतन्त्रता आदि विचारों को अस्तित्व मिला। भारतीय संस्कृति में भी अनुकूलनशील प्रभाव परिलक्षित होने लगे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्र/राज्य की भौगोलिक सीमाओं को समाप्त किया। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता ने अपना स्थान बना लिया। इसने सम्पूर्ण जीवन-शैली, खान-पान, रहन-सहन तथा आराम-विश्राम की क्रिया-कलाप को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण की अनेक परिभाषाएँ तथा सिद्धान्त हैं, पर यह हमारा प्रयोज्य विषय नहीं है।

उराँव जनजाति : सामान्य परिचय– उराँव जनजाति झारखण्ड की दूसरी तथा भारत की चौथी सर्वाधिक जनसंख्या वाली जनजाति है। छोटा नागपुर एवं पलामू प्रमण्डल में इसकी सर्वाधिक घनीभूत आबादी है। वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार, झारखण्ड राज्य की सबसे अधिक संख्या वाली जनजाति संथाल है। इसकी कुल जनसंख्या २७.५४ लाख है। उराँव दूसरी सबसे अधिक जनसंख्या वाली जनजाति है, जिसकी जनसंख्या १७.१६ लाख है।[१] परम्परा से प्राप्त संकेतों के आधार पर यह मत प्रतिपादित है कि उराँव का मूल निवास-स्थान दक्कन रहा है। कुछ विद्वानों की मान्यता में इन्हें कोंकण से माना जाता है। पलामू प्रमण्डल तथा छोटा नागपुर उराँव जनजाति का सबसे घनीभूत क्षेत्र है। इन दोनों प्रमण्डलों में ९० प्रतिशत उराँव जनजाति निवास करती है। प्रजातीय दृष्टि से उराँव को प्रोटो आस्ट्रेलायड समूह में रखा जाता है। इनका कद छोटा, संकीर्ण एवं दीर्घ कपाल, रंग गहरा साँवला, नाक चौड़ी, आँखों की पुतलियाँ काली, जड़ के पास नाक धँसी हुई, शरीर पर कम; किन्तु सिर पर घुघराले बाल होते हैं।[२]

उराँव अपनी भाषा में अपने को कुडुख कहते हैं। 'कुडुख' शब्द संस्कृत के 'कर्ष' धातु से उत्पन्न है। यह कर्षण से लेकर कुषुर, कुडुखर और फिर कुडुख हो गया। ऐसी मान्यता है कि कुडुख द्रविड़ भाषा से लिया गया है। इसमें इसका अर्थ 'मानव जाति' से लिया जाता है।[३] बहुधा सभी जनजातीय समाज में अपने को 'मानव' कहने का ही प्रचलन है। अपने को मानव समझना ही मानवता है। उराँव मांसाहारी होते हैं। फिर भी; उनका मुख्य भोजन भात-साग (चावल-साग) है। माँड़ में साग पकाकर नमक-हल्दी के साथ एक प्रकार की लपसी बनाते हैं और अतिशय चाव से खाते हैं। बन्दर का माँस उराँव जनजाति में वर्जित है। 'हाड़िया' इनका एक प्रमुख मादक पेय पदार्थ है। उराँव जनजाति के लोग बहुधा सफेद वस्त्र धारण करते हैं। पुरुष धोती-गंजी तथा महिलाएँ साड़ी व खनरिया पहनती हैं। युवतियाँ साड़ी-साया तथा चोली पहनने लगी हैं। दफ्तर

जाने वाली महिलाएँ आधुनिक वस्त्रों का प्रयोग करने लगी हैं। पुरुषों में परम्परागत वस्त्र 'केरेया' आज भी प्रचलन में है।

परिवार सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार होता है। उराँव जनजाति में एकल परिवार ही पाये जाते हैं। उराँव परिवार पितृसत्तात्मक या पितृवंशीय होता है। पुरुष प्रधान समाज होते हुए भी इनमें 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का मूल चरितार्थ होता है। परिवार में श्रम-विभाजन की उत्तम व्यवस्था मिलती है। पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का समान अधिकार होता है।[४] परिवार में विधवा महिलाओं के भरण-पोषण की सम्मानजनक व्यवस्था पायी जाती है।

उराँव जनजाति की राजनीतिक व्यवस्था पर वैश्वीकरण का प्रभाव : प्रत्येक समाज के अनेक भाग तथा उपभाग होते हैं। सभी भागों तथा उपभागों के सदस्यों के अपने कुछ हित होते हैं। इन हितों को प्राप्त करने के निमित्त कुछ साधन भी होते हैं। किसी के हित-साधन दूसरे से न टकराएँ, इसके लिए कुछ परम्पराएँ, रीति-रिवाज, नियम-कानून अथवा विधान होते हैं। समाज अपनी शान्ति-व्यवस्था को गति प्रदान करने के लिए इनका पालन करता है। प्रत्येक समाज में कानून अपने समाज के सदस्यों के लिए व्यवहार के कुछ निश्चित नियमों को प्रतिपादित करता है। उनका पालन न करने वाले दण्ड के अधिकारी होते हैं। प्रत्येक समाज को कानून, न्याय तथा सरकार की आवश्यकता होती है, चाहे उसका स्वरूप सरल हो अथवा जटिल। इन्हीं तीनों के समेकित रूप को राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है। व्यवस्था बनाए रखने के लिए भय भी नितान्त आवश्यक है– 'भय बिनु होइ न प्रीति।' उराँव जनजातियों में परम्परागत शक्ति-संरचना पायी जाती है, जिसके आधार पर कानून, न्याय और सरकार का स्वरूप निर्धारित होता है। उराँव जनजाति में शक्ति-संरचना तीन प्रमुख आधारों पर अवलम्बित है– परहा पंचायत, हातु पंचायत और टोला पंचायत।[५]

परहा पंचायत : यह उराँव जनजाति का प्रमुख राजनीतिक संगठन है। तीन, पाँच, सात, बारह, इक्कीस तथा कभी-कभी चौरासी गाँवों को मिलाकर इसका गठन किया जाता है। यह प्रमुख केन्द्रीय संगठन है। इसमें सत्ता का विकेन्द्रीकरण देखा जा सकता है। एक गाँव राजा ग्राम कहलाता है, दूसरा दीवान ग्राम, तीसरा पानेर ग्राम (राजा का लिपिक), चौथा कोतवाल ग्राम तथा जिन ग्रामों का इस तरह का कोई नाम नहीं होता, उसे प्रजा ग्राम कहा जाता है। यह पंचायत कानून-व्यवस्था बनाये रखने तथा विवादों का निस्तारण करने का कार्य करती है।[६] पंचायत की कार्य-प्रणाली परम्परा, प्रथा तथा धार्मिक विश्वासों पर आधारित होती है। इसका निर्णय सभी को मान्य होता है। राजनीतिक शक्ति का यह विकेन्द्रीकरण संगठन आधुनिक पंचायतों का आधार मानी जा सकती है।

हातु पंचायत : हातु पंचायत के प्रधान को महतो कहा जाता है। प्रधान के सहयोगार्थ अनेक पदाधिकारी होते हैं। इस पंचायत का कार्य अतिशय व्यापक है। इसके द्वारा बहुधा परिवार-विभाजन, सम्पत्ति का बँटवारा, पति-पत्नी के विवाद, बलात्कार, कन्या-अपहरण, निषिद्ध यौन-सम्बन्ध आदि का निस्तारण किया जाता है।[७] विवादों के फैसले में पंचायत-प्रधान का निर्णय मान्य होता है।

टोला पंचायत : जनजातीय गाँव बहुधा पुरवाँ (टोला) में विभक्त होते हैं। प्रत्येक टोला स्तर पर एक-एक पंचायत होती है। इसे ही टोला पंचायत के नाम से समादृत किया जाता है। बुजुर्ग व्यक्ति इसके सदस्य होते हैं। इनका कार्यक्षेत्र टोला तक ही सीमित रहता है। कोई भी

निर्णय पंचायत की बैठक में किया जाता है।

ये पंचायत उराँव जनजाति की परम्परागत शक्ति-संरचना के प्रमुख अवलम्ब थे। ये न केवल जनजातीय समस्याओं का निस्तारण करते थे, अपितु जनजातीय जीवन में अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को विशिष्ट आधार और आकार प्रदान करते थे। इन परम्परागत पंचायतों के अधिकार ही परम्परागत शक्ति-संरचना के वास्तविक आधार थे। पंच का निर्णय परमेश्वर का निर्णय होता था। यहाँ 'पंच परमेश्वर' की परिकल्पना मूर्त्त रूप में दृष्टिगत थी। वैश्वीकरण ने उराँव जनजाति की परम्परागत पंचायत-व्यवस्था को प्रभावित किया है। पंचायती राज-व्यवस्था ने वैधानिक पंचायतों को जन्म दिया, जिसमें बहुमत के आधार पर पंचायत प्रधान और सदस्यों का निर्वाचन होने लगा। ७३वें संविधान संशोधन के बाद उराँव जनजाति की पंचायत-व्यवस्था का निरन्तर अवसान हुआ। वैश्वीकरण तथा आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने उराँव जनजाति की पंचायत के अस्तित्व को संकट में डाल दिया। अब शक्ति-संरचना में प्रदत्त परिस्थिति (समाज द्वारा दी गयी) के बनिस्पत अर्जित परिस्थिति (अपनी योग्यता के आधार पर प्राप्त की गयी) का महत्त्व बढ़ने लगा है।[८] उराँव जनजाति के नेतृत्व के परम्परागत व्यवहारों, प्ररिस्थितियों तथा भूमिकाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्टतया देखा जा सकता है। नेतृत्व के उभरते नूतन प्रतिमान भी वैश्वीकरण से अछूते नहीं रहे। पंचायती राज-व्यवस्था ने चुनावों की भूमिका को स्पष्ट कर दिया, जिससे वयस्क मताधिकार तथा वयस्कों की सोच भी परिवर्तित हुई है। सांस्कृतिक परिवर्तन ने वयस्कों की सोच को भी प्रभावित किया है। एक नयी राजनीतिक चेतना तथा सामाजिक संस्तरण का उद्‌भव हुआ है। नेतृत्व के अर्जित स्वरूप का अथश्री हुआ है। उनकी राजनीतिक चेतना अब गाँवों तक सीमित नहीं रही, अब उसकी अनुगूँज केन्द्र तक जाने लगी। उनके नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप न्याय-प्रणाली के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। जादू-टोना तथा धार्मिक विश्वास अब भ्रम-जाल से अनधिक नहीं हैं। उराँव की परम्परागत जनजातीय शक्ति-संरचना आज नवीनता को आत्मसात् करने की ओर उन्मुख है।[९] आज जनजातीय वैश्वीकरण के प्रभाव ने ग्रामीण एकता की जगह गुटवाद तथा जातीय संघर्ष को जन्म दिया है। झारखण्ड की सभी जनजातियों में सर्वाधिक विकास उराँव का ही हुआ है। वैश्वीकरण तथा बाहरी सम्पर्क के कारण उराँव के जीवन-वृत्त में व्यापक बदलाव आया है, शिक्षा का विस्तार हुआ है तथा चेतना जाग्रत हुई है।[१०]

उराँव जनजाति में कला, संस्कृति एवं मौखिक लोक-साहित्य का गौरवशाली इतिहास रहा है। उनका प्रकृति से अगाध प्रेम रहा है। उनके लोकगीतों में प्रकृति का सौन्दर्य अनुप्राणित होता है। गोदना अनिवार्यत: ग्रामीण क्षेत्रों की लोक-कला है। उराँव जनजाति में इसका अतिशय प्रचलन रहा है। महिलाओं के लिए यह किसी स्वर्णिम उपहार से कम नहीं होता था।[११] आज वैश्वीकरण ने इसे भी प्रभावित किया है। गोदना, जो उराँव जनजाति के सौन्दर्य-प्रसाधन में आता था, आज उसकी जगह टैटू ने ले लिया है।

उराँव जनजाति के लोगों में यह मान्यता थी कि मौसम के अनुकूल गीत गाने से प्रकृति प्रसन्न रहती है। पौधे हरे-भरे रहते हैं। जानवर आकर्षित होते हैं। उनके अधिकार गीत उनके दैनिक जीवन के प्राकृतिक वर्णन, अतीत की घटनाओं, धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं की भावाभिव्यक्ति होते थे। इनमें खद्दी, चुड़िया, आषाढ़ी, करम, भाव, डोमकच, सादी तथा जदूरा गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके लिए गाँव में एक अखाड़ा होता था, जहाँ इन गीतों के साथ

गाँव की समस्याओं पर विचार-विमर्श होता था। आज ये अखाड़े, समस्याओं के अखाड़े हो गये हैं। परम्परागत वाद्ययन्त्र विलुप्त हो गये हैं। सरहुल, करम, सोहराई, माघे, तिजिया, जेठ शिकार तथा जनी शिकार इनके प्रमुख त्योहार होते थे।[११] आज के वैश्विक युग ने इन परम्परागत शिकारों का रूप बदल दिया है। अब उराँव का परम्परागत शिकार आधुनिकता का शिकार हो गया है। मानव-शास्त्रियों की ऐसी मान्यता है कि वैश्वीकरण ने उनके परिवार में मुखिया के अधिकारों का भी क्षरण किया है। घर का नवयुवक बाहर कमाने चला जाता है, तो घर के सभी निर्णय उसकी पत्नी या बेटा-बेटी करते हैं। वृद्ध माता-पिता अब पुराने टेलीविजन या कूलर की तरह घर के किसी कोने में पड़े रहते हैं। अब उनकी कोई उपयोगिता नहीं। इनका स्थानान्तरण इनके नागरिक जीवन को प्रभावित करता है। इसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि मूल परिवार में सशक्तीकरण का एक नया आयाम दिखने लगा। सार्वभौमीकरण ने उनके भोजन, भजन, भवन, भेष, भाषा और भैषज्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। परम्परागत प्राकृतिक और पौष्टिक भोजन अब होटल और रेस्तराँ के खान-पान में बदल गये हैं। भजन अब मोबाइल से हो जाता है। घास के घरौदों तथा पत्ता के पात्रों की जगह अब आधुनिक मकानों तथा स्टील के बर्तनों ने ले लिया है। पहनावे के परम्परागत पोशाक अब लुप्त प्राय होने लगे। महिलाओं में साड़ी की जगह कुर्ता-कमीज आने लगे। वैश्वीकरण ने उनकी बोलियों को प्रभावित किया है। अब उनमें बहुभाषा का सम्मिश्रण मिलता है। उनकी परम्परागत औषधियाँ, जो असाध्य रोगों का निदान करती थीं, अब उनकी जगह अस्पतालों और अंग्रेजी दवाओं ने लिया है। उनकी सांस्कृतिक धरोहर, जो उनकी अकूत सम्पत्ति थी, सार्वभौमिकता के कारण समाप्ति के कगार पर है।

यहाँ यह बात भी विचारणीय है कि सामान्य उराँव, जो गरीबी-रेखा से नीचे जीवन-यापन करने को विवश है, जो दैनिक मजदूर है, भूमिहीन है– उसे वैश्वीकरण का लाभ नहीं मिला। सार्वभौमिकता का लाभ उन्हें मिला, जिनके पास निवेश करने के लिए पूँजी थी। परम्परागत पंचायतों के टूटने से वे प्रजातान्त्रिक अवश्य हुए, पर उन्हें सामाजिक न्याय नहीं मिलता। उराँव जनजाति की कुछ ऐसी प्रगतिशील परम्परागत संस्थाएँ थीं, जहाँ संस्कृति, संस्कार और सभ्यता की शिक्षा दी जाती थी। घुमकुड़िया उनका युवा गृह था, जहाँ रात्रि-विश्राम के समय नृत्य, संगीत, लोक-कथाएँ तथा लोकगीत की शिक्षा मिलती थी। वैश्वीकरण के प्रभाव से युवागृह प्रभावहीन होते जा रहे हैं। शहरों से आये नवयुवक अब इन युवागृहों का दुरुपयोग करने लगे हैं। जो लोक-संस्कृति उराँव जनजाति की आन्तरिक अभिव्यक्ति का जीवन्त बोध थी, वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उराँव की उस जनजातीय जीवन-शैली को रूपान्तरित किया है। वैश्वीकरण के प्रभाव से गाँवों की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गयी है। उनकी परम्परागत संस्कृति में नगरों की नयी संस्कृति के समावेश ने सांस्कृतिक अस्थिरता को जन्म दिया है। जनजातीय ग्राम्य-जीवन पर संक्रमण दृष्टिगत होने लगा है। उराँव जनजाति की शिक्षित युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक पहचान से शर्म महसूस करने लगी है।[१२] विकास के चरण ने जनजातीय धरती पर स्वार्थ के भाव का बीजारोपण किया है। पहले जहाँ उनका जीवन सामूहिक था, अब धीरे-धीरे व्यक्तिगत होता गया। उराँव जनजाति का पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन सरल, सहज, स्वतन्त्र व स्वावलम्बी था। अब उन पर प्रत्यक्ष भौतिकता तथा बाजारवाद का प्रभाव हो गया है।

विश्व एक व्यवस्था है। अगर वैश्वीकरण की भाषा में कहा जाय, तो 'ग्लोबल विलेज' है। भारतीय आर्ष-परम्परा में 'वसुधैव कुटुम्बकम'। 'विलेज' और 'कुटुम्ब' में व्यापक विभेद है। वैश्वीकरण ने विभिन्न कम्पनियों के बीच सूचनात्मक संचार की व्यवस्था स्थापित किया। औद्योगिकीकरण ने पुरुष व महिला– दोनों के लिए अवसर उपलब्ध कराया। महिलाओं में न सिर्फ आर्थिक निर्भरता आयी, अपितु उनमें आत्मनिर्भरता और स्वतन्त्रता की भावना भी जाग्रत हुई। शिक्षित महिलाओं ने इसका अतिशय लाभ प्राप्त किया। शिक्षा के प्रति बालिकाओं में अधिक उत्सुकता देखी गयी। लैंगिक समानता की भावना को बल मिला। महिलाएँ पारम्परिक रूढ़ियों और अवधारणाओं से मुक्त हुई। सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका में रहीं। स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं के जागरण में पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। महिलाएँ समाज की मुख्य धारा से जुड़ीं। उन्होंने अपनी आय के संसाधनों को बढ़ाया। उनकी जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन आया है। पुरुष वर्ग ने रोजगार की तलाश में नगरों की ओर पलायन किया। नगरीय संस्कृति को आत्मसात् किया। शैक्षिक सूचकांक में वृद्धि हुई। संचार-क्रान्ति ने उन्हें सूचना-तकनीकी से जोड़ दिया। घर बैठा उराँव जनजाति का व्यक्ति अब दुनिया की खबर जानने लगा। अपने सांवैधानिक संरक्षोपाय के प्रति जागरूक हुआ। उनमें राजनीतिक चेतना आयी है।

निष्कर्ष– मनुष्य एक सुकोमल प्राकृतिक संरचना है। उसमें सम्वेदना होती है। उसका हृदय प्रेम-रस से परिपूर्ण होता है। वह विराट चेतना का अंश है और अंग भी। मानव मशीन नहीं हो सकता, पर औद्योगिक क्रान्ति और वैश्वीकरण ने उसे मशीन बना दिया। २१वीं सदी का मनुष्य मशीन हो गया। आज उराँव जनजाति भी इसकी गिरफ्त में आ गयी है। कभी वह स्वतन्त्र और स्वावलम्बी थी, आज इण्टरनेट व मोबाइल फोन के नियन्त्रण में है। वन्दना शिवा व अन्य भारतीय अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि वैश्वीकरण ने ग्रामीण तथा जनजातीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये हैं, परन्तु उसी प्रकार, जिस प्रकार भेंड़ से ऊन निकाल लिया जाता है। आज जनजातीय समाज परिवर्तन के भयानक संक्रमण से गुजर रहा है। गैर आदिवासी समाज भी इस दौर का सामना कर रहा है, पर जनजातीय समाज पर उसका बोझ कुछ ज्यादा ही है। अन्य समुदायों की तुलना में जनजातीय समुदाय इस परिवर्तन के बोझ को उठाने में कमजोर है, क्योंकि वह एक दीर्घावधि तक अलगाव का शिकार था। वे जितना मुख्य धारा से दूर थे, उससे कहीं अधिक दूरी शिक्षा से थी। शिक्षा के अभाव में दुनिया को देखने का उनका दर्शन अलग था। ऐसी अवस्था में सार्वभौमिकता ने उन्हें झकझोर दिया। सार्वभौमिकता ने जनजातीय समाज को मुख्यधारा की ओर मोड़ दिया। जनजातीय समाज अब प्रजातान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष तथा बहु सांस्कृतिक हो गया। उराँव जनजाति जहाँ एक ओर अपनी सांस्कृतिक समृद्धि और स्थानीय पहचान को बनाये है, वहीं विशाल और व्यापक सम्भागीय तथा राष्ट्रीय मुख्यधारा के अंग भी बनना चाहती है। वे चाहे जैसे अपने नृत्य-संगीत को रखें, जैसे भी बाँसुरी की तान को खींचें, मुख्यधारा को इसमें कुछ नहीं कहना। मुख्यधारा तो मात्र उसका एकीकरण चाहती है। उराँव अब केवल स्थानीय नहीं रहा, वह प्रवासी भी हो गया। वह अब राजनीतिक रैलियों में सहभागिता करता है। नारे लगाता है। वह धरना-प्रदर्शन करता है। पर इसके लिए कोई आन्दोलन नहीं चलाता कि उसकी सांस्कृतिक पहचान को संकट है। सत्यता यह है कि सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया ने उराँव जनजाति की स्तरीकरण-प्रक्रिया को बदल दिया है। जो गरीब था, वह अत्यधिक गरीब हो गया है और जो अमीर था, वह और अधिक अमीर। सार्वभौमीकरण की यह प्रक्रिया

उसे कुछ और बना देगी और उसकी आने वाली पीढ़ी अपनी पहचान के संकट से जूझेगी।

सन्दर्भ-सूची

१. पी. आई. बी. की रिपोर्ट।
२. आशा कुमारी– वैश्वीकरण का भारतीय जनजातियों पर प्रभाव, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली-२०१५, पृ. ३९
३. हैक मैन एण्ड स्नैकर– द इण्टिग्रेशन ऑफ इमिग्रेन्ट्स इन यूरोपियन सोसाइटी, यूरोपियन प्रेस, २००३, पृ. २३
४. उमेश कुमार वर्मा– झारखण्ड का जनजातीय समाज, सुबोध ग्रन्थमाला, रॉची- २००९, पृ. ७५
५. रेशमा खलखों– जनजातीय महिलाएँ, क्लॉसिकल पब्लिशिंग, दिल्ली–२०१५, पृ. १२९
६. विजय शंकर उपाध्याय– जनजातीय विकास, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्यप्रदेश–२००२, पृ. १२९
७. प्रियंका वर्मा– झारखण्ड : सामान्य ज्ञान, स्पर्धा प्रकाशन, झारखण्ड–२०१३, पृ. ४८
८. विमला चरण शर्मा– झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन, राँची–२००६, पृ. २६
९. श्याम कुमार– झारखण्ड : एक विस्तृत अध्ययन, सफल प्रकाशन, दिल्ली-२००४, पृ. ५२४
१०. सुधीर रणेन्द्र पाल– झारखण्ड इन्साइक्लोपीडिया (खण्ड०-२) वाणी प्रकाशन, दिल्ली–२००४, पृ. २०
११. मिथिलेश कुमार– जनजातीय समाज में शिक्षा और आधुनिकीकरण, क्लॉसिकल पब्लिशिंग, दिल्ली–२०१५, पृ. ९७
१२. उमेश कुमार वर्मा– वही

●

कोविड-१९
महामारी के प्रति फैला मिथक
एवं जागरूकता एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण
(अम्बेडकर नगर जनपद-विकास खण्ड-टाण्डा के अध्ययन पर आधारित)

राजेश कुमार त्रिपाठी*

सारांश– चीन के बुहान शहर से निकली अत्यन्त संक्रामक बीमारी, जो दिसम्बर, २०१९ में पहली बार मानव-सभ्यता के संज्ञान में आयी तथा जिसने देखते-देखते ही महामारी का रूप धारण कर लिया। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने भी इसे ११ मार्च, २०२० को 'महामारी' घोषित कर दिया। यह महामारी दुनिया के लगभग २१३ देशों में फैल चुकी थी, जिसको लेकर विकसित देशों से लेकर तीसरी दुनिया तक के देशों में कई भ्रान्तियाँ फैलीं। लोगों में जागरूकता की कमी देखने को मिली। उक्त शोध-पत्र में यह पता लगाने का प्रयास किया जाएगा कि उक्त महामारी के प्रति लोगों में किस प्रकार के मिथक विद्यमान हैं एवं लोगों की जागरूकता का स्तर क्या है? यह संक्षिप्त शोध भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए कोविड-१९ के सामाजिक प्रभावों के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण साबित होगा। अम्बेडकर नगर जनपद का टाण्डा विकास खण्ड बहुलवादी संस्कृति तथा पिछड़ा वर्ग बाहुल्य जनसंख्या वाला विकास खण्ड है, जो कोविड-१९ महामारी में, लॉकडाउन के दौरान, ग्रीन जोन का ही जिला था। यहाँ प्रशासन और जनता की समझदारी ने महामारी की भयावहता पर प्रभावी नियंत्रण बनाए रखा। यद्यपि फिर भी; समाज के कुछ वर्गों में कोविड को लेकर कई मिथक विद्यमान थे एवं जागरूक की कमी थी।

मुख्य शब्द : Covid-१९, महामारी, मिथक, सैनेटाइजर, समग्र, निदर्श।

भूमिका : कोविड-१९ एक ऐसा वायरस है, जो अत्यन्त संक्रामक है। वैज्ञानिकों का यह मानना है कि इस वायरस के संचरण के मुख्य रूप से दो मार्ग हैं– पहला श्वॉस सम्बन्धी तथा दूसरा शारीरिक सम्पर्क। यह वायरस मुख्य रूप से छींकने, खाँसने आदि से उत्पन्न छोटी-छोटी बूँदों या संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने से फैलता है। उपचार के लिए कोई सटीक दवा न होने के कारण निजी एहतियात महत्त्वपूर्ण है, जिसमें भौतिक दूरी, साफ-सफाई एवं सैनेटाइजर का प्रयोग महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। यह दुनिया में महामारी का रूप धारण कर चुका था। विश्व में अब तक लगभग ५७.५२ लाख मौतें तथा ३९४१८८७१३ लोग संक्रमित हो चुके थे। यद्यपि वर्तमान में संक्रमण की दर काफी कम है।

भारत में इस महामारी से ४२१८८१३८ लोग संक्रमित हुए, जबकि ठीक हुए ४०६६११४८ और मौतें हुईं ५०१९७९। कुल मिलाकर यह महामारी हमें कितना नुकसान पहुँचा सकती है, यह काफी हद तक हमारे द्वारा बरती जाने वाली सावधानियों और वैक्सीनेशन पर निर्भर करेगा। इससे हम पूर्णतया सुरक्षित तो नहीं, अपितु होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं।

कोविड-१९ के दौरान और उसके बाद मानव-जीवन तथा प्रकृति के हर तत्व की

* शोध छात्र समाजशास्त्र– डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ.प्र.

भिन्नताओं एवं विविधताओं के अल्गोरिद्म बनाए जाने की जरूरत है, जो समाज में सहिष्णुता और सह-अस्तित्व बनाए रखे।[१]

प्रस्तुत अनुसंधान में शोधार्थी यह पता लगाने का प्रयास करेगा कि कोविड-१९ महामारी के प्रति समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में क्या मिथक है और जागरूकता का स्तर क्या है, जिसके चलते हमारा समाज किस प्रकार महामारी के चपेट में है? इन पहलुओं की सामाजिक पड़ताल भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए एक मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

समस्या-कथन– प्रस्तुत अनुसंधान की समस्या के अध्ययन हेतु इसे इस प्रकार शीर्षकबद्ध किया गया है– **कोविड-१९ महामारी के प्रति फैला मिथक एवं जागरूकता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण**

शोध-समस्या : कोई भी अनुसंधान-समस्या अपने में एक ऐसा प्रश्न होता है, जो अनुसंधानकर्ता के सम्मुख यह प्रश्न खड़ा करता है कि दो चरों के मध्य कैसा या क्या सम्बन्ध है?

आज कोविड-१९ महामारी सम्पूर्ण मानवता के समक्ष एक बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। इसीलिए शोधार्थी द्वारा अपने शोध-अध्ययन की विषयवस्तु के रूप में इसे चुना गया। शोधार्थी ने कोविड-१९ महामारी के सन्दर्भ में निम्न समस्याओं का अनुभव किया–

१. कोविड-१९ महामारी के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी मिल रही है।

२. कोविड-१९ महामारी के प्रति लोगों में कई भ्रान्तियाँ दृष्टिगत हो रही हैं।

३. कोविड की वैक्सीन को लेकर लोगों में असहजता है।

साहित्य-सर्वेक्षण : महामारी पर तो कई शोध-अध्ययन किए गए हैं, परन्तु कोविड-१९ महामारी एक समकालीन सामाजिक समस्या है, जिस पर अभी तक कोई बहुत स्पष्ट अध्ययन–परिणाम नहीं आये हैं। इसी कमी की पूर्ति की दिशा में प्रस्तुत अध्ययन का चयन एक विनम्र प्रयास है।

शोधकर्ता ने अपने शोध-कार्य को व्यापकता प्रदान करने के लिए निम्नलिखित पुस्तकों का सहारा लेने का प्रयास किया है–

'द करोना वायरस' : लेखक डॉ. स्वप्निल पारिख, माहिरा देसाई एवं अन्य ने अपनी इस पुस्तक में कोविड-१९ के इतिहास का उद्भव तथा तथ्यों और मिथकों के बारे में विस्तृत चर्चा की है। यह पुस्तक यह भी बताती है कि क्या हम सीखने को तैयार हैं या हमें इस दौरान क्या करना चाहिए?

'लॉकडाउन' : लेखक धन्य कुमार विराजदार, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ। यह पुस्तक महानगरों में मध्यमवर्गीय मजदूरों तथा घर-घर काम करने वाली महिलाओं आदि की व्यथा का चित्रण कहानियों के द्वारा करती है। इसमें लेखक ने लॉकडाउन, कोरोना महिमा जैसी कहानियों के माध्यम से मध्यम वर्ग के श्रमिकों की चुनौतियों एवं मिथकों की चर्चा की है।

'योजना' : मई २०२० का अंक, शीर्षक- मन की बात, पेज ४१! इसमें प्रधानमंत्री के उस उद्बोधन का उल्लेख किया गया है, जिसमें उन्होंने बताया कि कोविड के खिलाफ लड़ाई में देश का हर नागरिक सिपाही की तरह है। साथ ही; उन्होंने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही कि– 'दो गज दूरी, बहुत है जरूरी' अर्थात् दो गज दूरी बनाए रखते हुए, खुद को स्वस्थ बनाए रखने के लिए लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया।

अध्ययन का उद्देश्य-

१. कोविड-१९ महामारी के प्रति मानव-समाज में जागरूकता का पता लगाना।

२. कोविड-१९ महामारी को लेकर मानव-समाज में व्याप्त मिथकों का अध्ययन करना।

३. कोविड-१९ की वैक्सीन को लेकर लोगों के विचार का पता लगाना।

प्राक्कल्पना : यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसकी वैधता का निर्धारण करने के लिए उसे जाँच के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। यह सही भी हो सकती है और गलत भी।[३] कुल मिलाकर; परिकल्पनाएँ पूर्ण यथार्थ न होकर अनुमान होती हैं। किसी अनुसंधान-समस्या का चयन करने के पश्चात् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य परिकल्पना का निर्माण करना होता है।

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित प्राक्कल्पना प्रस्तावित की गयी है–

१. समाज के निम्न वर्गों में कोविड-१९ महामारी के प्रति जागरूकता नहीं है।

२. कोविड-१९ महामारी के प्रति भिन्न मानव-समूहों में अलग-अलग प्रकार के मिथक प्रचलित हैं।

३. कोविड-१९ की वैक्सीन को लेकर लोगों में भ्रम की स्थिति है।

शोध-प्रविधि : किसी भी सामाजिक शोध का मुख्य लक्ष्य वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग द्वारा प्रश्नों का सही उत्तर खोजना है।

सामाजिक शोध को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

१. मौलिक शोध : इस अनुसंधान का मूल उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति अथवा पुराने ज्ञान की पुन: परीक्षा करके उसका शुद्धीकरण करना होता है।

२. क्रियात्मक शोध : इसका सम्बन्ध किसी तात्कालिक समस्या से होता है।

''यह वास्तव में; उस कार्यक्रम का एक भाग है, जिसका कि लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है।'' - गुडेहाट

३. व्यावहारिक शोध : शोध का यह प्रकार, वास्तव में; उपर्युक्त शोधों का सम्मिलित स्वरूप होता है।

प्रस्तुत शोध एक व्यावहारिक शोध है, जिसमें अनुसंधानकर्ता के रूप में कोविड-१९ से जुड़े मिथकों एवं तात्कालिक रूप में कोविड व्यवहार का पता लगाने का प्रयास करूँगा।

शोध के अनुरूप अलग-अलग डिजाइन का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत शोध अन्वेषणात्मक एवं निदानात्मक प्रकृति का होगा।

अध्ययन-क्षेत्र : अध्ययन की सुविधा एवं उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश के अम्बेडकर नगर जनपद के टाण्डा विकास खण्ड को शोध-स्थल के रूप में चुना गया है। कोविड-१९ महामारी में, लॉकडाउन के दौरान, यह विकास खण्ड भी 'ग्रीन जोन' वाला क्षेत्र था।

अम्बेडकर नगर जनपद का परिचय : इस जनपद का निर्माण २९ सितम्बर, १९९५ ई. को हुआ। इसका अक्षांशीय विस्तार २६°९' उ० से २६°४०' उ० है, जबकि देशांतरीय विस्तार ८२°१२' पू० से ८३°५' पू० है।

अम्बेडकर नगर जनपद को शोध-स्थल के रूप में चुने जाने के निम्न कारण हैं–

१. अम्बेडकर नगर जनपद में ९७६/१००० स्त्री, ७४.३% साक्षरता, ८२.८% हिन्दू तथा १६.७५% मुसलमान हैं।

२. ग्रामीण जनसंख्या की बहुलता ९०%, जबकि नगरीय जनसंख्या लगभग १०%, है।

३. दलित और पिछड़े वर्गों की जनसांख्यिकीय संरचना में ज्यादा भागीदागिता।

४. बहुलवादी संस्कृति वाला अपेक्षाकृत पिछड़ा जिला, यद्यपि आकांक्षी जिला नहीं है।

५. कोविड के दौरान यह जिला 'ग्रीन जोन' वाला ही था।

टाण्डा विकास खण्ड का परिचय : यह विकास खण्ड भी एक बहुलवादी संस्कृति वाला विकास खण्ड है। इस विकास खण्ड में भी ८५% जनसंख्या समाज के कमजोर वर्गों की है, जिसमें ६०% आबादी पिछड़ा वर्ग, २५% आबादी अनुसूचित जाति की है तथा १५% आबादी सामान्य वर्ग की है। यह विकास खण्ड लॉकडाउन के दौरान पूरे समय तक लगभग ग्रीन जोन में ही बना रहा। उक्त क्षेत्र को अध्ययन-क्षेत्र के रूप में चुने जाने का मूल कारण बहुलवादी संस्कृति एवं समाज के कमजोर वर्गों की जनसांख्यिकी में पर्याप्त भागीदारिता है। इसकी कुल जनसंख्या ९५५१६ है, जिसमें पुरुष ४९४२९ एवं महिलाएँ ४६०८७ हैं। ६ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की जनसंख्या १२०९० है, जो कि कुल जनसंख्या का १२.६६% है। यहाँ का लिंगानुपात ९३२ है, जो कि उत्तर प्रदेश राज्य की दर ९१२ से उच्च है। साक्षरता दर ७७.६०% है, जो कि उत्तर प्रदेश की साक्षरता दर ६७.६८% से अधिक है। पुरुष साक्षरता दर ८१.७८% है, जबकि महिला साक्षरता दर ७३.१०% है। इस विकास खण्ड में लगभग १२% आबादी इस्लाम धर्म को मानने वाली है।

समग्र निदर्श एवं निदर्शन : समग्र के अन्तर्गत अम्बेडकर नगर जनपद के विकास खण्ड टाण्डा की कुल जनसंख्या (जनगणना २०११ के अनुसार) ४५७७९५ है। प्रस्तुत शोध में निदर्श के रूप में १०० उत्तर दाताओं का चयन किया गया है, जो कि समग्र का लगभग ०.०२२% है।

प्रदत्तों का विश्लेषण : साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण :

प्र० १– करेला का जूस पीने से कोविड के संक्रमण से बचा जा सकता है– हाँ/नहीं

सारणी सं० १

	उत्तरदाताओं की कुल संख्या -१००	उत्तरदाता	उत्तर
१.	४०	४०%	हाँ
२.	६०	६०%	नहीं

सारणी से स्पष्ट है कि लगभग ६०% लोगों ने यह माना कि करेला का जूस पीने से कोविड-१९ के संक्रमण में फायदा नहीं होता है।

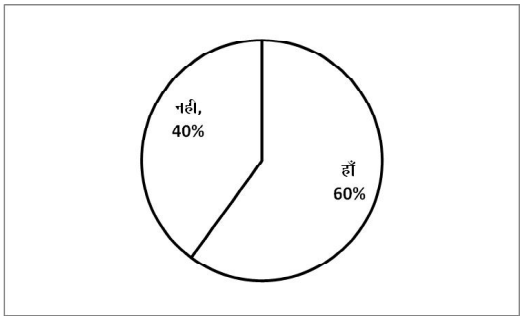

इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकांश लोग यह मानते हैं कि करेला का जूस कोविड-१९ के संक्रमण में फायदा नहीं करता और यह मात्र एक मिथक है। लोग इसको लेकर जागरूक हैं।

प्र० २– प्रत्येक १५ मिनट में उबला पानी पीने से करोना नहीं होता– हाँ/नहीं

इस सन्दर्भ में १०० उत्तरदाताओं से पूछे गये प्रश्न के निम्न उत्तर प्राप्त हुए–

	उत्तरदाताओं की कुल संख्या -१००	उत्तरदाता	उत्तर
१.	६०	६०%	हाँ
२.	३०	३०%	नहीं
३.	१०	१०%	मालूम नहीं

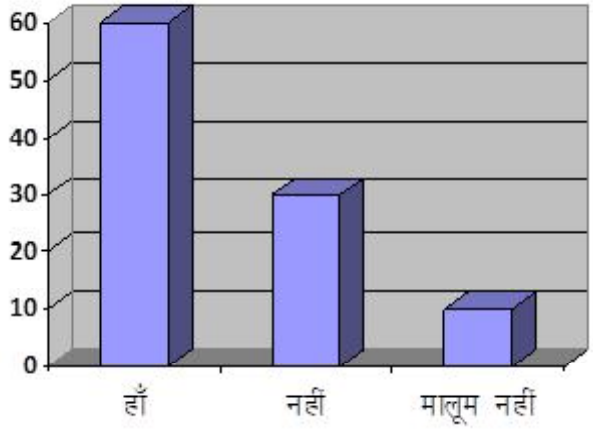

सारणी से स्पष्ट है कि लगभग ६०% उत्तरदाताओं से माना कि उबला पानी पीने से करोना नहीं होता। उपर्युक्त सारणी के आधार पर यह स्पष्ट है कि ६०% लोगों में कोविड-१९ में उबला पानी पीने से करोना नहीं होने का मिथक कायम है। यद्यपि ३०% लोग इसे अस्वीकार करते हैं, जिसका अर्थ यह है कि समाज के लगभग ३०% लोग इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं और वे इसे मिथक मानते हैं। १०% लोग इस सन्दर्भ में कुछ भी बता पाने में असफल हैं।

प्र० ३– ५जी नेटवर्क के प्रयोग से करोना फैलेगा– हाँ/नहीं

इस सन्दर्भ में १०० उत्तरदाताओं से पूछे गये प्रश्न के निम्न उत्तर प्राप्त हुए-

	उत्तरदाताओं की कुल संख्या -१००	उत्तरदाता	उत्तर
१.	६०	५२%	हाँ
२.	४०	४८%	नहीं

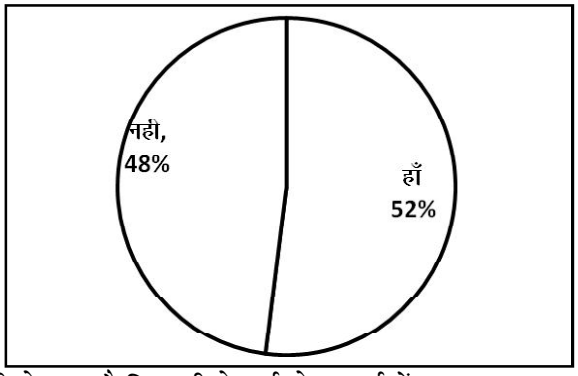

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि ५जी नेटवर्क के सन्दर्भ में ५२% उत्तरदाता यह मानते हैं कि ५जी नेटवर्क के कारण करोना फैलता है। इससे यह स्पष्ट है कि लोगों में ५जी नेटवर्क से करोना

फैलने का मिथक है।

प्र०४– मेडिकल मास्क का प्रयोग करने से कोविड से बचा जा सकता है– हाँ/नहीं

इस सन्दर्भ में १०० उत्तरदाताओं से पूछे गये प्रश्न के निम्न उत्तर प्राप्त हुए-

	उत्तरदाताओं की कुल संख्या -१००	उत्तरदाता	उत्तर
१.	८०	८०%	हाँ
२.	२०	२०%	नहीं

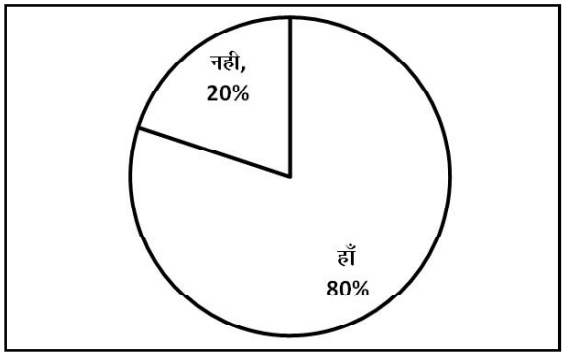

उपर्युक्त सारणी नं. ४ के आधार पर कहा जा सकता है कि ८०% लोग मेडिकल मास्क के प्रति जागरूक हैं।

प्र०५– करोना दैवीय प्रकोप है– हाँ/नहीं

इस सन्दर्भ में १०० उत्तरदाताओं से पूछे गये प्रश्न के निम्न उत्तर प्राप्त हुए–

	उत्तरदाताओं की कुल संख्या -१००	उत्तरदाता	उत्तर
१.	२०	२०%	हाँ
२.	८०	८०%	नहीं

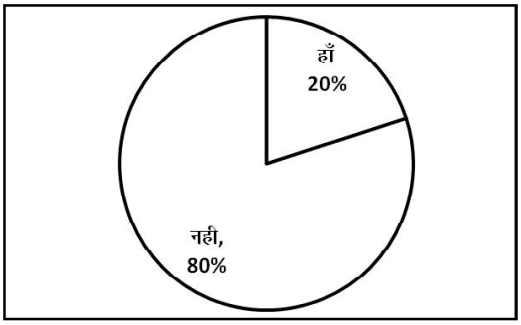

इस सारणी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ८०% उत्तरदाता करोना को दैवीय प्रकोप नहीं मानते, जबकि वहीं २०% लोग अभी भी उसे दैवीय प्रकोप के रूप में देखते हैं।

प्र० ६– करोना कैसे फैलता है?

(A) संक्रमित व्यक्ति को छूने से

(B) संक्रमित व्यक्ति के छींकने से

(C) (a) और (b) दोनों से

(D) छूने– छींकने से कुछ नहीं होता

प्रश्न	उत्तरदाताओं की सं. त्र-१००	उत्तरदाताओं का मत	उत्तर
(A)	संक्रमित व्यक्ति को छूने से	२०%	हाँ
(B)	संक्रमित व्यक्ति के छींकने से	२०%	हाँ
(C)	(a) और (b) दोनों से	५०%	हाँ
(D)	छूने-छींकने से कुछ नहीं होता	१०%	हाँ

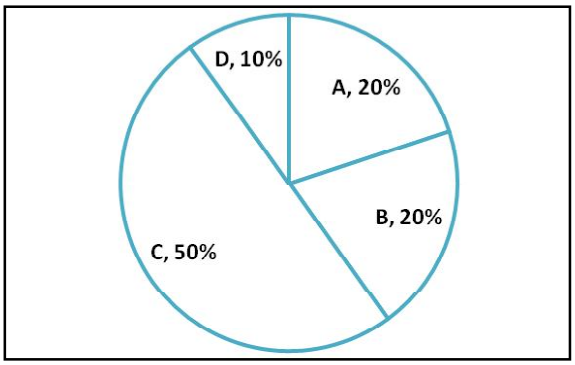

प्र०७– कोविड के टीके का क्या प्रभाव है?

(a) जीवन को खतरा

(b) संक्रमण से बचाव में मदद

(c) कोई फायदा नहीं होगा

	प्रश्न	उत्तरदाता संख्या	उत्तर
(A)	जीवन को खतरा	३०%	हाँ
(B)	संक्रमण से बचाव में मदद	५०%	हाँ
(C)	कोई फायदा नहीं होगा	२०%	हाँ

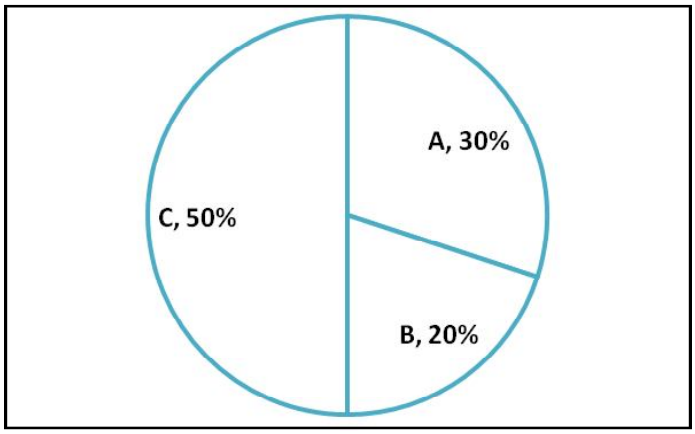

उक्त सारणी के विश्लेषण के पश्चात् ३०% उत्तरदाताओं ने माना कि वैक्सीन लगवाने से जीवन को खतरा है। ऐसा मानने वाले लोग सामान्यत: कक्षा-१० अर्थात् हाईस्कूल फेल थे और समाज के अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों एवं मुस्लिम समुदाय से सम्बन्धित थे। इससे

पता चलता है कि समाज के कमजोर और कम पढ़े-लिखे वर्ग में वैक्सीन को लेकर कई मिथक थे, जो स्पष्टत: जागरूकता की कमी को दर्शाते हैं, जबकि वहीं ५०% ने यह स्वीकार किया कि वैक्सीन से फायदा हुआ है/होगा। इन उत्तरदाताओं की पृष्ठभूमि से पता चलता है कि इनमें अधिकांश शिक्षित और पिछड़ी एवं सामान्य दोनों वर्गों के लोग थे। २०% ऐसे भी थे, जिनका यह मानना था कि इससे कोई फायदा नहीं होगा। इससे यह पता चलता है कि अभी भी समाज की २०% आबादी अपने रूढ़िवादी दृष्टिकोण पर कायम है।

निष्कर्ष : सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि समाज के निम्न वर्गों के ही नहीं, बल्कि समाज के अन्य वर्गों में भी अभी भी जनसंख्या के १/३ भाग से अधिक लोगों में महामारी के प्रति जागरूकता की कमी विद्यमान है। इतना ही नहीं; भिन्न मानव-समूहों में अलग-अलग प्रकार के मिथक भी विद्यमान हैं, यद्यपि तुलनात्मक रूप से ऐसा सोचने वालों की संख्या कम है। वैक्सीन को लेकर अभी भी ५०% आबादी भ्रम में है।

अत: मेरे द्वारा स्थापित प्राक्कल्पनाओं में जहाँ पहली प्राक्कल्पना आंशिक सत्य है, वहीं दूसरी और तीसरी प्राक्कल्पनाएँ पूर्ण सत्य हैं। यद्यपि उपर्युक्त शोध के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करके कोविड-१९ के सामाजिक प्रभाव को व्यापक रूप में समझा जा सकता है।

कोविड-१९ महामारी के चलते जिस प्रकार से मानव-समाज खौफजदा, लाचार, बेबस और अफरा-तफरी में भाग रहा था, यह वास्तव में; मानव-सभ्यता के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती के रूप में थी, जिसमें मानव-समाज के भिन्न वर्गों में अपने-अपने स्तर पर अलग-अलग प्रकार के मिथक मौजूद थे, जिसमें 'जागरूकता' ही सबसे बड़ा बचाव था। ऐसे में; सिर्फ राज्य ही नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी बढ़ जाती है और विशेष रूप से समाज के पढ़े-लिखे लोगों, जनप्रतिनिधियों और मीडिया के लोगों को आगे आना होगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. कैलाश सत्यार्थी– कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान, प्रभात पेपरवैक्स, नई दिल्ली, पेज सं. ३२
२. योजना– मई २०२०, पेज सं. ४१
३. हाट एवं गुडे– O I.Cit, ५६
४. http://commons.wikimedia.org/wiki/commons:kuiki-loves_Monuments 2022-in India.

●

खण्ड-घ : हिन्दीतर बहुविषयी शोध-पत्र

National Security Discourses

Looking Through Hindutva Perspective

Dr. Abhay Kumar*

The discourses on national security are often assumed to be driven by systemic factors. The paper on the other hand attempts to appreciate the discourse on national security through a domestic ideological perspective. This paper attempts to appreciate the discourses on national security by BJP by focusing on the domains of culture, politics and statecraft. Accordingly, the paper is structured through the lenses of nation, power and security. The paper engages with the domestic roots of the discourse on national security. The study, in this sense, traces the evolution of India's national security discourses, which are both evolving and influenced by domestic politics and history.

The central motive of this Hindutva ideology is the idea of a strong India. The BJP locates its ideological preferences in the concept of Hindutva. To become strong, India must be united culturally and politically. BJP establishes a linkage between Hindutva, the Hindu Rashtra, and Hindu nationalism in India. BJP's strategic culture defines India's national integrity and security in terms of *Akhand Bharat* (an undivided India).

The foremost ideologue of Hindutva, V.D. Savarkar identified the notion of 'Hindutva' as the basic foundation of the cultural nationalism of Sangh Parivar. In his view, territory cannot be considered as sufficient factor to define nationality of Indians. It is the religion which can play this role in India since it has Hindus as the majority population. Due to this reason he advocated for Hindu religion and culture based nation. Therefore he proposed the concept of "Hindutva" as the definition of the 'Hindu' for it refers not only to the religious aspects of the Hindu people but also accommodates their cultural, linguistic, social and political aspects as well (Savarkar 1923).

Keshav Baliram Hedgewar, one of the chief ideologues of Hindutva and the founder of RSS, believed that the Hindus lack unity among themselves. They also lacked the complete understanding of their own religion which is a major roadblock to the growth of Hinduism. He thus believed that the onus lies on the Hindus first to revive glory of their own religion which is Hindu religion not only as religion but as a culture for

* Assistant Professor– Department of Political Science, Faculty of Social Science, Banaras Hindu University, Varanasi, U.P.

which a strong unifying force through a strong organizational pooling is required among themselves. He talked about the "inner strength" of the Hindu religion that Hindus themselves don't realize. The another factor of diminishing value of the Hindu religion is due to the fact that Hindus themselves are not clear of the basic tenents of Hindu religion (Kelkar 2011: 3). Further Hedgewar emphasized on certain factors. One important factor amongst other, was building a strong organization comprising of committed people who would imbue in them strong organizational skills. This set of committed people would fill the purpose of a strong cadre based organization entrusted with the work of revival of the Hindu culture. This will enhance the pride of the Hindu identity as well as rouse the Hindus towards a goal and commitment for their own religion. He thus wanted the Hindu society to strive for the protection of their own culture and identity (Kelkar 2011: 3).

Pt. Deendayal Upadhayaya contributed significantly to the BJS's notion of national security. He raised the importance of the nuclear weapons by citing the example of China. He cited that China was able to strengthen her economic linkages with the British Government after the nuclear explosions of 1964. This enabled the two to forge a closer relationship. The other important point was to club the security related economic planning in the Five Year Plans in India. He argued that the clubbing of economic planning with security planning would enable the country to have a better vision of growth, development and security (Upadhayaya 1962). It was the Jana Sangh in 1962 which raised the formal demand for the revision in the Indian Nuclear Policy and the production of the nuclear weapons in the Parliament (Perkovich 1999).

Atal Bihari Vajpayee one of the political ideologue of the BJP and prime minister of India (1998-2004) focussed on comprehensive review of managing India's national security both in external and internal security aspects. He said that national security consideration should not be based on "immediate compulsions" but should be guided by long term imperatives which encompass regional and global security issues. The nuclear tests conducted by India are in response to give an impetus to regional and global policies which have been evolving for years. He commenced many counter terrorism strategies and severely opposed Pakistan for giving a free hand to the terrorists to use its soil (Vajpayee1998).

Nuclear Power as the symbol of strong India : The Jana Sangh consistently advocated a very strong national security policy which some experts call a hawkish line on matters of national security, particularly in nuclear-related issues. They linked power to the acquisition of nuclear weapons. Jan Sangh viewed nuclear power as a "currency of power" and the "ultimate weapon" to enhance security in world politics (Cherian

1998). The history of Jana Sangh (which is now called BJP) illustrates a different account from other political parties on the view of nuclear policy, as Jana Sangh had always favoured India to be a nuclear power. It has been saying this consistently since 1951, well before there was the issue of Pakistan or Chinese bombs. In 1959 the Working Committee of the Jana Sangh reacted to the Chinese incursions along the Indo-Tibetan border by demanding from Nehru's government that national security should be the top priority and the territories occupied should be liberated (Jaffrelot 2007: 300).

In December 1962, the Jana Sangh Party, formally asked for the first time in Parliament the ruling party to reverse its nuclear policy and to make nuclear bomb. In 1963 when the Loksabha debated the budget of Department of Atomic Energy, Ramchandra Bade (Jana Sangh) repeated their demand for nuclear bomb. and said; "only those who wish to see Russians or Chinese ruling India will oppose the development of nuclear weapons and beg the Prime Minister to make full use of or research in atomic energy" (Lok Sabha debate 23 March 1963).

The Jana Sangh talks about military training for every Indian like in Israel etc. The Jana Sangh conveyed through their manifesto the following as priorities (if elected to power): compulsory military training for all young men, militrasiation of all wings of the armed forces in their inspiration as well as form, immediate establishment of defence industries, and organisation of a vast territorial army. All these steps, the manifesto said were necessary and hence will be taken by the Jana Sangh "to prepare the country physically and psychologically for self-defence (Bharatiya Jana Sangh, Principles and Policy Resolution 1973:20). Since, the time the party adopted its 'principles and policies' resolution, it committed itself to exercising the nuclear option- this was made explicit in 1967 campaign for election (Bharatiya Jana Sangh Manifesto 1967).

Bharatiya Janata Party's Discourse on Power : The BJP followed the Jana Sangh in the name of Hindu nationalism rather than on the Hindu religious doctrine and too carried the same policies that existed earlier *i.e.* protecting the Hindu *Rastra*, importance given to territorial integrity and policies towards the neighbours. BJP formulated strong and harsh policies towards separatists and laid emphasis on building strong borders (BJP 1989 Manifesto). Within the context of the Hindu revivalism in the 1980s, the BJP rose up the ladder of political clout. BJP locates its ideologicallineage from the concept of Hindutva. The central motive of this Hindutva ideology is the idea of a strong India and to realize the dream: India must be united culturally and politically (Bidwai and Vinaik 1999: 95).

The BJP sees Hindutva as a force that can unify India, build a national identity and promote social cohesion. The BJP adopted two major goals,

firstly to make Hindu revivalism as the foundation of Indian nationhood, and intention to build a grand, strong and masculine national security state (Kampani 1998: 18). They intended to build a "grand, powerful, and masculine national security state that will emerge as the symbol of national mythology and the converging point of high science, national identity, and achievement" (Kampani 1998: 18).

BJP policy thus concentrated on its traditional political basis of a "militarised vision of a unified, politicised Hinduism" (Bacchetta 2000: 275). This basis was structured and influenced by the policy beliefs and promising norms that had developed under the BJS. Overall, BJP policy came to be summarised, by the overall analysis of its policies based on nationalism, national integrity and national interest' (Ogden 2014: 63).

BJP's Idea of External Power

Restoring India's Place in the World

BJP was the only party which openly insisted for developing nuclear weapon (Quoted in Jiegen 2007: 97). The BJP's nuclear policy can be analyzed since its stance in 1985, when the party didn't hesitate to pass a resolution supporting the development of nuclear weapon. A resolution was passed supporting the development of atomic bomb. The resolution claimed that the reports coming from Pakistan very well indicate that the threat from nuclear bomb of Pakistan is very much real and immediate response to this threat is a must. The BJP, therefore, demanded from government to develop an immediate action plan to have India's own nuclear bomb. The BJP as a party had become more and more vocal in its demand the India should go nuclear. In 1989, the BJP said that "we must go for nuclear option" (BJP election manifesto 1989).

The chronology of the Indian elections and manifestos of the BJP put before a substantial description about how close its ideology had always been in support of nuclear weapon as a source of power. In the subsequent elections that India faced in the wake of the fall of the V. P. Singh government, the 1991 election was announced. In its election manifesto the BJP said that if the party comes to power the party will give "our defence force nuclear teeth" (BJP election manifesto 1991). In the election that followed five years later the BJP said in its election manifesto of 1996 " re-evaluate the country's nuclear policy and exercise the option is to induct nuclear weapon" (BJP election manifesto 1996).

When the BJP did finally come to power in 1998 as the head of multi-party coalition, the new alliance's National Agenda for Governance had declared, that the new government "will re-evaluate the nuclear policy and exercise the option to induct nuclear weapons " (BJP election manifesto general election 1998).

In May 1998, the BJP led government conducted five nuclear tests and

fulfilled its 'go nuclear' commitment. Thus, "the BJP finally broke through Nehru's nuclear tradition, and opened India's door for nuclear power" (Athwal 2008: 66). "The intention of BJP's ideology was clear with the 1998 tests, as they brought India into the global strategic mainstream in Asia and in international diplomacy" (Athwal 2008: 66) "the 1998 nuclear tests represented 'a long-term choice and a clear break from the past" (Ahrari 1999: 432).

Over all, national interest had to be assertively protected, with a strong and secure India being a prerequisite for transforming India as a powerful nation (BJP 1998 Manifesto 2005: 201). These beliefs contrasted with the normsof *ahimsa* and idealism prevalent within India's security identity until 1998. The BJP also continued to equate becoming a global power with acquiring nuclear weapons, and its manifesto promised to "give our defence forces Nuclear Teeth" (BJP 1991 Manifesto 2005: 352). While contrary to the nuclear ambiguity norm identified India's security identity up to 1998 by the Congress, the BJP manifesto openly declared that they accept nuclear weapons as the source of power. If they come to power they will acquire nuclear weapons. This stance posed a completely different normative basis and style from the Congress (Ogden 2014: 70).

Domestically, the 1998 tests carried out a BJP Hindutva's normative commitment and secured the status of the new NDA government, and helped to mobilise popular sentiments for the BJP's militant nationalism (Trembly and Schofield 2005, Seethi 2005). These perspectives reflected the divergent stand on securing India's interests as the tests were officially dubbed *Shakti* after the Hindu goddess of strength and energy. Despite the instances of the 1974 Peaceful Nuclear Explosion (PNE) conducted during the Indira Gandhi government, the onward trajectory of India's nuclear programme and also the tests being known as Pokhran II, 1998 represented a fundamental development in India's security apparatus. By declaring India's nuclear capacity overt, norms of nuclear ambiguity that had evolvedsince independence were overturned (Ogden 2014: 80-81).

The 1998 tests also fitted with the BJP's pre-1998 declaration that the political Hinduism' dominant under Congress regimes was historically defensive and reactive (Kapur 2006: 39). Therefore, the nuclear tests represented, according to the BJP, is an explosion of "self-esteem" (quoted in Sarkar 1998:1725). It not assertively projected inside India as strong power but also projected itself externally to the rest of the region and the world that it has also the ability to assert itself as a strong power in the world.

The BJP after the nuclear tests instituted India's National Security Council (NSC) to centralise and oversee the running of India's security policy. The NSC consists of a main group of ministers (and a national

security advisor) reported to by the Strategic Policy Group, the National Security Advisory Board (NSAB) and a Secretariat represented by the Joint Intelligence Committee. Broadly, the Strategic Policy Group undertakes periodic Strategic Defence Reviews of India's short- and long-term security threats (Ogden 2014: 100).

Perkovich goes against the conventional wisdom by arguing on the bases of sound evidence that "India's acquisition of the bomb was an outcome more of domestic politics within India than the external security needs," though the latter were invoked by those who favoured the acquisition of the nuclear bomb. "The domestic political foundations of India's decision to develop the bomb have been noted by other observers, but Perkovich probes these linkages with great depth and understanding" (Perkovich 1999: 39). Thus Perkovich goes on to say, "Domestic factors, including moral and political norms, have been more significant in determining India's nuclear policy" (Perkovich 1999: 39). He further argues that"the lure of nuclear technology is a symbol of scientific prowess and a means to economic and political development" (Perkovich 1999: 39). These were the prime factors for conducting nuclear tests. He further states that, two vital norms uncomfortably coexist within this national identity: while one seeks India to achieve major power status in the world community and the other desire is to demonstrate moral superiority over the world's major power which have exploitive persona and are over militarised and oblivious to the needs and wishes of the worlds majority of the poor (Perkovich 1999: 448). He was referring to the views held by the BJP, a party that locates its ideological preferences to the concept of Hindutva. The central motive of this Hindutva ideology, as mentioned above, is the idea of a strong India. In the words of George Perkovich, "India exploded its own nuclear device for reasons of international prestige" (Perkovich 1999: 200). Perkovich's study brings home more explicitly than any previous study how domestic factors can affect policy on nuclear weapons and proliferation (Perkovich1999: 200).

Conclusion : As the study is primarily driven towards understanding India's national security discourses, it also aims to identify the alternative notion of security propounded by Hindutva perspective. Culture is the basic parameter on which its notion of security, nation and power rests. The people of this nation may follow different religions but they have to subscribe to the concept of Hindutva. The goal was to set Hindu nationalism which is an attempt to create a Hindu identity which would make them self conscious of their own history and assert the cultural primacy of Hindus in India. The idea of national security as envisaged by BJP was to make India stronger on cultural and military level. The aim is to enhance the glory of the Hindu culture and make Hindus realise about rich heritage of the Hindu culture or religion. The Hindus must be strong enough and united to face any threat arising from alien powers. Further nuclear power was perceived as a source of immense strength which could increase the status of India.

●

Communication approaches to
Public Health and Wellness in Atharvaveda

Dr. Nagendra Kumar Singh*

Abstract : This study will explore how ancient manuscripts of India favored health communication, the fourth of Vedas the Atharvaveda, cover topics related to health sciences (diseases, causes and cures, longevity, and so on). Veda is considered to be a precursor or foundational backbone of the Ayurveda. This study seeks to be a study of the contribution of the Atharvaveda to the appearance of the Health Communication model (synthesis of Ayurveda in day-to-day life) through the use of effective Remedies in Hymns. After reviewing different types of studies conducted in the western world and introducing a new and distinct strategy for health communication module, this study focuses on the Atharvaveda, i.e., a manuscript available in the public domain from a cross-sectional social network health perspective and wellness.

Keywords : Public Health, Atharvaveda, Lifestyle, Wellness, Health Communication.

Health communication is a well-developed discipline in the first world, while in the second world, health communication needs a good amount of study. Health communication can be defined as the communication strategies used to inform and impact the individual and community decisions, with the goal of improving community behavior and public health practices. Health Communication from Theory to Practice by Renata Schiavo: In this book, the author provides a comprehensive and insightful introduction to health communication through the combination of health communication theory and practice, with a hands-on guide to program development and implementation. (1) It also contains numerous advanced topics that can enhance practitioners, researchers, and experts in health communication and related areas in reflecting on current issues and trends and advancing their behavioral, practice, or policy change goals inefficiently. (1)

People often think about wellness and health in terms of physical health, nutrition, exercise, weight management, etc., but it is much more than these mentioned aspects. Wellness is a holistic integration of physical, mental, and spiritual well-being, fueling the body, engaging the mind, and nurturing the spirit (2). Although it always includes striving for health, it's more about living life fully (2), and is "a lifestyle and a personalized approach to living life in a way that allows you to become the best kind of

* Associate Professor– M.M.M. Malviya Institute of Hindi Journalism, M. Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi, U.P.

person that your potentials, circumstances, and fate will allow" (3).

Wellness encompasses eight mutually interdependent dimensions: physical, intellectual, emotional, social, spiritual, vocational, financial, and environmental (2). Attention must be given to all the dimensions, as neglect of anyone over time will adversely affect the others, and ultimately one's health, well-being, and the quality of life, they do not, however, have to be equally balanced (2); we should aim and instead, to strive for a "personal harmony" that feels most authentic to us (2); we naturally have our priorities, approaches, and aspirations, including our views of what it means to live the life fully.

Making the right choices for the health and well-being can be challenging for humans in the technological age. Although, we know that what is good for us and how we can handle it and make it better. We might not act on it, or if we do, we may, in due course, slide back to familiar ways. Human behavior, what we do, how we do it, and whether we will succeed or not is influenced by many other factors, two of them are particularly relevant to wellness: self-regulation and habits.

Indian ancient scriptures Vedas encompass all the dimensions directly or indirectly that need to be taken care of. The goal of human life is to achieve ultimate liberation. Of the four Vedas, the Rig Veda seeks to increase the knowledge while the Yagur Veda throws light on the correct type of deeds and duties(karmic), the Samveda inspires to worship the Ideal Being, and the Atharva Veda teaches the way to know the individual psyche or self and in order to attain power in the society. R.C. Sharma says, "The Rig Veda, the Yagur Veda, the Samveda, bless us for the other world, but the Atharva Veda blesses us for the other as well as for this world" (4). Atharva Veda is also known as the Brahma Veda or Atma Veda in ancient textbooks. According to Max Muller, "Brahma meant original force, will wish and the propulsive power of creation. Atman means breath or spirit or self. Brahma itself is but self." Atharva Veda deals with both Brahma and Atman; it is far more comprehensive as compared to other three Vedas.

According to Satavalekar, "Atharva Veda is specially related to Atma (soul) and Mana (Psyche)" (4). Satvalekar is of the view that by the Atharva Veda, we get the knowledge of the soul and the ways to attain the energy of the soul (Atma-bal) that is why it is known as Atma Veda also. The Atharva Veda shows the ways and means to do everything, for example, curing illness, victory in war, the defeat of enemies through the energy of Mana (psyche) (4). The basic approach of Atharva Veda is mental or psychological medicines are prescribed but are always accompanied by the mantras or mental content. Even for preparing the medicines digging, grinding, pounding of herbs for medicines, separate mantras are provided. Medicines are In order to achieve the goal, a healthy body is a prerequisite.

It has been said in Yâjñavalkyasm[ti –

निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्मनातनात् ।
न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते ।।

"Veda is the fountainhead of all úâstras, there is no úâstra other than Veda, which is eternal." It is said thus –

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्तापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ।।

"Good health stands at the very root of virtuous acts, acquirement of wealth, the gratification of desire and final emancipation. Diseases are destroyers of health, well-being, and life. This has manifested itself as a great obstacle in the way of human life." (C.S.1.1.15, Tr. By R.K. Sharma& Bhagwan Dash) several other aspects of human health that Indian ancient manuscript mentions are: 1) Charms to Cure Diseases and Possession by Demons of Disease (भैषज्यकमनन), २) Prayers for Long Life and Health (आयुष्यमणण),3) Imprecations Against Demons, Sorcerers, and Enemies (आभभचमररकमनन and कृत्यप्रतीहरणमनन), 4) Charms Pertaining to Women (स्तीकर्माणण), 5) Charms Pertaining to Royalty (रमजकर्माणण), 6) Charms to Secure Harmony, influence in the Assembly, and the Like (समर्म्नस्यमनन, etc.), 7) Charms to Secure Prosperity in House, Field, Cattle, Business, Gambling, and Kindred Matters, 8) Charms In Expiation of Sin and Defilement, Prayers and Imprecations in the Interest of the Brahmans(enlightened), Cosmogonic and Theosophic Hymns. Statement of the Problem A study to assess the knowledge and attitude of manuscript Atharvaveda in prospectives of health communication and wellness communication module for knowledge and its dissemination. How can the dissemination of ancient healing knowledge effectively contribute to the attitudinal shift of individuals?

About the Health: Historically, being healthy was an objective concept that meant stability and balance (5) (6), a "wholeness or completeness" (7)(p. 220) that superseded wellness (6), Even the word healthy means "being whole, or well" (8). However, what does wholeness look like? How can we measure wholeness? Dr. Halbert Dunn was a biostatistician who developed a computer program to classify and collect medical information on patients (9); we use those statistics to determine how healthy our communities are and find evidence for decisions we make in practice. Dr, Dunn's work is the foundation for health promotion, discussed later in this chapter. He described being healthy and being well, and either or both of those concepts are equated to well-being. As a result, the three terms are often used interchangeably, but healthiness, wellness, and well-being are distinctly different from each other.

The constitution of the World Health Organization (10) (p. 1) has

defined health as "s state of complete physical, mental, and social well-being and not merely absence of disease or infirmity," a definition that has not changed since 1948. To reach full health, a person must have the capacity to "identify and to realize aspirations, to satisfy needs, and to change or cope with the environment" world Health Organization [WHO], (11) (p. 1). Although good health is positive, it is not the point of living. Instead, health is a Resource for living well.

The differing states of being have "Sometimes you are more well than at other times you are fairly alive with the glow of good health wellness" (12)(p. 2).

The Wellness: The WHO's new definition of wellness is the optimal state of health for individuals and groups. There are two focal concerns the realization of the fullest potential of an individual physically, psychologically, socially, spiritually, and economically and the fulfillment of one's role expectations in the family, community, place of worship, workplace, and other settings (13), wellness is often characterized as a subjective experience (5), From a nursing perspective, wellness is a match between a person's reason for living, actions, and potential (14). Dunn (1961) stated, "Wellness is an integrated method of functioning the Potential of Which is oriented toward maximizing the potential of which the individual ts capable" (12) (p. 4). If health is considered an objective measure, then wellness is the person's subjective experience of being healthy

What is Disease and Illness: Disease and illness are often seen in opposition to health and wellness (7). The disease is the physiological deviation from normal, which is objective or measurable. Disease "implies a focus on pathological processes that may or may not produce symptoms and those results in patient's illness." Illness is, however, the experience of living with the disease. It is subjective and depending on the personal experience of associated symptoms, suffering, or distress. The impact of the altered function is visible from their behaviors and actions.

Objectives of the study are- (1) to assess the knowledge of Health in Atharvaveda. (2) to examine the initiatives of information used in Atharvaveda for health communication. (3) To enumerate the effectiveness of the communication model through the manuscript for public health sensitization.

The Indian concept of health and wellness in Aththarvaveda: Atharva Veda occupies a novel position among the four Vedas. The opposite three Vedas handle matters of another world, the gods, nature, and therefore the supernatural, while Atharva Veda is worldlier. It seeks to resolve the issues of this world and its folk. It deals with topics like leading a long and healthy life, avoiding sorrow, averting illness, vanquish or persuade the enemy, etc.

Atharva Veda presents a close description of the life approach of an early stage of Indian society, which has just entered the agricultural stage of living. Amongst the four Vedas, Atharva Veda has multiple references to health and disease. Physicians and other medical practitioners like Naturopathy and Siddha medicine owe their loyalty to Atharva Veda, as per the verse in Caraka Samhita. योथर्वाणस्तद्भेषजं तदमृतम् यदमृतं तद्ब्रह्म ।

"The Atharvana hymns are curative, what's curative makes for immortality; what's immortal is Brahman" (Gopatha Brahmana 3.4). The fourth Veda, the Atharvaveda, deals with some topics like Bhaisajya (diseases, their causes, and cures) and Ayusya (supplications for longevity). These have contributed to the looks of the Ayurveda; the foundation of some diseases is thanks to an imbalance of the mind (our thoughts and/or feelings), which implies that the cure must be performed by the mind itself and not only through allopathic medicines, surgery and energy radiation, as recommended by conventional medicine. The Atharvaveda is generally called the Veda of magical formulas" because it is considered ready to remove illness through magic, religious-oriented rituals, and a few homemade medicines. In this regard, one should mention that Atharvaveda is one among the oldest texts on the earliest varieties of folk healing of Indo-European antiquity" Atharva Veda abounds in practical advice. It seeks to produce solutions to everyday needs and problems of the commoner like snake-bite or pains of joints or fevers. The devices are for the attainment of Brahma, i.e., higher plains, then a way to achieve Atma-bal (ego-strength) and at lower levels, a way to vanquish the enemy or beat back invisible creatures like rakshas or pishach. The approach of Atharva Veda is additionally integrative within the sense that it treats body, mind, and soul as a total integrated entity.

This means which strengthen the body also strengthen the mind. for instance, the Paushtikani sutras pray for "the showering of blessings for a strong (Balah) healthy body and mind" in order that one may live up to 100 years (Œatavarca) freed from diseases and death. Henry Lefever says that "Whereas the Rig Vedic poets loved to dwell upon the wonders and beauties of nature and also the greatness of the gods who created and upheld the wildlife and those of the Atharva Veda tend to dwell more upon the psychological qualities necessary within the sacrificer." Thus, on the entire, the approach of Atharva Veda is psychological, practical, and integrative. Atharva-Veda, the last of the four Vedas (the Indian Holy Books), is described in over 20 books, and a few of them (called by "Samhitas") gives a close description of the health sciences (human body anatomy, diseases, causes, and also the cure through medicinal plants) (15) The Ayurveda may be a medicine that cares for the patient as an entire so, it states that the health of a personality is reflecting the harmony of his/her

lifestyle (the quality of sleep, food, thoughts, and feelings) (16) The Atharvaveda talks about the eight subjects: like svastyayana (seeking welfare), Bali (offering), maÉgala (well-being), homa (sacrifice), niyama (conduct rules), prÁyaÐcitta(expiation), upavÁsa (fasting), and mantra. So, for the rise old (Áyu), all the positive efforts that are being done, known ascikitsÁ, i.e., the healing art of the practice of drugs (17). Some theories support that Ayurveda is still relevant and, therefore, the mind-body medicine, like Holographic Mind theory (proposed by Karl Pribam and David Bohm) (18) and also the Mind-Brain theory (proposed by Stuart Hameroff and Roger Penrose) (19). The Holographic Mind theory claims that the mind (our thoughts, feelings) may be a hologram, and also the space-time reality may be a "projection" made by the brain of this hologram (mental, emotional, vital patterns of behavior). In this regard, Amit Goswami (20) defends that the holographic mind can be described as "quantum waves of possibility." Integrative medicine emerged within the United States in the 1970s and 1980s. Notably, through the doctors, Andrew Weil (from Center for Integrative medicine, University of Arizona) and David Eisenberg (from Harvard University), followed by Daniel Vicario (from urban center Cancer Center, University of California), whose holistic knowledge of drugs has spread throughout the globe. Nowadays, other samples of integrative medicine doctors are Paulo de Lima (from Albert Einstein Hospital, in Brazil), Matthias Girke (from Havelhöe Hospital, in Germany), within the West. Ram Vishwakarma (from Indian Institute of Integrative medicine, in India), Chen Keji (from Chinese Association of Integrative medicine, in China), within the East are among others.

The aim of Atharva Veda as declared above is that the welfare of humanity. It helps men to measure an upscale and full life up to hundred years then attain Brahma. Thus rules and regulations are given to measure a full healthy life, and during this context come the diseases and therefore the ways to block the diseases. Therapies both mental and herbal are suggested. It's during the context that therapeutics comes under the umbrella of Atharva Veda. The approach and treatment of the matter, thousands of years back, is, after all, different to form it more intelligible; it's to be put in modern terms as far as possible. Modern terms and ideas are to be fitted there without distorting the initial matter. The representation of rakshas and pichachs are found in Atharva Veda; these seem to be more symbolic terms. As an example, the tiniest creatures, also microscopic (Krimi), are given names as Raksha's. Therefore the term rakshas in Atharvaveda seems to symbolize all the evils and undesirable elements.

Abnormal behavior in Atharva Veda: Before starting discussion about the abnormal behavior in Atharva Veda, some points have to be kept in

mind; Atharva Veda deals with many subjects, and therapeutics is only one of the many subjects dealt with. Abnormal behavior and its treatment are one of the many subjects. Its treatment is in brief that only hints are given can be treated as short references. For explanation and elaboration of the abnormality, one has to go to the other sources of information. Sayanacharaya's commentary is beneficial in this way. The main aim of Atharva Veda, as declared, is the welfare of humanity. It helps man to live a prosperous and live up to a hundred years and then attain Brahman. Thus the set of rules and regulations are given to live an entire healthy life; in this context come to diseases, and herbs are suggested.

Mental Health and Mental Disease: Like the body, the mental structure also constitutes three elements gunas or characteristics, and these are sattva (true/pure), rajas (erotic), tamas (the black). These are the gunas of mind, also found in a state of equilibrium. And if any disturbance is found in these quantities of gunas, a mental disorder emerges. Of these three Gunas, sattva is pure and true, and It never gets corrupted, Freud's rajas denotes sexual, pleasure, enjoy fully etc (21). In Freud's terms, it means 'Eros". Tamas literally means blackness. It is one of the lowest tendency of evil, of destruction, in Freud's terms, "Thanatos." Although sattva is pure or true, having the only sattva –vritti (gunas) is also not normal. Rajas and Tamas might increase or decrease in degrees.

A Transdisciplinary perspective on the Atharvaveda and Health in Indian Cultures: One has mentioned and being thoughtful about the old "mechanistic" perspective based on classical science remains effective in the current medical practice. In contrast, the new transdisciplinary perspective of reality seeks to propose an interdependence and interconnection between spirituality, science, and medicine (22). For example, the ongoing Covid-19 pandemic highlights the importance of this "network of interconnections," where the successful healing and recovery of the people of each country will determine how global health situation is changing. In this regard, it is noted some words of a holy Indian saints who claims that "this world is a family, the real perception is to see ourselves as a member of that family (ethos of vasudhev kutumbakam) and community in order to consider each member related to us, as part of our self". One can add in relation to Covid-19: "This situation is not happening just in one country it is happening across the globe." This thought is shown in Figure 1.

In fact, nowadays, few research works seek to highlight the interdependence relation between spiritual (our soul), psychological (the mind), and biological or physical phenomena (human body). There are some research studies that show that biological systems (such as humans) are self-poietic (23), i.e., the self-awareness of each biological entity that constitutes the network will determine the network's self-organization structure, according to Figure 1, previously mentioned. From a transdisciplinary point of view, each member of one's family is

interdependent with the other one's with which is interconnected, and so what happens to the certain member of the family; it also influence (non-locally) the other family members in the society with whom the person is "bonded" by family ties. The Indian philosophies identifies these "family ties" with "family karma," whose philosophical principle is the root of the self-awareness of each individual being that constitutes the "family network," and it is an essential element in the practice of Ayurveda that was referred to above.

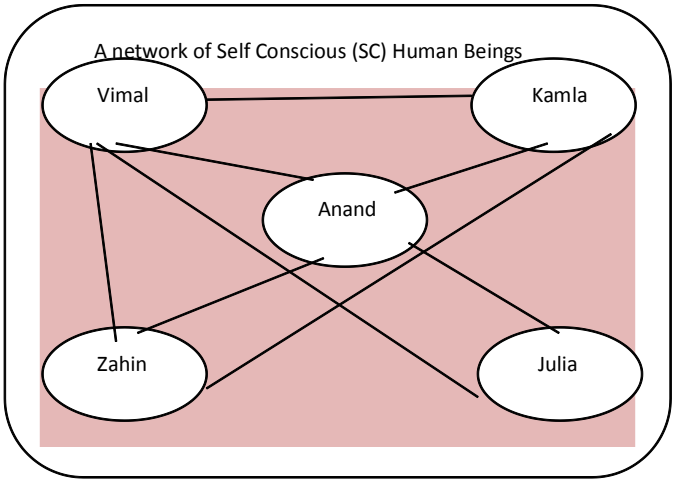

Figure 1: A network of Self Conscious (SC) Human Beings

Conclusion: Today we are in the midst of a violent crisis of health, which began with the threat of death and destruction of our society, and we can hope to reach the same heights of our glory if we revive our ancient knowledge through analyzing available manuscripts. Today India is in the grip of many a monster, such as poverty, ignorance, inaction, disunity, etc., because insecurity arises due to health issues. The Indian Culture, as enunciated by our ancient Rishis, has been handed over to us through our sacred scriptures like Vedas, which enlightens our health knowledge, which has been missed out.

The Ayurveda (and Eastern medicine) claims that some medical signs are required in order to make a proper diagnosis of the patient (24). The relationship of mind and body in the human being is performed by the physician of Ayurveda through the doshas" (Vata, pitta and Kapha) (25). For example, a person having an anxious mind (in Ayurveda it is designated by rajas") might have a condition of nervous breakdown, while a person with a lazy mind (in Ayurveda is designated by tamas") might have depression. In the same way, it is mentioned in Western medical books (from conventional medicine) four mind humour are considered to be important in order to make a proper medical diagnosis, namely the choleric, the phlegmatic, the melancholic, and the sanguine.

In fact, the Western medicine the practices has been based upon the "paradigm of conventional medicine", with the separation of the

psychological from the somatic (mind from body), that is the patient is treated exclusively in his physical and biological side, the causes and progression of the patient´s disease are studied by considering both biological factors (genetic, etc.), but also psychological factors (personality, behavior, etc.) and social factors (family, socioeconomic, etc.) model.

However, the human being also has an emotional, mental, and spiritual dimension that needs to be taken into account for the complete and holistic diagnosis and the treatment of the patient. In this regard, the Indian Sacred books, particularly the Atharvaveda (the precursor of the Ayurveda), claim that self-healing (26) depends on a process of self-awareness and spiritual evolution of the human being. Furthermore, the main target of an Integrative medicine model (an evolutionary model of healing) (27) is to cure all dimensions of the human being, as well as to explain in a scientific way the relationship between the health of the patient and the personal spiritual evolution of the human being, as described by the Sacred books of all religious traditions (Vedas, Bible, Qur'an, Torah).

Integrative Medicine need to take the consideration of global dimensions of the patient from body, mind, to soul in order to make the diagnosis and treatment in a holistic way. The network of self consciousness among the individuals of society as a family has been visible in recent researches and integrative medicine approach for Holistic wellness and Health communication.

Growing international recognition and collective understanding of the effectiveness of integrative and complementary medicine for the treatment of COVID-19 is seen, as supported by the recent research. We are in the middle of a rapidly changing pandemic era where clinicians, researchers, policymakers, and other health professionals, are conducting the researches, decisions, and development of tools to promote public health, which includes wellness integrating all possible dimensions and combat the novel disease in the pandemic era.

Of all the great scriptures through which our Culture has been handed over to us, Atharvaveda stands as the greatest, since it contains all the essential features of health benefit that can be fused with modern medicine as Integrative medicine, and it will help mankind in many ways, a crisis such as we are facing today in Corona Pandemic.

Bibliography

1. Renata, Schiavo. Health Communication: From Theory to Practice. s.l. : Wiley, 2007.
2. 8 Dimensions of Wellness, (UMD) University of Maryland's Your Guide to Living Well. University of Maryland's. [Online] [Cited: august wednesday, 2021.] https://umwellness.wordpress.com/8- dimensions-of-wellness/.
3. Definition of Wellness. Ardell, DB. 1999, Vols. 18:1–5.
4. Importance of Atharva Veda in Psychology. Dandona, Anu. No.2 pp.125–127, Chandigarh : CHITKARA Issues and Ideas in Education, Sep. 2018, Vol. Vol. 6.

5. Insights from latent partition analysis into categories inherent in wellness-illness. Jensen, L., & Allen, M. s.l. : Journal of Advanced Nursing, 1993a, Vol. 18(7).
6. Towards an ontological theory of wellness: A discussion of conceptual foundations and implications for nursing. Mackey, S. s.l. : Nursing Philosophy, (2009), Vol. 10(2).
7. Wellness: The dialectic of ill. Jensen, L., & Allen, M. s.l. : The Journal of Nursing Scholarship, 1993b, Vols. 25(3), 220-224.
8. Harper, D. www.etymonline.com. Health. In Online etymology dictionary. [Online] (2001). [Cited: july 29, 2021.] http://www.etymonline.com/index.php?term=health.
9. Dunn, Halbert. US Census Bureau. 2012.
10. World Health Organization. Constitution of the world Health Organization. apps.who.in. [Online] 1948. http://apps.who.int/gb/bd/PDF/ bd47/EN/ constitution-en.pdf.
11. Ottawa charter for health promotion. Ottawa, ON: World Health Organization, Health and Welfare Canada, and Canadian Public Health Association. www.phac-aspc.gc.ca. [Online] World Health Organization, 1986. http://www.phac-aspc.gc.ca/ph-sp/docs/charterchartre/ndf/charter.pdf.
12. Dunn, H. L. High-level wellness. Arlington : Beatty Press, (1961).
13. Smith, Tang, & Nutbeam,. Wellness. 2006.
14. Benner, P., & Wrubel, J. The primacy of caring: Stress and coping in health and wellness. Don Mills : Addison-Wesley, 1989.
15. Muller, M. The Sacred Books of the East, vol. 42. s.l. : Oxford University Press., (2002).
16. The Atharvaveda. Bloom_eld, M. 1999, Harvard University Press.
17. Fever in Vedic India. K, Zysk. 1983, Journal of the American Oriental Society, pp. 103(3):617-621.
18. Brown, W. India and Indology: Selected Articles. New Delhi : Motilal Banarsidass, 1978.
19. Paipalada Samhita 4.15: To Heal an Open Fracture With a Plant. Lubotsky, A. and Gri_ths, A. 2002, Die Sprache, pp. 42(1-2): 196-210.
20. The history of the Indian sacred book (Atharva-Veda) and its contribution to the Integrative medicine model. Martins, Paulo Nuno. 2017, Transdisciplinary Journal of Engineering & Science, pp. Vol. 8, 54-59.
21. Freud, s. Freud's Psychoanalytic Proccedure. 1904. Vols. S.E. 7-(249-254) .
22. Nicolescu, B. From Modernity to Cosmodernity: Science, Culture and Spirituality. s.l. : SUNY Press, 2014.
23. Capra, F. The Web of Life: A New Synthesis of Mind and Matter. s.l. : HarperCollins, 1997.
24. Lad, V. A complete Guide to Clinical Assessment. s.l. : Ayurvedic Press, 2007.
25. Frawley, D. Ayurvedic Healing. Salt Lake City : Passage Press, 1989.
26. Barasch, M.I. The Healing Path. New York : Tarcher/Putnam, 1993.
27. Gaudet, T.] Integrative Medicine Best Practices - Duke Integrative Medicine: A Clinical Center Model Study. A Bravewell Collaborative Best Practices Report. 2007.

●

Parasocial Relations and Fan Cultures

The Extent and Intent of Human Desire and Friendship

Dr. Rajesh Verma*

Abstract : Adult attachment influences how people engage with stories and the ability of the story and its characters to form bonds of friendship with the reader or viewer. Stories, since their beginning, could form uniquely close bonds with the human imagination. This tendency to form close bonds with characters has been the basis of culture, religion, country and even workspaces.

Fan cultures have developed across the globe because of this ability to relate to a character because of the story they have enacted, told or uphold. Suppose we delve deeper into this idea of fan culture and celebrity worship by examining what makes us relate to a particular actor or author or rockstar in such a fanatic way. In that case, we will understand notions of parasocial interactions, parasocial romance and fandom. Furthermore, Parasocial romance is the intense feeling of love, romance and sexual attraction to a fictional character. While most will laugh at this idea, recent developments in the age of digitalisation show that parasocial romance is blooming.

This paper will study from an anthropological perspective the various reasons for the birth of parasocial romance and how fan cultures and celebrity worship in the 21st Century have fanned parasocial interactions. Additionally, the paper will analyse how parasocial interactions, parasocial romance and fan culture relate to how we identify, communicate and engage with characters. Through a cultural approach, the paper will examine the character traits and types of characters that make them likeable and lovable. The characters will help demonstrate how attachment or romance is not just a random or spontaneous "flow of emotions" but a set algorithm created to form close bonds. This algorithm and this ability to feel interpersonal intimacy is effectively inculcated by high-powered modern-day technology into providing this sense of romance, desire and attachment with fictional characters.

Keywords: Parasocial romance. Parasocial interactions. Fandom. Parasocial Friendships.

With the advent of digitalisation and technological advancements, the social and cultural fabric of how human beings interact and engage has changed. With the onslaught of social media, large amounts of information via videos, reels and short content forms are being created and shared. The celebrities who provide this information are being viewed differently than

* Associate Professor– Deaprtment of English & MEL, University of Allahabad, U.P.

before. This difference is being augmented by social media that blurs the line between reality and fiction. Influencers are reigning in the market scene. These influencers may look like a friend that you see every day but they influence you by projecting a certain persona that brands who pay them have asked them to do. Live streaming, vlogging and reality shows make it easier to blur the boundaries between what appears to be what is.

The viewer perceives these personas or celebrities as authentic and approachable. They watch them every day on their smartphones. With real socialisation taking a backseat during the Covid -19 pandemic, online interactions have leapt forward. The quantity and the frequency of online interaction lead to the development of attachment and forming bonds with these fictitious online characters. Fictitious because even if celebrities are providing a certain experience, they are still projecting it. They are not what they appear to be. This is what in research terms can be called a Parasocial Interaction (PSI). Parasocial interactions are one-sided attractions and interactions that people form with celebrities and media figures. Riva Tuchakinsky Forster in her book *Parasocial Romantic Relationships Falling in Love with Media Figures* writes that people feel strong feelings of friendship and desire with people they have never met in real life but interacted with through a story, a radio show or a Television program but parasocial interactions have not been well studied. She says, "Like real-life social relationships, Para Social Relationships can involve strong emotional attachments, and grief upon dissolution (Cohen 196), which is, perhaps, unsurprising". (Tuchakinsky 135)

Furthermore, Tuchakinsky suggests that these types of interactions share similar traits with real-life relationships and attachments. These interactions include intense physical or sexual attraction with a need for emotional stability and want of closeness. However, unlike real-life romances, parasocial interactions usually involve a partner who is a persona and who doesn't contribute in any other way to the relationship except by being the persona he or she is. More often than not, in the case of celebrities, the celebrity has no idea that a particular person is in love with them. For them, everybody who loves them is a fan but fandom has many levels.

These parasocial romantic relationships can be both rewarding as well as pathological, Riva Tukachinsky Forster argues. These relationships are of various types, including adolescents with celebrity crushes on popular music artists like what the current Korean pop music scene looks like, or anime enthusiasts who "marry" their favourite characters like the "Otaku culture" in Japan and individuals who have found true solace and comfort in interacting with video game characters or holograms. How do these individuals develop the desire for people and characters that they don't

know in real life? Some of whom may perhaps not even exist in reality. Ultimately, Tukachinsky Forster argues that although these relationships exist only in the mind of consumers, they serve important psychological functions across different stages of life and can lead to significant consequences for individuals' mental and physical health.

In 1951, a self-titled radio program, "*The Lonesome Gal"* featuring the voice of a female made thousands of listeners empathise and propose marriage to a complete female stranger. This suggests that the listeners developed a strong desire and romantic feelings for the stranger behind the voice of *The Lonesome Gal*. If we look at recent development, the intense popularity of Twilight Movies and the extreme attachment of people to these characters shows that people can and do form strong emotions of bonding towards actors and media personalities. Parasocial romances are quite common. These examples also suggest that parasocial romances can be formed not only with real-life celebrities, but also with fictional characters (For instance, the character of Edward from the movie *Twilight*).

In an essay titled, *A magically nice guy: Parasocial relationships with Harry Potter across different cultures*, researchers Hannah Schmid, and Christoph Klimmt explored Para Social Relationships (PSRs) that have developed in Germany and Mexico with Harry Potter. The study took a sample of 2551 Potter fans from both these countries to understand Potter and his sociability, perception and parasocial interactions. It concluded that fandom and PSRs were overlapping with a few differences like character identification and perception.

The concept of fandom or fan culture is derived from the word "fanatic". Being a fan simply means connecting very well to a television show, movie, movie franchise, celebrity, music band, and rockstar or book series. Being a fan also helps one connect with other fans and thus find a shared community based on a specific interest or individual or celebrity. Fan cultures and fanaticism exist everywhere on social media platforms, politics, universities, workspaces and even religion. There are many ways to express fandom and take part in fan culture. Fandoms exist on every social media site like Instagram, Twitter and Tumblr. There are fan blogs creating content hourly, like GIFs, memes, and text posts.

To understand Fandom, two concepts of psychology must be delved into; identification and Parasocial Interaction (PSI). Cohen defines PSI as a relationship in which 'the viewer is engaged in a role relationship with a television persona.'(Cohen 329) Additionally, this concept of PSI can also be applied to musicians, influencers, pop stars and movie actors. Initial studies and research in this field linked PSI to a lack of social contacts but later research shows that there is no proper correlation between loneliness and escapism (Rubin and McHugh 291). Rubin and McHugh (1987)

distinguish three types of relationships in PSI. These are Social, Physical and Task-based attractions. Fandom cannot just be limited to a specific way of analysing social behaviour by seeing solely the relationship between the person (i.e. fan) and the figure.

To study Fandom is to study the communities that fans build. These communities are fanned by capitalists and marketing moguls. In most cases, marketing plays an integral part in displaying a celebrity or media personality.

Fandom in the Indian Context : India or the Indian Subcontinent is a land of many deities that range across many spheres including - animals, plants, half-human- half-animals, supernatural spirits and beings and many more. Many of these deities are revered with obeisance and surrender. This extreme deity worship spans borders and histories. Extreme reverence for a deity or an individual has many instances for instance, in the case of Eklavya and Dronacharya and Mira Bai and Krishna. In the present day, this deity worship has transferred to the celluloid with many filmstars and movie actors being revered as gods.

Take the example of Rajnikanth, an extremely popular actor in Tamil Nadu. He has fans that are willing to die for him. Reverentially known as *Thalaivaa*, people feel strongly for him and worship him in extreme measures. This obsessive fandom is not new. However, with the onslaught of social media and many people desiring to become celebrities through online platforms like Instagram and YouTube, fandom has taken on a different meaning.

Influencers want followers, rockstars want followers, and actors want followers. This "following" culture is fandom and celebrity worship entering our homes and our psyche. The celebrity culture is worrying mental health professionals, who call it "celebrity worship syndrome." Everybody seems to be speaking about somebody. Politicians, roadside vendors, actors, musicians, filmmakers, working-class professionals, doctors, painters, writers, pilots and many more want people to follow them.

On one hand, this pervasive celebrity culture has trickled down to the normal functioning of everyday people and their lives. Technological algorithms determine how we dress, talk and walk. We, in this time and generation, have never been as self-obsessed as this much. Temples have been built in the names of many politicians and other public figures, from Sonia Gandhi, president of the Indian National Congress, to Prime Minister Narendra Modi. There are many instances as recorded by mental health experts and psychologists in which the person thinks that the celebrity is her or his God. Everything they have to do has to be in connection with the celebrity, so much so that the fan in question follows the daily routine of the

celebrity to the hilt by intensely scrutinising her life from various social media sources to get details. There are levels of celebrity worship -A low level of celebrity worship could be just for entertainment and that is just a form of extroverted behaviour, the medium level could represent some degree of neuroticism that can include feelings of anxiety, depression, low self-esteem or boredom. A very high level or a pathological nature of worship expresses fantasy, delusions and traits of psychoticism. Fervent fan culture, celebrity culture or para-social romances is boosted through the medium of images. Be it with the invention of photography or the blooming of mass media in today's times. The feeling of closeness that the spectator feels to the media figures in which the former feels that the latter is within his or her social circle. The sense of ownership towards that image or moving image is very strong. Leon Litvack in his essay, *Dickens*, *Celebrity Culture, and the 'Para-Social Relationship'* in explaining the celebrity culture that Charles Dickens had acquired says that, The feeling of closeness to Dickens and his published output on the part of his public was boosted through the medium of photography, through which individuals could literally 'own' Dickens, by purchasing inexpensive images of him from photographic retailers and street hawkers. Joss Marsh confirms this idea: 'Dickens's image . . . promised every member of his public a piece of him'.2 It increased even further when he embarked on his career as a public reader; indeed the two methods by which familiarity with the author was enhanced converged in a pair of images produced by Herbert Watkins in 1858, of Dickens posed as if reading. (Litvack 1)

The verisimilitude the spectator feels is holding a photograph of Dickens in the 19th century can be likened to watching a media figure closely on a laptop or a handheld device. These stereographic images are evocative and lead the spectator into feeling that the media figure is talking specifically to him or her. Thus, the spectator feels that he or she is the focus of the media figure. Thus, this attention-seeking is the core of the Para Social Romantic interaction.

Parasocial Interaction and Parasocial Relationship : These two terms, Para Social Interaction and Parasocial Relationships were first introduced into the research spheres by Horton and Wohl (1956). Since then, these two terms have formed the core of research on parasocial phenomena and media psychology. They have described Parasocial interaction as a "simulacrum of conversational give-and-take" (Horton & Wohl 215) that takes between the media user and the media character for instance, like watching an actor in a movie. (Horton & Wohl 220). This particular type of interaction is not just in watching a character on the laptop or TV screen but the immediate illusory feeling of being attached to the media character despite knowing that they themselves don't have any

idea about the person or their feeling. (Hartmann &Goldhoorn 1112, Horton & Wohl, 221). This experience seems like a personal encounter, one that is solely meant for that user to experience.

Accordingly, screen pixels are perceived as living beings in a parasocial interaction by the users mindlessly irrespective of the fact whether the person exists or not. Another illusion that defines Parasocial Interactions is that it builds a sense of co-existence in which the spectator intuitively feels that he or she is being directly addressed by the media character and that he or she is the focus of the media character (Giles 302). This social encounter seems real and reciprocal although it is not because as we all know, it is one-sided and non-interactive. Spectators or users feel a sense of attention being showered on, particularly them and a sense that they exist in the eyes of the media character. This behavioural pattern occurs with a sense of feeling mutual awareness and reciprocity although both these qualities do not exist in a media-user interaction. (Hartmann &Goldhoorn 1117).

In *the Routledge Handbook of Media Use and Well-Being, Chapter: Parasocial Interaction, Parasocial Relationships, and Well-Being,* author Tilo Hartman says that the need to belong, i.e., the "need for frequent, non-aversive interactions within an ongoing relational bond", is most fundamental of all human needs. Baumeister and Leary make this explicit by saying that to satisfy this need to belong, two conditions must be met. First, the social interactions of an individual should be pleasant and devoid of conflict or negative affect. Secondly, these social interactions should be characterised by an interpersonal bond that is marked by stability and intimacy. This need to belong is, as various studies suggest, closely linked to the well-being of an individual. (Agnes 266)

So, how is the need to belong is linked to Parasocial Relationships? Do lonelier people have a much larger tendency to form parasocial relationships? Do these types of relationships relate to the overall well-being of an individual? And, are parasocial relationships a sign of the larger disconnectivity that humans are experiencing in this increasingly appearing to be connected world? These are some of the questions that arise when reviewing the literature related to Parasocial interactions.

Parasocial Interactions and Extreme Fan Cultures: Beyond the Need to Belong : A phenomenon that occurs with Parasocial Interactions is that they turn dysfunctional and take up extreme forms. For Instance, extreme celebrity worshipping, Paparazzi culture, cancel culture and erotic attraction towards media characters are all circumstances that are part of a parasocial interaction gone dysfunctional.

In some ways, most media-user experiences can have varying levels of parasocial interactions- relating to the character, like the character,

finding similarities with the character or even developing a crush on the character like a TV actor or cartoon. However, these feelings can take a detrimental turn when these relationships take centre stage and substitute real social interactions. Celebrity worshipping and fanaticism over media characters may diminish personal well-being as well as real social relationships. These delusionary forms can be absolute defiance of objective reality and in most cases are termed pathological by psychologists and mental health doctors. The biggest question in such a situation arises- When do normal parasocial relationships tip over to become a dysfunctional substitute or a dysfunctional compensation to real life?

Akihiko Kondo, a Japanese school administrator married a computer-generated hologram. The hologram recognises Kondo's face and voice with its embedded camera and microphone and can respond with simple phrases and songs.

Kondo, discovered Miku singing on the internet and became infatuated with her. He decided that she was "the one" and became devoted to her who has thousands of fans worldwide. He married her in a customary intimate ceremony with 39 of his friends and relatives.

The wedding ceremony included wedding rings being exchanged and Kondo placed the ring on a stuffed doll image of Miku. Although Japan is infamous for its extreme Otaku Culture Kondo's decision and wedding to Miku caused many to raise eyebrows and call him creepy and dysfunctional. In the larger Japanese context, tech developers like the company Gatebox offer users marriage registration forms to wedding virtual characters. These are instances of extreme parasocial interactions.

Committed and devoted fans show extreme behaviour that is similar to religious worshippers? Is there a difference between them? Mira Bai's extreme devotion to Lord Krishna or any devoted religious worshipper worshipping his or her God. "How different is fervour for a god from the fervour for a media character? Devoted fans of celebrities may show similar behaviour and engage in similar rituals to those known for religious worshipping" (Giles 281).

There are three levels of this celebrity worshipping. Low, medium and high levels of celebrity worshipping. According to the theoretical approach of McCutcheon, "low levels of celebrity worshipping are most common, and also functional because they focus on the celebrity's ability to entertain and on the social community-building implications of being a fan". (McCutheon 89). He describes a medium or moderate level of celebrity worshipping as problematic because "they seem to appeal particularly to individuals with a compromised identity structure". These forms of relationships comprise compulsive feelings and a total mental

preoccupation with a celebrity. This is fanned by a paparazzi culture and social media moguls to constantly distract users from facing their problems. He consequently describes extreme celebrity worshipping as something that "may result in maladaptive social behaviour, and, as a consequence, negatively affect the well-being of an individual." (McCutheon 91)

These varied types of attachment styles also explicitly show how an individual's early life experiences with their caregivers have been. The need to belong and the well-being of an individual is extrinsically linked to parasocial relationships. A reliable, safe and predictable relationship offered by the "mute other" (media character, in this case) assures people of stability and continuance.

Reciprocity and Parasocial Relationships : Reciprocity is the mainstay of any relationship. With the advent of new and interactive technologies, the differences between a real human reciprocal relationship and a scripted one as projected by celebrities and interactive interface technologies, there has been an advent shift in the illusion becoming less illusory.

Social media encounters on Twitter, Instagram and Facebook and YouTube allow many users to interact with the figure and follow them without ever encountering them. The users feel a relationship with them and over time develop a relationship with them, constantly following them through the means of notifications and paparazzi. They want to know everything that's happening in the lives of the people they follow. Vlogs and Reels trigger parasocial phenomena and affect people's well-being in the same way as traditional forms of interaction and relationships did before. This kind of relationship perception and being reciprocated in the manner of informal interactions through vlogs and reels lead to the person becoming comfortable in only media application-based relationships. The amount of energy, emotion and time invested in the life of another, a persona, who is unaware of such emotion being invested in them has increased with the internet allowing for 24-hour access.

Conflicts and research arise when these kinds of relationships start affecting real ones. Parasocial relationships are not to be stigmatised as a pathological sign of loneliness but clinical researchers have found a correlation between patients benefitting from this relationship with their favourite host, celebrity or vlogger. In the times of the pandemic, these parasocial phenomena multiplied and were one of the most important, if not the only, way isolated people could interact.

People seek out fandom and the subsequent communities to discuss, critique and enjoy content together. For instance, fans of the band BTS gather to watch and discuss the band members, their songs and their behaviour .They engage on online platforms to have a sense of belonging to the group and no matter what the content of BTS is that they are conversing about – their songs, their daily routines or their clothes, BTS is what links

the fans together. People also become fans and seek out fandom communities to be part of something that discusses issues that are not addressed by mainstream media – mental health, relationships, self-worth, and isolation. Fans find resonance in fandom communities and the community becomes tight knit.

Fandom also takes on the role of defending one's interest from real people. With the accessibility of the internet, lots of fandom communities have sprouted that cater to those interests of fans that can be hidden from real-life people or family. In a way, the internet and the World Wide Web have given fans the chance to cater to their interests by finding like-minded people, no matter the content is vile or important.

Fandom and fan communities are also fuelled by capitalists and marketing moguls in a certain way to cash in on the fan culture. Gender continues to play an important aspect in this field of fandom. Boy Band fandoms are usually female dominated and sports fandoms are usually male dominated. A boy band fandom is marketed for a specific demographic, which is mostly pre-teen girl or women and a sports fandom is predominantly marketed in an aggressive way to cater to male audiences. The gender disparity in real life situations find their equal counterparts in fandom communities too. Sports fandoms are normalised, whereas, boy band fandoms are chided as histrionics.

Although there are differences in perception of fandom, yet fandom communities provide a true bonding aspect to the fan. Fandom communities act as safe places to make meaningful relationships and meaningful conversations that have the ability to change the person for the good of the society at large.

Conclusion : The global pandemic and the ensuing quarantine have provided for Parasocial Interactions being studied at length. In the wake of social deprivation, large numbers of people turned to social media as an opportunity to interact and socialise. The Pandemic and the quarantine have helped researchers to analyse relationships and parasocial interactions at multiple levels and not just as being limited to those who require psychological therapy. Parasocial interactions are not just limited to characters or personas but include now everyday people who have used the internet accessibility to make fan followings of their own. Additionally, Parasocial interactions have also led to many being isolated due to the pressure it induces to behave and appear a certain way but in many situations, these types of interactions are all we have as humans to feel safe and heard.

Parasocial interaction may frequently occur in teens and adolescents and medical research shows that this kind of interaction contributes significantly to the overall social development of the child by providing support, inspiration and teaching life lessons. Yet, the fact remains, that it is a one-sided relationship. The question of whether a parasocial relationship can replace a two-sided or many-sided relationship that is based in a non-

internet real world is still something to be studied in the wake of pandemics and quarantines. However, a longitudinal study along with qualitative studies like this one are required to be carried out in conjunction to get a bigger perspective on the effects of parasocial interactions on a person's well-being.

Works Cited

- Baumeister, R. F., & Leary, M. R., (1995). The Need to Belong: Desire for Interpersonal Attachments as a Fun Human Motivation. *Psychological Bulletin*, 117(3), 497–529. DOI: 10.1037//0033-2909.117.3.497
- Cohen, Jonathan. "Parasocial Breakup from Favourite Television Characters: The Role of Attachment Styles and Relationship Intensity." *Journal of Social and Personal relationships* 21.2 (2004): 187-202.
- Giles, David C. "Parasocial interaction: A Review of the Literature and a Model for Future Research." *Media Psychology* 4.3 (2002): 279-305.
- Hartmann, Tilo, and Charlotte Goldhoorn. "Horton And Wohl Revisited: Exploring Viewers' Experience Of Parasocial Interaction." *Journal of Communication* 61.6 (2011): 1104-1121.
- Horton, Donald, and R. Richard Wohl. "Mass Communication and Para-Social Interaction: Observations on Intimacy at a Distance." *Psychiatry* 19.3 (1956): 215-229.
- Litvack, Leon. "Dickens, Celebrity Culture, and the 'Para-Social Relationship". In: *The Dickensian.* 2020; Vol. 116, No. 2. pp. 146-161.
- McCutcheon, Lynn E. "Are Parasocial Relationship Styles Reflected In Love Styles." *Current Research in Social Psychology* 7.6 (2002): 82-94.
- Rubin, Rebecca B., and Michael P. McHugh. "Development of Parasocial Interaction Relationships." (1987): 279-292.
- Schmid, Hannah, and Christoph Klimmt. "A Magically Nice Guy: Parasocial Relationships with Harry Potter across Different Cultures." International Communication Gazette, vol. 73, no. 3, Apr. 2011, pp. 252–269, DOI: 10.1177/1748048510393658.
- Schramm, Holger, and Tilo Hartmann. "The PSI-Process Scales. A New Measure to Assess the Intensity and Breadth of Parasocial Processes." (2008): 385-401.
- Tukachinsky Forster, Riva. Parasocial Romantic Relationships: Falling in Love with Media Figures. United States, Lexington Books, 2021.
- Tukachinsky, Riva, Nathan Walter, and Camille J. Saucier. "Antecedents and Effects of Parasocial Relationships: A Meta-Analysis." *Journal of Communication* 70.6 (2020): 868-894.
- Zsila, Agnes. "The Routledge Handbook of Media Use and Well-Being." *Journal of Behavioural Addictions* 6.2 (2017): 264-267.

●

Public Life and its Choices
Impact of Justice on Ethics and Morality

Dr. Manoj Kumar Singh*

Abstract : Relatively most public and private arguments focus on justice. Are our actions fair? Are our taxes fair? Is our school system fair? This idea of fairness is closely linked to how one deserves to be treated by others. Ethics and morality, too, are intrinsically bridged to fairness and justice. The idea of a country is derived from the idea of being ethical to its culture and doing justice to its culture and people. Democracy and constitutions have ethics, morality and justice as the central core of their genesis. Morality and Justice are derived from ethics. Ethics are strong standards that guide humans in describing what is right or wrong. Ethics are certain human virtues in the form of rights and obligations that benefit society. Fairness, altruism, justice, ethics and morality all centre on the idea of equality and discrimination. More than two thousand years ago, these ideas were presented by Aristotle and these principles of justice and fairness are equally applicable today.

The researcher has explored justice as a central part of ethics and ethical decision-making as a central part of morality and subsequently, morality is the recognition of the basic right to dignity. This approach tries to understand ethical lapses and subjective ethics to understand the practical implications they have on society, culture and our interdependent welfare.

Keywords: Justice. Fairness. Ethical. Social Stability. Equal Dignity. Ethical Lapse. Interdependent Welfare.

Introduction : Justice is a complicated and complex ethical and philosophical principle. It is complicated as there is no one meaning of justice and therefore no one interpretation of it. Each scenario requires looking at justice from different perspectives which are applicable to the case. At the same time, justice is complex as it is a concept that involves fairness and equitable treatment. If justice is about treating people with fairness, then the meaning of what is fair has to be understood and discoursed with. Additionally, Justice involves the application of ethics and moral behaviour that need to be examined on their own terms. In the public domain, Justice involves the realisation of the various rights of the individuals as well as their duties and responsibilities toward each other

Ostensibly, justice and ethics go hand in hand. The challenge arises when applying justice in different situations and ensuring that the

* Assistant Professor– Department of Philosophy, Vasant Kanya Mahavidyalaya, Varanasi, Uttar Pradesh

intentions of justice, which is, to be good and to do good are upheld in any case.

Review of Literature : To set the ground for this research, A Short History of Ethics (MacIntyre, 2002) has been used as a guide to understanding the history of moral philosophy and ethical behaviour from the Grecian era to contemporary times. This book has been relevant to the research as it has shown the importance of understanding moral concepts and their history. The current research has benefitted from the understanding of MacIntyre's historical account of the philosophy of morality and has provided the meaning of Morality and Ethics in the wider public domain.

The second book that the researcher would like to mention is Dean Moyar's ground-breaking book -*Hegel's value: Justice as the Living Good,* 2021. The analysis of the concepts of Justice, morality and ethical decision-making as pluralistic concepts that centre on the value and satisfaction of basic human needs. Moyar has systematically studied Hegel's Philosophy of the Right. This "right" as Hegel points out is a freedom and an action borne out of free choice, welfare and care.

Equality is a form of injustice and for justice is said to be done when the benefits of it reaches the most economically underprivileged sections of society. *The Theory of Justice* (1971) by John Rawls is considered to be a seminal book in understanding justice as a political philosophy. For Rawls, justice focuses on equality and the development of all sections of society. But what this research intends to take from Rawls and examine further is the understanding that Justice is a broad notion and encompasses many meanings andconcepts.Although justice is the central notion in many social institutions of healthcare and education yet we see many institutions that function in being unjust and unethical.

This literature review explores the various concepts of justice, ethics and morality concerning its historical backgrounds as well as contemporary codes of conduct in the fields of Science, Punishment and human research. These theoretical and philosophical frameworks of the above-mentioned concepts have been major milestones in understanding and evolving these ideas of fairness and equality. The researcher also discusses, in brief, the emerging challenges in the areas of justice concerning social justice, unethical code of conduct and ethical decision-making.

Historical Perspectives of Justice : Drawing on the earliest philosophers of Justice, Ethics and Morality, this paper analyses the varied meanings that these concepts have. The basic tenets of justice, ethics and morality can be traced to aspects of dignity and harmony not only at the individual level but also at the macro-level of the nation and the global

economy. Additionally, this paper studies how these notions have a deep impact on society by laying the foundations for disturbance and strife if members of the society feel they have been unjustly treated. (Johnston 219-224)

Justice and Ethics have been a central focus of all philosophers, economists, scientists, mathematicians, singers and artists. They have all defined justice in their ways but the core of it is always the same- that right to equal dignity is a basic human right. All these philosophers, economists, scientists, mathematicians, singers and artists might have had a different medium to reach this understanding but mutual recognition that every part should get its due is the central focus of the arguments and discussions on ethics, justice and fairness. Equality is the ringmaster.

Historically, Justice is the central point in ethics. It is also the fulcrum of political, legal and democratic philosophy. Public actions, individual actions, institutional actions and legal proceedings are all driven by a sense of unjust and justice. Justice is a strong motivating factor for our actions. Even those who murder or rape or kill believe that they were feeling wronged somewhere and the crime in itself becomes an act of justice that they bestow upon themselves because society, law or moral conscience hasn't been able to do so for them. (Johnston 67)

Historically speaking, "Justice was considered one of the four fundamentalqualities and in modern times", it is the single most driving factor of many social institutions like courts, media and politics. John Rawls famously described it as "the first virtue of social institutions" (Rawls 3).

This paper identifies the wide-ranging concept of justice by understanding Justice as understood by many philosophers both in the past and the present. Additionally, the paper also examines them from the point of view it takes in many practical situations in society.

Research Methodology : The researcher begins the paper by identifying Justice, Morality and Ethics and distinguishing it from each other and other political and philosophical ideas. Then, some major concepts are examined including examining the varied types of justice-distributive justice, retributive justice, restorative justice and procedural justice. The researcher has then identified similar theoretical approaches to Morality and moral behaviour and how it governs ethical lapses and ethical decision-making.

This research then examines Justice, Morality and Ethical decision-making in public life by examining a few case studies of both the recent past and the historical past. In understanding the stand of Justice, moral behaviour and ethics in these case studies, we examine the following questions:

To whom do the principles of justice, morality and ethical behaviour apply?

Whether justice, moral behaviour and ethical decision-making apply only between people who are in a particular relationship, and whether people have justice duties once justice-based institutions have been created?

In conclusion, the researcher assesses the concept of egalitarianism and utilitarianism to understand justice and moral and ethical behaviour as both theory and practice in individual and institutional scenarios.

Purpose of Paper : Justice has occupied the human mind in both reason and faith. Questions such as what is considered fair and just behaviour in the various relations between human beings? What motivates us to do good or bad? What is the driving force behind making ethical decisions? - These are all evaluation points of this paper.

Moral Public Choice and the Philosophy of Ethics and Morality : Public Choices systematically consider ethics and justice. As Jean Jacques Rousseau finished his book on politics, *Social Contract* (1762), he wrote "Morals and Politics cannot be separated". In the recent past, to critique governments and socialist regimes, many divergent works of Rawls' (A *Theory of Justice,* 1971), Ardrey (*The Social Contract* 1970) and Rousseau (Emilie 1763) have been effectively utilised. Their social contract theory as proposed by them has not been divergent from the diversity and thus faced much disrepute as it has proposed a singular linear model for understanding politics, education and human behaviour.

However, these theories have given political and moral philosophers a mechanism to understand and probe into questions such as "Do individuals have rights above the government?" "What would a society without the state be like?" "Are society and government voluntary?" "Can individuals withdraw from society or government?" "Under what conditions?" "When is the social contract broken by society or the government?"

As Rawls in his seminal work, *Theory of Justice* says : Justice is the first virtue of social institutions, as truth is of systems of thought. A theory however elegant and economical must be rejected or revised if it is untrue; likewise, laws and institutions no matter how efficient and well-arranged must be reformed or abolished if they are unjust. Each person possesses an inviolability founded on justice that even the welfare of society as a whole cannot override.

Rawls goes on to say in his *Theory of Justice*(1971) writes that historically speaking, inequality has not been addressed in the correct manner. He says that disparities in distribution of wealth, property and resources have generally been tolerated by the legal set up. In doing so fair value and freedom has not been given to political liberty. This lack of

jurisprudence in curtailing the injustices of the political system have long-lasting effects on the society leading to political power amassing in the hands of few and thus, the constitutional rules and regulations that are required to establish justice are seldom adhered to.

There is one moral philosopher who needs to be mentioned for his contribution to ethics and its understanding in the human context- Niccole Machiavelli's book *The Prince* (1513) is significant as it offers advice to rulers and leaders on how to achieve power and secure their aims. His treatise on ethics relies specifically on what it is to be ethical. He writes:

It is necessary for a prince, who wishes to maintain himself, to learn how not to be good, and to use this knowledge and not use it, according to the necessities of the case.

Therefore, Moral judgement has no limit and there are as many varieties of morality as there is individual consciousness'. Thus, Moral judgement and moral behaviour are dependent on the conditions of the existence of each individual, which may also vary by reason of circumstances of space, time, technology, upbringing and education.

Justice and its Types : The word justice has been used a lot in the recent past, Justice for George Floyd, Justice for Ukraine and so on. There are different kinds of Justice depending upon how people are treated and justice restored to them. Let us begin by understanding Justice in the public domain. Justice is action that is implemented in tandem with a law. These laws are formulated on the grounds of human consensus and /or society but are created to ensure fairness of treatment amongst members of society. Issues of conflict with justice arise when several institutions play a significant role in causing instability and perceiving just behaviour selfishly and for their interests. Mostly, money, greed, power and lust are valid reasons for institutions and public leaders to abandon just behaviour.

John Rawls in his *Theory of Justice* writes : Historically one of the main defects of constitutional government has been the failure to ensure the fair value of political liberty. The necessary corrective steps have not been taken, indeed, they never seem to have been seriously entertained. Disparities in the distribution of property and wealth that far exceed what is compatible with political equality have generally been tolerated by the legal system. Public resources have not been devoted to maintaining the institutions required for the fair value of political liberty. Essentially the fault lies in the fact that the democratic political process is at best-regulated rivalry; it does not even in theory have the desirable properties that price theory ascribes to truly competitive markets. Moreover, the effects of injustices in the political system are much more grave and long-lasting than market imperfections. Political power rapidly accumulates and becomes unequal…financed not by public funds but by private contributions, the

political forum is so constrained by the wishes of the dominant interests that the basic measures needed to establish just constitutional rule are seldom properly presented.

In this research, four different kinds of justice have been examined in the light of recent political events that have taken place around the globe. These four types of Justice are :

· Distributive · Procedural · Retributive and,
· Restorative

Distributive Justice is also called Economic Justice and is related to the equal distribution of resources to the people. The problems in Distributive justice arise when different people define fairness in different ways.

Procedural Justice concerns itself with implementing processes and taking ethical decisions that ensure fair treatment of individuals. The procedures involved in guaranteeing justice and equality to citizens. For instance, the rights and freedoms that have been given to Indian Citizens by the constitution are processes that ensure that just behaviour is sustained in society and civil society.

Retributive Justice is a type of justice that believes in equal treatment.

Restorative Justice focuses on criminals and healing the mental and physical wounds of individuals by counselling and taking an active role in being responsible for them. By making them feel part of the main society by giving them roles and responsibilities, Restorative Justice works in the ethical treatment of prisoners.

Ethics : Ethics, to be put across simply, is based on a set of values, virtues and principles that prescribe what humans ought to do concerning rights, duties, justice, equality, or fairness. These virtues of ethical behaviour are not as same as being a lawful citizen. The law incorporates ethical behaviour and standards into its formation and most citizens normally subscribe to this but laws, as history tells us, can deviate much further from what is ethical.

For instance, The Apartheid Laws in the United States of America or the Hijab Law in Karnataka are all examples of how laws can deviate from being inclusive and ethical.

An additional point to be noted here is that being ethical is not accepting what society wants from you. Entire Societies can become morally and ethically corrupt because society expects that from them through means of coercion and force. For instance, Nazi Germany and North Korea.

If Ethics is not what society tells us to do and ethics is not what religion tells us to do or what laws tell us to do, then what are ethics and

what is ethical decision making or ethical behaviour?

Manuel Velasquez, Claire Andre, Thomas Shanks, S.J., and Michael J. Meyer in their article aptly titled, Justice and Fairness (1990), refer to ethics as two things;

Firstly, Ethics are standards of right and wrong that prescribe a particular set of behaviour that benefits society. Ethics are standards that are implemented in the behaviour of citizens so as to impose "reasonable obligations" to "refrain from rape, stealing, murder, assault, slander and fraud."

Secondly, Inghilleri points out, ethics also includes the study and development of one's own ethical standards as thus:

Feelings, laws, and social norms can deviate from what is ethical. So it is necessary to constantly examine one's standards to ensure that they are reasonable and well-founded. Ethics also means, then, the continuous effort of studying our own moral beliefs and our moral conduct and striving to ensure that we, and the institutions we help to shape, live up to standards that are reasonable and solidly based. (Inghilleri 132)

Asoka, the powerful Indian ruler who had a change of heart after killing thousands in a battle, spoke of Ethics or *Dhamma* in different ways. He mentioned ethics as being of three kinds, rather, being practised in three domains. The first is Interpersonal Ethics and Morality.This means that we have special duties and responsibilities towards our children, spouse, parents, our pets, teachers, friends and relatives. This private ethic is different from the public ethic that we exercise in a group situation. Nevertheless, harmony and moderate behaviour were the key in both the spheres. Hate speeches and self-glorifying speeches were not part of this public ethic. *(*Bhargava *Private, public and political morality)*

This point is quite relevant today as both hate speeches and self-glorifying speeches are intertwined to expect a certain behaviour in the society. Today, this behaviour can be seen across spectrums of different fields- films, media, social media and politics. A commitment to justice and fairness is warped by leaders across the globe to remain powerful. *Janahita*, the good of all (including all living species), and *janasukham* is as much an imperative in political morality as retention of power is. (Ranganathan 353)

Can we be truly impartial? In encounters with our close family and friends, we can't help but be impartial but when it comes to the public and the political domain, does a just use of power exist wherein we face people with varied socio-religious backgrounds?

Hegelian model of Morality, Ethics and Justice : The German Philosopher, Friedrich Hegel, wrote about the three spheres of human life-family, civil society and the state. The family was the smallest community

and one that was bound by mutual love and affection. In this setup morality, ethics and justice were guided by feelings and emotions.

In the second sphere of civil society, every person has his/her own identity and understands or is trying to understand her/his place in the larger economy or market society. There are no bonds of affection and life is governed by rules and legal systems.

The third sphere that Hegel spoke about was the large political community, as citizens of a state who shared common values of nation and nationhood. Values that are guided by a shared political cultural tradition. This domain is not guided by u articulated feelings but by public reasons. In recent examples of this public reason in the political sphere, we see a deliberate attempt to guide people by values of vigilante, religious doctrine and intolerance. Its democratic version, guided by values of openness, equal respect and justice, helps the leaders arrive at impartial policies and laws. (Johnston 32)

Therefore, the Hegelian model suggests that people or communities that are politically more powerful affect the lives of civil society and the family. They should be aware of this and their actions and decisions should reflect these ethics which will lead to a just governance. They are morally and publicly responsible for a large number of people and have at their disposal instruments of violence to provoke and wreak havoc in society by disturbing its equilibrium. Powerful politicians must be more sensitive to the use of force and violence

Private Morality versus Public Morality : The Hegelian Model of Social Contract, Ethics and Justice discusses the political morality of powerful leaders. Does this morality, ethic and just behaviour have any link to their private lives? To explicate this question further- Are powerful people who are ethical, just and moral in their public life equally ethical, just and moral in their private lives?? This simply cannot be the case those who fulfil all the ethical expectations of their family, spouse and friends can be partial and discriminating politicians or leaders. What use is personal incorruptibility if this is the case? Similarly, the leaders who abandon public reason and coerce people into worshipping by undermining virtues of justice, ethics and moral reason can be profoundly good and honest people in their family life.

Conclusion : Justice, ethics and morality in public life are the core of many political and legal theories. Justice is simply not just doing well to others but is a product of a reason and agreement between individuals and societies that have different notions of being or doing good.Morality and ethics are substructures within the frame of justice. Issues of injustice do not arise from religious communities or political communities but rather from having different notions of justice. One group claims justice for their

side and bases their claim on a certain belief or principle. These decisions of right and wrong permeate our everyday existence and are core to all levels of life: Daily, civil society and political community. Justice and ethical decision-making in public life require constant practice and sensitivity in dealing with the implications of conflicts and their solutions. Societies and legal systems should have a framework for ethical decision-making and its implementation. This framework should rely on dialogue with others to address the causes of unethical behaviour. Facilitated by different perspectives and regular practice of doing so can lead to ethical decision-making in the case of public and political choices. This, in turn, will positively affect the lives of many people.

Works Cited

- Bhargava, Rajeev. "Private, Public and Political Morality.", *The Hindu*, 13 May 2019, www.thehindu.com/opinion/op-ed/private-public-and-political-morality/article27118959.ece.
- Brown University. "A Framework for Making Ethical Decisions", Science *and Technology Studies.*www.brown.edu/academics/science-and-technology-studies/framework-making-ethical-decisions.
- Inghilleri, Moira. *Interpreting Justice: Ethics, Politics and Language*. N.P., Taylor & Francis, 2013.
- Johnston, David. *A Brief History of Justice*. Germany, Wiley, 2011.
- Kohlberg, Lawrence, 1927-1987. The Philosophy of Moral Development: Moral Stages and the Idea of Justice. San Francisco: Harper & Row, 1981.
- Macintyre, Alasdair. *A Short History of Ethics: A History of Moral Philosophy from the Homeric Age to the 20th Century.* The United Kingdom, Taylor & Francis, 2003.
- Moyar, Dean. "Hegel's Value: Justice as the Living Good". United States, Oxford University Press. 2021
- Ranganathan, Shyam. "Ethics and the history of Indian philosophy", India, Motilal Banarsidass Publishers, 2007.
- Rawls, John. *A Theory of Justice*. India, Harvard University Press, 2005.
- Udehn, Lars. *The Limits of Public Choice: A Sociological Critique of the Economic Theory of Politics.* The United Kingdom, Taylor & Francis, 2002.
- University, Santa Clara. "Justice and Fairness." *Markkula Centre for Applied Ethics*, Aug. 2018, www.scu.edu/ethics/ethics-resources/ethical-decision-making/justice-and-fairness/.

●

A Study of Corporate Social Responsibility (CSR) Initiativs In Uttar Pradesh

Preeti Shukla*

ABSTRACT : The position of Uttar Pradesh in India is first in terms of population and fourth in terms of area. This state is known for his architecture, culture, art, agriculture and has rich mythology and traditions. It gives major contributions in the Indian economy. Considering the population, size and economic contributions of Uttar Pradesh the need for CSR programs is very high. Government has been taken various steps for the welfare of the state but government efforts alone could not do enough. Everyone should give contribution to society. Indian Corporate sectors have also playing very vital role in welfare of society through Corporate Social Responsibility (CSR). The aim of this paper is to discuss the CSR activities done by various corporate houses in Uttar Pradesh.

KEY WORDS- CSR, Companies Act 2013, philanthropic activities, Uttar Pradesh.

INTRODUCTION : The concept of Corporate Social Responsibility (CSR) is not new to India. What's new is a shift in corporate's voluntary philanthropic activities to making it a mandate core business practice. In the year of 2013, new companies act came up with a new corporate policy which was CSR policy under which all those profitable businesses which are having;

- Turnover of Rs. 1000 Crore or more;
- Net worth of Rs. 500 Crore or more;
- Net Profit of Rs. 5 Crore or more;

Have to contribute 2% of their average net profit of preceding three years on social activities which are prescribed under schedule VII of companies act 2013. The CSR policy notified the areas of CSR funding which includes major key issues of society and environment like education, health, employability, hunger, poverty, gender equality, tourism and many more.

CSR defined by different authors in the following manners—

Philip Kotler &Nancy Lee[1] in 2005 described CSR as "A commitment to improve community well being through discretionary business practices and contributions of corporate resources"

Mallen Baker[2] explains CSR as "A way companies manage the business processes to produce an overall positive impact on society."

* Research Scholar (UGC-NET)– Nehru Gram Bharati (Deemed to be University) Department of Commerce, Prayagraj.

Archie Carroll[3] in 1991 describes CSR as a multi layered concept that can be differentiated into four interrelated aspects – economic, legal, ethical and philanthropic responsibilities.

OBJECTIVES OF THE STUDY :

• To examine the status of CSR in Uttar Pradesh.

• To study the CSR programs directly conducted by corporate.

• To study the CSR programs conducted by government from those funds which are supported by CSR funding.

• To evaluate the top CSR initiatives and strategies in Uttar Pradesh.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY- This study gives a significance contribution in describing a brief idea of the rules by which CSR activities were made mandatory for corporate sector. The main part of the paper is the analysis of the CSR activities in Uttar Pradesh. This analysis includes the amount expended on CSR activities, districts covered & the analysis of various areas of CSR spending in the state.

RESEARCH METHODOLOGY- This paper is based on review of secondary data. The data has been obtained from several government reports, research papers, books, articles, and some information available on websites.

REVIEW OF LITERATURE- Horrigan indicated CSR, at the "G8 Summit of World Leaders in 2007", "CSR has emerged clearly from a secondary global concern into the spotlight as primary international policy issue listed at par with climate change, international security, sustainable development and free trade and investment". "Corporate Social Responsibility is the continuing commitment by business to behave ethically and contribute to economic development while improving the quality of life of the workforce and their families as well as of the local community and society at large". — According to World Business Council for Sustainable Development UN explains "Community Development is an organized effort of individuals in collaboration with external organization." These external organizations, involves non-government as well as government organization, MNCs (Multi-National Corporations) and some Medium scale or Small Scale Enterprises (SMEs).

"Federation of Community Development Learning" in context of community development put emphasis on educating, enabling and empowering the local people.

CONSIDERABLE CSR INITIATIVS IN UTTAR PRADESH-

• Top ten companies in the FY 2020-21

Rank	Name of Companies	Amount spent (INR Lakhs)
1	Hcl Tecnologies Limited	13228
2	Reliance Industries Limited	10100
3	Northern Coalfields Limited	3117
4	Ntpc Limited	2873
5	Samsung India	2556
6	Hindustan Aeronautics Limited	2473
7	Bennett Coleman & Co. Ltd	2302
8	Dcm Shriram Ltd	1921
9	Indian Oil Corporation	1039
10	Lanco Anpara Power Ltd	956

Source : National CSR Portal[5]

• Top ten districts in FY 2020-21

S.N.	Districts Name	Amount in lakhs
1	Gautam Buddha Nagar	6317
2	Lucknow	2967
3	Sonbhadra	2503
4	Mathura	2127
5	Varanasi	1311
6	Ayodhya	1074
7	Ghaziabad	930
8	Amethi	841
9	Kanpur Nagar	660
10	Agra	505

Source : National CSR Portal[5]

• Project Samarth by FMC India-

This project aimed at providing farmers with pure water and health. The company has already set up 21 large community water filtration plants. It plans to install another 20 plants in villages of the state by next year.

• Project Parivartan by HDFC Bank-

AROH Foundation and HDFC Bank, under the holistic rural development project "Parivartan", have adopted 15 villages in the Pindra block Varanasi. The objective of the project is to develop the adopted villages into self-sustaining model villages.

• GAIL Utkarsh Super 100-

This programme aims at coaching meritorious students from unprivileged section of the society from IIT-JEE. The students are provided with free food, accommodation and coaching throughout.

• Reducing plastic waste in the Ganga project-Aviral

Alliance to end plastic waste and Deutsche Gesellschaft fur International Zusammenarbeit (GIZ) launched the Aviral- Reducing Plastic Waste in the Ganga pilot project. Its aims to reduce the plastic waste entering in the environment in the northern Indian cities.

CONCLUSION- The above discussion states that the CSR activities are playing vital role in the upliftment of state. CSR activities of U.P. concentrates on Education, livelihood and differently abled and secondly on Health, Eradicating Hunger, Poverty and Malnutrition, Safe Drinking Water & Sanitation. It also need to be noted that socially responsibility companies are devoting to the safety and well being of society in general in time of crisis.

REFERANCES-

1. Philip Kotler & Nancy Lee (2005),Corporate Social Responsibility- Doing the Most Good for your Company and your Cause, John Wiley & Sons (Reprint 2011)
2. http://mallenbaker.net/article/clear-reflection/definitions-of-corporatesocial responsibility-what-is-csr
3. Carroll Archie B.,The Pyramid of Corporate Social Responsibility: Toward the Moral Management of Organizational Stakeholders, Business Horizons, July-August 1991
4. Section 135 of Companies Act 2013 incorporated by Ministry of Corporate Affairs Applicable from 1st April 2014
5. www.csr.gov.in— the official website of National CSR Data Portal
6. www.mca.gov.in— the official website of the Ministry of Corporate Affairs, Govt. of India.

●

Women's Legal and Social Safety in India
An Analytical Study

Ms. Sonika Sharma*

Abstract : Safety of Women in India has become a major issue in India now. The crime rates against women in the country have only risen to a great extent. Women think twice before stepping out of their homes, especially at the night. This is, unfortunately, the sad reality of our country that lives in constant fear. Women in India have been given equal rights as men; however, people do not follow this rule. They contribute to the growth and development of our country; still, they are living in fear. Women are now on respected positions in the country, but if we take a look behind the curtains, we see even then they are being exploited. Each day we read about horrific crimes being committed against women in our country like it's a norm.

Key Words : Women's Safety, domestic violence, Social safety, Sexual harassment.

INTRODUCTION : Women safety in India is widely discussed everywhere nowadays. It has now become a major issue. The crime rate is on the spike. Women are neither safe outside nor at home. Women travelers from other countries are also in a dubious state while thinking about coming to India. However, this fear cannot keep them away from any kind of social activity. There are laws but there should be proper safety measures which we have to follow strictly to protect the women from violence. Along with essays on Women's safety in India, there are many other sample essays being provided on our site and mobile app as well. Take a look into it for further reference. Women's Safety In India Essay Women's safety in this country is a major concern and therefore should be talked about as much as possible. She is strong, she is worshiped in this country. She is a mother, she is a sister, a grandmother, a wife. She plays many roles and yet, she is not safe. She lives in terror and fear. She is scared to go from her house to a shop nearby at night. Women's safety is a big concern that must be addressed in a country like ours. India is definitely not the safest country for our women. For a country that has been known for worshiping gods like The Durga, Laxmi and The Kali, we clearly need to start worrying about the issue of how unsafe women have become in the country. Women of all ages are currently facing some sort of crime against their rights and are suffering in the worst ways. The more we keep letting things like these happen, the more they will continue to grow. We need to make sure that the safety of the women in our country is something that we talk about all the time. Only

* Assistant Professor– Law Department, HR Group of Institution, (Ghaziabad, U.P.)

when we plan on making the most regular everyday activities for the women in our country safe, will we be able to call ourselves a successful nation.

ANALYSING THE EFFECTIVENESS OF EXISTING WOMEN PROTECTION LAWS : Women's life is endangered due to violence and discrimination and kept them away from participating in any social activity. In India, the rapid increase in crimes of women violence through Durga, Sati, Sabitri are worshipped by the people treating them as the goddess. Women are caged in the houses previously, but urbanization forces them to break these jails and show their talent to the world at par with men. Women showed their talent in every sector from the taxi driver to the CEO of multinational corporate companies. People must shrug off the idea that women can't do anything by going out of the house. They should admit that she has set foot on the moon too. Kalpana Chawala, the first Indian woman astronaut stepping on the moon, became a role model for not only women around the world but also all other men who desire to be astronauts. She became an inspiration in front of the whole world.

SAFETY OF WOMEN FROM DOMESTIC VIOLENCE ACT, 2005

In India domestic abuse, sexual assault and murder are common forms of violence against women. Dowry death is an ultimate form of murder. Indians are still with the psychology that dowry is tradition and girls' fathers lose everything to pay it. Domestic violence or domestic abuse is done by one partner with the other partner in a relationship. The rate of domestic violence is increasing in India. 70% of women are victims of domestic violence. It leads to depression and suicides. It's not a direct murder but it is a cause of murder for sure. Moreover, girls are forced into marriage at a young age. This child bride is not even mature enough to understand her responsibility. Acid throwing is a form of violent assault which ruins the beautiful girl's life. 'Cheat in a relationship' is another commonly found crime against women. A man easily breaks up with his wife and starts a new life with another bride. There are many places in the country where women are still not aware of some of the most basic rights that they can take advantage of in order to empower themselves. This brings us to the next thing that needs the attention of people living in our country.

The most important way to ensure that women are staying safe in the country is by making sure that they are empowered on an everyday basis. Many women living in socially and economically backward areas are being victims of domestic violence, without being aware of what they should be doing in order to prevent this from happening and taking a stand for themselves after this happens, women keep on enduring this horrible behavior against them. Hence, empowering them and by making them

aware of what they must be doing, who they should be reaching out to and just exactly why it is important to not stay silent are some of the most important things that we need to bring our attention to women safety is a crucial concern in India and a lot of organizations started working on it after Nirbhaya's case.

Women should adopt some self-defence tips and tricks so that it proves helpful during the worst sceneries for them. Countless videos and information about such defensive techniques are available online for educating women's safety. Primary and frontier tip for women is if it seems even a slight unsafe it's better to get out of that place immediately. Violence is widely observed in public transports, so she should try to avoid travelling with public transports at night, and if it's not possible then make sure you travel with enough crowd. If she is driving alone, don't give a lift to strangers, because we are not sure about their intentions. Using a smartphone wisely can provide a bodyguard in emergencies. There is plenty of handy equipment available in the market which will provide assistance at the time of emergencies. Keeping such equipment, sprays, and small blades in the purse can be useful if things go wrong. Precautions are always better than cure! To protect women from domestic violence 'The Parliament of India' passed 'The Protection of Women from Domestic violence Act 2005'

Women's Social Security and Protection in India : The Preamble to the Constitution declares that the Republic of India shall secure social justice for all its citizens. In keeping with this basic founding principle, through the last few decades, successive governments have implemented several social protection programs to provide a basic safety net for the women. In this framework, State governments are key actors – for they operate their own schemes and implement national programs to cater to local contexts.

Following the national lockdown declared on the evening of March 24, 2020, millions of migrants, daily wage workers, informal sector workers, farmers, and other marginalized groups suddenly found themselves more dependent on national and state level social protection systems, vulnerable to job and income losses, health-related shocks, and emergencies.

Social security for women in India, despite the existence of multiple Government sponsored schemes, is an issue that has not yet been tackled efficiently as these schemes still fail to reach the most marginalized women in society. Due to a series of systemic failures, women's lives and work are adversely impacted in both the productive and reproductive domains. There is, thus, an urgent need to efficiently implement social security schemes for women in order to counter their vulnerability in our society.

What are the social security needs of women in India? What are the gaps in the social security discourse for women in India? How can these gaps be bridged? How can the social security system in India recognise and honour women's rights to social security in their individual capacities as rights-holders apart from their position in a household, their age or marital status? How can the women have platforms to share their concerns and influence policy-making? How can social security concerns promote livelihood security for women and help them move up the value chain of production and marketing? How can social security systems in India redistribute the burden of caring for the family, children and the elderly that is exclusively shouldered by women?

Conclusion : In the 21st century, women have achieved the zenith of success in every field of life. People talk about technology, space, and advancement, on another end, it holds no dignity for these rural women excreting in fields and waiting for darkness to answer nature's call. But after witnessing such incidents of violence they fear to go out even at night. It cost them a heavy price, on their health holding their bowels and bladders for hours. There is a constant fear of wild animals and men waiting to grab them like vultures from all sides. Rural women, facing certain restrictions on sanitation access because of social standards and taboos related to menstruation and female sexuality. With no access to sanitary pads and proper disposal places, these women get infected regularly. The day women in India will feel safe to do the most basic things like going to nearby shops without the fear of anything is when we will truly succeed as a country.

REFERENCES :

1. Acts
2. Indian Penal Code, 1860.
3. Protection of Women from Domestic Violence Act.
4. Sexual Harassment of the Women at the Workplace Available at legal service India
5. The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 Read
6. The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013

●

Constitutional Provisions and Sex Ratio :
B.R. Ambedkar's views on women's Empowerment

Niyati Mistry*

Abstract Indian Constitution is a dynamic document, unique in many ways. The constituent assembly took two years eleven months and seven days of thought provoking deliberations and dialogues to complete its historical task of drafting the Constitution of independent India. The Architect of our constitution, Dr. Baba Saheb Ambedkar, along with a galaxy of scholars, doyens of jurisprudence , who were all passionate about ensuring healthy, happy, harmonious state; where welfare of each living body is assured, what they are inherently entitled to. Constitution emphasizes and assures certain civil, political, social, economic and cultural rights, which outlines our commitment to Human rights as a nation. Article 21 assures right to life, but our society denies this very precious right of, 'Being born' to girls. Some Asian countries are known for their strong gender bias; India being one of them has 37miilion surplus men in its population. Unfortunately Gujarat has also emerged as one of these states, where 2,580,936 girls are missing from its population. This paper is divided into two parts, the first part deals with Dr. Baba saheb Ambedkar's endeavor to ensure Gender equality and justice, which is a pre condition for gender balanced society. Second part deals with identifying districts with 'missing women' in Gujarat and how our goal of ensuring gender balance in our population can be reached, to fulfill the dream our national leaders had for the country. The paper is based on census data, it is inferred that districts with less than normal sex ratio,iare violating Right to life, of girl child. Key words: Right to life, Missing women, Sex ratio, child sex ratio

1.Introduction: Remembering visionary leader Baba saheb Ambedakar at this juncture of socio-cultural transition, in the country is the most relevant. While drafting Constitution for independent India, Baba sahib, as a chairman along with galaxy of scholars envisioned socio- economic, political, spiritual empowerment of individual through social justice.

Social justice cannot be achieved without gender equality; equal opportunities, equal access to resources and equal respect for, 'women' which consists almost fifty percent of population.As per medical science the ratio of females per thousand males in population at the time of birth is 952females per thousand males or 106 males per 100 females, without any biased intervention. Looking at census records of India and Gujarat one can conclude that men outnumber women by large margin which is not, 'Normal'. Equality of gender is enshrined in constitution but not in our

* Head & Associate Professor– Department of Geography, Government Arts College, Gandhinagar, Gujarat

'life', which is reflected in our skewed sex ratio.

As per the census of India number of females per thousand males is defined as sex ratio. While number of girls per thousand boys in 0-6 years' age group is known as child sex ratio. Sex ratio is an important indicator of status of women in society, evidence of gender equality. In 1961 Pravin Visaria in census monograph, attributed the phenomena of deficit females in population to excessive female mortality, differences in male-female mortality due to neglect of girl child, early marriages, unequal access to family resources, social practice of dowry and hypergamy leading to female infanticides. 1991 Amrtya sen coined a term, 'missing women' indicating demographic imbalance in India and other Asian countries.

2. Dr. Baba saheb Ambedkar's vision and constitutional provisions to ensure Gender Equality : Baba saheb believed in social justice through inclusive growth, his strong convictions provided constitutional safe guard to women. Gender equality is ensured in preamble, fundamental rights, fundamental duties and Directive principles in Indian Constitution.

He saw that women's rights are included in constitution, his concern for women is reflected in following articles.

- Article 14-Right to equality; guarantee equality in opportunities, access and inclusion, Article 15-prohibition of discrimination on the grounds of religion, race, caste, sex and place of birth,
- Article 21- Right to life and personal liberty,
- Article 39-Equal means of livelihood and equal pay for equal work,
- Article 42 provision for just and human conditions of work and for maternity relief,
- Article 51(A)e. to renounce practices derogatory to the dignity of women,
- Article 243 allocation of seats in the panchayati raj system to ensure political participation.

Apart from these, there are legal provisions enacted by parliament to assure gender justice, e.g. sati prevention Act,1987, Dowry prohibition Act,1961, The family courts Act,1984, The maternity benefits,Act,1961, Immoral traffic (prevention)Act, 1956, The child marriage restrain Act,1929, The pre natal diagnostic Technique (Regulation and prevention of misuse) Act, 1994, and Preconception and pre natal diagnostic Technique (amended 2003),The legal practitioners (women) Act,1923, The Domestic violence Act, 2005 to name a few.

Dr. Ambedkar's jurisprudence is imbibed in constitution to end all types of disparities and discrimination prevailing in Indian society, regarding women.

3. Missing women in Gujarat : Despite of these proactive mechanism in our constitution to address the issue, the ground reality is

dis-heartening. As Article 21 Right to life reads,

"No person shall be deprived of his life or personal liberty except, according to procedure established by law."

But unfortunately right to life is being widely violated, to ensure the birth of preferred child - a 'Son'. Census reports reveal a continued trend of declining sex ratio at national and state level. Table:1 is self explanatory. Gujarat's Sex ratio (all age groups) was 940 females per thousand males in 1961which has dwindled to 918 per thousand in 2011. Taking sex ratio at birth of 952 females per thousand males, as normal sex ratio as per medical science; there were 12 females missing in Gujarat in 1961which has increased to 34 in 2011.

Table 1
Sex ratio in Gujarat 1961 to 2011

CENSUS YEAR	1961	1971	1981	1991	2001	2011
Total	940	934	942	934	920	918
rural	956	951	959	949	945	949
urban	896	893	905	907	880	880

Source : Census of India, 2011 This trend of missing women has strong intra district variations. District wise data of last six decades has ups and downs in temporal pattern, while spatial pattern is also highly uneven.

Out of twenty six districts of Gujarat, in 1961 fifteen districts had sex ratio above normal (952 females per 1000 males), in 2011 only eight districts had above normal sex ratio.

Table : 2 Sex ratio in Gujarat 1961-2011, and number of missing women as per 2011 census

	1961	1971	1981	1991	2001	2011	Missing women in 2011
India	941	930	934	927	933	940	12
Gujarat	940	934	942	934	920	918	34
Kachchh	1041	1012	999	964	942	907	45
Banaskantha	947	941	947	934	930	936	16
Patan	956	957	963	944	932	935	17
Mahesana	974	961	974	951	927	925	27
Sabarkantha	954	965	976	965	947	950	02
Gandhinagar	961	936	943	935	913	920	32
Ahmadabad	852	863	888	897	892	903	49
Surendranagar	943	941	934	921	924	929	23
Rajkot	963	947	947	946	930	924	28
Jamnagar	952	942	949	949	941	938	14

Porbandar	962	952	967	960	946	947	05
Junagadh	949	933	954	960	955	952	00
Amreli	959	957	980	985	987	964	+12
Bhavnagar	936	944	954	944	937	931	21
Anand	890	880	905	912	910	921	31
Kheda	914	907	924	924	923	937	15
PanchMahals	925	930	942	934	938	945	07
Dahod	954	964	984	976	985	986	+34
Vadodara	906	900	915	913	919	934	18
Narmada	952	961	954	947	949	960	+08
Bharuch	945	944	938	925	921	924	28
The Dangs	913	946	970	983	987	1007	+55
Navsari	1030	1002	975	958	955	961	+09
Valsad	1005	992	989	957	920	926	26
Surat	967	943	908	882	810	788	164
Tapi	972	957	989	987	996	1004	+52

Source : Calculated on the basis of Census of India, 2011

As per Table:2, The Dangs , Dahod, Tapi, Narmada, Navsari and Amreli are districts which have robust sex ratio, while all others have missing women from its population. Surat tops the list in number of missing women with 164 women missing from the scene. Ahmadabad, Kachchh, Gandhinagar and Anand are in second category with more than 30 missing women per 1000men from population.

All other districts except Junagadh have missing women, which indicate misuse of sex detection technique, violation of Article 21 and PCPNDT Act ,1994.

In socio-cultural fabric of India, girls are considered drain on family resources. Her upbringing, education, marriage expenses (including dowry) are of no economic value to her natal family because of patri-local marriage pattern(away from natal home after marriage). As saying goes bringing up daughter is 'watering neighbor's garden' as family will not get any benefit of bring up a daughter. This has lead to devaluation of women and preference for male children. With decline in fertility and availability of sex detection technology, historically entrenched son preference has taken a toll and created a havoc in society.

As a result of deficit of women, severe marriage squeeze is experienced; there are reports in media time and again of bride buying across the state. Increasing gender based violence is making women even more vulnerable then before. As depicted in film like, 'Martibhumi' future is doomed.

4. Conclusion : Sex ratio remains to be an important indicator of status of women in society. Historically, Gujarat has been a low sex ratio society, but there are districts with robust sex ratios. There has been

improvement in districts in last decade; result of political will and efforts of civil society organizations. But all is not well, child sex ratio and sex ratio at birth confirmed misuse of pre natal sex detection techniques. NFHS- 5 report also confirms strong son preference, almost 70 percent of women and 74 percent of men interviewed, showed a desire for at least one son in family. As experts rightly say, 'son preference is a mirror image of daughter dis-preference'.

Gujarat being a developed state has great potential to provide leadership in bringing social change, if constitutional provisions regarding gender equality are translated in to reality. Right to life will ensure 'daughter survival'. I am reminded of Baba saheb's words,

"Unity is meaning less without the accompaniment of women, Education is fruitless without educated women and agitation is incomplete without the strength of women."

This unity, education and agitation say it all. Socio-economic and political participation and empowerment of women is a key to gender justice. Solution lies in remembering and following various constitutional provisions mentioned in first part.

Let's strive to realize the dreams of Baba Saheb and other leaders by invoking Gender justice enshrined in Indian Constitution.

References :

1. As per medical science a ratio of 952 females per 1000 males appears to be a biological invariant observed in all human population with only minor variation, Guilmoto(2004).
- Agnihotri Satish,(1995) 'Missing females: A disaggregated analysis', Economic and Political weekly, 30(19): p.2074-84.
- Attane and Guilmoto (eds) (2007), Watering the neighbors' Garden, The growing female deficit in Asia, Cicred, Paris
- Arokisami Perianayagam and Goli Srinivas (2012), 'Explaining the skewed child sex ratio in Rural India: Revisiting the landholding – patriarchal Hypothesis'Economic and Political weekly,42 pp 85-94
- Census 2011,Government of India
- Dhanvijay Vaishali (2012) 'Dr. Baba saheb Ambedkar's efforts for women's empowerment and present status of women in society'Electronic International Interdisciplinary research journal,vol-Iissue II
- Dyson and Moore (1983) 'On kinship structure, female autonomy and demographic balance', Population and development Review,9:p. 35-60
- Guilmoto Christoph (2004) 'Lost in transition: missing girls in china and India, paper presented at the global Development, population and Rural livelihoods seminar , The institute of social studies, Hague
- Kashyap subhash,(2005) 'Our constitution'National Book Trust,New Delhi
- Kaur Ravinder,(2008) 'Missing women and Brides from faraway : Social consequences of the skewed sex ratio in India', AAS working papers in social Anthropology
- Miller Barbara (1981)'The endangered sex: Neglect of female children in rural north India, Cornell Uni. Press, Ithaca
- Shukla Diwakar(2011) 'Dr. B.R. Ambedkar vision towards Gender Equality, www.clubindia.com,

Analysis Of Economical Empowerment Of Women Through Mahila Arthik Vikas Mahamandal In Gadchiroli District

Mangala Durgadas Bansod* Dr. Usha Khandale**

Abstract :-

Introduction - Economical Empowerment of women means, women standing independently and participating actively in every activity of the society. MahilaArthikVikasMahamandal program was developed on the day of International Women's Day in 1975, the Maharashtra State Government announced it.

Objective - The study aims to understand the impact of Self-help groups on Economic Empowerment, to provide before and after statistics of the implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal program in the Gadchiroli district, to set the parameters for gender equality and other aspects of the program, to provide a role of Entrepreneurship in the life of women.

Methodology - The Researcher uses a mixed-method to Understand the Contribution of MahilaAarthikVikasMahamandal to the Economic Development of Women in Gadchiroli District, Maharashtra

Results -The Government, Family and Financial institutions need to take a more active role. The Government should also educate the families of the tribal women Gadchiroli district, Maharashtra for letting the women participate in the SHG group and promote economic empowerment by engaging in entrepreneurship, and other activities actively.

Keywords : Shg, MahilaArthikVikasMahamandal, GadchiroliDist, Economic Empowerment

1. Introduction : Women's Empowerment is a significant debate of the time. For decades women have been treated very unfairly and exploited from time to time. Women's Empowerment is the criteria that would promote gender equality and uplift women to stand against the Stereotypes and Prejudice running against women for years. Women Empowerment would provide women with an environment where they can make their own decisions, it would make them economically, mentally, and socially strong in the society. Maharashtra has a long history of uplifting women, it has witnessed many cooperative movements since 1947 for women(Khan, 2020). A self-help group is a cooperative group generally created by women who come from similar economic backgrounds and have a

* Assistant Professor– Centre for Higher Learning And Research in Home-Economics, Sardar Patel College, Chandrapur, Maharashtra

* Associate Professor– Sardar Patel College, Chandrapur, Maharashtra

common interest. The state of Maharastra does not give Importance to women. However, this study would impact the MahilaArthikVikasMahamandal program implemented in different talukas of Gadchiroli districts. The study would check the economic impact of the women of the Gadchiroli district after the implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal program (Priya et al., 2021)

1.1 Background : If we look back in time, women have been part of a marginalised society. However, women have somewhat understood their worth after 1991. Housewives after 2000 realised their hidden potential and helped their husbands economically (Sharma et al., 2021). Economical Empowerment of women means, women standing independently and participating actively in every activity of the society. The MahilaArthikVikasMahamandal program was developed in 1975 by the State Government of Maharashtra on the eve of International women's day. In the year 2003 Maharashtra Government declared the program as a Nodal scheme that would promote Women's Empowerment through the Self-help groups. 'MAVIM' aimed at uplifting women and providing them equal status, empowering them socially and economically, and encouraging them to have a sustainable livelihood. Vadsa, Armori, Gadchiroli, Chamorshi, Aheri, Etapalli, Bhamragarh, this taluka has been selected out of 12 talukas of the Gadchiroli district for the study. The study would see the contribution of women's economic development in the Gadchiroli District of Maharashtra.

1.2 Literature Reviews : Chandele& Shareware, This paper particularly focused on evaluating the economical development of women in the Solapur district. The Author argues that Women's Empowerment is something that brings women into the mainstream, raising their voices against societal norms, being financially independent, and politically active in society. The Author studied the Economic Development women get from the implementation or creation of Self-help groups in the Solapur district. The study was constructed on a primary basis and analysis was done through the Rank order correlation method. The findings reflected that the Self-help groups in the Solapur district have helped the women to be economically empowered and independent.

Chavan (2016),studied that Economic growth and development can result from Entrepreneurial growth in society. It has significantly improved the self-employment opportunities and been beneficial for the Industrial development as a whole. The Government has introduced several schemes for women's development and empowerment. Mahila Arthik Vikas Mahamandal, established in 1975 is the best example of that. The Author studied the program of MahilaArthikVikasMahamandal helping women to transform their lives. The study presents the different schemes followed in

the Kolhapur district under the MAVIM program to promote Entrepreneurial growth in the area. The Author evaluates the schemes available and even implementation in the Kolhapur district of Maharashtra.

Singh (2013), highlighted the fact that women constitute more than half of the population in the world, however only have 10% contributions to the economy and less than 1% in the property. The Author argued that women's empowerment is related to economic development, political activity, equality, and demographical justice. Rural areas need proper training and awareness of the economic empowerment of women and that could be achieved through the Self-help groups. The Author disclosed that Self-help groups are the creation of community groups of women who share a common perspective and want to have economic stability in their life. The paper focused on the types of Economic or Business opportunities available for women through the SHG groups.

Mahamandal (2010), studied that Ladies' strengthening has turned into a trendy expression as of late, and it has an unmistakable spot in the public authority's financial improvement plans. All things considered, same difference either way. Ladies make up a portion of the total populace and assume a significant part in the planet's general turn of events. Nonetheless, by far most of them are among the least fortunate, mistreated, distraught, and victimised. Ladies are much of the time dismissed property and legacy freedoms, as indicated by the creator. An imbalance trap could keep ages of ladies from getting schooling and cut off their support in the work market. Now and again, choices about disparities are made and completed by ladies themselves. In the new world request, no nation can advance without ladies' support in the improvement cycle.

Sathiyabamaargued that SHG has helped the rural people to eliminate or reduce their lifestyle and economic deprivation. SHG has helped women to become financially stable and support their families and even run a business with financial assistance. The Author has collected data through the primary method by creating a questionnaire and the final result suggested that - women need more support from families and government and financial institutions to achieve Economic Empowerment transformation.

1.3 Research Gap : India has nearly 50% of women in its total population. However, women somehow remain behind the curtains. The previous findings suggest that women are economically empowered. This study selects different talukas in the Gadchiroli district of Maharashtra to study the impact of SHG groups on empowering Economical upliftment of women. This paper would present a mixed approach to show the before and after statistics of the implementation of MAVIM in the Gadchiroli district. The qualitative approach would present the importance of this program as

empowering women economically, socially, and mentally.

1.4 Research Question

1. What is the impact of the self-help group under Women's Economic Development Corporation (Economic) after & before the implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal program in Gadchiroli District of Maharashtra?

2. How Economic Empowerment would promote, uplift, and provide equal status to the women of the Gadchiroli district of Maharashtra?

1.5 Importance of the Study : The development of a business venture is critical to financial growth and advancement. Business Development has had a significant impact on achieving the goals of independent work advancement specifically and modern improvement in general. Business development assists people in working in their daily environments. Since around 1991, the government has sought a balance of progress, privatisation, and globalisation. It aided the rate of economic development. Nonetheless, it has been discovered that a few segments of society are socially, educationally, and financially barred. Certain classes of society, such as ladies, avoided the turn of events. As a result, it was critical to provide them with the opportunity to venture into business ventures in order for them to make money and advance their financial situation. The Indian government has put in place

1.6 Research Objectives

- To study the impact of Self-help groups on Economic Empowerment.
- To provide before and after statistics of the implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal program in the Gadchiroli district.
- To set the parameters for gender equality and other aspects of the program.
- To provide a role of Entrepreneurship in the life of women.

1.7 Hypothesis

H0 - The implementation of MahilaArthikVikasMahamandal has not improved economic conditions, social status of the tribal women in the Gadchiroli District.

H1- The implementation of MahilaArthikVikasMahamandal has improved economic conditions, social status of the tribal women in the Gadchiroli District.

1.8 Scope and Limitation : To ensure that such unfortunate behaviour does not occur, the exploration paper adheres to specific Ethical standards. The analyst has dealt with the creativity of thoughts and ideas examined in the discoveries in accordance with the rules. The information gathered through the essential strategy has ensured the members' confidentiality. The analyst had no personal interest in the data, so all of the data gathered was solely used for the examination. The data was saved in

the specialist's PC's individual data set and would be kept there until the examination assessment process was completed. During the exploration cycle, the scientist found it difficult to deal with both the essential strategy and the optional techniques.

2. Research Methodology : The term or word Research means to regenerate something or to build up new ideas or concepts with scientific evidence that can be used for further generalisation. The Methodology Section provides the tools and techniques used in the research paper to investigate the research findings or solutions to the research problems. The Researcher uses a mixed-method to Understand the Contribution of MahilaAarthikVikasMahamandal to the Economic Development of Women in Gadchiroli District, Maharashtra. The author chooses to develop the research methodology following the Pragmatism philosophy guideline for the following research.

2.1 Research Method & Design : The Research Overview outlines the aims and objectives and provides a general idea about the research problem to evaluate the methods to be used for further analysis. The research Method investigates the theoretical perspective of the previous research findings and taking the help of the research paradigm and philosophy determines how the research design would be imposed to address the research objective and draw conclusions toward the research questions or research problems. The researcher uses the mixed method, both primary and secondary research methods. Research Design highlights the research objective and ensures the appropriate design that would promote or revolve around that particular objective. In the present study the researcher use - descriptive and explanatory research design.

2.2 Research Approach : For Research Approach the meaning can be varied from research to research, however, in general terms Research Approach includes the plan and procedures which consists of a set of assumptions for the methods required for the purpose of information gathering and analysis. The assumption of methodology is based on the central theme and research problem. Here the researcher used a mixed-method, both primary and secondary methods to analyse the Contribution of MahilaAarthikVikasMahamandal to the Economic Development of Women in Gadchiroli District, MaharastraThe researcher uses both inductive and deductive research approaches.

3. Analysis of Study

Q. What is the impact of the self-help group under Women's Economic Development Corporation (Economic) after & before the implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal program in Gadchiroli District of Maharashtra?

Responses of women before implementation of MahilaArthikVikasMahamandal

N_1: 13

$df_1 = N - 1 = 13 - 1 = 12$

M_1: 411.54

SS_1: 39757.23

$s^2_1 = SS_1/(N - 1) = 39757.23/(13-1) = 3313.1$

Responses of women after implementation of MahilaArthikVikasMahamandal

N_2: 9

$df_2 = N - 1 = 9 - 1 = 8$

M_2: 484.56

SS_2: 28630.22

$s^2_2 = SS_2/(N - 1) = 28630.22/(9-1) = 3578.78$

T-value Calculation

$s^2_p = ((df_1/(df_1 + df_2)) * s^2_1) + ((df_2/(df_2 + df_2)) * s^2_2) = ((12/20) * 3313.1) + ((8/20) * 3578.78)$

$= 3419.37$

$s^2_{M1} = s^2_p/N_1 = 3419.37/13 = 263.03$

$s^2_{M2} = s^2_p/N_2 = 3419.37/9 = 379.93$

$t = (M_1 - M_2)/\sqrt{(s^2_{M1} + s^2_{M2})} = 73.02/\sqrt{642.96} = 2.88$

Interpretation-

The t - value is 2.88 and the P-value is .004 which is less than the table value. Therefore as the t value is less than the p-value the null H0 is rejected and H1 is accepted. Thus we accept the hypothesis -"The implementation of MahilaArthikVikasMahamandal has improved the economic conditions, and social status of the tribal women in the Gadchiroli District".

This study selects different talukas in the Gadchiroli district of Maharashtra to study the impact of SHG groups on empowering Economical upliftment of women.

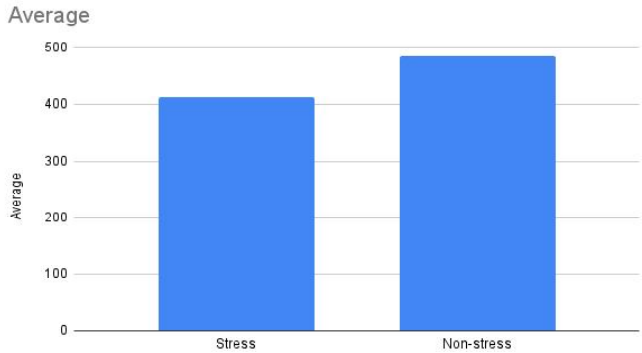

(Figure 1: The Average Score of before and after implementation of the MahilaArthikVikasMahamandal Program in Gadchiroli)

According to the survey conducted in the Gadchiroli district of Maharashtra, the women economic conditions have improved after the implementation of MahilaArthikVikasMahamandal. Mumbaiis the centre of attraction in the state Maharatstra, Maharashtra is famous for its ancient history, heritage and Mumbai. Gadchiroli District is situated far away from the city and has a tribal community. Gadchiroli has a population of 10,72,942 people , 5,41,328 are males and 5,31,614 are female in the community of Gadchiroli district (Laxsmi and Kasturi, 2020).

The locale's tribals have their own way of life. They are utilised to love their God "Persa Pen" and different divinities. They play out the "Rela" dance on favourable events and when new harvests show up. The Rela dance is a well known ancestral dance. The other dance is classified "Dhol." The vitally ancestral celebrations are Holi, Dashehara, and Deewali. The ancestral local area families live in the District's thick timberland. Ancestral ladies, similar to some other gathering, represent generally 50% of the complete populace. Ancestral ladies, similar to ladies in every single gathering, are less instructed than men. The ancestral ladies, as other gatherings, face regenerative medical problems. Ladies work more than men in essential and optional resource exercises. Ladies' status fluctuates across social orders. According to the survey, women in Gadchiroli District continue to face crimes dowry, female aborting fetuses, and domestic abuse, including marital rape, are examples of such practices. (Das and Nair,2020).Other issues that continue to affect women include patriarchal oppression, brutality, sex discrimination, a lack of chances, terrible poverty, and other injustices. Women in the Gadchiroli District were forced to stay in an isolated boundary far from their village outskirts during their period times.

Q. How Economic Empowerment would promote, uplift, and provide equal status to the women of the Gadchiroli district of Maharashtra?

Monetary development refers to women's and men's ability to participate in, contribute to, and benefit from development processes in ways that recognize the value of their contributions, value their respect, and consider a more equitable distribution of development benefits. Investing in women's financial empowerment directly contributes to gender equality, poverty alleviation, and overall economic development(Khan, 2020).Ladies make significant contributions to economies, whether in business, on ranches, as business owners or workers, or by providing neglected care at home.Understanding ladies' freedoms and direction correspondence needs monetary help for ladies. Women's money related improvement consolidates women's ability to partake similarly in existing business areas; their admittance to and control over helpful resources, admittance to good work, control throughout their own time, residences,

and bodies; and extended voice, association, and huge interest in monetary autonomous course at all levels, from the family to worldwide establishments.

Ladies can help organisations and markets grow if they have the necessary skills and opportunities. Ladies with more financial means make a greater contribution to their families, social orders, and public economies. It has been demonstrated that mothers invest more in their children in order to prepare for a favourable turn of events. Aside from promoting financial development, because women spend a big amount of their wages on their communities and families, spending on women has a multiplier impact. networks (Chavan ,2016). Ladies also play important roles in cultivating peaceful and stable social orders, which are necessary for economic development.Money related advancement alludes to ladies' and men's capacity to take an interest in, add to, and benefit from improvement processes in manners that perceive the worth of their commitments, esteem their regard, and consider a more impartial dispersion of advancement benefits. Putting resources into ladies' monetary strengthening straightforwardly adds to orientation equity, neediness lightening, and generally financial turn of events. Women make huge commitments to economies, whether in business, on farms, as entrepreneurs or labourers, or by giving ignored care at home.Understanding women's opportunities and bearing correspondence needs financial assistance for women. Ladies' cash related improvement merges ladies' capacity to share in much the same way in existing business regions; their induction to and command over accommodating assets, permission to great work, control all through their own time, homes, and bodies; and broadened voice, affiliation, and tremendous premium in financial independent course at all levels, from the family to overall foundations.

Women can assist associations and markets with developing on the off chance that they have the fundamental abilities and potential to open doors. Women with additional monetary means make a more noteworthy commitment to their families, social orders, and public economies. It has been exhibited that moms put more in their kids to get ready for an ideal development (Sharma et al., 2021).Beside advancing monetary turn of events, putting resources into ladies has a multiplier impact since ladies reinvest a huge part of their income in their families and organisations. Women additionally assume significant parts in developing quiet and stable social orders, which are fundamental for monetary turn of events.

Gadchiroli region was created on August 26, 1982, by the division of the previous Chandrapur locale. Before the arrangement of Gadchiroli District, it was a piece of Chandrapur District, and just two spots, Gadchiroli and Sironcha, were tehsils of Chandrapur District. The area is partitioned into six sub-divisions: Gadchiroli, Chamorshi, Aheri, Etapalli, Desaiganj, and Kurkheda, each with two talukas.Thestate has 457 Gram

Panchayats and 1688 Revenue Villages. The district's three Legislative Assembly Constituencies are Gadchiroli, Armori, and Aheri. There are 12 talukas and 12 PanchayatSamitis in the district. Gadchiroli district is divided into nine Nagar Panchayats and three municipalities: Gadchiroli, Desaiganj (Wadsa), and Armori.

4. Results : The MahilaParisarSangha, which is composed of ladies from the Gond and Kanwar clans, has 37 SHGs spread across 19 towns in both talukas. At first shaped to assist SHG individuals with conquering detours in managing bank convention, the aggregate has advanced into a stage for ladies to attest their freedoms(Mahamandal, 2010). During a conversation with one of the SHG gathering's chiefs, she offered her viewpoint that-

"Our list addressed members' concerns regarding the implementation of welfare measures like the public distribution system and maternity benefit scheme, and the functioning of healthcare and education facilities, among others".

Perhaps the main advance taken by the ParisarSangha is to give monetary autonomy to ladies by guaranteeing that they have full command over and admittance to the income from selling NTFP, especially tenduleaves(Das and Nair,2020).

Ladies in the district started to collectivise over twenty years prior, fully intent on acquiring some monetary freedom. Before long, the MahilaParishad turned into a place of refuge for ladies to talk about issues like aggressive behaviour at home, wellbeing, and schooling(Phuspam, 2020)."The Parishad has generally worked for ladies' legitimate strengthening, observing government wellbeing plans, the state of young ladies in neighbourhood all inclusive schools, and other social issues," says the assertion.

5. Conclusion : Women's Empowerment is the criteria that would promote gender equality and uplift women to stand against the Stereotypes and Prejudice running against women for years. Women Empowerment would provide women with an environment where they can make their own decisions, it would make them economically, mentally, and socially strong in the society. Economical Empowerment of women means, women standing independently and participating actively in every activity of the society. The MahilaArthikVikasMahamandal program was developed in 1975 by the State Government of Maharashtra on the eve of International women's day. The Author studied the Economic Development women get from the implementation or creation of Self-help groups in the GadchiroliDistrict , the result accepted - The implementation of MahilaArthikVikasMahamandal has improved economic conditions, social status of the tribal women in the Gadchiroli District. Ladies can help organisations and markets grow if they have the necessary skills and opportunities. Ladies with more financial means make a greater contribution to their families, social orders, and public economies. It has

been demonstrated that mothers invest more in their children in order to prepare for a favourable turn of events. Aside from promoting financial development, investing in women has a multiplier effect because women reinvest a large portion of their earnings in their families and networks.

5.1 Future Scope : This study can be used for further reference purposes.

5.2 Suggestions : The Government, Family and Financial institutions need to take a more active role. The Government should also educate the families of the tribal women Gadchiroli district, Maharashtra for letting the women participate in the SHG group and promote economic empowerment by engaging in entrepreneurship, and other activities actively.

References

- Mahamandal, A. V. (2010). Women Self-help Groups and Women Empowerment-A Case Study of Mahila.*Indian Journal of Marketing*, 52.
- Sathiyabama, N. Rural Transformation Through Self Help Groups (Shg) In Mayildathurai, Nagapattinam District. *Akshaya International Journal of Management*, 64.
- Chandele, R., &Shanware, S. ANALYSIS OF ECONOMICAL EMPOWERMENT OF WOMEN THROUGH SELF HELP GROUPS IN SOLAPUR DISTRICT.
- Chavan, R. M., Herekar, P. M., &Mahajan, S. S. (2016). Women Empowerment through SHGs-A Case Study in Kolhapur District.*A Journal of research articles in management science and allied areas (refereed)*, *9*(2), 13-20.
- Singh, Y. (2013). Effect of self help group in economic empowerment of rural women in Himachal Pradesh.*Journal of Indian Research*, *1*(3), 54-61.
- Khan, S. M. (2020).A STUDY ON GOVERNMENT POLICIES ON WOMEN ENTREPRENEUR IN MAHARASHTRA STATE.*Advance and Innovative Research*, 389.
- Priya, G. L., & Bose, S. S. (2021). A STUDY ON WOMEN ENTREPRENEUR'S AWARENESS ABOUT GOVERNMENT SCHEMES-SPECIAL REFERENCE TO CHENNAI DISTRICT, TAMIL NADU.*International Journal of Management (IJM)*, *12*(9).
- Thilakavathy, M. (2019). WOMEN EMPOWERMENT IN SHGs AND THE ROLE OF INDIAN GOVERNMENT PROGRAMMES. *FACETS OF CONTEMPORARY HISTORY*, 271.
- Sharma, R., Mishra, S., &Rai, S. (2021). Empowering women self help groups through microfinance during covid-19: A case study of women SHG. *Indian Journal of Finance and Banking*, *5*(1), 56-72.
- LAKSHMI, V. G., & KASTURI, G. (2020). MICRO FINANCE: A STUDY ON SELF HELP GROUPS OF SABBAVARAM MANDALAM WITH REFERENCE TO VISAKHAPATNAM. *CLEAR International Journal of Research in Commerce & Management*, *11*(5).
- Das, S., & Nair, A. (2020). How Maharashtra Invests for Gender Equality and Women's Empowerment: A Gender Budget Analysis. *Review of Market Integration*, *12*(3), 139-158.
- Pushpam, K., &Thirumal, S. (2020). ROLE OF WOMEN ENTREPRENEURS IN DIGITAL COMMERCE.

A Relative Study of Motor Fitness Variables Among Tribal and Non-Tribal Scholars of High Altitude Region of Pithoragarh District

Pushkar Singh Bisht, Sophie Titatus*

ABSTRACT : Physical fitness is essential in a human's life; it helps everyone live a healthy, beneficial, satisfying, and more productive life from mythological times until today. Motor fitness means the relationship between muscle and the nervous system. Physical educationists refer to it as skill-related fitness. The purpose of the study is to compare the motor fitness components, mainly speed, agility, cardiovascular endurance, shoulder strength, explosive strength, and muscular endurance, between tribal and non-tribal students of the altitude region of LSMGPGC Pithoragarh, Uttarakhand. The present study was conducted among 60 students, 30 tribal (Bhotia) and 30 non-tribal students of the altitude region of LSMGPGC Pithoragarh district. Simple random sampling was used. A 50-yard dash measured the motor fitness components' speed, and the 600-yard run measured cardiovascular endurance. The knee bend set-ups were used to measure muscular endurance, 4 * 10-yard shuttle run was used to measure agility, chin-ups and explosive strength measured shoulder strength by standing broad jump. "T" tests were used to analyze the data with a significance level of 0.05. Results show a significant difference in cardiovascular endurance, shoulder strength, agility, and muscular endurance that non-tribal students are better than tribal students.

INTRODUCTION : India is a land of Gods. In ancient times, people focused more on physical activities, sports, and yoga. Physical consciousness has its mentioned in the epics Mahabharata and Ramayana. Children went to *ashrams* in the childhood phase of life. Here, saints (teachers) taught various physical activities, sports, and yogic Kriyas, which are vital for survival. They learn swimming, archery, wrestling, chariot-racing, fencing, and mace-war. Yoga was incorporated at an early stage. The Yogic Kriyas, like breath control, humming, and chanting, were the first tasks as a disciple. Moreover, after attending the ashrams, they were given work-oriented skills education and employed accordingly.Ancient India, Medieval India, and modern India have actively included sports in daily life. Everybody was involved in physical activity of some sort. The industrial revolution and mechanization have made humans weak and anatomically and physiologically susceptible to disease and defects. People realize the need for physical fitness and physical activity in the modern 21st-century lifestyle.

* Department of Physical Education– Vansthali Vidya Peeth, Bansthali

Physical activity and mobility are vital for the lymphatic and immunological systems. It burns up excess calories. It increases core temperature and improves blood circulation. Schools and coòeges impart physical education, health, sports, anatomy, physiology, kinesiology, and biomechanics in their curriculum. NEP has bound schools, colleges, and educational institutions to make sports, physical education, and yoga constituents of education. The Khelo India program is initiated for up-liftment and exposure to school-level athletes. Developed nations have long applied these policies, making their citizens fit. There are global sports events like the Olympics, Commonwealth Games, Asian Games, World Cups, et cetera. Physical education is that branch of education that makes a person physically, mentally, emotionally, psychologically, anatomically, and physiologically fit components of society used as an asset rather than a liability. There are many models, frameworks, and programs to inculcate physical education in a nation's education system. Test and measurement are a part of applied physical education.

The American Association for Health, Physical Education, and Recreation developed the AAHPER Youth motor fitness (Hunsicker & Reiff, 1976)component test to test the cardiovascular endurance, agility, speed, muscular strength, explosive strength, and shoulder strength of the World War recruits. The test was developed to enhance the motor fitness level of individuals. Motor Fitness has ten variables: speed, strength, muscular endurance, arm strength, cardiovascular endurance, muscular strength, agility, coordination ability, balance, reaction time, muscular coordination, and explosive strength. The functional components are orientation, movement speed, reaction time, and coordination.

Review Literature : (Sarkar, 2015) evaluated a comparative study of physical fitness components between tribal and non-tribal school-going students. They selected 60 students, 30 each from tribal and non-tribal groups ages 12 to 14 years, from Hooghly district of West Bengal to check physical fitness variables.

Cardio-respiratory endurance, upper body strength, flexibility,and abdominal strength, and results show that tribal boys have better cardiovascular endurance, upper body strength, and body mass than Non-tribal boys. In contrast, non-tribal boys are better than their counterparts in flexibility, abdominal strength, and muscular endurance.

(Nayak et al., 2021)have compared a comparative study of selected fitness variables of tribal handball and volleyball players, selecting 40 players each from the handball and volleyball group ages ranging from 18 to 24 years. A significant difference was found in agility, cardiovascular endurance speed, and explosive strength.

(Tesema Guta, 2017) evaluated a comparative study of physical education and non-physical education male and found that physical education students are good in endurance and non-physical education students are better in agility and other variables like speed, strength, and flexibility. (Dhayal & Kumar, 2019)studied motor fitness components between rural and urban school-going students and found no significant difference in agility, strength speed or arm-shoulder coordination. However, in explosive strength, rural students are better than urban students. They are identical.

To compare the motor fitness variables among tribes (Bhotia) and non-tribes students. They are studying at the L S M Govt. P G College in Pithoragarh district. Tribespeople who are nomads, hunter-gatherers, migratory, and shifting cultivators in Uttarakhand, five tribes were found:Raji's, Jaunsari, Tharu, Boxa, and Bhotia. This tribe lived in the highlands and upper parts of the Himalayas. They are traders and shepherds in occupation. Mongoloid ethnic connection. Maximum Bhotias lived in the Pithoragarh region. They are hard-working. Bhotias lived with nature and snow. They are good climbers, non-tribal students of the same area are permanent settlers, and their occupation is agriculture. They are highlanders and good climbers. They are powerful physically. To check the physical fitness and compare it with both groups, the AAHPER youth motor fitness test was used. Motor fitness components.: -

1. Speed : The distance traveled by a body in minimum time. Distance traveled per unit time. Speed can also be said of quickness.

2. Agility : "It is the ability to apply exclusive movements to rapidly change direction, to make quick and accurate shifts in body position during movements."

3. Endurance : Doing any activity for a longer duration without any fatigue.

4. Explosive Strength : To release maximum power in the fastest time.

5. Muscular Strength : "It is the ability refers to the amount of force a muscle can produce with single maximal effort."

6. Muscular Endurance : "It is the ability to continue contracting a muscle against resistance."

DELIMITATION

1. Only 60 subjects were selected, 30 from Bhotias tribes and 30 non-tribal students.
2. Age ranging between 18-24 years.
3. Male students from L.S.M.Govt.P.G.CollegePithoragarh were selected.
4. Natural surface was used to collect data.
5. AAHPER motor fitness tests were used to check six variables: speed, agility, endurance, explosive strength, and muscular strength.

LIMITATION

1. Investigation time is limited.
2. Environmental factors like weather, climate, and geography.
3. Factors like diet, socio-economic conditions, et cetera.

HYPOTHESIS

It is hypothesized that there will not be any significant difference found in motor fitness components between tribal and non-tribal students.

METHODOLOGY

Selection of subjects : In the present investigation, sixty students were selected from the L S M Govt. P G College Pithoragarh for the study, thirtywere Bhotias and thirty were non-Tribals. Theage rangesfrom 18-24 years.

Test Used : The main aim of this study was to compare and measure the motor fitness components like speed was measured by a 50-yards run; the 600-yard run measured endurance, agility by 4x10 yards shuttle-run, and explosive strength by standing broad jump, muscular endurance by knee bent sit-ups and shoulder strength by chin-ups. For measuring these variables, AAHPER motor fitness tests were used.

Statement of the problem: -The objective of the current study is to compare the motor fitness components between bhotia tribes and non-tribal students of the Pithoragarh College.

Objective: -This study is also helpful in knowing the motor fitness level of tribal and non-tribal students.

Result- The table and figure show that all factors of college students differed significantly at a significance level of 0.05. It provides tribal and non-tribal students of high altitude with specific motor fitness components such as speed(50-Yards); Cardiovascular endurance (600-Yards); Explosive Strength (Standing broad jump); Shoulder strength(/Chin-Ups); muscular endurance (knee-bend sit-ups); Agility (4*10 Yards shuttle run).

50-Yards Run: - The mean value of speed for tribal and non-tribal students was similar, but non-tribal students were slightly faster than tribal students, but there is no significant difference. The mean and standard error of 50-Yards run in non-tribal and tribal students are (6.62 ± 0.04 and 6.64 ± 0.07), respectively, at the 0.05 level of significance. "T" value was 0.2880 for 58 degrees of freedom.

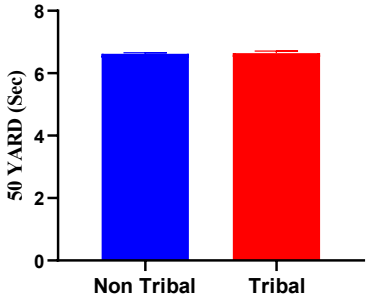

Fig. 1: - Graphical representation of 50-Yards runs between non-

tribal and tribal students

600-Yards Run: - The computed mean of 600-Yards run in non-tribals, and tribal students are (1.31±0.01 and 1.38±0.01), respectively. The t-test (t=5.507, df=58 at <0.0001) showed a significant difference. The result shows a statistically significant difference in 600-Yards cardiovascular endurance between non-tribal and tribal students. Non-tribal students have more cardio-vascular endurance than tribal students as they perform within less time frame.

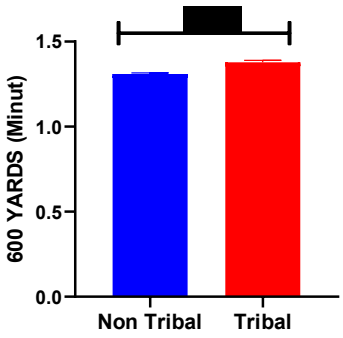

Fig. 2: - Graphical representation of 600-Yards runs between non-tribal and tribal students ***Pd"0.0001

Chin-Ups: - The average values of the number of chin-ups (shoulder strength) of non-tribal (14.03±0.60) and tribal students (11.13±0.60). The t-test (t=3.423, df=58 at Pd"0.0011) showed a significant difference between the tribal and non-tribal students. Non-tribal students were significantly better than tribal students in shoulder strength.

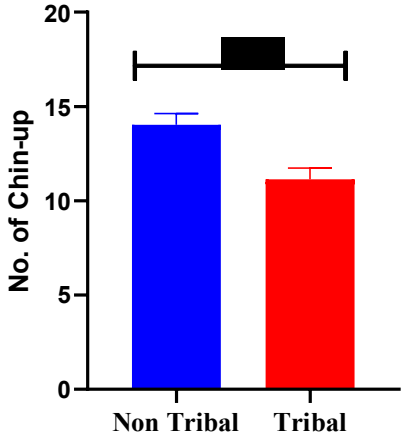

Fig. 3, The average Chin-Ups among the non-tribal and tribal students, **Pd"0.0011

Standing Broad Jump (S.B): -The average values of S.B Jump (explosive strength) of non-tribals and tribals were (2.20±0.04 and 2.12±0.03). The t-test (t=1.690, df=58 at Pe"0.0964). No significant difference was found, but non-tribals are slightly better than tribal students of high altitudes.

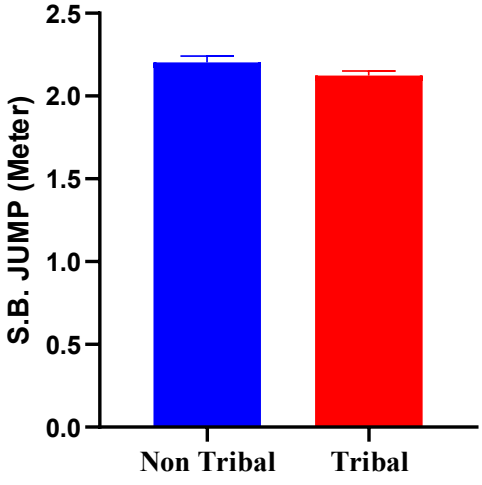

Fig. 4: - The average value of S.B. Jump runs between non-tribal and tribals

Shuttle Run: -The mean value of the Shuttle-run was (9.38±0.07 and 9.39±0.08) respectively. "t" value was 0.0758 and 58 degrees of freedom at the significance level (0.94). It is proven that there is no statistically significant difference

between non-tribal and tribal students.

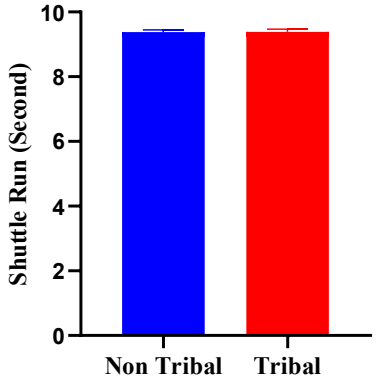

Fig. 5: - Graphical representation of shuttle runs between non-tribal and tribal students

Knee Bend Sit-Ups: - The result shows that the mean and S.E. of muscular endurance in non-tribal and tribal students are (48±1.19 and 38.40±1.96), and the "t" value is 4.195 and 58 degrees of freedom and P-value <0.0001 shows which have, a highly significant difference was found between non-tribal and tribal students of high altitude. Non-tribal students have more muscular-0endurance than their tribal counterparts.

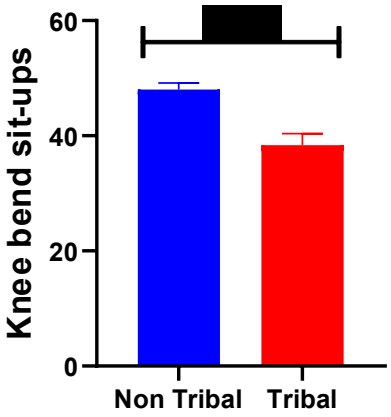

Fig. 6: - Graphical representation of Knee-bend sit-ups between non-tribal and tribal students ***P-value <0.0001

Discussion: - This study shows that, in terms of speed (50-Yards Dash), non-tribal students were slightly faster than tribal students. This shows the anaerobic capacity of the individuals. In this study, in the 600-yard run, highly significant differences were found between the two groups. The present investigation showed that non-tribals have more cardiovascular endurance than tribal students. Tribal and non-tribal school-going boys measured their health-related physical fitness (Sarkar and Paul, 2015).Another variable of the motor-fitness test is the chin-ups to measure shoulder-strength shows non-tribal students have more shoulder strength than tribal students in standing broad jumps. Non-tribal students are slightly better than tribal students. They have better explosive strength. After measuring agility by shuttle run shows that there was no significant difference in this variable. Furthermore, in the muscular endurance test, Bent Knee sit-ups show a highly significant difference between the two groups; non-tribals are far better than tribal students of high altitude.

Conclusion: -The present study shows many differences in motor fitness components between non-tribal and tribal students of high altitudes. The result indicates that non-tribals are highly significantly(better) than tribal students in knee-bend sit-ups, muscular endurance(chin-ups), shoulder strength 600-Yards (Cardio-vascular endurance)(Sarkar, 2015), better speed(Nayak et al., 2021), explosive strength, and agility(Tesema Guta, 2017). This showed that non-tribal students were physically better than tribal students of the high-altitude region.

Recommendation: -

1. A similar study may be done using another physical fitness test like JCR, Indiana motor fitness test, Cooper 12-minute walk and run, etc.
2. A physiological study will be done with the same groups and other tribal groups of Uttarakhand.
3. To make the study more valid and reliable. The sample size will be increased.
4. A similar study may develop in different age groups, sex groups, and tribal groups with large sample sizes.
5. A similar study can be conducted between different games, players and; non-players.
6. The same study may be conducted by testing psychological variables on the same subjects and others.
7. The study may help physical education teachers and coaches select tribal and non-tribal students according to their merits in motor fitness.
8. A similar study may be conducted all over the Uttarakhand colleges and schools to know students' motor and physical fitness.

References: -

- Dhayal, P., & Kumar, A. (2019). Study of personality of rural and urban school going students. *International Journal of Physical Education Sports Management and Yogic Sciences*, *9*(1), 18. https://doi.org/10.5958/2278-795x.2019.00005.5
- Hunsicker, P. A., & Reiff, G. G. (1976). AAHPER Youth Fitness Test Manual. In *American Alliance for'Health, Physical Education, and Recreation, Washington, D.C.*
- Nayak, A., Mahavidyalaya, G. P., & Bengal, W. (2021). *A COMPARATIVE STUDY ON SELECTED FITNESS VARIABLES OF TRIBAL HANDBALL AND*. *11*(2), 104–109.
- Sarkar, S. (2015). Comparative Study on Health Related Physical Fitness Between. *International Journal of Advanced Research in Management and Social Sciences*, *4*(7), 317–323.
- Tesema Guta, B. (2017). Comparative Study of Physical Fitness Components between Physical and Non-Physical Education Male Students in Nekemte College of Teacher Education. *International Journal of Scientific and Research Publications*, *7*(6), 35–43. www.ijsrp.org

An Analysis of Growth and Spatial Distribution of Population in Azamgarh City

Dr. Sanjay Kumar Bharati*, Ram Lakhan Yadav**

Abstract: *Cities are always developed and transformed through the interaction between the different socio-cultural, political, economic, and technological forces. Hence, these forces create the population growth and its pattern in the city. Population growth is a spatial and demographic process and refers to increase importance of town and cities as a concentration of population within a particular economy and society. This paper refers to analyse the growth, and spatial distribution of population in Azamgarh city (Uttar Pradesh). Due to well connected transport network and an urban service centre, it has influenced the increasing population pressure on the urban area. This problem can be observed in the form of haphazard and uncontrolled development in the city of the developing country like India. This requires an analysis of population growth, distribution and density, may be utilized efficiently, development plan for a sustainability of the future city. This will be based on the census data (1901-2011) and application of modern tools and techniques, specially using ArcGIS (10.5 version) for interpretation of map.*

Key words: population growth, population distribution, population pressure, urban area, sustainability

Introduction: Urban growth is a spatial and demographic process and refers to increase importance of towns and cities as a concentration of population within a particular economy and society. Urban growth, as a pattern, although helps us to understand the spatial distribution but as a static phenomenon. In fact, areas that can be identified as a sprawl for a specific time are typically part of dynamic urban scene (Ewing, 1997). The contemporary world is rapidly advancing towards an urban world. Rapid urbanisation has been not only multiplying the large cities, but also increasing human population of the existing towns/cities both in developed and developing nations of the world. The growth of Population whether positive or negative reflects the history of man's response to the environmental possibilities *presenting* the region (Sharma, 1978). Any change in the size of population over a period of an area have a great impact on the socio–economic as well as on the environment of an area that of the statistical figure denoting the number of human souls of certain time.

* Assistant Professor & Head– Department of Geography, NGB(OV), Prayagraj

** Research Scholar (UGC-Senior Research Fellow)– Department of Geography, Faculty of Arts, Nehru Gram Bharati (Deemed to be University), Prayagraj (U.P.), India.

The population growth is considered as the change in the size of population of a region over a given period of time (Barclay, 1958; Bogue, 1969). Urban growth is a spatial and demographic process and refers to increase importance of towns and cities as a concentration of population within a particular economy and society. Urban growth, as a pattern, although helps us to understand the spatial distribution but as a static phenomenon. In fact, areas that can be identified as a sprawl for a specific time are typically part of dynamic urban scene. Planning and physical development of any town depend upon socio-economic structure. It is necessary for assessment of present and future needs of the town/city to analyse the growth and distribution of population. Urban development is the process of emergence of the world dominated by cities as well as urban culture and values. It is important to draw clear distinction between the two main processes of urban development- *urban growth and urbanization* (Clark, 1982). The urban expansion caused by rapid urbanization has posed great challenges for planning and policy making, especially in developing countries like India (Ramchandran, 2012). Therefore, it is imperative to appraise and analyse population growth and its distribution so as to accommodate growing population comfortably and to ensure sustainable development of the city. Such studies become more significant in case of Azamgrah city. In the recent years, remote sensing data and geographical information system (GIS) techniques are widely used for interpretation of map (to understand pattern), monitoring (to understand the process) and monitoring and modelling (to simulate) the population growth and distribution. The interrelationship of man and land resources plays a significant role in the urban area. The urban land is a base for the development of the modern society. Cities are always developed and transformed through the interaction between the different socio-cultural, political, economic, and technological forces. Hence, these forces create the population growth and its distribution in the city (Bharati, 2015).

The growth of Azamgrah is very significant. The population growth of the city may be analysed conveniently with the help of census data available from 1901 onwards. First recorded population data of Azamgarh is 18,835 persons in 1901. According to the census 1911, the population of Azamgarh is 10,834 persons. The 1911 figure shows a decline (-42.48%) over the previous census which might possibly be due to the epidemic spread on a large scale. Since 1921, the population began to increase and it continued steadily till 1931. The 1931 census slightly increases in percentage of +22.03. This trend of population of slightly increases up to decade 1971. In decade 1981, its growth is spectacular, showing a percentage increase in population of 62.40 percent due to some infrastructure development in the city. Since 1991, the population began to

constant increases, which continued steadily till 2011. Therefore, Azamgarh became as a city in this decade (2011). The population of city is 93,521 in 2001 and 1,10,983 in 2011 census.

The average growth rate of the city is 2.06 percent (1901-2011) per annum, whereas average decadal growth rate is 20.6 percent (1901-2011). The average decadal growth rate during 1901 to 1951 is very low (12.06%), whereas during 1951 to 1981 decadal growth rate is high (36.82%) and during 1981 to 2011, it is moderate (18.60%). Therefore, it is selected to study for the present analysis. The Azamgarh district is very famous issue as a politically in eastern Uttar Pradesh in last two decade. Therefore, it is selected to study for the present analysis.

Study Area : Azamgarh City (25^0 05' 52'' N - 26^0 01' 29'' N & 83^0 08'23'' E - 83^0 11' 57'' E) is located in the fertile alluvial land of both southern and northern bank of river *Tons* or *Tamsa* or *Chhoti Sarju* (a tributary of river *Ganga*) in the heart of the triangle constituted by joining the Mau, Ballia, Jaunpur and Ghazipur district in the eastern Uttar Pradesh. It lies on the main centres on Gorakhpur - Mau – Shahganj - Prayagraj and Varanasi – Mau – Bhatani – Gorakhpur /Chhapra northern and north-east railways. Azamgarh is connected with Lucknow 296 km, Varanasi 90 km, Prayagraj 165 km and Gorakhpur 112 km by road. The area of Azamgarh city is 27.25 km^2 (Calculated by ArcGis) and population of this city is 1,10,983 person (Census, 2011). The district consists of a series of parallel ridges, whose summits are depressed into beds or hollows, along which the rivers flow; while between the ridges are low-lying rice lands, interspersed with numerous natural reservoirs.

Objectives : The objective of the study is to analyse the population growth and its spatial distribution. The following objective has been taken into consideration:

(a) to analyse the population growth (1901-2011).
(b) to analyse spatial distribution of population and its density, and
(c) to illustrate the impact of growing population on urban area.

Data Base and Methodology : Research is an open-ended process that is likely to generate as many questions as it does answers. It is a "whole brain" activity and a "thinking game". The left hemisphere of our brain is generally analytical, logical, systematic and sequential, whereas the right hemisphere is intuitive, spontaneous, imaginative and creative. So the best researchers are

Location of Study Area

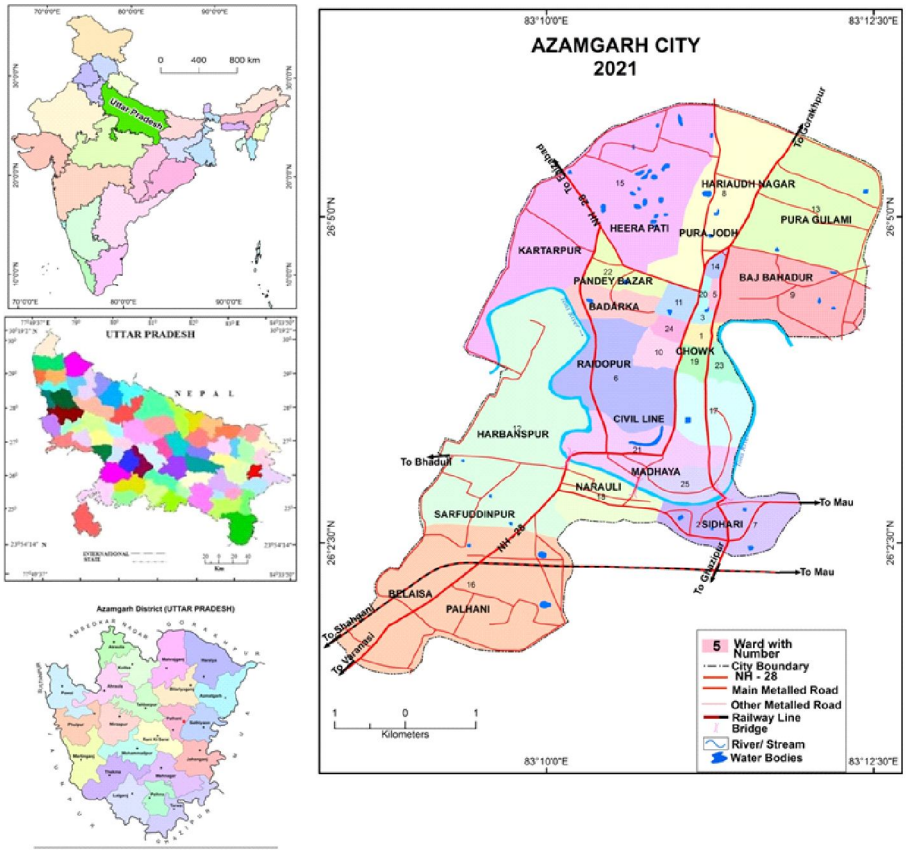

Fig. 1: Location of Azamgarh City

those who manage to be creative in thinking, yet logical in structure. A geographer's research in different branches typically deploys a variety of approaches to answer specific substantive questions. In geography, consequently we use both extensive and intensive research strategies. Research students, therefore, require training in a range of more advanced subject-specific competencies and methods. Normally, consideration should be given to the modern quantitative and qualitative methods of analysis like: Geographical Information Systems (GIS) and computer cartography,….. and so on (Sharma, 2011). In the present study, the growth, distribution and density of population in Azamgrah city, has been dealt with. The secondary data were collected through published/ unpublished records at Municipal Corporation, Census of India (Lucknow). It was geo-referenced with the help of the toposheet no. 63 N/4. The map was digitized and exported to Arc GIS 10.5 software to calculate the areas of the respective ward area categories which were polygon features and their final layout on M S Word 2007, which was done by the researcher.

1.1 Trends of Population Growth : In 1953, when Glenn T. Trewartha's offered a tentative scheme of content and organization of materials in population geography, he confined it to (a) geography of population in the past; (b) population numbers including distribution, density, migration, growth, etc; and (c) qualities of population and their regional pattern of distribution including physical as well as socio-economic-qualities. Man is the pivotal from which all other elements are observed. The growth of population whether positive or negative is controlled by the relative balance of fertility, mortality and migration which are generally influenced by six groups of factors: biological, environmental, economic, social, political and technological (Sauvy, 1969). Any change in the size of population over a period of time, an area have a great impact on the socio–economic as well as on the environment that of the statistical figure denoting the number of human souls of certain time (Chip, 1984). The growth of population is the most powerful single factor contributing to the changes in land use (Pandey, 1996). Population growth reflects the development processes related to urbanization, industrialization and modernization of an urban centre. The past trend of population growth is the indicator of future development.

1.2 Trends of Population Movement Since 1901 : The analysis of the population growth and the trend of growth rate are required for evaluating the existing as well as future population resource. The growth of population has a direct effect on per capita utilization of available resources, although Azamgarh has been an important town since past. The first census enumeration of the town was made in 1872, without applying scientific procedure. The decennial enumeration system could be adopted only in 1901. The population growth of the city may be analysed conveniently with the help of census data available from 1901 onwards. First recorded population data of Azamgarh is 18,835 persons in 1901. According to the census 1911, the population of Azamgarh is 10,834 persons. The 1911 figure shows a decline (-42.48%) over the previous census which might possibly be due to the epidemic spread on a large scale. Since 1921, the population began to increase and it continued steadily till 1931. The 1931 census slightly increases in percentage of +22.03. This trend of population of slightly increases up to decade 1971. In decade 1981, its growth is spectacular, showing a percentage increase in population of 62.40 percent due to some infrastructure development in the city. Since 1991, the population began to constant increases, which continued steadily till 2011. Therefore, Azamgarh became as a city in this decade (2011). The population of city is 93,521 in 2001 and 1,10,983 in 2011 census.

The average growth rate of the city is 2.06 percent (1901-2011) per annum, whereas average decadal growth rate is 20.6 percent (1901-2011). The average decadal growth rate during 1901 to 1951 is very low (12.06%), whereas during 1951 to 1981 decadal growth rate is high (36.82%) and during 1981 to 2011, it is moderate (18.60%). The population growth of Azamgarh city has been analysed into two Phase:

(A) Phase of Pre-independence (1901-1951) and

(B) Phase of Post-independence (1951-2011)

Further, it has been divided into three distinct periods as follows:

1.2.1 Period of Slow Growth (1901-1951) : During this period (1901-1951), the population growth was fluctuating. The population of Azamgarh town was 18,835 persons (Census of India, 1901), whereas it decreased to 10,834 persons in 1911 (-42.48%) which showed a decline due to spread of epidemics like plague caused high death rate which was prevalent in the country. Further, population increased to 14788 persons in 2021 decade (a growth rate of 34.50%) followed by 18046 persons (22.03%) in 1931. In decade 1941, the population growth is 24,307 persons with 34.69 percent. This growth continued and it was very slow, i.e., 26632 persons in 1951 (average growth rate 9.57%). In 1951, the population growth rate (9.57%) is very slow caused due to again occurrence of drought and famines in the town as well as in the State.

Table 1: Population and Decadal Growth Rate (1901 - 2011)

Years	Population (Persons)	Decadal Variation (Persons)	Decadal Variation (%)
1901	18,835		
1911	10,834	-8,001	-42.48
1921	14,788	+3,954	+36.50
1931	18,046	+3,258	+22.03
1941	24,307	+6,261	+34.69
1951	26,632	+2,325	+9.57
1961	32,391	+5,759	+21.62
1971	40,963	+8,572	+26.46
1981	66,523	+25,560	+62.40
1991	78,567	+12,044	+18.11
2001	93,521	+14,954	+19.03
2011	1,10,983	+17,462	+18.67

Source: Town Directory (1901-2011), Directorate of Census Operations, Uttar Pradesh, Lucknow.

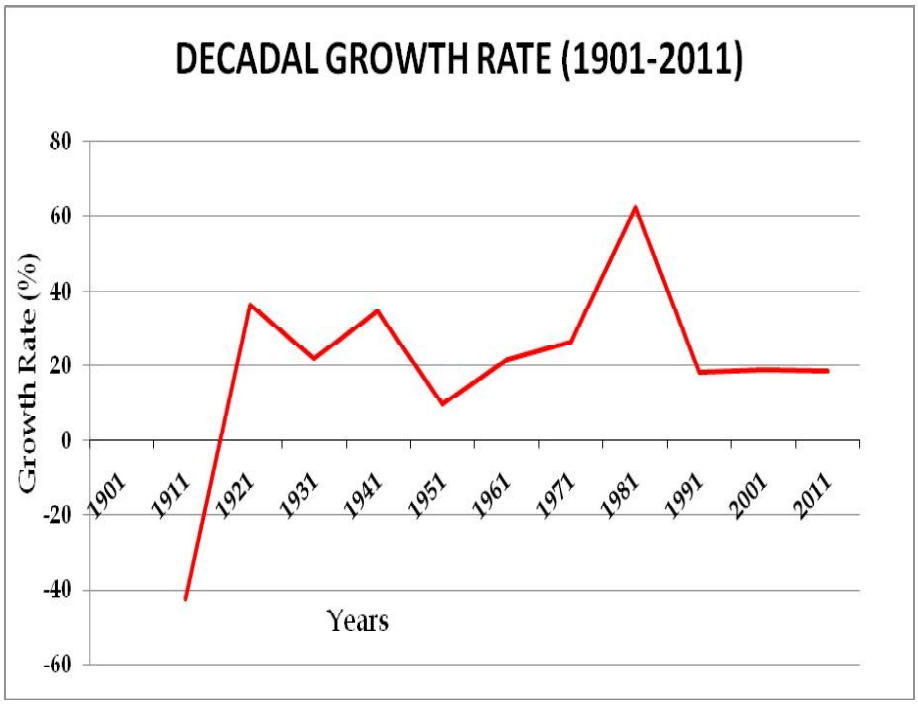

Fig. 2

Source: Based on Data Available from Town Directory (1901-2011), Directorate of Census Operations, Uttar Pradesh, Lucknow.

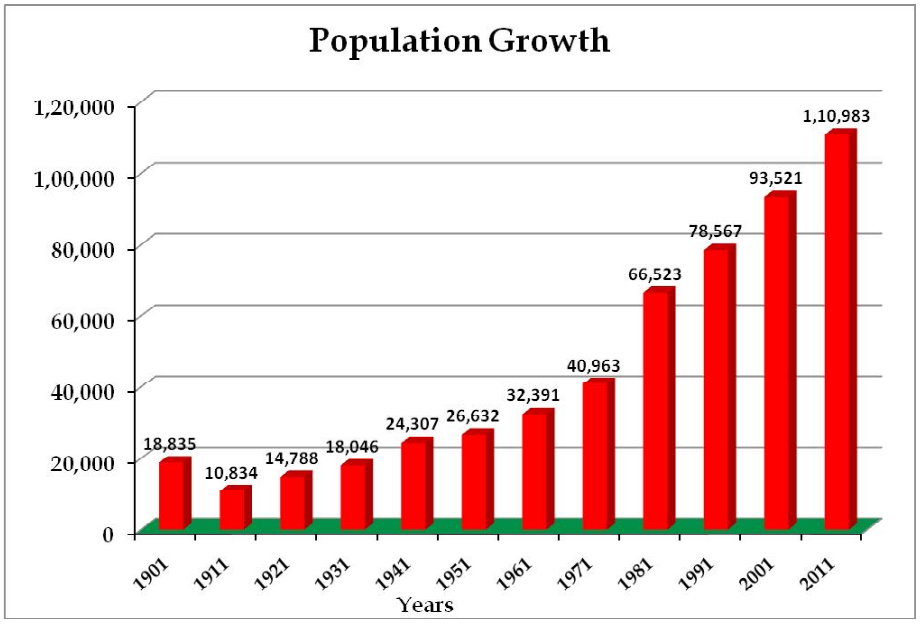

Fig. 3

Source: Based on Data Available from Town Directory (1901-2011), Directorate of Census Operations, Uttar Pradesh, Lucknow.

During this period average growth rate of population is 12.06 percent in the city. Therefore, growth rate of the Azamgarh city is very slow due to before independence limit health facility, other infrastructure and epidemics caused high death rate. The reasons for slow growth from 1901–1951 are the famines and spread epidemics like plague (1911), influenza (1918), cholera (1918) and drought and famines (1941) which took a good toll of human life (death) resulting in a general decline of population. Though a small portion of rural population moved towards the town because of the famines experienced in 1918 and, its impact was not over-weighing to that of epidemic disease. The population of the town, in 1911 declined (-42.48%) over the previous census years and it was recovering from the shock of epidemics.

1.2.2 Period of High Growth (1951-1981) : The year 1951, is known as second 'demographic division', after that population growth of Azamgarh shows a significance rise. In between 1951 to 1981, the population growth has increased with a faster rate (36.83%) of town was very high in these decades. In decade 1961, population of the city was 32,391 persons and growth rate was 21.62 percent which further increased in decade 1971 to 40,963 persons and growth rate was 26.46 percent respectively. In 1981, population increased to 66,523 persons while growth rate is maximum (62.40%) in this decade. Therefore, the population of the city in last three decades (the very high decadal population growth rate 36.83%) was high growth, whereas in this phase population growth was continuously increased, due to which establishment of small industries and development of health services to decrease death rate and development of fundamentals needs of town. During 1951 to 1981, the trend of population growth shows a remarkable rise high, due to which condition was a normal and free from epidemics or famines, which led to the natural processes of increase from this phase onward.

1.2.3 Period of Moderate (constant) Growth (1971-2011) : After 1981, the population growth has increased with a constant rate (18.60%) in last three decades (1991, 2001 & 2011) compared to previous phase. During this phase average population growth rate (18.60%) was constant with moderate growth. In 1991, population of the city was 78,567 persons and growth rate (18.11%) which was moderate due to increase in natural growth take place in the city. The population of the city in 2001 was 93,521 persons with moderate growth rate (19.03%) but slightly increased growth rate from previous decade (1991). The population (1,10,983 persons) of the city grew by 18.67 percent in the last decade (2011). Therefore, Azamgarh became as a city in this decade (2011). Hence, working population shifted towards city and attraction of the rural-urban migration to the city. It had nothing to do with the socio-economic development the city, but increased

infrastructural facilities like road network, railways, electricity, health care, water supply, educational, sewage, communication as well as commercial facilities. It was more a matter of status symbol to have a house in the city.

1.3 Population Projection : For preparing a long term realistic plan of any city, forecasting the population there is very important. Adequate land is to be proposed for various activities (eg residential, commercial, industrial etc.) in Azamgarh urbanisable area for the revised Master Plan period up to the year 2031 as the basic unit of the entire process of master planning is the person. Therefore, in order to reserve land for various proposals, it is necessary to estimate the population of these areas for the year 2031. The population of Azamgarh municipal area was 93,521 in the year 2001, which has increased to 1,10,983 in 2011. The population of Azamgarh municipal area should be 1,35,000 by the year 2021 and 1,60,000 by the year 2031. Is estimated in addition to the municipal limits, the population of 100 revenue villages included in the revised master plan under urbanization was 77,776 in 1991 and 104713 in 2001, which has increased to 1,34,037 in 2011. It is expected to increase 1,75,000 in 2021 and 2,20,000 in 2031 (Master Plan, 2031).

1.4 Population Distribution and Density : According to the 2011 census, the population density of Azamgarh urban area is 88 persons per hectare, which were 74 persons per hectare in 2001. At the same time, according to Census 2011, the population density of India is 382 persons per square kilometre and Uttar Pradesh has 829 persons per sq. km.

1.4.1 Spatial Distribution of Population : Spatial distribution of population in Azamgarh city have development of settlements in three clusters (i) first around the *Chowk* in the core (central part of the city) (ii) second near Civil line along Mau road in the East and (iii) third around the outer periphery of the city. More than 6000 persons population consisting in ward no. 4, 9, 12 and 21 (ward name *Badrka, Bajbahadur, Harbanspur,* and *Civil Line*). The population having more than 5000 persons and below 6000 person population consisting in ward no. 7, 13, 19, and 25 (ward name *Sidhari East, Puragulami, Matbarganj* and *Madhaya*). The population having between in 5000 to 4000 persons consisting in ward no. 3, 8, 15 and 18 (ward name *Sitaram, Araji Bag, Heerapatti* and *Narauli)*. The population having consisting below 4000 persons in ward no. 1, 2, 5, 6, 10, 11, 14, 16, 17, 20, and 22-24 (ward name *Farsatola, Sidhari West, Jalandhari, Gurutola, Khatri Tola, Aasif Ganj, Mukkeriganj, Sarfunddinpur, Katara, Chakala Pahadhpur, Pandey Bajar, Ailwal* and *Sadawati*). The lowest population found in ward no. 1 i.e. 1,991 persons due to which that ward consist low land area nearby *Tamsa* River. The

highest population found in ward no. 21 i.e., 9,039 persons because ward consist old *Bajar* area. The peripheral, part are areas of the city which has scatter pattern and lies in the rural-urban fringe with agricultural land. The spatial distribution of population in Azamgarh city is irregular according to census 2011.

Table No.2: Ward Name, Population, Area, Density, Sex Ratio and Literacy Rate

Ward No.	Ward Name	Population	Area (In ha)	Population Density
1	FARASTOLA	1991	13.56	147
2	SIDHARI WEST	3544	42.86	83
3	SITARAM	4968	5.15	965
4	BADARKA	6405	50.6	127
5	JALANDHRI	3289	5.99	549
6	GURUTOLA	3361	115.73	29
7	SIDHARI EAST	5907	68.28	87
8	ARAJI BAG	4465	192.45	23
9	BAJ BAHADUR	7411	175.84	42
10	KHATRI TOLA	3395	24.66	138
11	AASIF GANJ	3727	21	177
12	HARBANSHPUR	6383	417.24	15
13	PURA GULAMI	5914	248.28	24
14	MUKERIGANJ	3764	8.24	457
15	HEERAPATTI	4254	457	9
16	SARFUNDDINPUR	3872	421	9
17	KATARA	2676	83.35	32
18	NARAULI	4067	79.85	51
19	MATBARGANJ	5020	16.13	311
20	CHAKLA PAHADHPUR	2967	6.28	474
21	CIVIL LINE	9039	115	79
22	PANDEY BAJAR	2974	42.92	69
23	AILWAL	3670	16	229
24	SADAWARTI	2873	12.68	227
25	MADHAYA	5047	45.81	110
Total	110983	2725.98	41	

Source: Based on data available from Town Directory, Directorate of Census Operations, Lucknow (U.P.) and Calculated by Researcher.

1.4.2 Population Density : The concentration of population is an indicator of population density. The distribution of population density of Azamgarh city spreads along Gorakhpur, Ghazipur, Mau and Faizabad road. The density is very high in the built-up area. The Population density of Azamgarh city was 41 persons per ha as per 2011 census and considering

the Municipal area as 2725.98 ha. Population is spread over whole Azamgarh city, but density varies from one ward to other and also it continuously decreases from inner core to outer periphery of the city. It is evident that pressure of development is along Gorakhpur, Ghazipur, Mau and Faizabad road.

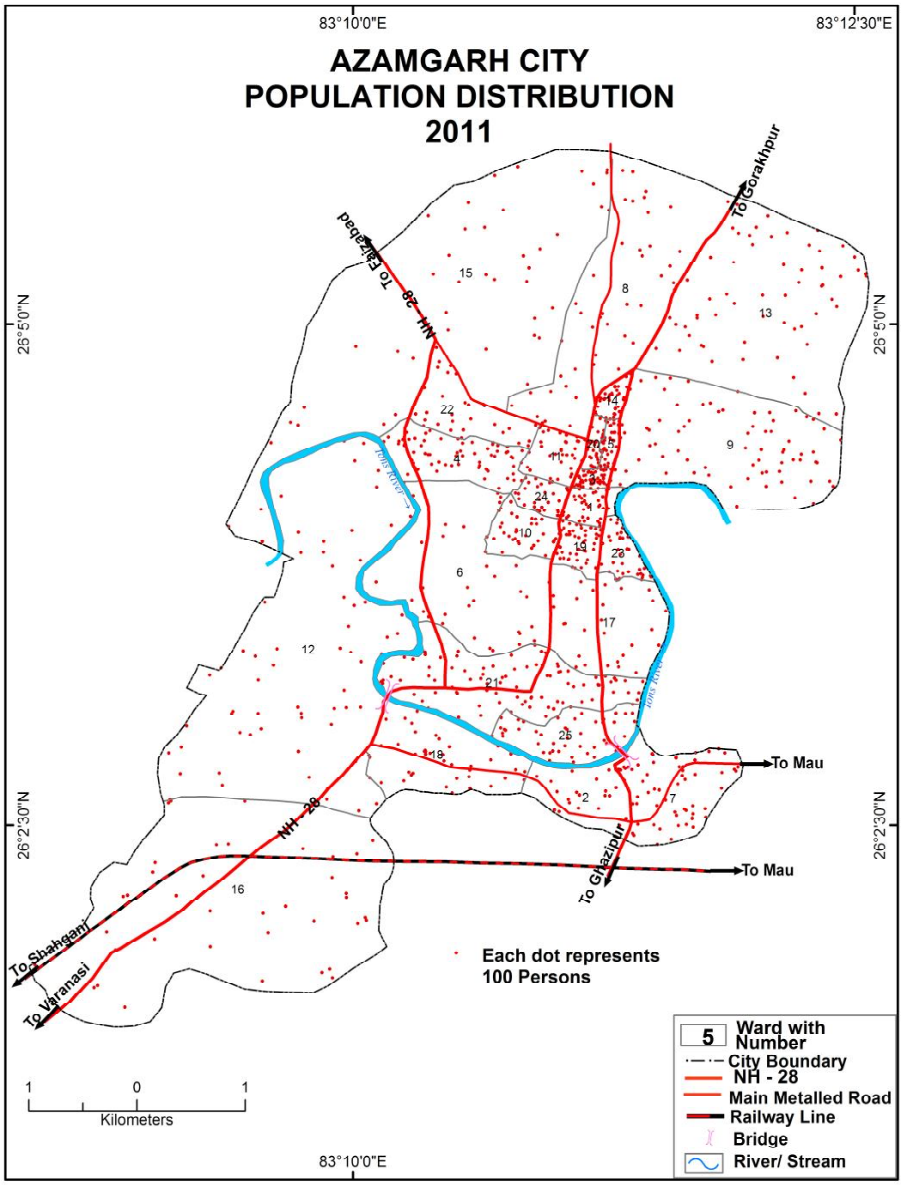

Fig. 4

Source: Based on data available from Town Directory, Directorate of Census Operations, Lucknow (U.P.).

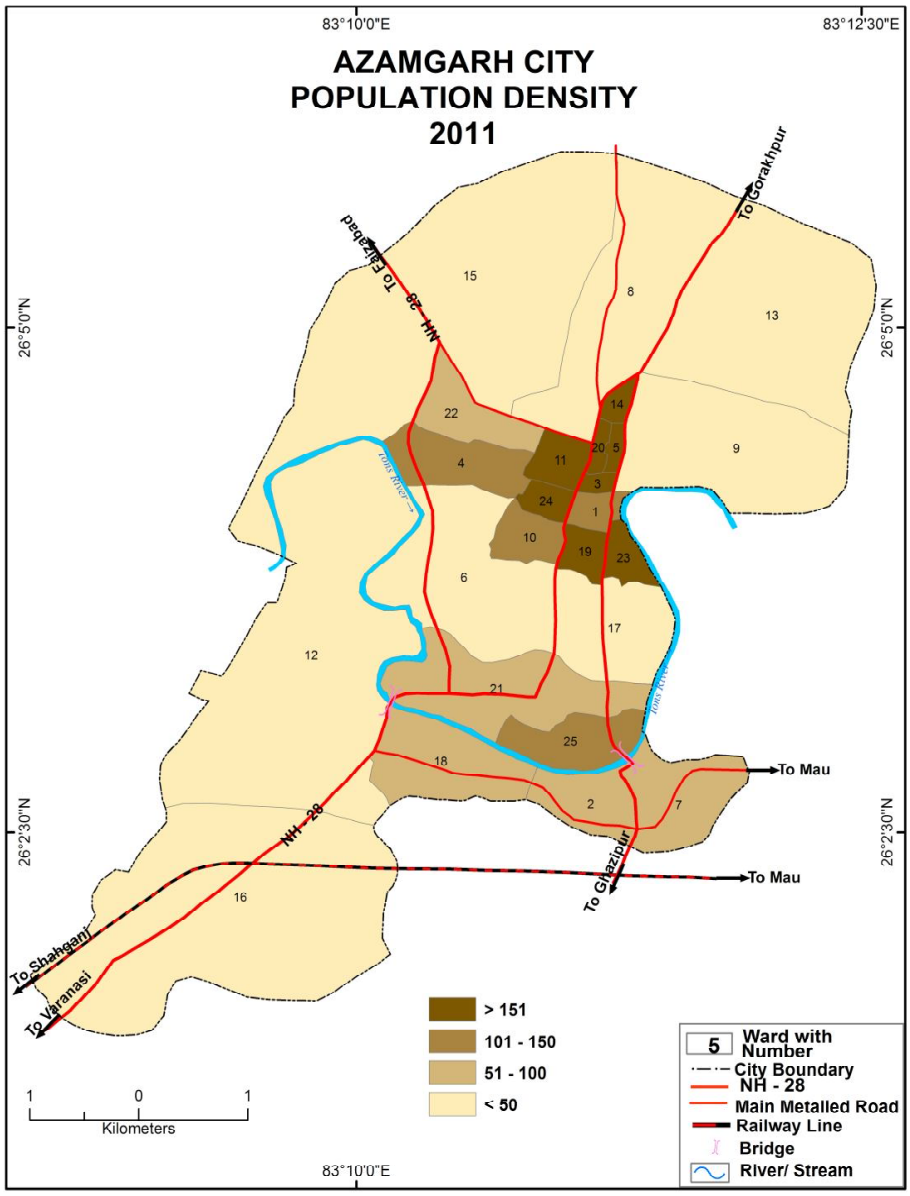

Fig. 5

Source: Based on data available from Town Directory, Directorate of Census Operations, Lucknow (U.P.)

.According to census 2011, the very high density areas are in ward no. 3 (965 person per ha), 5 (549 person per ha), 11 (177 person per ha), 14 (457 persons per ha), 19 (311 person per ha), 20 (474 person per ha), 23 (229 person per ha) and 24 (227 person per ha). The population density is high i.e. in between 101 to 150 persons per ha consisting areas in ward no. 1, 4, 10 and 25. The population density is moderately in between 51 to 100 persons per ha in ward no. 2 (83 persons per ha), 7 (87 persons per ha), 18

(51 persons per ha), 21 (79 persons per ha) and 22 (69 persons per ha). The population density is low in ward no. 6 (29 persons per ha), 8 (23 persons per ha), 9 (42 persons per ha), 12 (15 persons per ha), 13 (24 persons per ha), 15 (9 persons per ha), 16 (9 persons per ha) and 17 (32 persons per ha) due to which these ward existing in outer periphery of the city. The lowest population density in ward no. 15 (*Heerapatti*) and 16 (*Sarfunddinpur*), both having 9 persons per ha due to which both ward situated in low land, water logging, agriculture field area and outer part of the city. The highest population density in ward no. 3 (*Sitaram*) i.e. 965 persons per ha because that ward situated in commercial area and main core part of the city.

Conclusion : Land and people constitute the two vital elements of an area and the ratio between the two is of fundamental consideration in population studies. It reflects the pressure of population upon the land resources of the concerned area. Thus, population growth and its spatial distribution is a simple measurement of the number of people in an area. It is an average number which shows the relationship between population size and the land area assess the people and land resources. This effort is to explain spatial-temporal variation of the relationship between the proportion of land resource (natural resources) and population (Bharati, 2015). First recorded population data of Azamgarh is 18,835 persons in 1901. According to the census 1911, the population of Azamgarh is 10,834 persons. The 1911 figure shows a decline (-42.48%) over the previous census which might possibly be due to the epidemic spread on a large scale. Since 1921, the population began to increase and it continued steadily till 1931. The 1931 census slightly increases in percentage of +22.03. This trend of population of slightly increases up to decade 1971. In decade 1981, its growth is spectacular, showing a percentage increase in population of 62.40 percent due to some infrastructure development in the city. Since 1991, the population began to constant increases, which continued steadily till 2011. Therefore, Azamgarh became as a city in this decade (2011). The population of city is 93,521 in 2001 and 1,10,983 in 2011 census. The average growth rate of the city is 2.06 percent (1901-2011) per annum, whereas average decadal growth rate is 20.6 percent (1901-2011). The average decadal growth rate during 1901 to 1951 is very low (12.06%), whereas during 1951 to 1981 decadal growth rate is high (36.82%) and during 1981 to 2011, it is moderate (18.60%). The lowest population density in ward no. 15 (*Heerapatti*) and 16 (*Sarfunddinpur*), both having 9 persons per ha due to which both ward situated in low land, water logging, agriculture field area and outer part of the city. The highest population density in ward no. 3 (*Sitaram*) i.e. 965 persons per ha because that ward situated in commercial area and main core part of the city. This happened as urban service centre which has influenced the spatial

distribution of population in and around the city. The total area of the city has been expanding on fertile agricultural land from time to time to meet the demand of the increasing population without any urban planning and management.

References

- Bharati, S.K. and Sharma, P.R. (2014). Maunath Bhanjan City: An Appraisal of Urban Land Use, Change and Characteristics, *National Geographical Journal of India,* Vol. 60, Pt. 1, March, pp. 27-40.
- Bharati, S.K., (2015), An Analysis of Growth and Spatial Distribution of Population in Maunath Bhanjan City, *The Geographer*, Vol-62, No.1, January, 2015; pp. 34-44.
- Bogue, D. J., (1969). *Principles of Demography*, New York: John Wiley & Sons, Inc., p. 32.
- Census of India, 2001 and 2011, Primary Census Abstract. Issued in CD by 'Lucknow: Directorate of Census Operations'
- Chip, S.S., (1995), Demographic Dynamics in the Trans Himalayan Tribal Region of Kinnaur H.P: Perspective on Socio Economic Implications, *Geographical Review of India*, Vol. 57, No. 1, pp. 20-28.
- Clark, D., (1982), *Urban Geography*, Croom Helm, London.
- Ewing, R. (1997). *Is Los Angeles-style sprawl desirable*? J Am Plan Assoc 63(1):107–126.
- *Master Plan Proposal*, (2031). *Azamgarh city, Master Plan Proposal - 2031*, Town and Village Planning Department, U.P., Azamgarh Divisional Planning Sector.
- Pandey, A. (1996). *Changing Land Use in Mughalsarai and its Environment,* Unpublished Ph.D. Thesis, Banaras Hindu University, Varanasi.
- Ramchandran, R., (2012), *Urbanization and Urban System in India*, 14th ed., Oxford University Press, New Delhi.
- Sauvy, A., (1969), *General Theory of Population*, London: Weidenfeld& Nicolson.
- Sharma, P. R. et. al. (ed.) (2011), *Research Methodology Concept and Studies*, RK BOOKS 4215/, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi, p.3.
- Sharma, P.R., (1978), Spatio-Temporal Pattern of Population Growth and Distribution: A Regional Analysis.*The Deccan Geographer*, Vol. XVI, No. 1, p.372.

●

Role of MSMEs in Inclusive and Sustainable Growth of Indian Economy

Dr. Ravindra Kumar*, Sunny Jaiswal**

Abstract : With more than five years having elapsed since adoption of Sustainable Development Goals in 2016, nations across the world are acceleratingthe design and implementation of sustainable solutions to the world's biggest challenges –Ensuring Inclusive and Sustainable Growth. For India too, all key development stakeholders have been able to reach a consensus on the need and urgency for adopting, implementing, and monitoring the Global Goals at the national, sub-national, and local levels. In the given context, role of Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) in catalysing inclusive Growth has become more pronounced. MSMEs have proved to be key drivers of inclusive growth in the last five decades and they continue to invigorate innovation and entrepreneurship: both which are rudimentary elements of grassroot development. With increased impetus on MSMEs in ensuring equitable distribution of benefits of growth in an era of Sustainable Development, it becomes interesting to analyse the role of MSMEs in influencing Sustainable Development Goals aiming at Inclusive Growth. This paper concentrates upon the Sustainable Development Goals and Targets which are aligned with MSMEs and Inclusive growth in India and analyses the impact that MSMEs have on different dimensions of Growth.

Introduction : A common yet intriguing feature amongst all developing nations across the world is the heterogeneous nature of distribution of fruits of development amongst citizens of these nations, which includes India. Economic growth being measured generally in terms of Gross Domestic Product is not yet seen to have a linear equation with progress in real welfare of citizens measured by improvement in standards of living, access to employment and poverty reduction. Concerns were raised at global platforms in last decade which led to formulation of Millenium Development Goals (MDGs): curated at United Nations level as a mark of congnizance to the steps taken to make development across globe more equitable and sustainable. MDGs were followed by Sustainable Development Goals (SDGs), which were formalized in September 2015 at the UN General Assembly Summit and came into effect from 1st January 2016 with a deadline of the year 2030 for achieving the goals set therein.

* Assistant Professor (Author)– Department of Commerce, Yogoda Satsanga Mahavidyalaya, Dhurwa, Ranchi

** Research Scholar (Co-Author)– Dept. of Commerce and Business Mgmt. Ranchio University, Ranchi

Since then, the world is in the 5th year of the era of Sustainable Development Goals. India has a major role to play towards success of the goals. UNO as an acknowledgement of same has echoed in the foreword to first Sustainable Development Index Report of India 2018 that "The success of Agenda 2030 globally, in a decisive way, depends on the progress India makes on the SDGs in the next decade". In the context of relation between MSMEs with Agenda 2030, role of the former is acknowledged as a prominent contributor towards fostering sound infrastructure, promoting inclusive and sustainable industrialization and catalyzing innovation. Thus, it becomes interesting to critically examine the extent of impact that MSMEs have towards inclusive and sustainable growth of Indian economy.

The Link between MSMEs, Inclusive Growth and Sustainable Development Goals:

Economic results which have brought forth the non-linear equation between economic development of nation and well-being of citizenry have raised credibility issues on the assumptions of economic experts and development experts that economic growth is supposed to create income and jobs in such a way as to lift the poor and less privileged out of poverty and deprivations (Oghu, 2012; OnodugoKalu, &Anowor, 2013; Agbarakwe&Anowor, 2018; Kord et al., 2017). One of the main reasons which has propelled situation of economic growth without commensurate increase in quality of life has been the economic structure that causes bulk income generation mainly through exploitation of resources of country. In such cases, benefits are passed over to few key shareholders at the cost of exclusion of majority of stakeholders. Result of this phenomenon is income inequality and the schism between the rich and the poor. This situation has drawn attention of scholars across boundaries towards the causes behind income inequality and the factors that propel inclusiveness of societies across barriers.

United Nations Development Programme (UNDP, 2017), states that economic growth can reduce inequality and extreme poverty only if its benefits are spread widely across the population. In view of these drawbacks of economic growth, scholars have called for a development approach that goes beyond growth and income and confirms to the understanding that all the benefits of growth are available equally across all parts of society. Specifically, for developing countries like India, potential of MSMEs have been recognized as the key driving force for inclusive growth due to its capability to provide entrepreneurial resources and employment opportunities. Scholars have also agreed that almost every country that has achieved major economic growth had to do so majorly on MSME platform.

Literature survey in this reference yields following insights:

Asikhia (2010) acknowledges MSMEs as catalysts to the socioeconomic growth and development of any country's economy. They are reliable agencies for the achievement of macroeconomic objectives in terms of employment generation at low investment cost and development of entrepreneurial capabilities, inhibiting rural– urban migration, promoting locally developed technology, local resource mobilisation, and poverty removal.

Tambunan (2008) highlights that MSMEs play a crucial role in economic development, as they are the main source of employment generation and output growth, both in developing as well as in developed countries. It is a general belief that MSMEs in developing nations have potential to enhance income redistribution (reducing income inequality), employment creation, poverty reduction and export growth as well as development of entrepreneurship, industry and the rural economy.

Kachembere (2011) recognises that MSMEs play crucial role in promoting grassroot economic growth and equitable sustainable development. It has been opined that although it is believed that high rates of economic growth can be expected to foster socio-economic development and poverty reduction; it is however, dependent on the quality of growth, which consist of the composition of growth, its spread and distribution and most importantly, the degree of sustainability.

Link between MSMEs and Inclusive Sustainable growth has been bolstered with the incorporation of Sustainable Development Goals (SDGs) in 2015. These are a set of 17 goals and 169 targets with an aim to organize and put in line development actions for achievement of greater human wellbeing. These have often been termed as ambitious commitments by world leaders which set out a universal and unprecedented agenda for bringing economic, environmental and social dimensions of wellbeing of societies in particular and nations at large. The dimensions of SDG range from poverty eradication, human health and sanitation to urban settlements and to safeguarding the global ecosystems on which humanity depends upon for its survival.

Dimensions of Inclusive Growth as reviewed through the lens of Sustainable Development Goals

Sufficient Secondary literature in current context yield that there is enormous potential in Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) as drivers of inclusive growth in any given condition. They have been found to have potential of reducing unemployment, lessening poverty and bridging the income inequality gap. It has also been argued that MSMEs encourage self-reliance and foster linkages among the various sectors of economy because they mostly source local resources. Based upon findings of

secondary survey, broad determinants of inclusive growth have been concentrated. Although number of studies has been carried out to establish and enumerate the relation between MSMEs and Inclusive Growth in general, effort has been made hereunder to determine the impact of MSMEs on these determinants of Inclusive Growth under the perspective of Sustainable development Goals in India.

A joint analysis of 1) Sustainability Development Index rolled out by Govt. of India since 2018, (2) Annual Reports of MSMSe in India and (3) Reports on Inclusive Growth was carried out with a view to find out major dimensions of Inclusive Growth as seen through the lens of Sustainable Development Goals. Once these broad dimensions were established, validity was confirmed through matching secondary literature. Further, impact of MSMEs on these dimensions of inclusive growth was analysed and is being summarised below:

1) Role of MSMEs in growth of economy:

In recent years, the MSME sector is found to consistently registering high growth rate compared to the overall industrial sector in India. The MSMEs are also found to widen their domain across sectors of the economy, producing diverse range of products and services to meet demands of domestic as well as global markets. Share of Value created by MSMEs in GDP of country has been represented below for the period 2014-15 to 2018-19: (Source: Annual Report on MSMEs in India 2020-21)

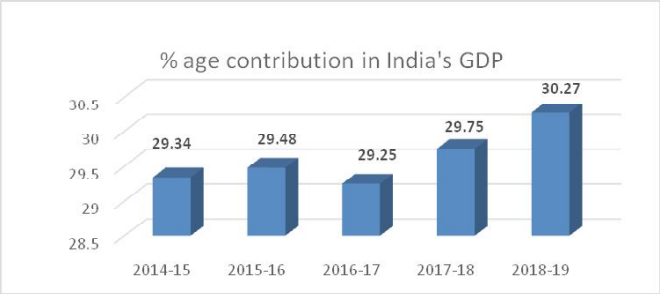

In terms of number of MSME units in India, as per the National Sample Survey (NSS) 73rd round, conducted by National Sample Survey Office, Ministry of Statistics & Programme Implementation during the period 2015-16, there were 633.88 lakh unincorporated non-agriculture MSMEs in the country engaged in different economic activities ranging from Manufacturing, Non-Captive Electricity Generation and Transmission and other services. Registered Micro- Enterprises stood at nearabout 28 lakh units which is nearabout 93% of total units. It is followed by small enterprises at nearabout 1.78 lakh units (6%) and midsized enterprises at 24,657 units (1%)

In terms of Gross Value Output, the contribution of Manufacturing MSMEs in the country's total Manufacturing GVO (Gross Value of Output)

at current prices has also remained constant at around 33% i.e. one-third during the period from 2014-15 to 2018-19.

In terms of CAGR, the number of MSMEs increased by a CAGR of 18.5 % from 2019-2020.

In terms of Share Market Indices, The BSE SME (small and medium enterprises) was found expecting to get more than sixty SMEs to enter the market in one year (2021-22) to mop up equity funds for business requirements. The initial public offering (IPO) route got 16 SMEs to foray into the market by raising Rs. 100 crores (US$ 13.74 million) in 2020. In June 2021, Bombay Stock Exchange (BSE) announced that it has collaborated with Electronics and Computer Software Export Promotion Council (ESC) to build awareness among small businesses and start-ups about advantages of listing.

In terms of MSMEs getting new market opportunity, MSMEs are showcasing their offerings on the e-commerce site, especially through Government e-Marketplace (GeM), owned and run by the government, wherefrom Ministries and PSUs (public sector undertakings) source their procurement. As of July 20, 2021, the Government e-Marketplace (GeM) portal served 7 million orders worth Rs.122,405 crore (US$ 16.39 billion) from 2.2 million registered sellers and service providers for 53,193 government buyers.

In terms of digital payment platform, Indian MSMEs are rapidly adopting digital payments over cash, with 72% payments done through the digital mode compared with 28% cash transactions. Rise in digital adoption presents prospects for further growth in the sector.

From above it is evident that the MSME platform has been vibrant with business activity ranging from products and services to performance in share market. Unlike large organisations, the outreach of growth in MSME business activities are found to be more diversified and impacting larger sections of society and that too in a sustainable manner.

2) Role of MSMEs in Employment Generation : MSMEs are based on the concept of moving from being capital-intensive to being labor intensive.The MSME sector in India is recognised as the second highest employment provider, only after agriculture sector and has special significance because of its low investment requirements. Labour intensity in the MSMEs sector is four times higher than the large industries.As per the National Sample Survey (NSS) 73rd round conducted during the period 2015-16,MSME sector has been creating 11.10 crore jobs (360.41 lakh in Manufacturing, 0.07 lakh inNon-captive Electricity Generation and Transmission, 387.18 lakh in Trade and 362.82 lakhin Other Services). Micro sector with 630.52 lakh estimated enterprises provided employment to 1076.19 lakh persons that in turn accounts for around 97% of total

employment in the sector. Small sector with 3.31 lakh and Medium sector with 0.05 lakh estimated MSMEs provided employment to 31.95 lakh (2.88%) and 1.75 lakh (0.16%)persons of total employment in MSME sector, respectively.Distribution of employment by type of Enterprises in Rural and Urban Areas has been tabulated below:

(Fig in no. of persons employed in Lacs)

Sector	Micro	Small	Medium	Total	% age share
Rural	489.30	7.88	0.60	497.78	45
Urban	586.88	24.06	1.16	612.10	55
All	1076.19	31.95	1.75	1106.89	100

(Source: Annual Report on MSMEs in India 2020-21)

The above table shows that employment generated by MSMEs in rural India have a handsome share (45%) out of total employment generated by MSMEs which go on to show the representative nature of MSMEs and which is characteristic of inclusive growth. Majority of the workforce in MSME sector are local demographically and endeavor utilization of regional resources. Thus, the benefits of MSME operation in terms of direct and indirect generation of employment get distributed to the region where it operates mainly for small and micro enterprises.

3) Role of MSMEs in Fostering Innovation and Entrepreneurship : MSMEs help in favoring germination of ideas by promoting creativity and innovation across sections of societies so that existing business models can be made more efficient and value driven. MSMEs are found to promote competition amongst the enterprises which further instill innovative practices. Fostering innovation acts like a driving force for the economy by catalyzing entrepreneurship. Technology and its fast expansion as well as its acceptance affect almost all the sectors including agriculture, manufacturing and services across domain of MSMEs. Innovations and technological advancements have a significant role in deciding the way SMEs participate in the nation's inclusive economic development.The Ministry of MSMEs has developed Technology Centers (TCs), which were previously known as Tool Rooms and Technology Development Centers, spread across the country. Apart from the Incubation scheme, there are other programmes and policies of the Ministry of MSME, which helps in technological upgradations such as Technology Upgradation and Quality Certification, Credit Linked Capital Subsidy for Technology Upgradation (CLCSS), Science and Technology Scheme for Coir, etc.

These benefits have been spread across the length and breadth of the country so that benefits can be passed on to all without any bias. These initiatives are also helping in motivating individuals, Self Help Groups and small organisations to think differently and mobilise creativity into innovation. These innovations can stem into entrepreneurial ventures under

the MSME ambit and therefore contribute to inclusive and sustainable growth.

4) Role of MSMEs in Bridging Gender Gap : As Per the NSS 73rdRound of NSSO, there are a total of estimated 1,23,90,523 women ownedproprietary MSMEs in the country. Table below shows the gender-based percentage distribution of proprietary MSMEs in the country. (Source: Annual Report on MSMEs in India 2020-21)

(Fig in %age share of total proprietary ownership of MSME in 773rd round of NSSO)

Sector	Male	Female	Total
Rural	77.76	22.24	100
Urban	81.58	18.42	100
Total	79.63	20.37	100

Out of 633.88 MSMEs, there were 608.41 lakh (95.98%) MSMEs which were proprietary concerns.There is dominance of male in ownership of proprietary MSMEs. Thus, for proprietaryMSMEs as a whole, males owned 79.63% of enterprises as compared to 20.37% owned byfemale. There was no significant deviation in this pattern in urban and rural areas, althoughthe dominance of male owned enterprises was slightly more pronounced in urban areascompared to rural areas (81.58% as compared to 77.76%).MSMEs still have a long way to go in inspiring women so that they too have a representative contribution in the economy and thereby making growth more inclusive.

5) Role of MSMEs in Promoting Social Equity : Considering the diversity in India in terms societal demarcations, it becomes more challenging to ensure equitable distribution of benefits of economic growth. Again, MSMEs have proved to be an effective tool in inclusive growth across social stratum in a sustainable manner. The socially backward groups were found to own almost 66.27% of MSMEs majority of which was owned by OBCs (49.72%). The representation of SC and ST owners in MSME sector was found to be lesser and pegged at 12.45% and 4.10% respectively. In rural areas, almost 73.67% of MSMEs were owned by socially backward groups, of which 51.59% belonged to the OBCs. In urban areas, almost 58.68% belonged to the socially backward groups, of which 47.80% belonged to the OBCs. The analysis of enterprises owned by socially backward groups in each of the three segments of MSME sector reveals that micro sector had 66.42% of enterprises owned by socially backward group, whereas small and medium sectors had 36.80% and 24.94% of enterprises owned by socially backward groups, respectively.

Class based ownership of MSMEs can be taken as representation of respective social classes in contribution towards Indian Economy. Several government schemes are aimed at increasing the representation of lagging categories so that contribution towards growth and reaping of benefits can be ensured in an equitable and sustainable manner.

CONCLUSION

Throughout the years and in particular since introduction of the Sustainable Development Goals in 2016, MSMEs have established their credentials as the backbone of inclusive growth in India. At times when challenges have been brought to fore by global pandemic, role of MSMEs become more crucial in making country more resilient and capable in not only facing challenges but also in building back better. This comes at a time when less than a decade is left for realizing Sustainable Development Goals which have been summarized as the most ambitious and unifying development agenda ever produced. As per the Sustainability Development Index devised by the Govt. of India since 2018-19 to map the progress towards achievement of Sustainable Development Goals, MSMEs have been tagged with Goal No. 8 (Decent Work and Economic Growth) Target No. 3. Though the Index shows considerable improvement in score obtained across all states in India against Goal 8 Target 3 yet it is perceived that MSMEs have a long way to go in particular towards their contribution in achieving the Agenda 2030. MSMEs shall be expected to widen their scope of inclusion as still much needs to be done in the space of lesser represented categories like person with disabilities, LGBT category, geographically isolated regions amongst others and collectively placed under "LNOB" – *Leaving No One Behind* category as in SDX 2020-21 Report. Government policies at central as well as state levels aimed towards effectiveness of MSMEs need to be made more efficacious. MSMEs have and shall be instrumental in aligning growth of economy with development of citizenry at large and ensuring that such development remains Sustainable.

References :

1. Annual reports of MSMEs for the year 2016-17 to 2020-21
2. Annual reports on Sustainable Development Index 2018-19 to 2020-21
3. Report of expert committee of RBI on MSME Year 2018-19
4. Vincent A Onodugo, V; Anowor, O; Nwonye NG; Ofoegbu GN (2019), "Attaining Inclusive Growth in a Developing Economy on the wings of Micro, Small and Medium Enterprises"ActaAmazonica Dec 2019 Pg. 35-47
5. Bhattacharya, S &Hodler, R (2014), "Do natural resources revenues hinder financial development?"World Development 57 (1) 101-113
6. Asikhia O (2010), SMEs and Poverty alleviation in Nigeria: Marketing resources and capabilities implication, New England Journal of Entreprenuership, 13 (2): 57-70

Sources from Internet :

1. https://www.ibef.org/industry/msme.aspx viewed on 28/09/2021
2. https://msme.gov.in/documents/reports-and-publications viewed on 25/09/2021
3. https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2021-02/Annual-Report2020-2021-English_0.pdf

●

E-Commerce Effect on Distribution Channel For The Various Industry

Dr. Vikas Tiwari*

ABSTRACT : E-business offers many possibilities to re-organize business processes. However, to use the full potential of e-business, traditional business activities should not be simply converted onto electronic platforms. One should take the opportunity to completely rethink entire process chains considering the different opportunities those e-business offers. In this particular case, I am closely considering the technological, and logistics strategy. When discussing the logistics strategy, the entire marketing channel is considered.

Channel distribution systems are widely acknowledged to be a reality of e -business, since growth in the use of the Internet for commerce and other recent developments have given rise to a proliferation in the ways in which a manufacturer might reach end customers and suppliers. A number of opportunities for future research are identified, especially regarding the use of non-traditional ways of distributing, selling and creative divisions of labour that have been enabled by information technologies.

This Research also focus on "e-Commerce effect on distribution channel for the various Industry" analyzes the reasons and the key components for the success of online industries

Key Words – E-Commerce, Logistics, Industry, Various Channels

INTRODUCTION : Due to the increasingly widespread internationalization of the marketplace, the issue of various channels has received considerable attention in the international marketing literature. Researchers emphasize the powerful impact of various channels on the existence and functioning of exchange relationships (Frazier, Gill and Kale 1989). So for any company with a product to sell, how to make that product available to the intended customers can be as crucial a strategic issue as developing the product itself. (Corstjens and Doyle).

While distribution channel choice is a very traditional concern, for many companies it has recently come under intense scrutiny due to a number of major developments. As Distribution builds stable competitive advantages, since marketing channels are of long-range planning and implementation, and to build them needs a consistent structure and also to the fact that they are focused on people and relationships. (Stern & Berman, 1996).

The expanding role of the business procurement activity has created new opportunities for access to customers. Information and materials

* Assistant Professor (Management) Government Engineering College Sonbhadra, Uttar Pradesh

handling technologies have broadened the feasible set of sales and distribution activities that a producer might reasonably perform.

The economics of materials delivery has been transformed by the pervasive logistical networks deployed by third-party shipping powerhouses such as Federal Express and United Parcel Services. As a result, many manufacturers are reconsidering their approaches to distribution, with particular attention to the role of intermediaries.

The prospect of reducing or even eliminating the reliance on resale intermediaries has always offered certain lures for manufacturers, including the following (Stern 1996):

- Intermediaries carry only small assortments of a manufacturer's products.
- Direct control of distribution and pricing can lead to higher profit margins.
- Intermediaries can use their power to extract various concessions from the manufacturers.
- Manufacturers can provide a broader product selection in a better ambiance with higher service in direct outlets.
- More flexibility in experimenting with product attributes.
- Closer contact with customers.
- Protection from crises faced by intermediaries. (Stern 1996).

Eliminating intermediaries ("disintermediation") can also improve supply chain efficiency by allowing upstream parties better visibility into market demand

(Lee 1997). While these arguments have long supported the use of print catalogue sales and company-owned stores, the explosion in possibility of electronic commerce has been particularly influential in drawing many manufacturers into the realm of direct sales.

Elimination of intermediaries is not without disadvantage. The role of intermediaries is to efficiently create and satisfy demand, through activities that include building brand and product awareness through advertising and customer education, providing market coverage, gathering market information, providing breadth of assortment, breaking bulk, processing orders, customer support, etc. If a manufacturer cannot otherwise attend to these functions efficiently, elimination of intermediaries may cause an erosion of profits, market share, or both (Ghosh 1998). "It is an old axiom of marketing that it is possible to eliminate wholesalers (or any middlemen, for that matter) but impossible to eliminate their functions."(Stern 1996).

The "age of e-Business" has now been underway for a few years, and Evidence that has accumulated thus far indicates a trend towards a portfolio approach that includes both intermediated and manufacturer-owned channels (each type of which can take either bricks-and-mortar or online form). This exploits the relative strengths of each and their appeal to

different market segments. Indeed, leveraging multiple channel types may allow greater market penetration than using any one alone, and may enable innovative methods of value-delivery yet to be imagined (Bala-subramanian and Peterson 2000).

Methodology : For the purpose of study, I will use a lot of secondary data. Data was collected from different sources such as books, articles, related documentation, and official publications, the Web. As it's not a new topic, I have been challenged to search publications in the Internet and articles. These are the sources where the latest and most relevant information can be found, however I tried to be very assertive when it came to selecting reliable sources and data. In order to conduct empirical research, data was collected from the researches done in this area by most renowned companies like Volvo, Dell, IBM, etc.

Literature Review : In this topic that are closely related to the discussed problem such as logistics, distribution, e-commerce, and marketing channels are explained. It is not our goal to introduce all these concepts and topics in their entirety and from all perspectives. Instead, the aim is to emphasize those aspects that are useful in order to explain backgrounds, and help in analyzing and solving the problem.

What are Distribution Channels?

There are numerous studies covering various aspects of international marketing channels. Most of the literature relates to international channel decisions in large exporting firms in developed countries. (Ramaseshan and Patlon,1994). Experts claims that the majority of world trade is handled through independent middleman and that those export intermediaries possess strong local market know-how and contacts(Bello and Lothia, 1995).The distribution channel literature is replete with studies on distribution channels in developed industrialized countries. Despite recent advances and studies of varying subjects, few studies have been concluded on distribution channels. (Yavas, 2000).

Many firms view distribution channels as fundamental to their competitive strategy. They have realized that the application of distribution system affords the company a competitive advantage. Consequently, a channel design process is necessary to identify & select among a excess of channel alternatives. When a firm decided to enter into a market it may opt for different distribution channels. At one extreme that firm can perform all of the marketing functions (vertical integration or sometimes referred to as hierarchal mode) (Anderson, 1997).

What is Logistics?

The simplest version might be that "Logistics is the management of the flow of physical materials. (Stern 1996).

There are three flows in the whole business world. They are:

- Material flow, value flow and information flow.

- Material flow is more like a one-direction flow compare with the other two.
- Logistics is dealing with material flow.

What is Distribution?

In the initial definitions, logistics was called physical distribution. The previous name of Council of Logistics Management (CLM) USA is National Council of Physical Distribution Management **(NCPDM).** NCPDM defined Physical Distribution as "a term employed in manufacturing and commerce to describe the broad range of activities concerned with efficient movement of finished products from the end of the production line to the customer, and in some cases includes the movement of raw materials from the source of supply to the beginning of the production line. These activities include freight transportation, ware house, material handling, protective packaging, inventory control, plant and warehouse site selection, order processing, marketing forecasting, and customer service" (Contemporary Logistics, 2001). After the development of the concept of logistics, distribution is defined to be part of logistics management. Distribution is the logistical link between the supplier and the customer. Physical distribution has to ensure that the product is available at the correct place (where it usually meets the customer's incoming logistic department) at the right time and in the ordered quantity to satisfy customer demand (Gurau,2001)

Costs and availability (the speed with which the customers can physically obtain a product) are the main concerns of physical distribution. Two major aspects influence the availability: the adequacy of the stock held at the supply point and the order lead time (the period between a customer ordering a good and its delivery to the agreed place). When adequate stock of the requested product is available at the warehouse, the delivery time depends on four operations (Hackney R. 2001):

- Transmission of the order from the customer to the supplier;
- Order processing;
- Physically assembling the goods;
- Transporting the goods to the customer.

Four Different Perspectives of E-Commerce are :

- **Communication perspective**: E-commerce is the delivery of information, products and/or services, or payments via telephone lines, computer networks, or any other electronic means.
- **Business process perspective**: E-commerce is the application of technology toward the automation of business transactions and workflow.
- **Service perspective**: With the help of e-commerce the quality of the goods can be improved while the speed of service delivery can be increased.
- **Online perspective**: E-commerce provides the capability of

buying and selling.

Impact of e-commerce on various industries

Information Services

The Internet has also brought about changes in the Information Services arena. Reuters Group is a provider of news and information to traders, professionals, and various media outlets. Currently, Reuters uses a proprietary network, which is expensive to install and maintain, for product delivery to its subscribers. However, Reuters has begun the switch to the Internet for the delivery of news and information. (Power, 1999).

The switch to an Internet-based delivery system is expected to provide significant savings to both Reuters and its customers. Reuters will no longer be required to install and maintain dedicated network lines to the customers; and customer will no longer be expected to pay communication and site fees. In the long run, this delivery system is expected to be easier and cheaper for the firm. (Power, 1999).

Reuters plans to market the new Internet service, dubbed Reuters Inform, first to the North American energy markets and the global agricultural markets, specifically targeting small, geographically-dispersed trading firms and off-floor customers. Reuters believes that this is the initial step in awarding away from today's expensive delivery to eventually selling all of its' products via the Internet (Power, 1999).

Internet Service Providers : The Internet has also given rise to several types of businesses and industries that were virtually nonexistent as recently as a decade ago. Internet Service Providers (ISP) is one such industry, and has become a major influence in the distribution of products, information, and services via the Internet. Without the Internet, the ISP industry would be non-existent. The nation's ISPs have become, and enjoy continued success as, "leading champions of Internet commerce, communications and connectivity."

For example, Intel is in the process of establishing a new Internet channel program. Intel currently works with about fifty ISPs, but is recruiting 500 more for the program. The current fifty ISPs use and recommend Intel products to their customers, but Intel eventually hopes to use ISPs as resellers of Intel products and services. Due to the greatly increasing numbers of people, households, and businesses that use the Internet, Intel and other companies in the computing and Internet related industries recognize that ISP will be a key influence and a major source of new business for them. It is a market with significant opportunity that cannot be passed up. In the words of one industry professional, "customers are drawn to those who can solve Internet communications issues." For most, that is spelled ISP (Doyle, 1999).

Computer Manufacturing : The Internet has impacted personal computer (PC) distribution in several ways. The first dramatic change the

Internet has accomplished is that it has brought computer manufactures and consumers closer together on the supply chain. The traditional way of purchasing a computer involved travelling to a physical location or retailer and choosing the desired model of your choice. Several computers manufacture now use the Internet to allow customers to custom order computers to their specifications and have them conveniently shipped to their doorstep. This approach completely eliminates the reseller from the channel. (Zarley, 1999)

The other significant change the Internet has made is the creation of online resellers. These channel members compete on the basis of cost;thus, the price of a PC has been cut to a very small profit margin. These resellers have also shaped computer distribution by bringing the marketplace online instead of inconveniently travelling the distance to the retailer and purchasing a computer. (Campbell & Green, 1999)

Electronic Components : The Internet provides a medium for corporations to reduce supply chain costs. One method of cost reduction has been to force suppliers to more effectively manage the inventory of manufacturers they supply. Computers linked to each other by the Internet inform suppliers when manufactures require additional parts. The supplier automatically ships the parts and the manufacture benefits by saving the time required for order placement and reducing possible inventory holding costs. (Ashley, 1999) Dell Computer Corporation is a prime example of the use of this technology in competitive market. Dell has become the industry leader in Internet managed inventory. Dell has developed direct business-to-business ordering systems over the Internet and informs suppliers regarding the exact amount of inventory required on a day-to-day basis. By doing so, Dell is not acquiring additional inventory or the costs associated with additional inventory until absolutely necessary. Parts remain in at the loading dock until the needed time of use, and Dell does not pay their suppliers until 30 days after they have accepted the shipments. Dell builds, sells, and collects on computers in an average of 14 days. This innovative approach results in a "negative cash conversion" meaning that Dell collects revenue for their product before they pay their suppliers for the parts to the product. (Schwartz, 1999)

Dell has also taken advantage of the Internet to eliminate the reseller from the distribution channel. Consumers place custom orders directly with Dell via the Internet or over the phone and then orders are converted to an Intranet computer system where a tracking number is assigned to each order. Customers can check the status of the production of their custom computers over the web. Once the computer is finished, it is shipped directly to the customer, with no reseller interaction. (Schwartz, 1999)

Software : The distribution of software over the Internet has changed dramatically due to the fact that software can now be downloaded directly

to your computer when purchased online via the Internet. The most substantial limitation to this new technology is bandwidth, the amount of data that can flow over the Internet at a given time. According to Mitchell Martin, vice-president of products for Merisel Canada Inc., "Distributing software through the Internet is unprofitable and unfeasible for programs larger than 10MB." (Dillich, 1999) Typical entertainment, product and software packages are 50 to 500 Megabytes in size. It would take a consumer 21 hours to download 500 MB with a 56k modem.

Analysts project that as much as 25 % of consumer software will be purchased online within the next couple of years. Of all software purchased on the Internet 80% of it simply ordered and shipped directly to the consumer. Only a small percentage of software is actually purchased and distributed via the Internet. (Dillich, 1999)

Overlooked because of its non-revenue generating nature, the Internet has provided software companies the means to distribute product updates in an easier, cost effective manner. For example, Microsoft has a web site devoted to updating its Windows operating system, and anti-virus software producers are distributing updated virus protection software via the web. Consumers can download the latest software updates for most of their software on the web, all faster and cheaper than traditional modes of software distribution.

Banking : The Internet has allowed many banks to change their traditional informational web sites into transactional web sites. A transactional site allows customers to move money by transferring funds between accounts, paying bills, making purchases, and applying for loans and mortgages. As of December 1, 1999, 121 of the 3,500 known bank web sites were transactional. This trend is expected to continue and increase for the foreseeable future (O'Sullivan, 2000).

Electronic billing presentation and payment allows everyone involved, from the biller to the consumer, to benefit from reduced costs. Billers cut costs with this paperless technology and have the opportunity to enhance customer service and target markets. Customers, on the other hand, save time and eliminate checks and postage by receiving and paying bills through the customer's personal e-mail box (Kantin, 1999).

The outsourcing of bill payments has been a defining feature of most home banking strategies. Several methods of billing presentation and payment exist online via the Internet. A few examples include Web sites, electronic mail, and browser subscription. Internet bill presentment and creates a distribution channel for low cost ACH transactions and then equally low-cost Internet equivalent, electronic checks. A bank enjoys processing costs that are a fraction of bill payment services (Crone, 1999).

Retailing : Retailing is one of the most highly affected areas by the Internet. Consumers can place an order over the Internet and have the

item(s) delivered directly to their door, in a short amount of time. Retailers are no longer limited to the stock available in the local retail store or having to wait on a "special order" to arrive.

Effects of e-commerce distribution channel on society as a whole?

Several factors will determine the number of home deliveries in a given urban area, among the most important are :

- Population density of urban area
- Order/delivery frequency
- Number of companies offering home deliveries
- Market penetration of home shopping

Clearly the performance and impact of home delivery operations will also depend on the specific local conditions in the urban area where the deliveries are to be made. For example, outer suburbs of large cities are likely to offer the opportunity of higher operational efficiency to delivery firms due to higher average traffic speeds and fewer parking problems than central and inner urban areas. The prevailing parking conditions in any part of an urban area will be dependent on car ownership rates, the types of residential properties and whether they have off-street parking spaces, and the land use patterns in the vicinity. (Karamitsos, 2000)

The Impact from E-Business to Logistics :

- E-business needs an integrated logistics information system, which contains more information, and is updated more frequently. Information sharing becomes necessary in e-business. Sharing information not only intra company, but also inter companies, which is very different from the old business model, brings the new pattern of doing business.
- E-business brings different order processing models. An electronic order processing system provides simple solutions to the customer and collects useful data for the company.
- Although the marketing is very different from e-business and off-line business, with some adjustment and creation, most traditional marketing channels work well with e-business.
- The existing off-line marketing channels can help e-business, and e-business can be helpful to off-line business as well. A combination of the two business models can be one solution in e-commerce strategy.

The Impact from Logistics to E-Business:

- While an efficient logistics function is critical to the success of e-business, the distribution system is still the bottleneck of e-business, especially in B2C (business to consumer).
- The nature of e-commerce is causing some realignment in the traditional produce-distribute-sell paradigm. Within the e-commerce model, the product is usually sold before it is distributed (produce-sell-distribute) and the product is often distributed directly to the end-user. This needs an entirely new distribution and logistics system for the delivery of

tangible products. After all, the online marketing, ordering or payment, physical material transactions exist in the real world. It is the logistics system that deals with physical material transactions in the real world. An efficient logistics system not only helps the e-commerce to complete its business cycle life effectively, but also shows the spirit of e-commerce in a visible way.

Conclusion : Change happens and people are instinctively reluctant to it. The letter 'e' in front of everyday words like mail and commerce has shaken the waters. But it will probably stick around for the next few years like the 'tele' prefix has been since the industrial revolution in the 1850's for the telegraph, the teletype, the telephone, the telefax, the television, and even more modern applications like telemedicine and teleconferencing. It's just bringing this in the new age: from analogue to digital, from manual to automatic. After a while, the equilibrium will be found again and e-commerce will be just another part of business as usual.

The growth and strength of the internet on commerce is truly extraordinary. Its huge development is introducing new benefits for both consumers and businesses, which are helping to reshape, some long held practices of commerce. Due to the real time nature of the e commerce, customers are able to get instant feedback about information or availability and delivery status of products, what is independent of customer/company in terms of time, language and geographic location. Internet helps to break down traditional barriers, shifts the power balance. Between buyers and sellers facilitates comparison-shopping, distributes knowledge, expands markets and sustains growth. However, even if the companies' goals for introducing e-commerce are potentially very different from each other, the information aspect, designing and organizing the information surrounding the industry and products in a way that both customers and suppliers will benefit the most from it, plays an important role for all of them. Another trend that is clearly developing, and where e-commerce is a useful supposition, is the implementation of supply chain management.

A well-implemented logistics strategy is very important for successful e-commerce, but in the case of B2B, it does not affect logistics to a relatively great extent. The structure and the responsibility distribution can be largely retained. Nevertheless, the co-operation of the entire marketing channel is important - especially having the market leader on one's side - when introducing e-commerce. A company planning to install an e-commerce platform has to be prepared for the eventuality that conflicts with other channel members may arise. With the required – internal and external - support and planning, e-commerce can be a tool to improve the power-position in the marketing channel.

In thinking about the logistics costs of e-commerce, it is important to remember that the costs associated with order picking and delivery to the

customer's home is not new costs. These activities and costs existed prior to the introduction of e-commerce. The difference in an e-commerce environment is that rather than these activities and costs are borne by the customer they are now borne by the e-commerce company. Therefore, e-commerce involves a redistribution of costs rather than the creation of new costs. in fact, it may be the case that order picking and transport costs are lower when performed by or on behalf of an e-commerce company than when carried out by the consumer (especially when taking into account the customer's value of time). The concern for ecommerce companies is whether these costs are recoverable (i.e., whether the customer is prepared to pay a price that fully covers the cost of these activities).

According to the present study, Internet is a complementary tool to all industries. Even the traditional industries, namely travel, healthcare/ medicine, law, management consulting and banking/finance companies are able to make the transition to the online medium having great efficiency and value. From the case studies discussed in the thesis it has been clear that e commerce has revolutionize the business environment and enhances efficiency and better supply chain management. Overall, it helps in developing better relationship with the supplier and customer. However, their exist challenges in the implementation of e commerce and needs structural change for an organization. So, commitment from all the levels in the organization is needed for the successful implementation of e commerce.

Nine years after the Internet has become openly available for the public, the most optimistic reports say that 200 million people are online. This accounts only for 3% of the world population. Of course, never will everyone go online, but after a certain shopping on the Internet will stop being so trendy and consumers will want to go back to seeing, hearing, feeling a product before buying it. And they will want to take it home right away to enjoy it, not wait at least a day for delivery! And that means that conventional retailers will have to be members of a very effective channel to compete adequately.

It would seem likely that B2B e-commerce will continue to grow over the next five years and beyond, however the rate of growth is difficult to predict. There is however, at present, far less certainty about the future of B2C e-commerce. Its future will be closely tied to the issue of whether B2C e-commerce proves to be profitable in the next few years. Therefore, B2C e-commerce could either continue to grow (i.e., a continuation of the current trend) or, alternatively, it may reach a peak and then begin to diminish, with it only continuing in certain niche sectors in which it achieves satisfactory profitability. For B2C e-commerce to prove profitable and appealing it will require very efficient, reliable and low-cost freight transport services. In addition, the costs for order picking will need to be

low – this could be a particular barrier to e-commerce grocery/food services. While freight transport services tend to be relatively low-cost, it remains to be seen whether these services can achieve the necessary level of efficiency and reliability that will be required by customers with ever increasing service level expectations.

Internet marketing would appear to have the hallmarks of a management fad whose bubble has burst. The reality is that electronic commerce, and Internet marketing, will continue to gradually encroach on traditional marketing channels until well into the 21st century. Large-scale technological change does not occur overnight. Electronic commerce represents an emerging channel. While businesses need traditional outlets to continue to deliver sales, cover markets, and carry their products, they cannot ignore the potential power and efficiency of e-commerce.

References

- Abrahamsson. M. & Brege. S. (1995), Distribution Channel Reengineering - Organization Logistics and Marketing, Linköping University: Department of Management and Economics.
- Achrol. R. & Kotler. P. (1999), Marketing In the Network Economy, Journal of Marketing, 63, 146-163.
- Anderson. J & Narus. J. (1990), A model of the distributor's perspective of distributor-manufacturer working relationships, Journal of marketing, 48, 62-74.
- Anderson, E. & Weitz, B. (1992), The Use of Pledges to Build and Sustain Commitment in Distribution Channels, Journal of Marketing Research, 24, 18-34.
- Armstrong. A. & Hagel. J. (1996), The Real Value of Online Communities, Harvard Business Review, May-June, 134-141.
- Balasubramanian. S. (1998), Mail versus Mall: A Strategic Analysis of Competition between Direct Marketers and Conventional Retailers, Marketing Science, 17 (3) 181-195.
- Balasubramanian. S., Peterson. A. & Jarvenpaa. S., Exploring the Implications of MCommerce for Markets and Marketing, Journal of the Academy of Marketing Science.
- Bayles. D. (2001), E-commerce Logistics and Fulfilment - Delivering the Goods, Upper Saddle River: Prentice Hall.
- Bernard J. (1970), Integrated Distribution Management: A Management Perspective, in: International Journal of Physical Distribution 1.
- Bello. D. & Lohtia. R. (1995), Export Channel Design: The Use of Foreign Distributors and Agents, Journal of Academy of Marketing Science, 23(2) 83-93.
- Christopher. M. (1998), Logistics and Supply Chain Management, second edition, London: Pitman Publishing.

●

Financial Measures to Acclimatize Remote Workforce Stress

Shubham Dadariya*, Mohsina Bano, Swasti Singh***, Prof. Yashwant Singh Thakur******

Acknowledgment : This paper is largely an outcome of research sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed, and the conclusions drawn is entirely that on us.

Keywords : Financial Measures, Stress, Working Remotely, Financial Awareness

Abstract : In this dynamic environment, it is quite hard to retain the workforce. And to retain the workforce in this current competitive environment, it is a must for organizations to improve their financial measures towards their employees such as financial decisions and compensation. Compensation must remove any barriers related to location, rather than making compensation favorable for those who attend the office, the flexible offering must be there irrespective of location. This will create a healthy work environment and lower the stress level of such

employees. These days telecommuting and other work methods are part of every organization which makes it challenging for organizations to meet their employees in person, therefore organizations work on providing financial awareness to employees through electronic ways. Especially when people are more financially aware, compared to last decade, it is highly expected from them that their financial measures should be well versed, but still, their financial measures are not up to the mark. And to improve this scenario, organizations must take key measures to reduce stress caused by the lack of financial awareness of the remote workforce. This is a descriptive study and the objective is to understand how financial measures affect the stress of the future workforce through a comprehensive study of the literature.

Introduction : Awareness of Financial Practices is the major concern for managing the stress of the remote workforce in the modern period as remote workforce are working in a separate corners of the world. People earn money by Putting their efforts while working day and night and spending most of their time in their job, due to the shortage of time and hectic work schedule of remote workforce they have limited source

* Research Scholar– FMS Dept, Dr. Hari Singh Gour University, Sagar, M.P.
**Research Scholar– FMS Dept, Dr. Hari Singh Gour University, Sagar, M.P.
***Research Scholar– FMS Dept, Dr. Hari Singh Gour University, Sagar, M.P.
*** Dean– (School of Commerce & Management), Dr. Hari Singh Gour University, Sagar, M.P.

knowledge and touch with financial investment decisions.They are 'stuck to one place and experience social isolationwhile working.The workforce, in this case, meets less with the outer world which is some how difficult to manage. Taking financial practices into consideration is a must i.e. creating financial awareness among the employees, compensating them, and providing them with better rewards and benefits is essential for any organization

Taking financial concerned decisions such as investment, borrowing, saving, protective measures, and other financial measures are difficult to find out without any guidelines and this unawareness leads to stressing employees' work-life for future decision making.

There is a famous saying that, a clap always requires two hands, and this surely goes for every place. When it comes to attaining an escape route from financial disparities, it is highly obliged for the employer and employee to put in their combined efforts in light of modern techniques of financial practices and engage with them sincerely so that the cons of remote working can be dealt with the simple and smooth steps.

Sudden Despair : During the worldwide crisis of covid-19, when the human race had to react to this intense emergency. It became difficult for people from all backgrounds to manage their affairs, whether general or financial. Especially when the world froze and there was no mobility of funds, the matter of financial affairs became more vulnerable. Only those who would have been financially aware and those who would have taken the saving measures sincerely would have felt at ease and would have been ready for upcoming uncertain future crises. As such employees had secured some amount of money which has helped them with their expenses and will help them to acclimatize the organization

On the other hand, those who had never taken the financial practices of saving as a required aspect of future crises had to suffer a lot. And when we talk about the workforce, a lot of workforces was asked to work from their respective homes and many had to face the adverse effect of Lay off & Retrenchment. Though the concept of Remote Working was implemented even before the pandemic by several companies to save various kinds of costs such as transportation costs of employees.

The reality of remote working concerns to financial personnel:

Finance, as a function, relies on all other departments to complete tasks. As a result of the lack of smooth cooperation, teams may be forced to engage in lengthy and duplicated processes for no reason. This has an effect on employee and financial productivity in general. Accounting professionals lack the expertise, insight, and time to make the proper decisions about company finances, thanks to paper-based reporting and in-house meetings that are off the charts. Unfortunately, this means that there

will be no cost optimizations or corrections in the areas of funds allocated policies, and expense management.

Business expenditure and policies are required to be given second look, because of changes in the expenditure pattern of business. It creates a vouge horizon for financial teams, to sum up, and manage the financial figures Workers or Finance teams can no longer simply step into the adjacent room for immediate clarifications or corrections. Processes that require physical human interaction fall to the ground as a result of distant labor. Furthermore, they result in manual processes that are broken, imprecise, and time-consuming, allowing financial leaks to damage firm finances. Consider the case of expenditure fraud.

As a result, it is safe to assume that if these elements go unchecked, they will have a negative impact on all other business activities, as good finances and liquidity are the foundation of any successful company.

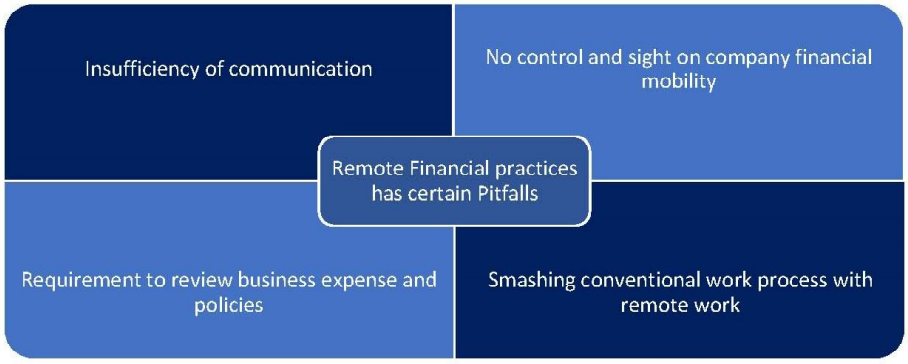

Fig 1.1Source: 1

1(Akeela Zahair, 2021)

Financial practices among organizations and their remote workers

One of the biggest shifts after covid-19 has been on the working pattern. There is an immense rise in remote workers after the Pandemic. It took a hard turn on those who were new to it. Initially, it was relaxing and leisure'sfor the majority of them, but later on, they had to go through the ill effects of working remotely, both mentally, physically, and especially financially.

Organizations do work on providing better financial practices to their employees, but they don't succeed easily because of the impassive behaviour of remote workers. And they being uninterested in various kinds of financial awareness programs provided by the organization is justified enough, as they spent most of their time on screen it becomes lethargic and painful for them to again put up the efforts to gain knowledge through the same online mode of learning. Which makes them negligent towards attending various online programmes after their busy work schedule.

This behavior of remote workers creates a lack of financial awareness among the employees which results to stress among employees. Although there are various other things such as social isolation, lack of resources, etc, which are the reasons for stress, therefore impacting the financial decision practices of the employees.

Fig: 1.2

How Organisation can assist the remote workers in managing stress :

Organizations should convince their employees to embrace a better work-life balance by allowing them to work from home and plan for their financial future by taking charge of their household budget and setting financial objectives. Employees should be able to deal with savings issues, especially if they have lower daily expenditures during this work-from-home period. Employees should have access to important financial security coverages that can help them improve their financial well-being. By giving employees access to digital platforms that can assist them in better understanding their financial well-being while working from home. Companies should host live webinars on employee financial well-being. In comparison to other aspects of well-being, financial well-being has the following impact.

Scope of the study Causes of Stress In Remote Worker Lack Of Opputunity To Mingle With Coworker Lack Of interaction with external dynamic environment Lack of Resources and Lesser Physical Activity Social Isolation And Depression

After reviewing and analysis of various literature it was found that this study has tremendous need in modern society for the remote for getting

financial stability workforce as it helps to know the cope up ways for better utilization of fund. The study shows various measures have to adopt for dealing with effective financial practices and measure efficiently and getting financial stability specifically during Covid-19 when people are going through a financial crisis. It also covers the other aspect as most of the renowned organization institutions consider work from remote locations workforce while staying at home for that financial security aspects is the key to keep themselves secure in the tuff battle of life and uncertain life of remote workforce towards getting relieved from stressful situation which occurs on a frequent basis. Causes of stress among remote workers impacting their financial measures are highlighted in fig.1.2

Review of literature : (Vishal Mathur, 2020) Only 1 in4 professional in India was offered flexible working hours and well-being assistance, which might have included emotional well-being initiatives, according to the LinkedIn Workforce Confidence mental health edition poll. Only one out of every five professionals got more time off through paid or unpaid leaves, according to the findings. As many as 40% of Indian professionals are still dealing with financial insecurity, resulting in substantial levels of financial stress.(Larson et al., 2020) suggested the challenges faced by remote workers as they lack the assets to information, especially about their coworkers, and they feel social isolation. They suggested that better communication using richer technologies and more remote social interaction would help(Bhattacharyya, 2019) mentioned with the increase and dependence on technology remote working and co-working spaces will be seen in India. Thus, this paper has tried to understand whether this social isolation leads to financial awareness or not. Also, this knowledge of financial awareness is a cause to stress or not.(Schall, 2019) talks about the relationship between job satisfaction and remote work. So in order to make the worker efficient, organizations should ensure their satisfaction levels.(Nicole D. White, 2019)Financial stress act as an important determinant in declining health conditions and a healthy lifestyle. From her study and financial success program, she demonstrated that financial education and coaching can be used as an effective strategy to reduce the stress level in work life, caused due to financial awareness. She highlighted a few research gaps which emphasized finding whether this reduction is associated with improvements in healthy lifestyle behaviors, quality of life, and objective health outcomes. (Elshaiekh, Hassan, & Abdelrouf,

2018) talked about the negative impact to any type of remote worker which could be social isolation and no knowledge sharing. (Thompson, 2017) examined the association of perceived financial stress and strain with work hope, of people in the United States who are in their adolescence. Their outcomes were according to their expectation, which states that a

higher level of perceived financial stress and strain is associated with a lower level of work hope. Remote workers are the workers who work completely on their own without going to any central location to the office. The remote workers in today's time include remote workers and telecommuters (Mulki, 2017) one highly used method of work under telecommuters is work from home. One cannot ignore these people who are working remotely in our country. As this will be a future trend to work there is a need to understand their financial awareness and stress.(Johnston, Wech, & Jack, 2013) states that the work environment and external cues in which employees work will be stimuli for workers to understand the organizational policy.(Mindi N Thompson, 2012)has acknowledged financial strain and stress in clinical practice and said that it may provide an opportunity for the practitioner to understand and deal with clients' experience and work. (Kelliher, 2008) suggested there is stress and opportunity on learning in remote working. To be a good employer, an organization must consider framing policies that promote work-life balance.(Ronald C. Kessler, 1988) surveyed a high fall in unemployment in south eastern Michigan, which showed the relationship between unemployment and damage to health. They discovered how the loss of employment leads to financial stress and, hence, a decline in health and vice-versa. they tried to build a supportive social network among unemployed workers and suggested that the focus of their research interventions would be more effective if it focuses on the financial stress of unemployment on an individual basis.

Glance Review

S.No.	Year	Author	Focus Elements
1.	2020	Vishal Mathur	40% of Indian professionals are still dealing with financial insecurity
2.	2020	Larson et al	Social isolation, communication using richer technologies
3.	2019	Bhattacharyya	Dependency on technology, social isolation
4.	2019	Schall	Relationship between job satisfaction and remote work
5.	2019	Nicole D. White	Use of financial education and coaching strategy for reduction in the stress level in work-life
6.	2018	Elshaiekh, Hassan, & Abdelrouf	Negative effects, social isolation, and no knowledge sharing

7.	2017	Thompson	Association of higher level of perceived financial stress and strain is with lower level of work hope
8.	2017	Eddleston & Mulki	Impact of telecommuter on stress and remote working
9.	2013	Johnston, A., Wech, B., & Jack, E.	Work environment and external cues act as a stimulus for workers to understand the organizational policy
10.	2012	Mindi N, Thompson, Cole and Nitzarim	Financial strain and stress provide an opportunity for practitioners to deal with clients' experience and work.
11.	2008	Kelliher	Frame policy and promote work-life balance
12.	1988	Ronald C. Kessler	Unemployment leads to financial stress on an individual basis, supportive social network for unemployed workers

METHODOLOGY : This descriptive research considered the literature of financial practices in an organization on remote workers and their stress factors. The factors linking all these aspects are being considered from various sources such as magazines, web pages, research articles to understand the concepts and importance of financial practices on remote workers and lack of financial practices and lack of awareness leading to stress on employees. The main statement problem is to understand the main causes of the financial stress of the remote workforce also to know the coping strategies of financial practices for the remote workforce.

Analysis : Based on the literature above, it is identified that lack of financial practices leads to lack of financial awareness and stress among the employees who work from remote locations. To improve one's own financial practices the employees themselves take up the activities or initiate some changes in their working.

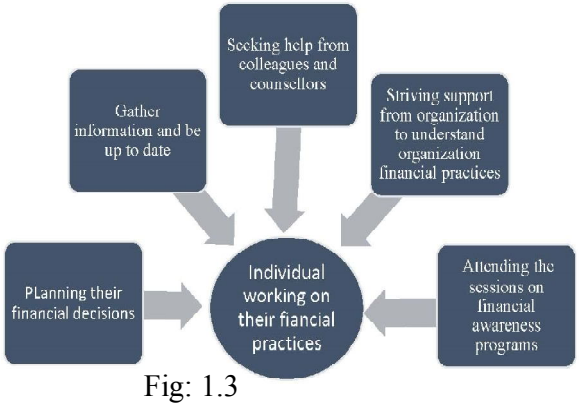

Fig: 1.3

Individuals must attend the sessions on financial awareness programs by the industry, organization, or an association to be in touch with financial practices going on in that particular sector or organization. Employees need to gather information and be up to date concerning all the financial practices instead of being social aloof. Rather than experiencing social isolation, one must seek organizational support to understand the organizational practices in a better way. Aligning employees' financial decisions would be easy once an employee knows about the financial support and practices of the organization. Seeking support from colleagues and counsellors will also help them better to increase their financial awareness. All this will help them to plan their financial decisions better and align them with individuals' financial goals.

The role of an organization is equally important for creating financial awareness and thereby, reducing the stress of workers working remotely.

Fig: 1.4

There are many measures based on Organisation working style that can promote the financial practices to their remote worker such as frequently being in touch with their remote workers for generating interest in the financial decision while working remotely. Providing opportunities by the parent organization for open and clear communication with the employees can assist to share ongoing financial practices for better financial decisions specifically for saving and investment. Organizations can provide the financial awareness programs such as keeping conferences, training, and seminar sessions for remote workers to keep themselves updated about ongoing new financial aspects which are linked with the market activity and to sort out the health issues such as stress anxiety mental sickness, etc. For this Organisation can regulate the counselling

session and frequently educate them with the financial practices and Introducing Monthly fun quiz can also be a good option for assessment of financial awareness organization which would contain simple but informative questions on a specified set term period, which could be quarterly, monthly, weekly, whichever is suitable for both employer and employee. The aim of the questionnaire should be to understand the current status of the knowledge attained by the employee in terms of financial management. So that the organization can assess the required information and work accordingly to enhance the level of financial awareness of the employees.

CONCLUSION AND DISCUSSIONS : Taking Rational financial decisions at the right time is the main aspect of anyone's life otherwise it will lead to a stressful situation and if this concern the people working remotely then the condition is more restrictive in nature due to lack of mobility and time limit for that they must update themselves and use the authentic opportunity for investment and follow the rational saving manner on regular basis towards managing stress-free life and must aware with the new social secure financial policy and schemes of the ongoing market where the remote worker can also use the various measures such as follow balance work-life routine, more update regularly by print and electronic media on financial matters, attending financial awareness training sessions through the digital and social platform and to cope up with the stress emerged from lack of financial measures among remote workers can be resolved by adjoining efforts of organization as well as individuals. So, it is the need of the hour to create financial awareness and acclimatize the remote workers in their stress management.

References

- Akeela Zahair. (2021, 09 29). Ways Businesses can Manage Cash Flow in a Remote Work Setup. england and Wales. Retrieved from https://www.wealthandfinance-news.com/ways-businesses-can-manage-cash-flow-in-a-remote-work-setup/
- Bhattacharyya, S. S. (2019). Explicating the future of work : perspectives from India. Journal of Management Development, 175-194.
- Elshaiekh, D. E., Hassan, M. A., & Abdelrouf, M. (2018). The Impacts of Remote working on Workers . International Arab Conference on Information Technology, (pp. 1-5).
- Johnston, A., Wech, B., & Jack, E. (2013). Engaging remote employees: The moderating role of "remote" status in determining employee information security policy awareness. Journal of Organizational and End User Computing, 25(1), 1-23.
- Kelliher, C. (2008). For better or for worse? An analysis of how

flexible working practices influence employees' perceptions of job quality. The International Journal of Human Resource, 419-431.
- Mindi N Thompson, O. D. (2012). Recognizing social class in the psychotherapy relationship: a grounded theory exploration of low-income clients. journal of councelling phychology, 59(2), 208-221.
- Mulki, K. A. (2017). Toward Understanding Remote Workers' Management of Work–Family Boundaries: The Complexity of Workplace Embeddedness. Group & Organization Management, 346-387.
- Nicole D. White, K. P. (2019, December). Financial Education and Coaching. American Journal of Lifestyle Medicine, 13(6), 540-543.
- Ronald C. Kessler, J. B. (1988). Effects of Unemployment on Health in a Community. journal of Social Issues, Vol. 44(No. 4), 69-85.
- Schall, M. A. (2019, may). The Relationship Between Remote Work and Job Satisfaction : The Mediating Roles of Perceived Autonomy , Work-Family Conflict , and Telecommuting Intensity. San Jose State University SJSU ScholarWorks. california, US: SAN JOSÉ STATE UNIVERSITY.
- Thompson, M. N. (2017). Financial Stress and Work. Journal of Career Assessment, Vol. 25((2)), 254-267.
- Vishal Mathur. (2020, 10 8). Workers In India Facing Increased Stress, Anxiety And Burnout Due ToLack Of Well Being Support. India.

●

Employment Generation : Retrospect and Prospect
(A comparison between the self-reliant growth strategy and Neo-liberal economic growth)

Dr. Deepak Kumar*

Abstract : More than two decades have elapsed when India switched over in 1990-91, from the self-reliant economic growth strategy to neo-liberal growth strategy led by the imperialist countries, specially by America in assistance with the Bretton Wood Financial Institutions, the International Monetary Fund and the World Bank. The policy tenets of neo-liberalism are just opposite to that of self-reliant growth strategy as it is directed to dismantle in economy everything that was built-up under the continued public pressures and strenuous struggle of the Indian labouring masses. What all is implemented in name of economic reforms, is government's effort for the facilitation of conditions in favour of corporate capital : such as denationalization of public sector economic and financial units, passage of anti-labour laws, retrenchment from services and downsizing of labour in name of reducing production cost for qualifying in volatile market, emphasis upon export, allowance to free flow of finance capital to India etc. along with them there are recently legislated GST law, Prime Minister Kaushal Vikas Yojana, amalgamation of Banks and others.

All these ushering changes in the economy and several other alike, will be tantamount to create unemployment with speed by leaps and bound. Privatization of public sector industrial and financial units will bring in future the merger of industrial and banking capital together under private ownership. Naturally, the bank capital will be utilized for expansion of its owners' business, reducing per item production cost will lead to downsizing labour, free trade in goods and services but heavy restriction upon free trade of knowledge and technology applied to the traded goods and services will underplay indigenous skill and closer of indigenous manufacturing centres like small industries, phasing out of priority sector lending by banks will negatively affect priority sector which provides jobs to 2/3rd of the unorganized labour force. All these sorts of concomitances, jointed together, will create unemployment, and consequently wage based demand will synchronize and widen unemployment. In future employment scenario in India is going to be more grim than what it has today. This article will analyse the sequences of neo-liberal policy on prospect of employment in India.

Key Words : 1. GST, 2. GST Council, 3. GST Bill, 4. President

* Assistant Professor– Department of Commerce, Jagan Nath Jain College, Jhumri Telaiya, University of Vinoba Bhave, Hazaribagh, Jharkhand

Assent, 5. Federalism, 6. Cooperative Federalism.

× × × × ×

Many study groups, constituted by various institutions and authorities as well as many researches in academic institutions i.e. Universities, have been conducted on the Indian labour power about its skill not adequately developed for employability in highly developed technology and its use in production day. In a globally opened market of today's world, India has to compete with countries whose percentage of skilled labour ranges between 60 percent to 90 percent of their total labour force. The skill lackness in India is major constraints in development of the Indian economy and exploitation of available natural resources of India for its multi-dimensional growth. For coping with the fast growing technology and copious production achieved by developed countries across the world skill structuring of the Indian skill ecosystem is an urgent need of India. The redressal of this double facet skill problem required quantitative and the qualitative upgradation for fulfillment of the aspirations of the Indian youth.

Introducing the Problem : Notwithstanding the largest population of 1.2 billion just after neighboring China, India is considered to be as one of the weak country in world committee of nations. Furthermore, its economically weak placement in global community of nations has not been caused owing to caused by the Paucity of natural resources and demography condition but due to its lower technology and skill, required for bring it out from dilapidated condition. To gear up the economic growth pace the thematically conceptualized schemes. Make in India, was launched by the Indian Prime Minister in September, 2014 under the nation building programmes. However, the "Make in India scheme was launched in an imperceptible condition when the growth rate of India was declining and the growth pace of economy appeared to be murkier and murkier. Make in India was undeniably an earnest attempt on part of government but while proclaiming this, it was comfortably forgotten the objective material condition under which it was brought on fore. It was an attempt to initiate changes in manufacturing sector with a view to fill up the blank.

To propagate the scheme among general public social media was geared up by the creation of various website to propagate government policy and dissemination of details about the scheme. The Department of industrial policy and promotion has been making strenuous efforts to make the people known the objective to the people that the scheme, that the basic purpose of the scheme, is to transform labour into skilled labours. But the negative side of this proposed scheme, that has assured the people to bring out of their miseries and dilapidation has been belying them. Since India is also a signatory of WTO trade regime which allows only the goods and services to be traded freely, but the technology and knowledge applied to

produce the traded commodities are restricted to be delivered to anyone. Such provisions underlining in the Trade Related Intellectual Properly Right (TRIPS) will heavily undermines the role of indigenous skill of weaker countries to get than out of the higgledy-piggledy of marketized economy.

The ministry of skill Development and Entrepreneurship has been set up for skill development across the country for the impartation of all sorts of skill education through skill development centres commenting upon the scheme, thus launched there, had categorically remarked, The Ministry aspires to offer skill on a large scale with swiftness and high standard to achieve their vision of 'Skilled India[1]. To give speedy growth pace, the Ministry has formed National Skill Development Agency, National Skill Development Corporation, National Skill Development Fund, and 187 training partners registered with National Skill Development Corporation. Attempts have been made to create a wider network with universities, state government, International Organizations, Industries, NGO for implementation of Skill Developments Programmes.

Literature Review : Abundance of literatures have appeared in various forms either in news media or print media commenting upon "Make in India', Skilled India" or other terms that have been etymologized with the skill development. Ironically, majority of them, perhaps more than 90 percent of them, are virtual reputation in changed words the same version as the government and its officials have spoken of, no critical evaluation is found. If it is found that is rare or seldom. Here, there are examples, cited to show how the scheme of skill development, has been projected by commentator one sidedly.

One, Sai Nidhi commenting upon Make in India, in her article claims that the proposal has been brought forward to provide employment to millions of youth in the country. She writes; "This programme was initiated to encourage companies to increase manufacturing in India. This not only includes attracting oversee companies to set up shops in India but also encouraging domestic companies to increase production within the country. The Government aims at increasing the DGP and tax revenues in the country by producing products that meet high quality standards and minimizing the impact on the environment promoting innovation, protecting intellectual property and enhancing skill development are the other aims of this programm[2].

In an another comment Kumar Vivek and Radhika Kapoor in their article entitled "Nuts and Bolts of Skill Development" written in 2016 commented that the extent the employees have been analysed. In India nearly 12 million people participate in India's total works force and of them only 4 percent are skilled in spite that India has good infrastructure for skilling its labour force. The government of India has been making tireless

labour to develop skill of its labour force, several hundred thousand Rs. has been spent to inner base skill but the achievements scored herein have not been materialized. They have concluded that there should be attempt on the part of government to make efforts for resource utilization and search remedy to enhance the skill of workforce. These commentators are also victim of analyzing the skill promotion in isolation without linking it with global economy of imperialism. In the liberalized economy skill promotion in general is averse to market economy. The skill promotion and on that account employment generation through government sources are out of question as the neo-liberal development policy is opposed to government interference in national economy. So skill development in such economy as India has opted to run, means development of skill not for well being of people in general but for profit of corporate sector.

The Strategy of skill development adhered under the PMKVY has been designed on the same line of action, e.g. by spending money, money from public exchequer the scheme has been carried on to placement of trained worker in multinational companies themselves.

Similarly, in every piece of literature there are found blind support to government policy which has been announced in pro-corporate benefits. The commentator as Amit Shanbanga in his article : Make in India-employment generation to get a Boost" has given, much confidently, that the scheme has proposed to generate 100 million employment by 2022 with a designed scheme to give India's manufacturing sector a greater role in domestic job creation. At present India's manufacturing sector has been given a target of 16 percent contribution to national GDP and till 2025 it has to be delivered 25 percent of GDP. It has been targeted to transform India, by 2025 into 5th among the five highest competitive nations in the World.

Objective of the Research : The Scheme of PMKVY has been branded as the most effective and serious efforts taken till now to eradicate unemployment and its related poverty. However, there are conditions under WTO regime and market economy which have negative stances against such assertion. Secondly under the WTO trade regime restrictions on freer trade in technology has been restricted on which account indigenous technology of all developing countries are being under mind.

A huge amount of foreign exchange is in operation globally and the Indian stock market is pathetically weak in its comparison— so weak that 3 to 4 days motivated trade can sweep out the entire stock exchange reserve & all central bank across the Word. Many other such conditions averse to allow smooth growth of weak economy like India. This research is an effort to locate the possibilities to achieve by the scheme its designed objectives.

Methodology : The research methodology, adopted here, is that of fundamental research methodology which is driven by a curiosity or a sense of specific desire to add something to the knowledge, expend the horizon of

the research. The Primary data has been collected through interviews and secondary data have been found from the files of National Skill Development Corporation (NSDC)

A careful look upon PMKVY reveals that the scheme, launched, has certain specific goals to be achieve for making out India from its today's perilous condition. Briefing these goals they can be cited as given below :

1. India possesses the highest number of youth in comparison to any single country across the world. Their transformation into the highest degree of skill trained to work in various sector will make assets to the nation.

2. To create opportunities and to make that opportunities available to all, specially to scheduled castes, Scheduled Tribes, other backward and unprivileged group people to prepare skilled workers.

To encourage youths and bring them out of all sorts of lackadaisical conditions there has been made provisions of monetary reward maintaining the continuity in certification process for the creation of a registry of skill.

There has also made provisions for collecting large member of Indian youths to participate in skill training and prepare them to be employable and earn their livelihood. It has been perceived that increased productivity of labour force and support to certification is the need of country.

Make in India : For speedy implementation of schemes and programmes launched under Make in India of which PMKVY is an inseparable part a functional or hierarchical administrative set up has been developed.

Department of Industrial Promotion and Publicity (DIPP) has place under the Ministry of Industry and Commerce. It has been organized using matrix formation or a hierarchical structure is being allowed. To make the implementation of programme to be implemented more effectively there is made a clear segregation of programme to be made more beneficial.

Below given organizational structure was presented in project Management conference of make in India, 2017[3].

Organisation Structure of "Make in India"

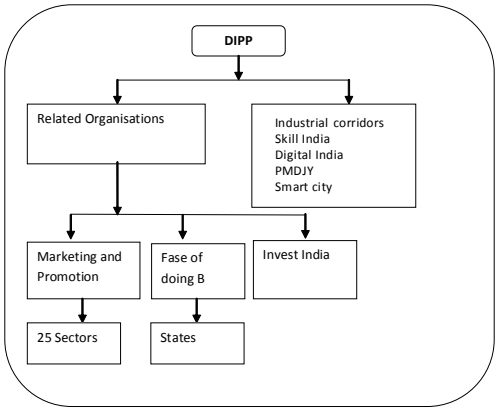

Source : Copied from : Organization structure of Make in India, *Project management conference Report*, 2017.

Performance Assessment : To encourage the youths to participate in the scheme for being them trained in skill to be prepare for the performance of technical job s a reward worth Rs. 5000 and an another reward worth Rs. 12000 have been proposed to be given to trainees through the National Skill Development Council (NSDC). As per report of the Sharda Committee 1.8 million youths have been trained and 1.2 million have been certified. The reward scheme was started by government with an intention that it would enthuse the youths to participate in the skill training programme enthusiastically but the government's mission failed to score its objectives.

Over all Impacts : The perusal of the above given facts establish that prospective of employment generation is dukedom large enough. To materialize this prospective planning for employment generation and required number of skilled labour should be prepared and supplied through government chambers not by the private agencies like centre heads. The entire PMKVY has been organized on a private model organization, comfortably forgetting the fact that private sector seldom oriented to the creation of employment but what it is interested in, is creation of self profit. This contradiction between employment generation and self profit of produced/private employed is the greatest odd to the perspective of employment generation. The PMKVY scheme is to create cadres on public money expenses to meet the cadres demand of corporate sectors without any Investment by them.

Reference :

1. Dr. P. Uma Rani, D Padmalosni" Skill Development Through Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana", *Journal of Advanced Research in Dynamical and Control Systems*, Vol. 9, Sep. 18, 2017. Saltanat of Oman, Special Issue on Engineering Technology, pp. 1616-1623.
2. *Ibid*.
3. "Make in India", *Project Management conference Report*, 2017.

●

Tapestry of Wisdom and Ethos
The Folktales of India during Silk Routes

Dr. Varsha Singh*

Abstract : The eternity ceaselessly rolls up assimilating the past and formulating the future whether we take culture, tradition, trades, ethos, wisdom and intellect of the time. India is known for its rich culture, tradition and fertile heritage from time immemorial, encompassing the folktales of Indian regions that came directly under the silk routes. This paper aims to explore Indian sensibilities and ethos expressed in the folktales of Bengal, Gujarat and Tamil Nadu. Further, it encapsulates the fact that the folktales of these regions are a beautiful portrayal of Indian literary sublimity which should be preserved for the sake of nation-building.

Keywords: Folktales, Silk Routes, Indian Sensibilities, Ethos, Treasure Troves Memory, Redrawing History.

The wheel Time is moving at a regular pace and it is changing eventually now and then. As we know, a network of connecting trade routes from east to west, the silk route was the centre of economic, cultural, political, and religious interactions among these regions from the 2nd century BCE to the 18th century AD. Though originally started to trade silk, soon it became not only a medium of economic exchange with silk but also other items of importance. It was a connection of civilizations on the basis of social, political and religious grounds which is clearly visible in the folktales of people residing near the silk routes. In the Indian subcontinent silk route was mainly passing through coastal regions. It played a significant role in the development of the people and society. Indian folktales of coastal regions are the repositories of past experiences that reflect changes mainly in the field of science, technologies, and philosophies that occurred in human lives due to the Silk Route expansion from China to Africa, mid-Eastern countries and then to Europe through India within a timeframe of the silk route. They are treasure troves describing beautifully how the boundaries could blur and coalesce. These tales are deeply rooted in the life of the common people and have been transmitted from one to another generation through the oral tradition. They are not only the main source of instructions but also the chief means of entertainment throughout the silk route period. A connection of cultures, scientific discoveries and innovations, medicinal and technological knowledge, and the opening of a vast vista of human experiences are visibly seen in the folktales of Bengal, Gujarat, and Tamil Nadu. Indian landscape, culture and rich heritage of these regions have been perennially

* Associate Professor– Department of English, Deshbandhu College, University of Delhi, Kalkaji, New Delhi-110019

represented in the folklores. Inspiring Indian sensibilities can be seen in the portrayal of realistic details about the food habits, clothes, living style, rituals, traditions, beliefs, superstitions and even hairstyles of the characters or speakers in the folklores. These folktales are epitomes of epistemological projects, organizational rubrics, formal structuring, and substantive contents order.

Folktales of Bengal : Indian landscape, culture and rich heritage of Bengal have been perennially represented in the folktales of this region. In the stories entitled The Origin of Rubies, The Origin of Opium, The Story of Swet-Basanta, The Bald wife, The Indigent Brahman, The Story of the Rakshasas, The Evil Eye of Sani, The Boy whom Seven Mothers suckled, The Story of Prince Sobur, Strike but Hear, The Adventures of Two Thieves and of their Sons, The Ghost-Brahman, The Man who wished to be Perfect, A Ghostly Wife, The Story of a Brahmadaitya, and The Story of a Hiraman etc. as mentioned in ***Folk-Tales of Bengal*** **(1883)**, a collection of folk tales and fairy tales of Bengal by Revd. Lal Behari Dey, the portrayal of sensibilities, ethos and beliefs prevailing in India during the silk routes can be easily noticed. These folktales are portraying the saga of merchants, ordinary wives waiting for their husbands to return back from business travels, co-wives' jealousy, the influence of sages and supernatural elements etc. etc. These are the stories of subaltern people who believed in magic and had deep faith in the sages who could remove all the problems of the human world by their ascetic power during early days. These tales encompass the great ideas of respecting natural elements….plants, rivers, ponds, animals etc. by presenting the protagonists who are being benefitted and awarded by nature in return for the love and care given to them.

From the very early days, India is famous for its rich quality silk, jewellery, and precious gems mainly ruby, art, sculpture, perfumes and many other artistic items which were being traded worldwide. The ruby is one of such item which is known for a lustrous, deep red stone that has accrued special and symbolic meaning through time. Through the ages, the ruby has represented nobility, purity, and passion. From ancient times through the modern day; rubies have been valued by cultures around the world.[1] India was classically regarded as Ruby's country of origin for more than two thousand years…..In Southeast Asia, Myanmar, Thailand, Cambodia, and Vietnam have also been long regarded as sources of fine Rubies.[2] From these countries rubies were traded in Europe and the rest of the part of globe through silk routes in the earlier time. The folktales of Bengal entitled "The Origin of Rubies"[3] and "The Origin of Opium"[4] are the most representative tales narrating the origin of a precious gem called ruby and a drug named opium. They are highlighting the mythological stories related to the origin of these two items along with the use of technology, ships, and the existence of ports in big cities of the coastal regions for the convenience of traders and travellers in India in past.

'The Origin of Ruby' starts with the tale of a king who died leaving four sons behind him with his queen. The queen loved the youngest of the princes most which become the cause of jealousy for her other sons. So they conspired against him and their mother, making them live in a separate house and taking possession of the entire estate. One day the young prince went to the river for a bath with his mother. There he saw a large boat at the anchor. He went into the boat and asked his mother to join him on a voyage. Reluctantly she stepped in and the prince took up the anchor. Falling into the current the boat passed on swiftly like an arrow. Soon it reached into the open sea. The boat came near a whirlpool after passing many furlongs, where the prince saw many monstrous-sized rubies floating on the waters. No one had ever seen such large-sized and highly precious rubies. The prince managed to pick up half a dozen of those rubies from the water and showed them to his mother. The queen advised not to take up those red balls. They would be of somebody who had been shipwrecked and people might suspect them as thieves if they would keep those red balls. Following his mother's advice, he threw them into the sea, keeping only one tied up in his clothes. The boat then took them towards the coast where the queen and the prince landed at a certain port.

This episode in the folktale informs about the fact that technology at that time was highly developed and people used to travel via sea by big boats and ships which were made to face various hurdles like a whirlpool, thunder and cyclones etc. of sea journeys. Yet the problem of shipwreck would have been a common adversary in the lives of voyagers, hence it is mentioned by the queen in the narrative. Ports, during those times, were mainly made in the large cities which were the centre of economic, social and political importance. People in such cities were accustomed to seeing strangers with strange items arriving from far places. Houses/huts/ inns were also made where travellers could stay easily.

The narrative extends to inform about the mother and son landing at the port of a large city which was the capital of a great king. They took a hut on rent near the palace of the king. One day the prince was playing with the ruby ball outside of the palace. The princess of that kingdom saw his ruby from her balcony and got a desire to get that gem. From here onward trade of rubies began. To satisfy his daughter the king offered a thousand rupees for the red ball, and the lad easily gave the gem because he was unaware of its value. He gave that money to his mother.

Overjoyed by her new possession princess put that ruby in her hair as an ornament and asked her favourite pet parrot, "Oh, my darling parrot, don't I look very beautiful with this ruby in my hair?" The parrot replied, "Beautiful! You look quite hideous with it! What princess ever puts only one ruby in her hair? It would be somewhat feasible if you had two at least."[5] Hearing this princess could not bear the shame and went into the grief chamber of the palace leaving food and water etc. She informed her

father about the parrot's talk and also added, "Father, if you do not procure for me another ruby like this, I'll put an end to my life by mine own hands."[6] The king became too worried to know about all these things. He ordered his servants to bring the lad, who had sold the ruby earlier. He requested the lad to bring another ruby and promised to give more rewards for the same.

Accepting the king's request the prince planned to go to the ocean once again. He travelled the same vessel and reached the same spot from where he had formerly picked up the rubies. This time, however, he dived into the water and found a beautiful palace at the bottom of the ocean. He went inside and saw that Lord Siva was sitting with his eyes closed, and absorbed apparently in intense meditation. There was a platform near lord Shiva's head, on which a young lady of exquisite beauty was laying. But the head of that lady was separated from her body. He saw a stream of blood trickling from the head of that lady, falling upon the matted head of Siva, and running into the ocean in the form of rubies.[7]

He saw two rods made of silver and gold near the body of that lady. He picked up both the rods in his hands and the golden rod accidentally fell upon the head of the lady. To his surprise, the head immediately joined itself to the body, and the lady got up. Astonished to see a human being, the lady asked who he was and how he had come there. Hearing the adventure of the young prince the lady cautioned him to run away immediately. She said, "When Siva finishes his meditations he will turn you to ashes by a single glance of his third eye."[8] The prince refused to return back without her because he had fallen in love at the first sight of that beautiful lady. Finally, the lady agreed to come with him. Prince had already laden the vessel with a cargo of rubies by which they travelled back to land. The prince's mother happily welcomed the girl as her daughter-in-law. The next morning the prince sent a bowl full of big rubies king who got happy beyond measure. Getting the rubies the princess decided to marry the person who brought such rare gems for her. The prince already had a beautiful wife yet he consented to have a second wife. Thereafter, they lived happily for years, begetting sons and daughters.

This folktale beautifully talks about the Indian ethos and religious sensibilities. The mythological story of lard Shiva and the fear of His third eye which opens to punish a person doing wrong is explicitly told. Simultaneously it is a beautiful tapestry of Indian society in which monarchy, sibling rivalries, jealousy, conflict over a share of the inheritance, practice of polygamy, practice of keeping talking birds as pets, mother-son and father-daughter relationships, trade of ruby and other precious gems, and description of port cities etc.

Similarly, the folktale entitled **'The Origin of Opium'** sings the saga of the origin of another important trade item opium for which India, China and other Eastern countries were very famous throughout the colonial

period. Opium, a narcotic drug that is obtained from the unripe seed pods of the opium poppy was native to what is now the country of Turkey. It is believed that Opium was first introduced to India and China by Turkish and Arab traders in the late 6th or early 7th century CE.[9] But how Indians internalised opium as their own is told through a very interesting narrative of Postomony.

Once upon a time a great sage (Rishi) was living away from the mundane world on the banks of the holy river Ganga. In his hut, however, there was a mouse, which was dependent to live upon the leavings of the Rishi's supper. The Rishi, partly in kindness to the little brute, and partly to have someone by to talk to at times, gave the mouse the power of speech.[10] One night the mouse reverently said to the Rishi that it was frightened by a cat regularly. Hence, the mouse prayed that it might be changed into a cat so that it might prove a match for its foe. The Rishi used the holy water of Ganga and chanted some mantras to transform the little mouse into a cat. But this little mouse developed an unsatisfying desire to be better than what it was. Often it requested the sage over the interval of some time to turn it into the dog from cat, then from dog to ape, from ape to a boar, from boar to an elephant because it had seen a king riding on a richly caparisoned elephant on a hunting spree in the wild, and from elephant to a queen as it had seen king lovingly taking care of the queen. His wish was granted by the sage every time and the greedy animal got itself transformed from one to another. Yet its unsatisfying desire to be better never stopped.

After transforming it into a beautiful girl sage named her Postomoni. She started living in his hut. One day she met the same king who was tired and thirsty after a hunting spree in the forest. Postomani recognised the king and brought out a water pot and tried to wash the feet of her royal guest but the king said, "Holy maid, do not touch my feet, for I am only a Kshatriya, and you are the daughter of a holy sage."[11]

Postomani humbly replied that the king was a guest who should be given proper hospitality. When the king inquired about details of her family Postomoni lied that her parents were Kshatriyas. Seeing her uncommon beauty and stately demeanour king fell in love and proposed her for marriage. The king promised that she would adorn the palace of the mightiest sovereign. The Rishi was consulted and he happily performed marriage rituals for them. Finally, the poor rat that was transformed into Postomani became a queen and soon achieved the rank of the most favourite queen of king. Her happiness, however, was short-lived. One day, standing by a well, she became giddy and fell into the water. She died leaving behind a lamenting king. The Rishi then appeared and consoled the king:

"O king, grieve not over the past. What is fixed by fate must come to pass. The queen, who has just been drowned, was not of royal blood. She was born a mouse; I then changed her successively, according to her own

wish, into a cat, a dog, an ape, a boar, an elephant, and a beautiful girl. Now that she is gone, do you again take into favour your former queen? As for my reputed daughter, through the favour of the gods I'll make her name immortal. Let her body remain in the well; fill the well up with earth. Out of her flesh and bones will grow a tree which shall be called after her Posto, that is, the Poppy tree. From this tree will be obtained a drug called opium, which will be celebrated as a powerful medicine through all ages, and which will always be either swallowed or smoked as a wonderful narcotic to the end of time. The opium swallower or smoker will have one quality of each of the animals to which Postomani was transformed. He will be mischievous like a mouse, fond of milk like a cat, quarrelsome like a dog, filthy like an ape, savage like a boar, and high-tempered like a queen."[12]

Most of the folktales of Bengal are stressing that the sentiments of nature and animals as well should be respected and man must live in accordance with close communion rather than interfering with their space and time. Man's materialistic approach, gender disparity, the theme of migration, transfer and feminine sensibilities are highlighted in the folklores of this region which by encompassing the beauties of dislocation create an ever-lasting impact upon the listeners. These tales are the metaphor to represent the entire culture of India and in other words, they are not only suggesting literal meaning but also the pain, trauma, dilemma and problem of a humane world. They are, in fact, providing not only the reasons but also the solutions to day-to-day difficulties in people's lives. These tales sensitise the listeners about the culture, creativity, environmental issues and historical perspectives as well. Hence, social issues reflected through the literary sensibilities of these stories have to be understood and valued before raising questions to show one's pseudo-intellectuality.

Folktales of Gujarat: Folktales of this region are the best example of sacrifice, valour, might, deceit and righteousness which provide a panoramic view of the rich cultural heritage of the state, Gujarat. Stories such as The Witti Duo of Gopu and Magan, Two Rodents, Rupali Ba, The Robbers, The Mistory of the Jaladhari, Mena Gurjari, The Magic Ball, Good is Good, Evil is Evil, Queen Vrajkunwar Ba, The Clever Brahmin, Veerbai's Bravery, On Choosing a Bride, Worth Her Weight in Gold, Ranak Devi Bhimo Jat, The Mustard Seed, In Honour of a Worthy Foe, Dilaram and Chandrika, Wisdom on Sale, The Sun God Finds His Mate are the trajectories of all-inclusive high social values and vibrant cultural heritage of Gujarat at one side and at another reflection of a society living under the constant changing phenomenon due to direct contact of travellers and traders of the silk route.

Rajput clans are mainly famous for their bravery as well as their sense of honour. Following the silk route, many Rajputs clans from Rajputana (Rajasthan) settled down in Gujarat for the sake of better prospects for

work and power in past. Being known as the Kshatriya, Rajputs were taught the art of weapons from very childhood. In this regard folktale entitled **"Rupali Ba"**[13] is very famous. This story sings the saga of a strong and courageous Rajput woman from the feminist perspective. Living under a highly patriarchal Indian society of that time, Rupali Ba presents a glimpse of the Indian women as the incarnation of goddess Kali (the goddess of power).

This folktale narrates the problems faced by people travelling from one place to another on foot for the sake of various purposes in earlier days. Camels or carts drawn by bullocks or horses were used by traders and travellers sometimes to pass long plains or desert. Such journeys were tiresome and longer due to the lack of less number of inns or villages where travellers could get some shelter and rest. Many a time bands of robbers or outlaws waylaid travellers and looted their valuables on the point of sward or daggers. If a traveller opposed or resisted he was killed by such criminals. Hence, no common man was willing to travel so far and if there was an utmost need to do so they preferred to take some escort with them. During that time villages were having their own escorts (group of brave men) with whom they liked to travel due to safety reasons.

In this folktale, Gema was a very brave, courageous and famous escort in a village who had exceptional skills and strong physical strength. But he became very proud of his ability. Once he had to escort Rupali Ba, a newly married, young and pretty Rajput woman who was going to her father's house in another village. Though it was a risky trip yet Rupali had to wear all her jewellery as per the custom of that time. Since Rupali was the daughter-in-law of a rich and noble family of businessmen, she would be also carrying bags full of expensive clothes and gold coins.

This episode, as mentioned in the story, reflects the Indian sensibility of that time when women were expected to wear lots of jewellery as per their social status and economic conditions. Patriarchy was prevailed all over the land and women were considered the honour of families and were always protected by men. No woman was supposed to travel alone. People used to strongly believe in astrology and the Brahmins were consulted in every village before starting any new venture.

As the story narrates, on an auspicious day (which was fixed by the village Brahmin), two bullock carts set out from the village. Rupali Ba, was sitting in the first cart with all her belongings. In the second, her escort Gema was travelling along with his weapons, food and water for the journey. They travelled through a very deserted land and did not find any inn to stay in at night. Gema got tired of a long journey and fell asleep, forgetting all about his duty and the threat of robbers. Suddenly a dozen armed men burst upon them. They caught sleeping Gema and tied his arms and legs firmly with string. He was now completely helpless and could not face robbers. The leader of the gang commanded Rupali Ba to hand over all

her pieces of jewellery.

Rupali Ba was a Rajput lady who could not lose her nerve. She managed to divert the attention of robbers smartly and also found a pole in her cart. She gripped it with both hands and brought the pole crashing down upon two heads who were trying to get her jewellery. Forgetting about the fact that the men before her were criminals, she leapt out of her cart. She had a pole in her hand as a weapon and wanted to teach the robbers a lesson. Rupali Ba bravely fought with them using her long pole. She was just an eighteen years old young lady. But she fought like a true Rajput woman, brave and utterly fearless.

The robbers were taken aback completely. But soon they attacked her with their swords. Rupali Ba got many cuts and blood started pouring out of her wounds. But without submitting she kept fighting and made the robbers ran away from the scene.

Though badly wounded she told the drivers to continue the journey and she followed them on foot. She was carrying a sword that one of the robbers had dropped as he fled. Early in the morning, they reached the village of her uncle. Seeing her wounds, he offered her some 'kasumbo' (a drink made from opium) to ease her pain. She drank it and continued walking to her father's village. But by the time Rupali Ba reached her father's home she was completely shattered. Due to the loss of blood and exhaustion, she managed to speak only a few words to her parents. She passed away after a while.

To this day the villagers of Gujarat love to retell the story of her fight with the robbers and sing songs in praise of that brave young Rajput girl. Rupali Ba's story is highlighting the subaltern's aim to challenge patriarchal boundaries and to represent the lived experiences of women from the feminist perspective. She has carved out the Indian woman's identity in spaces that were traditionally dominated by males. While this folktale is by no means all-encompassing, it is a collection of Indian ethos and sensibilities during the silk route period that is representative of the varied explorations of what it means to be a woman in India. Her courage and bravery, as told in the story, establishes the fact that Indian women are not mere showpieces or commodities. They are harbingers of power, wealth and wisdom, hence, called the incarnation of goddesses Kali, Laxmi and Sarasvati in our Vedic philosophy.

Folktales of Tamil Nadu : Any attempt to document the richness of indigenous culture is appreciable in a globalised world, which is felt to be losing many of its distinct ethnic and cultural forms, languages, and performing styles. Tamil Sangam has successfully presented Tamil culture on a global scale through classical Tamil literature. However, more new information and results are yet to be revealed which may be possible by evaluating and assessing the original oral literature of Tamil Nadu. The translator of many folktales of Tamil Nadu, Sujatha Vijayaraghavan, points

out that oral tales of Tamil Nadu are "dynamic, aesthetic, inspiring, and while making light reading is capable of provoking deep thought." She further mentions how such collections of stories give an "insight into the creativity, traditions of life and language skills of a people."[14] Folktales like Unwanted Guest, Fraternal Unity, Straightening a Dog's Tail, Tenali Raman, The Guru and His Disciple, The Abducted Princess, A Brahmin Makes Good, A Cruel Daughter-in-Law, A Mosquito's Story, Loose Bowels, The Bouquet, Killing the Monkey-Husband, A Dog's Story, and Poison Him, Marry Him are some of the examples of the rich and fertile Tamil culture and tradition which was there during silk route period.

Folktales of this state are thematically talking about different districts of Tamil Nadu. Each tales are encapsulating various themes such as "the aesthetic as social archive", "troping and naming", "ancient cities and tales," and "folk dances", "Gender and divinity" etc.[15] They deal primarily with Tamil beliefs and literature, for example, the "Kuttiandavar" tale describes the glorious port city of Kaveripoompattinam or Poompuhar. Drawing attention to believe the fact of "the little canon shaping the big" many critics of Tamil literature holds the view that the literary classic, 'Silappadikaran' "grew from folklore."[16] Tamil Nadu's rich culture is also visible in the folktales which are having references to deities such as Ayyanar and Jakkamma, sports such as Jallikattu, and dances such as Kummi.

Universality is another important aspect of folktales. There is a very interesting and distinct identity of universal theme which can be easily noticed in Tamil folktales. The one tale about the sister who saves her brothers is very similar to the Hans Christian Andersen fairy-tale, "The Wild Swans" where a girl silently makes shirts for her loving brothers who have been turned into birds by the wicked stepmother. The stories of the jealous neighbour, sibling or cousin who tries to imitate the journey to the forest and gets thrashed or punished by bandits are other examples that have universal tones. In "The Tale of Tales," there is even a reference to "Chakespiyar" (Shakespeare) which muses many of the readers of today. The story of the jealous queens battling to gain power in the king's life or trying to do away with the fecund one is also too familiar. There is also the Tamil folk version of the last of the Vikram-Betaal tales.

The popular **"Anandayi"**[17] tale points out how Anandayi is worshipped only by women for the sake of the well-being of women. This is a symbolic story about the woman in patriarchy who as a person or social agency of power is always deified invariably before she is valued. The methodology of her worship literally iconizes her in this story. It is a remark on the domestic hierarchy and the control of female's life by male chauvinism. This story is coming from the former South Arcot district (which is now divided into Villupuram and Cuddalore districts of Tamil Nadu). In this story, Anandayi is a Goddess represented by a face made out

of flour paste, on a coconut that is placed on an earthen pot.[18] Though she has no specific form or temple of her own yet she is worshipped by every Tamil woman. Various offerings are made to her at midnight on an auspicious day following the worship of the family deity. Men are mainly prohibited in the worship of Anandayi. Various tales about Anandayi are often recounted in clusters because there are many variations in this story depending upon the family traditions.

This folktale narrates that a husband and wife lived in a place called Vadapaakam. One day, the husband who had gone out for work came back hungry and wanted his meal eaten impatiently. His wife was then in the kitchen garden taking care of vegetable plants. She tried to hurry in when her husband called her. But her sari got caught in a thorny plant. She tried hard to untangle it but unfortunately, it was not possible to do so in a hurry. 'Chee! Let go of my cloth,'[19] she urged the plant. She spoke these words as she thought her husband would be waiting for her impatiently.

Her husband heard her words coming out from the garden. He thought that she was talking to a man outside. He demanded clarification suspiciously, 'Who was that?' 'No one,'[20] she replied. But he did not believe her. He dragged her around and started beating her. She got fatally hurt and died. From then on, for seven generations, no girl was born in that family and it was believed that the mistreatment of the wife by her husband became the cause of such misfortune. Women are the symbol of goddesses bringing good luck to the family from which that family became deprived for many generations. It was like a curse by the deity of the family. So everyone in that clan started to gather year after year and fill seven winnowing fans with many things and make an offering so that the curse could be removed. Girls were born to them only after all those rituals.

This folktale teaches the most important lesson of life that both man and woman are equally needed to run a family. Hence both should have faith and respect for each other. Any misbalance in this norm may cause serious consequences. Further, it shows that gender inequality, domestic violence and crime against women are strictly prohibited in Indian society from the very beginning of human civilization.

Conclusion : Recollection of past experiences and interlocking present lives of human beings play a very significant and crucial role in enabling human beings to cope with the present challenges of life. In other words, following Julia Kristeva's theories, folktales are the memory of semiotic existence; the 'Chora' pulls the person back to the root where she/ he may find solace and strong connection of spiritual and emotional levels. This deeply rooted almost unconscious connection between one's land and birth is the main cause of the popularity of folklores. Despite being unreliable, erratic and mercurial memory of the past resented by Indian folklores is inescapable. These tales are the marvellous tapestry of wisdom and ethos that needs to be presented and nurtured for the sake of the future

development of younger generations. The most crucial task to restructure, reconstruct and redraw history and social memory through these folktales which have never been documented earlier should be the most prioritized aim of the present generation. Forging a new ground for future conduct and establishing a foundation or root for nation-building is another important aspect of folklore. These tales contextualise and explain the history of several places and hundreds of years to bring forth multiple dimensions of human existence which should be treasured carefully.

References

1. https://www.withclarity.com/education/gemstone-education/ruby/ruby-meaning
2. https://agta.org/education/gemstones/ruby/
3. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-211
4. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-132
5. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-214
6. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-214
7. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London. 1912, Page-216
8. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-216
9. https://www.britannica.com/topic/opium-trade
10. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-133
11. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-137
12. Dey, Lal Bihari, Rev. Macmillan and Co., Limited, St. Martin's Street, London.1912, Page-139
13. https://www.indianetzone.com/31/rupali_ba_indian_folktale.htm
14. https://www.thehindu.com/books/Documenting-the-folk-tales-of-Tamil-Nadu/article16203856.ece
15. https://www.thehindu.com/books/Documenting-the-folk-tales-of-Tamil-Nadu/article16203856.ece
16. https://www.thehindu.com/books/Documenting-the-folk-tales-of-Tamil-Nadu/article16203856.ece
17. http://reflectionsofpassions.blogspot.com/2015/12/anandayi.html
18. http://reflectionsofpassions.blogspot.com/2015/12/anandayi.html
19. http://reflectionsofpassions.blogspot.com/2015/12/anandayi.html
20. http://reflectionsofpassions.blogspot.com/2015/12/anandayi.html

●

Deprivation of Communication in the Plays of Harold Pinter

Dr. Ashish Kumar Gupta*

ABSTRACT : The silences and pauses that Harold Pinter uses in his plays are among his most well-known theatrical tactics, and they serve as impressive instances of his mastery of a number of artistically successful approaches. Silence is a moment that is so loaded with meaning that readers have a hard time coming to the conclusion of what it all means. It is not only a moment in which the characters are silent and the audience is unable to hear their speech. In Pinter's plays, there is never a silence when something unexpected happens. It forces one to closely consider the current circumstance while it is all around. The reader is compelled to make assumptions about the characters' thoughts when they are silent but not when they do not use words.

Keywords- Communication, Silence, Pinteresque, Brevity, Pause

"I think that we communicate only too well, in our silence, in what is unsaid, and that what takes place is a continual evasion, desperate rearguard attempts to keep ourselves to ourselves. Communication is too alarming. To enter into someone else's life is too frightening. To disclose to others the poverty within us is too fearsome a possibility."

Harold Pinter : Pinter Pauses,Silence, Dashes and Ellipsesare components that assist to create the additional Pinteresque elements include a feeling of place and simplicity. Harold Pinter's strange style, which later on was called by modern play critics as "Pinteresque," was one of his trademarks. The term "Pinteresque" was created to describe the qualities present in Pinter's plays. The feeling of place device, which is in opposition to his minimalist qualities, refers to the set pieces that subtly hint at the location without being overt. The plot makes use of minimalism and is instead concerned with the challenge of injecting excitement into potentially uninteresting interactions. "Pinter'speople do not fail to communicate: they avoid communicating.They are afraid of exposing themselves, afraid of revealingthemselves. Some are afraid of revealing their individuality;some are afraid of revealing their loss of individuality." (Dukore, 47)

The Nobel Prize in Literature 2005 was awarded to Harold Pinter "who in his plays uncovers the precipice under everyday prattle and forces entry into oppression's closed rooms" (nobelprize.org). When talking about Harold Pinter's plays and the idea of silence, one instantly thinks of his incredibly brief play *Silence* and, more specifically, of Ellen's words

* Assistant Professor of English– Govt. Degree College, Muwani, Pithoragarh, U.K.

throughout the play as she frankly expresses her doubt, failure, and dread.

There are three different types of silences that can be categorised under Pinter Pauses and they are referred to as: an ellipsis, a pause, and silence. In a Pinter script, an ellipsis is denoted by three dots and was used by the playwright to indicate slight hesitation. A pause was a much longer hesitation used by Pinter to more accurately depict the careful construction of an utterance. Generally, during a pause, the character is in the middle of a deep thought process and the use of this device helped Pinter to create tension and an unsettling atmosphere. A full-on silence, also known as a pregnant pause, is a dead stop during which no word is uttered because the character has encountered a conflict so absurd that they have nothing to say, and they are left in a completely different mental state from where they started. (Ephram)

People will enter a condition of despair from which there is no way out when absurdities take over their way of life. Everything in the *Birthday Party* gradually loses its dependability, including the language. Language as a medium of exchange degenerates into a conventionalized, senseless exchange. Words can only scratch the surface of the human situation, failing to capture its core. From this vantage point, words appear meaningless and unable to serve their true purpose in this life, which is communication. There is no hope, no life, and no new expectations if there is no communication(Saraci 385).

He has illustrated the problems and conflict in contemporary social life. His dramatic approaches and style are fundamental and greatly influenced later generations. His plays are challenging to comprehend and grasp. All absurdist plays and works have this as a primary characteristic. He has refuted any metaphorical significance in his plays. Pinter's dialogue is known for its brevity, which naturally lends itself to a wide range of interpretations. The cryptic phrases of Pinter's plays sometimes defy precise interpretation, and one can infer a variety of meanings from them.

Rose and Bert, who share a home in *The Room*, are wed and cohabitating. However, through play we come to know that there is essentially no communication between them, they appear to be very distant from one another emotionally. In absurd theatreAccording to Karen F. Stein, "In sharp contrast to the silent ones, the speaking characters communicate with desperate zeal" (427). In this piece as well, Rose constantly chatters and fusses over Bert while he silently reads a magazine.

The play*The Caretaker*that utmost captures Pinter's genius, and presents to us a world that is characterised by failure and loss. In the play, the playwright introduces us to the realm of absurdity. The three central figures, Mick, Aston, and Davies, seem to be the epitome of loss. Mick thoroughly searches the area before the start of the play, which strangely

predicts his lack of confidence and ultimate failure. When a brawl broke out in a restaurant, Mick's older brother Aston boldly stepped in to prevent minor injury to an elderly vagabond. After unsuccessfully trying to find a position at that café, Davies, also known as the old vagabond, is now looking for another location to call home. Shelter is the biggest problem for modern man whether it is physical, spiritual, mental, or emotional.

It is clear that Pinter put pressure on his characters to intensify the atmosphere of dread and despair in the scene. In Pinter's plays, "Language functions in a way as a crucial means of characterization, a way to serve as a weapon of attack or a fortification for defense, or a way to provide a nebulous metaphor for the past"(Yuan 72).

Like many of Pinter's earlier plays, *The Dumb Waiter* presents us with a setting that is both universal and distinguishable: a room that stands in for comfort, and an outsider who represents the residents. The people who reside inside want to know more about this potential danger or threat that originates from the outside. Gus and Ben, the two main characters in this drama, are working together to commit murders. They enter a room that has been prepared for them on a regular basis in accordance with the orders they have been given, "wait for their victim to enter, do their task, and then leave to repeat the process in another room"(Peacock 69). This demonstrates that the intruder is an everyday inanimate object, such as a stupid waiter who conveys arbitrary orders from above, rather than a human being. In a strange turn of events, "one of these killers, Gus, will end up being a victim close to the end of the game, and Ben will have to follow the instructions to kill him. The dramatist does not put a lot of emphasis on the victims of these killers because he concentrates all of his attention on the idea that Gus and Ben are transformed into a killer and a victim, respectively." This idea is emphasised in both the environment as a whole and in the conversation that takes place between them. Since Pinter seems to be utilising stillness as an effective method to foreshadow a protracted silence and finally death at the play's ending, these brief moments more than anything else reveal Gus as a victim.Also crucial are the pauses Pinter has recommended throughout the play, from the curtain-raising to the closing down.

The play's first scene features Gus and Ben, two nonverbal characters, in a "silent" setting. They occasionally make noise when they move, like when they go toward the door, shaking their foot and rustling the paper, but they never speak aloud. The meaning of quiet is already present in a cacophony that is wordless. Gus looks around the room aimlessly while making an unsuccessful attempt to talk to Ben. Ben, on the other hand, is eagerly observing his prey while lazily reading a paper. "Their eyes contact twice, and in that instant, they stop moving and they stop making sounds".

They are completely still. The key elements almost never change,emphasizes the author. Copeland Pinter has obviously worked "on how to bring that little period when the reader or audience follows Gus's very restlessness and Ben's carelessness to reach a moment of quiet that is so rich with implications, a moment that announces a future tragedy, which is Gus's death. The conflict that pits the idea of restlessness against that of carelessness appears to cryptically represent another contradiction that pits comedic and sad ideas against one another". It's possible that the reader or audience will find what is done or read humorous. Nevertheless, a careful reading or following of the situation will undoubtedly lead to a reminder that the following: "laugh, but contemplate well that laughing; have pleasure, but go beyond such a time. The likely comedic character of their movement at the beginning of the play" has a tendency to suddenly reveal them in a sad light towards the conclusion of the play. The concept has been adequately expressed by Dukore, who emphasised that, although being funny at the beginning of the play, death is not comedic at the end of it. The performance begins with comedic stories about victims and ends with a serious portrayal of Gus in the role of the victim. When the identical circumstance really takes place at the end of the play, a hilarious apparent fault in the repeating of instructions is no longer funny. The comical deprivation of Gus's resources loses its comedic value when it becomes possible that Gus would be deprived of his life(Weales 205).

Pinter's pauses and silences typically serve as the plays' climaxes, the calm centre of the storm, and the hub of tension from which the entire action develops. Pinter's plays reflect pessimism regarding language's ability to accurately convey reality. Many Pinter critics examine how silence contributes to the eerie atmosphere of his plays, but they contend that Pinter's silences actually reflect an unwillingness to communicate through language rather than a failure of language (Esslin 238-9).

To conclude, the "Theatre of the Absurd" introduced a completely new genre of play to people in the 1950s.Worldwide misery was a result of the World Wars.The challenges that the people were facing were numerous.Many academics and commentators have written about the Theatre of the Absurd in their works.Absurdity can be found in many facets of life, such as language, manners, behaviour, and daily living.Feelings of hopelessness, nihilism, insignificance, and emptiness in the world around are prominent characteristics of absurdist dramas. The inclusion of characteristics like silence, pauses, repetitions, unusual language, no recognisable decor, and a lack of a plot strengthens this feeling of alienation.It is important to emphasise that Pinter bases many of his plays on the idea of "silence," which can be said without being awkwardly repetitive.The message may commonly appear to be even less clear when

the reader is interrupted in this way, which can occasionally sound inconvenient. However, a more in-depth reading reveals "that Pinter makes superb use of silence as a dramatic" method. The reader is urged to think carefully about the effects it might have when it appears frequently throughout the play.Only then he will be able to understand the intangible and silent, or things that cannot be conveyed by language. (Worton212).

Works Cited

- Dukore, Bernard."The Theatre of Harold Pinter,"*Tulane Drama Review* 6 (March, 1962), 47.
- Ephram, Nicholas Ryan Daniels."What are Pinter Pauses? And other Pinteresque devices." https://www.londontheatredirect.com/news/what-are-pinter-pauses-and-other-pinteresque-devices.
- Esslin, Martin "Language and Silence." in Harold Bloom (Ed.) *Harold Pinter*. Chelsea House. 1987. 139-63.
- Peacock, D. K. *Harold Pinter and the New British Theatre*. Greenwood Press. 1997.
- Pinter, Harold. *Complete Works Volume I (1954-1960)*. Grove/Atlantic, Inc. 1994.Print.
- Saraci/Terpollari, M. "The Sense of Insecurity and the Language of Pinter's Absurd Play *The Birthday Party*". *Mediterranean Journal of Social Sciences*, vol. 4, no. 11, Oct. 2013, pp. 384-388, https://www.richtmann.org/journal/index.php/mjss/article/view/1312.
- Stein,Karen F. "Metaphysical Silence in Absurd Drama," *Modern Drama* 13 (Feb., 1971), 427.
- The Nobel Prize in Literature 2005. NobelPrize.org. Nobel Prize Outreach AB 2022. Sat. 6 Aug 2022. <https://www.nobelprize.org/prizes/literature/2005/summary/>
- Weales, G. "The Language of Endgame". *The Tulane Drama Review* 6, 2018. 107–117. Print.
- Worton, M. "*Waiting for Godot* and *Endgame*: Theatre as Text". *The Cambridge Companion to Beckett*. John Pilling. Cambridge University Press, 2017. 67–85. Print.
- Yuan, Y. "Power from Pinteresque Discourse in *The Birthday Party*." Studies in Literature and Language. 7*(2)*, 2018.

●

Religious Tourism of Jammu & Kashmir

Facilities and services at Vaishno Devi Shrine

Dr. Deep Narayan Pandey*

Abstract : People visit their religious place to understand their religion and associated religious beliefs to that pilgrimage. Religious tourism, also commonly known as pilgrimage tourism, is a type of tour is where people travel for pilgrimage, spiritual practice or for peace of mind in holidays.

Vaishno Devi shrine is located in Reasi district of the same state. Vaishno Devi Tirtha is run by a shrine board. Vaishno Devi Shrine occupies an important place among the Hindus as well as the followers of Sikhism and Islam. The research work has studied the facilities and services at Mata Vaishno Devi Pilgrimage. Due to the evolving nature of religious tourism, Vaishno Devi pilgrimage site is a great Centre of spiritual practice as well as economic activity. Here, the pilgrims as well as traders and service providers have been interviewed for convenience and services.

Introduction : Thousands of tourists visit Golden Temple, Lumbani, Kailash Mansarovar, Char Dham Yatra and Ajmer Sharif etc. because of their religious importance. People visit their religious place to understand their religion and associated religious beliefs to that pilgrimage. Religious tourism, also commonly known as pilgrimage tourism, is a type of tour is where people travel for pilgrimage, spiritual practice or for peace of mind in holidays. Kumbh is the India's largest mass religious pilgrimage or fair in the world, where more than 10 million pilgrims come for pilgrimage.[1]

1.1 Types of religious tourism

Religious festival : Religious festival refers to religious events in a special month or special date of the month, e.g. Kumbh, Navratri, Kailash Man Sarovar *Yatra*, Haj Pilgrimage etc.

Holiday: People in India generally have time for pilgrimage during school holidays of their children

Personal Beliefs : Pilgrim visit a religious place after completion of a work for which they prayed to that God. Such as Tirupati Balaji, Sai Baba's *Yatra*to fulfill their vows.

Family Tradition : India is a country of tradition. The religious beliefs of each family are different. People organize their family religious events related to. Such as *mundan* of a child and worship after marriage at the place of Goddess or God.

The crown of India, the Union Territory of Jammu and Kashmir, has

* Assistant Professor– Special Centre for Disaster Research, Jawaharlal Nehru University, New Delhi

innumerable pilgrimage sites. It has been addressed as the heaven of the earth. In the 'Neelamat Purana', Kashmir is considered to be the embodiment of 'Bhagwati Kashmira'. The great poet Kalidasa has considered the Himalayas to be the abode of the deity, that is, divine souls. All the peaks and valleys of Jammu and Kashmir are the penance of many *rishis'* and *munis'*.[2] Jammu and Kashmir is a holy land for followers of Hindus, Muslims, Christians, Sikhs and Buddhists. Pilgrimage sites belonging to the followers of all these religions are in this State.

Vaishno Devi shrine is located in Reasi district of the same state. Vaishno Devi Tirtha is run by a shrine board. Vaishno Devi Shrine occupies an important place among the Hindus as well as the followers of Sikhism and Islam. A pilgrimage sites influenced by social, economic, political and geographical factors with religious importance. The research work has studied the facilities and services at Mata Vaishno Devi Pilgrimage. Due to the evolving nature of religious tourism, Vaishno Devi pilgrimage site is a great Centre of spiritual practice as well as economic activity. Here, the pilgrims as well as traders and service providers have been interviewed for convenience and services.

1.2 Objectives and Research Methods

This paper seeks to analyse the views of the pilgrims, traders and service persons about the basic facilities and services available at Vaishno Devi Shrine site. To this end, the research paper has the following objectives:

- To analyse the basic amenities and services at Vaishno Devi shrine.
- To know the level of security of the shrine.
- To know the approach with regard to transport and passenger accommodation.

The sample size of the survey conducted to meet the above objective is300. Efforts have been made to analyse this research work in a quantitative manner. The research paper uses pie diagram and bar diagram to present the analyzed results.

1.3 Drinking water facility : The drinking water is the most basic requirementat any tourist place. If a pilgrim continues to get water as per the requirement, his journey will be pleasant. The Vaishno Devi Shrine Board has taken special care of the convenience of the pilgrims. There is a provision of pure drinking water from *Katra* to *Trikuta* hills route from place to place. The level of satisfaction of pilgrims has been assessed through this research paper. Impure water creates a fear of spreading diseases.The availability of pure water duringthe journey keeps the passengershealthy, thereby keeping their journey simple and safe.

Figure 1 : Drinking water Facility

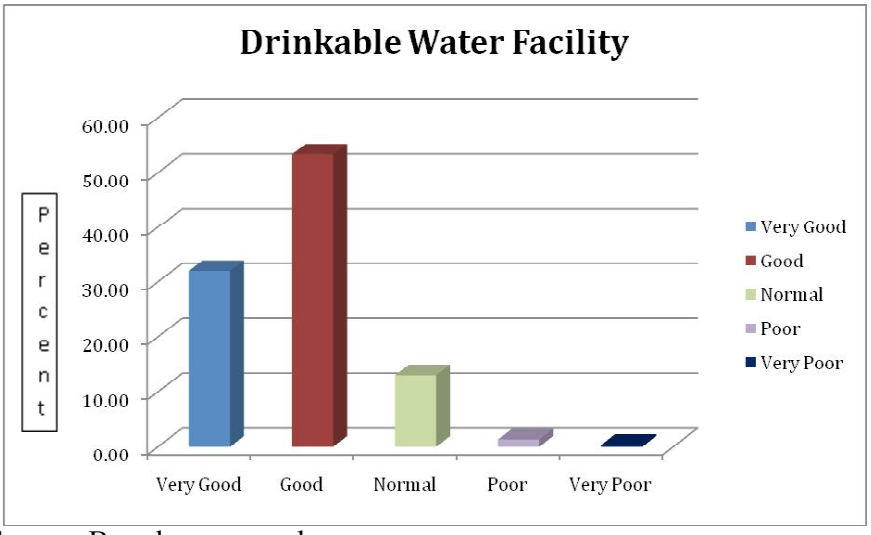

Source: Based on research surveys

The above graph shows the drinking water facility through a survey conducted at Mata Vaishno Devi Shrine. In which 32% of the respondents reported very good, 53.33% reported good,30% of the people reported average,1.33 %reported bad and 0.33% reported very poorly. That is, we can say in general that drinking water facility at this pilgrimage site was good.

1.4 Sanitation facility : The pilgrimage site is a hub of continuous movement of people which affects cleanliness. Horses and mules are used by the pilgrims to reach the Vaishno Devi shrine conveniently. If the stool released by them is not disposed of in time, the dirt will spread rapidly.

Figure 2 : Sanitation Facility

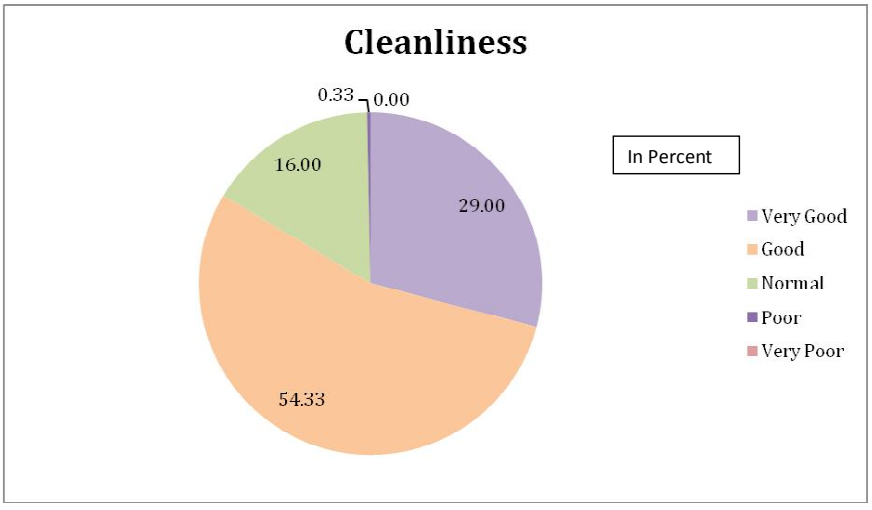

Source : Based on research surveys

The above graph shows the facility of cleanliness through a survey conducted at Mata Vaishno Devi Shrine. In which 54.33% of the respondents told that sanitation facilities are good,29% have reported very good,16% have reported normal while0.3% have reported poorly. This is, in general that the facility of cleanliness is good.

1.5 Accommodation : The pilgrims to the Mata Vaishno Devi shrine come from far flung areas of the country. Most of the pilgrims coming from outside Jammu and Kashmir need rest during the yatra. People choose to take rest at places like - hotels, lodges, *dharamshalas* etc. to reduce the travel fatigue.

Figure 3 : Accommodation

Percent

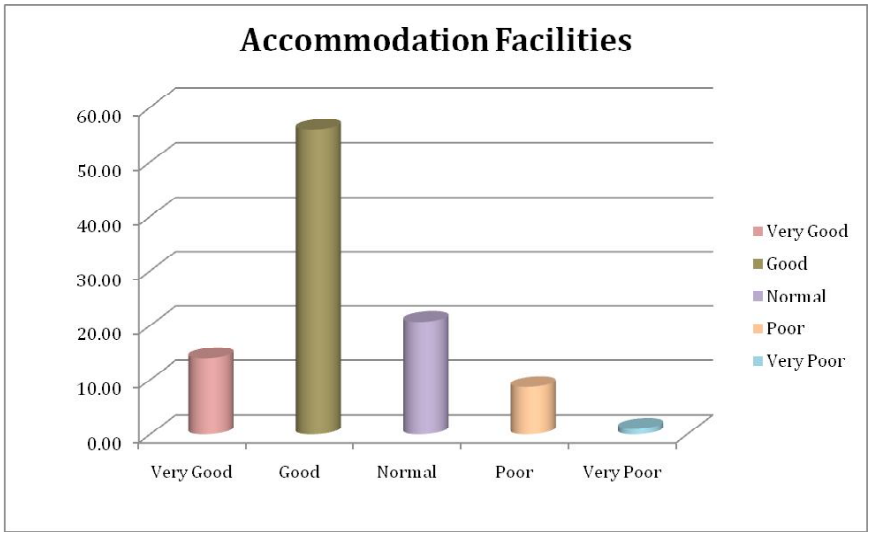

Source: Based on research surveys

The above graph shows the facility of stay through a survey conducted at Mata Vaishno Devi Shrine. In which 40% of the people have said very well, 56% of people said good,20.67% of the people have reported average, 8.67% of the people answered poor facility and1% have reported a very poor system. In general we can say that the accommodation facilities are good.

1.7 Vehicle Parking Facility : Vehicle parking facility is the basic need for the passengers coming with their own vehicle. As people come from all over the country with different means of transport.

Figure 4 : Vehicle Parking Facility

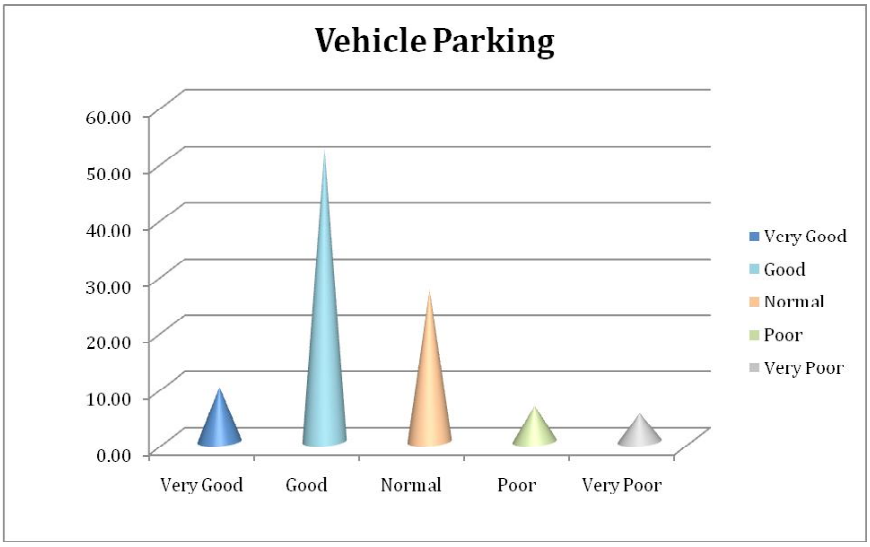

Source : Based on research surveys

The above graph shows the vehicle parking facility through a survey conducted at Mata Vaishno Devi shrine. In which 9.67% of the people replied very good,52% replied as good,27% of the people replied as normal, 6.33% said bad and5% have reported very bad. This is, normally it can be said that the vehicle parking facility is good.

1.8 TransportFacility : People at Vaishno Devi Shrine come from across the country. All the people cannot reach to the temple by walking so some mode of transport like horse, electric vehicle and *palki* etc are needed.

Figure 5 : Transport Facility

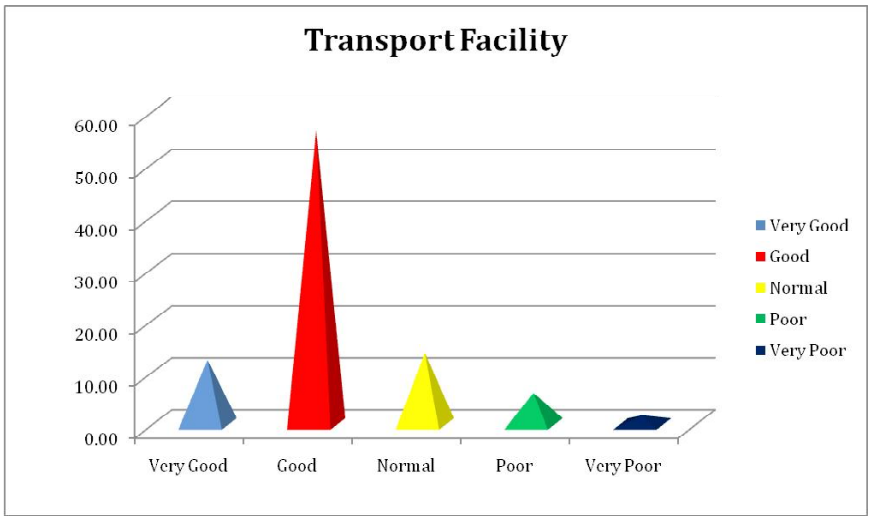

Source : Based on research surveys

The above graph shows the transport facility from the point of view of pilgrims through a survey conducted at Mata Vaishno Devi shrine. In which 12.33% of the people have described the traffic system as very good, 56.33 people have reported good,13.67 people have reported normal,6% of the people reported bad while1.7% have reported very bad. This is what, we can say in general that the traffic facilities are good.

1.9 Power Facility : The pilgrims stay at the shrine 24 hours a day. After sunset, electricity is needed for spreading light for safety, service, etc.

Figure 6 : Electric Facility

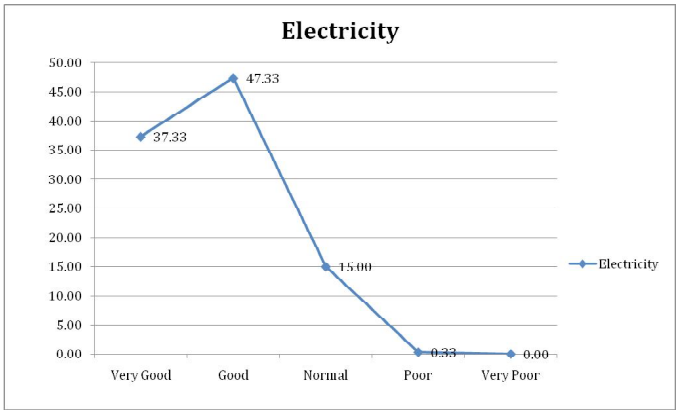

Source : Based on research surveys

The above graph shows the power facility through a survey conducted at Mata Vaishno Devi Shrine. In which 37.33% of the people have reported very good, 47.3% of people have reported good,15% have reported normal, 0.33% have reported poor facility of electricity. This is, we can say in general that the facility of electricity is good at Vaishno Devi shrine site.

1.10 Security Facility : Safe environment provides self-confidence not only to tourists but also to businessmen, persons engaged in service work and all those associated with the religious place.

Figure 7 : Security Facilities

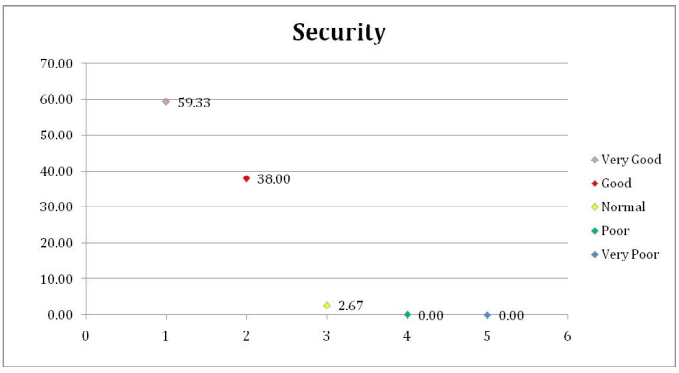

Source: Based on research surveys

The above graph shows the security facility of Mata Vaishno Devi Shrine. In which 59.33% of the people have reported very good, 38% have reported good,2.67% have reported normal security. So, we can say in general that the security arrangements are very good.

1.11 Food Facility : Food is a basic requirement during the journey. Availability of good food facilities makes travel easier for passengers. The private restaurant, restaurant run by Vaishno Devi Shrine Board and Bhandara run by the trust of renowned singer and businessman Gulshan Kumarprovides adequate pure food to pilgrims.

Figure 8 : Dining Facility

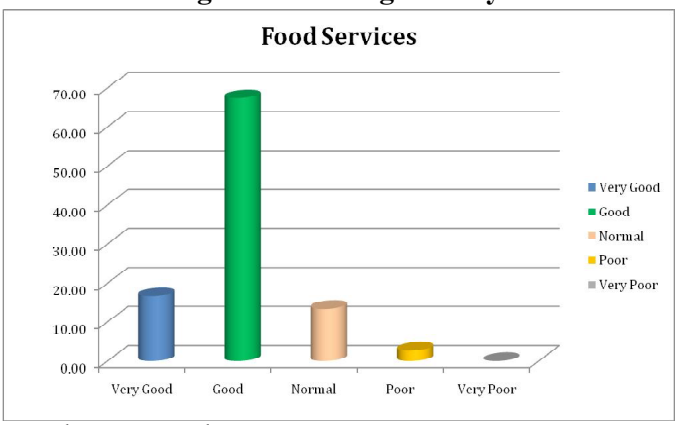

Source : Based on research surveys

The above graph shows the facility of food at Mata Vaishno Devi shrine. In which 16.67% of the people have reported very good, 67.33% have reported good,13.33% have reported normal while2.7% have reported poorly. This is, we can say in general that the food facility is very good.

1.12 Toilet facility : Toilet is a facilityused for proper arrangement of human excreta and urine. The word toilet can be used for a room which can be used for excreta discharge.

Figure 9 : Toilet Facility

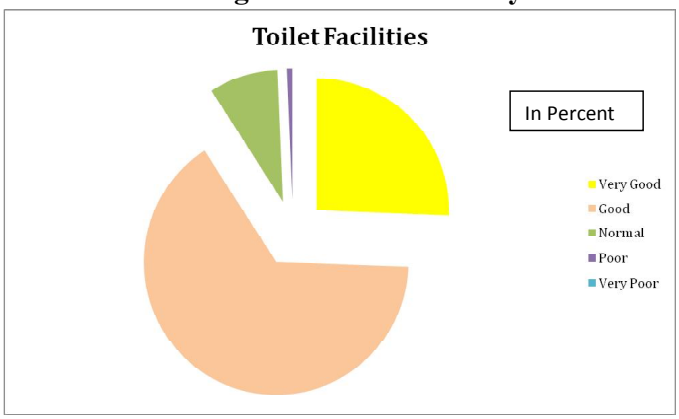

Source: Based on research surveys

The above graph shows the toilet facility at Mata Vaishno Devi shrine. In which 25.33% of the people have reported very good,64.67% have reported good,8.33% have reported normal while0.67% have reported poor. It can be said that the toilet facility at shrine site is good.

1.13 Health Facility : Health facilities serve as a supplement for safe travel. Children and old people are sensitive to diseases in the journey. Some passengers already travel even though suffering from some disease. Therefore, this facility is a basic necessity of the pilgrims in the pilgrimage area.

Figure 10 : Health Facility

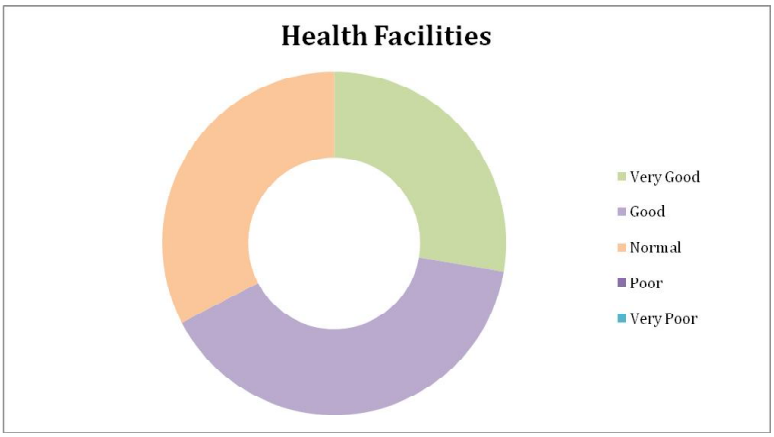

Source : Based on research surveys

The above pie-diagram shows the health facility at Mata Vaishno Devi Shrine out of which39.67% have reported very good,39.67% have reported good while32% have reported normalcy. We can say in general that health facilities are good.

Based on the above survey of Mata Vaishno Devi Tirtha, we came to know about the tourism and various aspects of the people associated there. The research study presented after analyzing it on the basis of data is presenting the reality of various aspects of this tourism.

Conclusion: The research paper analyzed the data of the survey related to the following parameters - drinking water, sanitation, lodging, vehicle parking facilities, transport facilities, electricity, safety, food, toilet and health. The satisfaction level of the pilgrims was found to requite high with the services available at the Mata Vaishno Devi Shrine area.

References

- Adrian Franklin(2003), *Tourism: an Introduction*, Sage Publication: London
- Bob Mckercher, Hillary du Cross(2012)*Tourism: The Partnership Between Tourism and Cultural Heritage Management* , Routledge
- Emilia Alaverdov, Muhammad Waseem Bari (2020, *Global Development of Religious Tourism*, IGI Global: Hershey PA

- Jabar Yaqub, Razaq Raj, Ruth Dowson (2019), *Spiritual and Religious Tourism Motivations and Management*, CABI: Bostan
- Martin Mowforth and Ian Munt, (1998), *Tourism and Sustainability*, Rutledge: New York
- Melanie Kd Smith, (2003), *Issues in Cultural Tourism Studies,* Psychology Press
- Philip Ld Pearce (2009), *Tourist Behaviour*, Channel View Publications: Toronto
- Stephen Williams, (2004), *Tourism: Tourism, Development and Sustainability*
- Susan Pitchford, (2008), *Identity Tourism: Imaging and Imagining the Nation*, Emerald:WA
- Tim Knowlesetd ald(2004),*The globalization of tourism and hospitality: A strategic Perspective*, Thomson: London
- Yaqub, Razaq Raj, Ruth Dowson (2019), *Spiritual and Religious Tourism Motivations and Management*, CABI: Bostan
- Sharma Vidya Sagar (2004), mata Vaishnav Devi, Prabhat Prakashan: New Delhi
- Chaturvedi Sanjay(2018) Kumbh Astha ka prateek, prabhat publication: New Delhi

(Footnotes)

1. Chaturvedi Sanjay (2018) Kumbh Astha ka prateek, prabhat publication: New Delhi page 57
2. Sharma Vidya Sagar (2004), mata Vaishnav Devi, Prabhat Prakashan: New Delhi

●

Exploring Gond Art : Ethnic Identity and Issues

Shefali Soni*

Abstract : Every region in India has its own style and pattern of art, which is known as folk art. Other than folk art, there is yet another form of traditional art practiced by several tribes which is classified as tribal art. The different states and union territories sprawled across the country have their own distinct cultural and traditional identities and are displayed through various forms of art prevalent there. The folk and tribal arts of India are very ethnic and simple.

The Gond tribal community is one of central India's largest indigenous communities and their art is an expression of their everyday quest for life. The Gond art rendezvous with the belief that "viewing a good image begets good luck".

This belief led the Gonds to decorating their houses and the floors with traditional tattoos and motifs. The signature styles are the essence of this tribal art form and are intrinsically used to fill the surface of their decorative patterns and motifs. The allusiveness and individualism of each Gond artist is defined by these signature styles. Gond art is characterized by paintings of simple everyday creatures – birds, cows, elephants, trees and painted using natural colours.

The Present paper explores Gond art (painting relation to their identity and other relevant issues on the basis of primary and secondary data.

Tribal paintings in India have developed in conditions mystery to place itself in the top position in the rich heritage of the world Arts. Indian tribal paintings are a rich source of information about the tribe that have inhabited the Indian hinterland. The tribal paintings are depositories of conventional awareness and tradition. It is so powerful work of art that they are considered as a genuine force of everlasting India.

India is marked by its rich traditional heritage of tribal arts and culture. The diversified art and cultural forms generated by the tribal and rural people of India have continued to demonstrate their creative glory. There are many tribal paintings from India like Saura painting, Warli painting, Pithora painting, Pichhwai painting, Santhal painting and specially 'Mithila (Madhubani) painting' that have now become a major tourist attraction at one hand and the other the tribal are searching their identity through these paintings.

The Gond people constitute a tribe identified as part of the Gond region, which was recognised prior to the division of the states following the independence of India in 1947. The Gond were prominent in Indian culture during the 14th century, before the Muslim invasions from the north which forced them to flee to the surrounding forests of the Vindhya and Satpura region (The India Craft House: 2012). Nonetheless, the Gond are

* Research Scholar– Deptt. of Sociology & Social Work, Dr. Harisingh Gour Central University, Sagar (MP)

still the largest tribe in Central India, comprised of more than 4 million people. Though predominantly centred in Madhya Pradesh, they represent significant numbers in the states of Madhya Pradesh, Andhra Pradesh, Maharashtra, Chhattisgarh and Odisha (The Isha Foundation: 2014)

Gond Paintings : 'Gond' term comes from the Dravidian1 expression of *kond*, meaning 'green mountain' (Ibid: 2014). Green Mountain is a reference to the Vindhya and Satpura mountain ranges where most of the Gond people reside since the 14th century. Recorded history of the Gond people begins in the 13th century,achieving greater significance in the 14th century due to the Gond Rajas (kings) (Op.cit: 2012).

Gond paintings are traditionally applied to the inner and outer walls of residential houses. They may depict the local flora, fauna, Gods and Goddesses (Op.cit: 2014). Traditional Gond wall paintings use natural materials to create vibrant coloured motifs. Called Gond Pradhan motifs, they are comprised of fine lines, dots and dashes (gondtribalart.com: 2015). A central theme of their paintings is the depiction of their mystical beliefs. This is reflected in their use of images depicting: Gods and goddesses, such as Ganesha and Shakti. Hindu rituals and stories of supernatural entities from ancient Hindu texts and a reverence of natural entities such as spiritually important trees or divine beings – birds and animals that have spiritual significance. The cow, central to the Hindu belief system, is prominent in these images.

Gond artists believe that 'viewing a good image begets good luck' (op.cit:2015). It is this inherent belief that motivates the Gond to decorate their houses and floors with traditional motifs. Gond artists use patterns or in-fills for the outlines of objects and people in their paintings. The different types of patterns used establish their signature style. These patterns manifest in the form of dots, dashes, lines or fish scales (Indigoarts.com: 2014 & 2015). Their paintings are used to worship nature and as a mode for seeking protection and warding off evil (Op.cit: 2012). Principally, Gond art is used by the Gond people to pass on their stories and beliefs to future generations (YouTube.com: 2010). The way these art forms are produced also reflects the history and experiences of the artists themselves. The paintings are thought also to serve a higher purpose, connecting the past and the present, the people and the nature that surrounds them, as well as the spiritual and the physical worlds (Op.cit: 2012).

Tree of Life : Narmada Prasad Tekam's *Tree of Life* depicts a Mahua tree full of birds, with a tiger prowling beneath. "The birds in the painting allude to the tree's life-giving powers, while the tiger suggests the spiritual significance of the subject" (Bennet: 2015). Rajendra Kumar Singh Shyam's 'Tree of Life' highlights the importance of the Mahua tree in the Gond people's lives. "According to the Gond, the lives of humans and trees are intertwined and cannot be separated" (Ibid: 2015). The painting shows a tree full of birds and Gond women collecting the fruits of the tree while the men keep watch. Suresh Kumar Dhurve has used the tree of life as a motif "to which [he] continuously returns to in his art and it is often

interpreted schematically as seen in *Origins of Life*" (Ibid: 2015). The *Origins of Life* is a painting which shows the life-giving nature of the Mahua tree and highlights the artist's belief that life itself originated from the tree (Arur, Sidharth and Theodor Wyeld: 2015).

The Mahua tree plays a pivotal role in the lives of the Gond people. This is evidenced by their reverence for this tree in their art. The artists discussed above demonstrate this reverence in their paintings where the tree is depicted as lush with foliage. The birds in Rajendra Shyam's painting are coloured to evoke a feeling of vibrancy, brought about by the tree. Moreover, the fauna that take refuge in the tree symbolises the dependence of the Gond people on the Mahua tree – highlighted by Dhurve's reference to the *Origins of Life* in his painting.

Local Deities : Bhajju Shyam's painting depicts the river goddess *Jalharin Devi* whose body is made up of many fishes. She is riding an alligator which is in the midst of devouring a fish. The painting also shows different fauna and flora associated with the river. Hirman Urveti's painting depicts the goddess *Kankali Devi*, a local deity manifest in a form of a statue being worshipped by Gond women. *Kankali Devi* - a form of the goddess mother *Kali,* "is believed to have magically emerged from the earth a millennium ago. Gond people regard *Kankali Devi* as their ancestral mother and the great Kachargadh cave in Maharashtra state as among the goddess's most important sacred sites" (Op.cit: 2015).

From these two artists' work, we see the importance of local deities in the lives of the Gond people. The Gond people have long worshipped local deities related to rivers, forests and mountains. These deities are not well known in the wider popular Indian mythology, as they may be specific to the geographical region of an artist.

"Among the extensive pantheon of divine beings in Gond belief are river gods [such as *Jalharin Devi*] associated with the life-giving power of water" (Ibid.: 2015). Bhajju Shyam's *Jalharin Devi* is one such example of a local deity that is specific to the Gond people who live on the banks of the Narmada river. The Gond people regard the river sacred as it is a source of water for drinking and irrigation. The river banks where they live are fertile areas and the waters are abundant with fish. Through Bhajju Shyam's *Jalharin Devi* he manages to "imbue the narrative of a landscape with spiritual power" (Op.cit: 2015). Similarly, Hirman Urveti's *Kankali Devi* - a painting of a local deity considered as the Mother Goddess by the Gond people - portrays the reverence that the Gond people hold for this deity.

Popular Hindu Deities : Raman Shyam Singh Shyam's painting called *Adi- Shakti,* is a form of *Shiva2*. The Gonds idolise *Shiva*. In this painting, *Shiva* is represented as *Ardhanarishvara*, having both male and female features combined. Shyam's work embodies a primordial cosmic energy in the form of this half-male-half-female deity. The *Adi-Shakti* goddess highlights the abhorrence of wastefulness, such as children wasting their parents' hard-earned wealth (Ibid.: 2015). Prasad Singh Kusram's painting of *Ganesha* depicts the elephant-headed god being worshipped by various birds and animals. This painting is a typical

depiction of *Ganesha* riding a mouse, the god's preferred form of transport. According to Hindu mythology, people pray to *Ganesha* to remove all obstacles (Ibid.: 2015).

Humankind's Relationship and Technology : Subhash Vyam's work *Tiger and Aeroplane* shows a tiger, cow and birds gazing up at an aeroplane passing overhead in the sky. This is not the first time an aeroplane has been depicted in a Gond painting. As mentioned earlier, Jangarh Singh Shyam (1962-2001) is credited with including the first depiction of an aeroplane in a Gond painting. He did this to describe to his family his experiences on a trip to Japan (Ibid.: 2015). Here we see a distinctly contemporary element appear in otherwise traditional Gond art.

Other contemporary Gond art also includes depictions of modern technology. Venkat Raman Singh Shyam's untitled work shows an aeroplane, an auto-mobile, modern buildings and skyscrapers and an electric transmission tower with the backdrop of a tree and a river (mustarts.com: 2015).

Vyam's painting depicts humankind's relationship with technology in an interesting juxtaposition of traditional art form and modern subject. As most Gond people are now living in an increasingly urbanised world, it is perhaps not surprising that the subject and methodology of their paintings reflect this modernisation. For example, instead of using natural colours to paint on walls, since the 1980s paintings are increasingly being produced using water, oil and acrylic colours on either canvas or paper instead of a wall (Op.cit: 2014). Nonetheless, Vyam's painting, whilst contemporary, still adheres to the traditional form of Gond painting.

Conclusion : Through their art, Gond artists expressing their beliefs and experiences related to their religion and world-view. They use recurring motifs in their paintings to highlight their beliefs. The Mahua tree, local deities, popular Hindu deities and an emergent technological world view has clearly shown in their paintings. The new style of painting, which is an amalgamation of traditional art form and contemporary subjects, are achieving a renewed popularity in India and at international level. Until recently, the work of Gond artists has been largely overlooked due to their remoteness and socio-economic conditions which prevented them from being more mobile. This prevailed until the 1980s when the Gond artist Jangarh Singh Shyam was sponsored to exhibit his work at galleries in Paris and Japan. Since then, there have been attempts by the Indian government to preserve and promote Gond art more generally and in this way the Gonds are searching and trying to establish their identity.

References

- Arur, Sidharth and Theodor Wyeld, 'Exploring the Central India Art of the Gond People: contemporary materials and cultural significance'
- Bennett, J. (2015). *Gond paintings from the collection of Barrie and Judith Heaven* [exhibition publication]
- Business-standard.com, (2015). *Tribute to tribal Gond artist Jangarh Singh Shyam*. [online] Available at:

- http://www.business-standard.com/article/ptistories/ tribute-to-tribal-gond-artist-jangarh-singh-shyam- 115010800347_1.html [Accessed 17 Feb. 2016].
- Choate, A. (2014). *Shiva: Everything You Need to Know*. [online] The White Hindu. Available at:
- http://www.patheos.com/blogs/whitehindu/2014/07/shiva -everything-you-need-to-know-2/ [Accessed 10 Feb. 2016].
- Deogaonkar, S. (2007). *The Gonds of Vidarbha*. New Delhi: Concept Company, pp.56-86.
- Gondtribalart.com, (n.d.). *Gond Art Bhil Art Tribal Paintings*. [online] Available at: http://gondtribalart.com/ [Accessed 8 Nov. 2015].
- Indigoarts.com, (2014). *Gond Paintings from Madhya Pradesh State | Indigo Arts*. [online] Available at: http://indigoarts.com/galleries/gond-paintings-madhyapradesh- state [Accessed 2 Dec. 2015].
- Mustarts.com, (2015). *GOND ART, GOND PAINTINGS, et al*. [online] Available at: http://www.mustarts.com [Accessed 10 Feb. 2016].
- Saffronart, (2013). *Jangarh Singh Shyam | Paintings by Jangarh Singh Shyam | Jangarh Singh Shyam Painting -*
- *Saffronart.com*. [online] Available at: https://www.saffronart.com/artists/jangarh-singh-shyam [Accessed 17 Feb. 2016].
- Singh, I. (n.d.). *Mahua*. [online] Fruitipedia.com. Available at: http://www.fruitipedia.com/mahua.htm [Accessed 10 Feb. 2016].
- Socialjustice.nic.in, (2009). *List of Scheduled Castes - Scheduled Caste Welfare: Ministry of Social Justice and Empowerment, Government of India* Jonline] Available at: http://socialjustice.nic.in/sclist.php [Accessed 15 Dec. 2015].
- The India Craft House, (2012). *Indian Art & Craft: Gond Paintings: A Mystic world created by Dots and Lines*. [online] Available at: http://theindiacrafthouse.blogspot.com.au/2012/01/gondpaintings- mystic-world-created-by.html [Accessed 9 Feb. 2016].
- The Isha Foundation, (2014). *Gond Art and Painting: Past, Present and Future*. [online] Available at: http://isha.sadhguru.org/blog/inside-isha/isha-yogacenter/gond-art-painting/ [Accessed 10 Nov. 2015].
- Warli.in, (2012). *Warli Painting*. [online] Available at: http://www.warli.in/ [Accessed 14 Feb. 2016].
- YouTube.com, (2010). *Gond Art 1*. [video] Available at: https://www.youtube.com/watch?v=KXFqaqHJ8Xk [Accessed 12 Nov. 2015].
- YouTube.com, (2010). *Gond Art 2*. [video] Available at: https://www.youtube.com/watch?v=7AK0Lp51j0c [Accessed 12 Nov. 2015].

●

Amalgamation of Cultural Conflicts: A Diasporic Perusal of The Inheritance of Loss

Afsal Jamal P*

ABSTRACT : The traditional notion of Diaspora indicates certain dislocation or displacement from the native homeland. It is predicated on a level of involuntariness or helplessness. It can be caused by momentous events such as mass expulsions or cleansing or a creeping sense of desperations that overcome a group or an individual. The term 'diaspora etymologically derived from the Greek term *diasperien*, from '*dia*-across and *sperien*' to sow or scatter seeds. It was first used in the Greek translation of the Hebrew Scriptures explicitly intended for the Hellenic Jewish communities in Alexandria (Circa 3 BC) to describe the Jews living in exile from the homeland of Palestine. The term as then used had religious significance. Now the term 'diaspora' has acquired varied postmodern connotations, is currently used loosely to cover different types of migrations.

Key Words : diaspora, Gorkhas, insurgency, hybridity, exile, schizophrenic, aborigins, under sized

INTRODUCTION : "It may be that writers in my position, exiles, or emigrants or expatriates, are haunted by some sense of loss, some urge to reclaim, to look back, even at the risk of being mutilated into pillars of salt. But if we do look back, we must do in the knowledge - which gives rise to profound uncertainties- that our physical alienation from India almost inevitably means that we will not be capable of reclaiming precisely the thing that was lost, that we will, in short, create fictions, not actual cities or villages, but invisible ones, imaginary homelands, Indias of the mind."

- *Imaginary Homelands*

The literature of Indian diaspora constitutes a significant fraction of the mushrooming field of Anglophone postcolonial literature. Some of the better acknowledged writers in the Indian diasporic writings are V.S. Naipaul, Salman Rushdie, Rohinton Mistry, Kiran Desai, Bharati Mukherjee, Amitav Ghosh, Jhumpa Lahiri etc. These writers are frequently preoccupied with the rudiments of reminiscence as they inquire about to place themselves in fresh society. The diasporic writers survive on the boundaries of two countries. Bhiku Parek states that the diasporic indian is "like the banyan tree, the traditional symbol of Indian way of life, he spreads out his roots in several soils, drawing nourishment from one when the rest dry up: Far from being homeless...."

The foremost distinguishing uniqueness of the diasporic writings are the pursuit for individuality, uprooting and re-rooting, insider and outsider condition, wistfulness, irritating logic of culpability etc. The diasporic writings also branded as the 'theory of migrancy' helps produce artistic

* Assistant Professor- PTM Govt. College, Perinthalmanna, Kerala

estimate, parley with cultural constructs and assist the appearance of a novel hybridity. Indian women diasporic writers are prepared with enhanced themes than the familiar subjects like privileges of women, unfairness, and gender discrimination and so on. The writers of Indian diaspora, through their fictional contributions very much enriched the English literature.

The novel *The Inheritance of Loss* enriched Indian diasporic literature and the novel studied very much. A.K. Chaturvedi studied the dynamics of socioeconomic inequality in the novel. Beena Agarwal analysed the theme of Globalization. Nuzhat F. Rizvi, department of humanities, Nagpur university concentrated on the conflicts of globalization in the novel. Krishna Singh, Govt. P.G. College, Shahidol, M.P made a socio-linguistic study of the novel. The themes of terrorism, marginalisation, racism etc are also studied by various scholars.

Diaspora is merely the dislodgment of a community/culture into a different environmental and cultural province. Diaspora can be the deliberate or compulsory movement of populace from their mother country to novel cultural and geographical circumstance, hence they parley two cultures: their own and the innovative one. Diaspora culture is the outcome of relocation, immigration and banishment. This diasporic culture is an incorporation of two cultures. Diaspora is a mesmerizing experience because it has existed ever since the entrance of humans on earth.

The present scenario of globalisation has encouraged a steady exodus of population from the 'areas of darkness' to the society of technological advancement. The prosperous society of America has become the land of dreams and promises for all those who are weak. The expansion of job avenues has encouraged migration and inspired the Third World immigrants to take shelter in America. The exotica of West has led to profound uncertainties. The Immigrants' world constructed in the novel *The Inheritance of Loss* exhibits the unconventional and rational understanding of kiran Desai.

Kiran Desai's novel bounces between an insurgency in India and the immigrant experience. Desai sheds lights on tribulations of all Indians abroad, and these scenes will resonate with anyone who has felt compelled to compromise their heritage. Desai details her character's hardships head-on and her elegant prose makes their experiences hard to forget. (Qtd in the praise for the book *The Inheritance of Loss*)

Kiran Desai in this novel tries to peel out Biju's consciousness to construct the horrors of humiliation affecting the mind and sensibility of the immigrants. In America, Biju experiences racial discrimination, exploitation of labour and suppression of their self dignity. Biju's humiliation and racial harass towards minority communities takes in several forms; from mild satire, abusive language, to calling immigrants 'Pakis', poor, non-white, colonised so forth. Biju acknowledged as a second citizen without any self respect and without the possibilities of the

access to the privileges of American life. He calls, "All American flags on top, all Guatemalan flag below" (Desai 21). He finds that "perfectly first world on top, perfectly Third world twenty steps below" (Desai 23) In America, "every nationality confirmed its stereotype" (Desai 23) From one dissatisfying and humiliating job to another, he changes the restaurant. During his stays at Tarter's Bakery, he fears being inferior. He realises that Whites have no faith in Black people. He realises that as an immigrant, his position is "Half and half. Biju had no stability and security in America. But he survives with the consolation that "in this country people eats like kings" (Desai 49).

Desai portrays the hardships to get green card for Indian immigrants. Green card is the endorsement to exist and employment in the United States on everlasting basis. The Green Card functions as a confirmation that its possessor is a legalized enduring occupant, has been formally approved immigration rights, which consist of authorization to inhabit and take employment. The hard-hitting immigration laws and modus operandi in the United States trouble Biju, also others from the third world nations. Immigrants from the third world are prone to humiliations and unfairness in the process of the legal official procedure. Without legal residency, they live in unseen places like culprits. In this disheartening situation, one way or another, Saeed survived and effectively comes out by being swindler authorities. "The green card, Saeed applied for the immigration lottery each year, Indians were not allowed to apply, Bulgarians, Irish, Malagasys-on and on the list went, but no, no Indians" (Desai 813).

Biju has accustomed to such insults besides being treated like a slave from the likes of Harish-Harry, who ironically acted as benevolent patriarch to the wretched thousands. The behaviour of Harish-Harry illustrates an inhuman strategy of capital accumulation. The immigrants are subjected to the savagery of civilised world because of economic dominance of industrial society. Economic opulence is essentially holding the axis of the centre. The economic exploitation of the third world by the developed is strongly emphasised in the novel. It is clear from the dialogue between Biju and another Indian immigrant Mr. Kakkar, "Kakkar advises Biju that not go back to India, it is only America that can provide financial empowerment" (Desai 203)

The life of Jemubhai was a humiliating experience. Acceptance to Indian civil service is also a humiliating one to him. He earned the lowest qualifying mark, because of his inability to speak English fluently to the examiner's irrelevant questions. He got selection because the list is conceived in accordance with attempts to Indianize the service. Apart from his personal experience of rejection, Jemubhai witnesses acts of the British; physical and verbal aggressions to other Indians. Example for this kind of acts are, British children circulates racist jokes such as "Why is the Indian brown? He shits upside down, HA HA HA"(Desai 209). The children "Taunting him in the street, throwing stones, jeering making monkey

faces" (Desai 209). He remembers an incident that an Indian boy being beaten and urinated by them. He had even feared the small children. They labelled Indians as non-white. Kiran Desai asserts that the complications of immigration are another mode of colonialism to subdue the third world immigrants. As a writer of diaspora, Kiran Desai vividly exposes the plight of the third world immigrants sufferings and naked reality of dehumanization, of humanity in the illusion of materialistic success.

The novel is set in the backdrop of rising insurgency in the Nepal. At the very beginning of the novel, Desai makes us acquainted with the geography and atmosphere of the region of Darjeeling. It is the place famous for three T's-tea, timber and tourism. It deals with a host of accounts, both individual and national backdrop of the Gorkha insurgency in Kalimpong. Besides being a global issue of concern, ethnic conflicts and movements are gaining momentous growth in South Asian political landscape in general and in countries like India in particular.

The Inheritance of Loss is set in North eastern state of Kalimpong. It is a border of Northern India below the Himalayas where the adjacent country Nepal, Sikkim, Bhutan, Assam and Bangladesh meet with this diverse environment. Desai presents its twenty eight month agitation that led to the creation of Darjeeling Gorkha Hill council in 1988 under the leadership of Subash Ghising and she depicts the massive violence of GNLF. The emergence of GNEF (Gorkha National Liberation Front) is not a sudden thing but it established from the marginalisation, exploitation etc. Subash Ghising explained that the political insecurity of Indian Nepalis reflects the perception of not being fully recognized Indian Citizen but rather stigmatized as people coming from of Nepal. Swatahsiddha Sarkar in *Gorkhaland Movement Ethic Conflict and State Response* observes:

We Indian Nepalis who have nothing to do with Nepal are constantly confused with 'Nepalis', citizen of Nepal, a foreign country. But if there is Gorkhaland, then our identity as Indians belongs to the Indian state…will be clear. If there is no Gorkhaland, we will continue to be identified as Nepalis, under the stigma of being citizens of foreign country residing here out of courtesy (12).

Desai narrates the miseries of the Nepali migrants in Kalimpong, Indian Nepaleese consider as the 'Other India'. "Indian-Nepalese treated like minority in a place where they were the majority" (Desai 9). They desire to join in the mainstream democratic activities of India. "Dealing with the dignity and identity of Nepali people, their schizophrenic attitude and insurgeny in kalimpong, Desai presents facts in fiction with sympathy and accuracy (Ghan shyam 217).

The Gorkhas haunted by feeling of stateless and they fight for Homeland. Homeland or nation is primarily an imaginary origin. Anderson said, "The members of even the smallest nation will never know most of their fellow members, meet them, or even hear of them, yet in the mind of each lives the imagines of their communion" The members of the youth

wing of GNLF gathered to swear an oath that "to fight to the death for the formation of homeland, Gorkhaland" (Desai 126).

Because on that basis, they can start statehood demands. Separatists movement here, separatist movement there, terrorists, guerillas, insurgents, rebels, agitators, instigators and they all learn from one another, of course the Neps have encourages by the Sikhs and their Khalistan, by ULFA, NEFA,PLA,Jharkhand, Bodoland, Gorkhaland; Trupua, Mizoram, Manipur, Kashmir, Punjab, Assam…(Desai 129)

Desai, depicts Gyan, Muslim Nepali and Sai's Tutor and lover. His self is torn between love for Sai and Love for Homeland. He is disenchanted in the GNLF and in the history of Gorkhas. Gyan realised that his love to Sai would not turn him into a prince he desired to be, instead a martyr for his homeland. This gives him a sense of dignity, importance, justification etc. Gyan was aware that the Gorkhas are neglected and deprived in spite of their love, loyality, commitment and sacrifice. They ask "Here we are eighty percent of the ninety gardens in the districts, but is even one Nepali is owned?" (Desai 159). They have lost many jobs for being Gorkhas. Their children can't learn their language in schools. They consider as other region. They argue that only separate state give them an Indian identity.

Neps believe themselves not the aborigines in their mother country. To get rid of the housing difficulty, they construct undersized huts in untenanted lands. Gorkhas changed their site into Mon Ami for their activities. Pradhan had been called 'maverick of Kalimpong' that ran his division of GNLF like a sovereign in his empire, a burglar of his gang. He was wilder... angrier than Ghising, the leader of the Darjeeling wing" (Desai 242). There she is made fun of and dishonored by Pradhan. He said to her "I am the raja of Kalimpong. A raja must have many queens... I have four, but would you" (Desai 244). Her self pride and decorousness dishonored by Pradhan who not only refuses her land but also offense her by commenting on her bodily look. Through Lola, Desai depicted the dilemma of widow in this nation also. Desai depicted the rebellion as a danger to cross cultural concord of the people of Bengal.

Through the concept of 'loss', the writer aims at loss at various planes like loss of individuality or distinctiveness, loss of one's nationality or the belief of being part of a single country, or even trust in one's home land. Obviously, the 'loss' used in the caption of the novel is the loss of trust or faith in the country India by its own people. Desai uses the characters in the narrative to convey that sense of loss. Moreover, the characters themselves take up the responsibility, it seems. For the characters in the novel, they experience that their past is always having an impact on their present or their present is always haunted by their past. To discover the versatile features of loss, in the first chapter of the novel Kiran Desai enquires "Could fulfillment ever be felt as deeply loss?"(Desai 2). To talk about the matter of loss, Desai portrays the decisive life moments of Sai, her

grandfather, a retired judge, Jemubhai Patel, his cook, cook's son Biju, two sisters Lola and Noni and Father Booty. The characters in the narrative come from miscellaneous backgrounds and every one of them parley certain calamity of uniqueness.

While considering the studies in relation to post colonial negotiations, an imposing of novel identities or disruption of the present state of individuality crept into as an essential or mandatory subject of concern. The characters in such works are prone to displacement that leads to a state of being in doubt in the midst of a new culture or civilization. A sort of vagueness which is essential finds a place in numerous intellectual deliberations these days. The cultural combination as a byproduct of such an existence results from the innovative de-territorialized identities.

Kiran Desai does not portray conventional Indian life way. The entire characters in the novel one way or another are predisposed by postcolonial consequences. People in postcolonial countries are confronted with their customary culture as well as with civilization of previous colonies. This condition of being at the edge of two cultures, sense of 'double consciousness' and 'in-betweenness' is declared as 'Hybridity' by HomiBhabha, Hybridization takes various shapes: linguistics, cultural, political, racial etc. Bhabha comments that the hybrid refugee occupies a 'third space', where colonial as well as the resident identities assemble and challenge and are at the same time asserted and subverted.

The character Jemubhai confronts discrimination and ill treatment at England because of his Indian identity. His experience made him believe that the Indian relationship, civilization and brown skin, all are inferior.

Thus Jemubhai's mind had begun to wrap; he grew stranger to himself than he was to those around him, found his own skin odd-colored, his own account. He forgot how to laugh, could barely manage to lift his couldn't bear to spend a moment in dressing and combing …(Desai 173)

In this novel, Desai continuously juxtaposes two edges of Indian society. Sai and her society with their anglicized preferences and way of life and on the other hand Gyan with his desi behavior. Nevertheless a creation of a free India, Sai still looks upon the colonizer and hence fails to accomplish entire freedom. The novel *The Inheritance of Loss* is in fact about the loss-loss of individuality; faithfulness and the comprehension of this loss. A large amount of the characters in the novel have suffered and lost, according to their likes and actions bound for people, relations, love but higher than all, life. In other words, the acknowledgment and reception of loss has been altered into an instant of accomplishment and touching renaissance.

This novel is a close and deeper biography of umpteen numbers of people who spend their days in the busy life of Kalimpong in India and also of Manhattan in America. The narrator of this story is a traveler who moves between the two points of New York and North east corner of India, between the notion of loss and an idea of inheritance, between the mega

concept of colonization and the minute idea of closeness and between the apprehension of insurgency and complacency of being alive in the planet. There are three types of experiences come as far its color as a diasporic literature is concerned. The primary one considers the identity crisis confronted by Jemubhai Patel who moved for his higher studies in Britain. There he was made to face multiple bitter experiences for being an Indian. The second in the category is related to the experiences of Biju in New York. The final and the third one is the versatile linguistic and social identity crisis confronted by the Nepaleese immigrants to the neighboring country of India. Desai also covers in her narration the issues of the Gorkha land.

The novel is set in the backdrop of Gorkha insurgency. It deals with the genuine aspirations of the Nelapese who desire to join the mainstream democratic activities of India. Dealing with the identity of Nepali people, their schizophrenic attitude and insurgency in Kalimpong , Desai presents the facts in fiction with sympathy and accuracy. This Gorkha agitation in some way disturbed the lives of the characters of the novel. This Gorkha insurgency and displacement of characters resulted in the disappearance of the trust in the country. She presents this sense of loss throughout the novel.

In the novel *The Inheritance of Loss*, Desai dexterously describes the ache of deport and the blind aspiration of improved life. In the novel, Jemubhai and Biju's heritage from an Indian custom of male mobility connected with the position of elevation. Some characters are undergoing the pain of exile in America when a small number of people are enjoying the gratification being the immigrants in the subcontinent. Kiran Desai eventually concentrates in her novel not just an individual understanding, but to a certain extent the associations of identification between immigrant exile and outsiders. Her practical depiction of the life in two continents, diasporic on manifold levels demonstrates her balanced perception and profound apprehension of human state.

REFERENCES

Bhabha, Homi K. The *Location of Culture.* Routledge,2005.

Desai, Kiran. *The Inheritance of Loss*. Penguin, 2012.

Ghanshyam, GA and Prasanta Chakraborthy. *The Voice of the Other Post Independence Indian*

English Fiction. Rupa,2015.

Rushdie, Salman. *Imaginary Homelands: Essays and Criticism.*Heritage Books, 1991.

Sarkar, Swatahsiddha. *Gorkhaland Movement Ethnic Conflict and State Response*. CPC, 2016.

Sharma, Kavita A. *Interpreting Indian Diasporic Experience*. Creative Books,2006.

●

Understanding Social Control through Roscoe Pound's theory of Social Engineering

Dr. Priyamvada Tiwari*

INTRODUCTION : Roscoe Pound was a leading and influential jurist who contributed to the systematic development of American sociological jurisprudence. He emphasised the importance of an interdisciplinary approach to the law so that the rule of law and everyday life can coexist. Roscoe Pound, one of the most well-known American legal philosophers, was a prominent jurist of the Sociological School of Jurisprudence, which emerged in the nineteenth and twentieth centuries as a reaction to positivist legal theory. In a nutshell, the sociological school considers societal customs as well as the society itself as a source of law. It contends that law is not about a man, but about a man's association with another man in society. He saw the law as a tool for social control and did not believe in the abstract or mechanical application of the law. For his unique contribution to the science of law and legal philosophy, he is regarded as the father of American sociological jurisprudence.

THE CONCEPT OF SOCIAL ENGINEERING : Roscoe Pound was a pivotal figure in the sociological school of thought. He popularised the doctrine of "social engineering," which aims to create an efficient social structure that satisfies maximum wants with the least amount of friction and waste. This required rebalancing competing interests[1].

Pound believes that sociological jurisprudence should ensure that social facts are considered when making, interpreting, and applying the law. Pound compared the lawyer's work to that of an engineer. The goal of social engineering is to create as much of a scientific structure of society as possible, which necessitates satisfying the greatest number of wants with the least amount of friction and waste.

A jurist's job is to help the country by identifying and classifying legally protected interests.

Roscoe Pound's social engineering theory is an American parallel to the interests of German law. The work of modern law, according to Roscoe Pound, is "social engineering." The balance of competing interests in society is referred to as social engineering. "Law is the body of knowledge and experience with which a large part of social engineering is carried out"[2], he observed. It is more than just a set of rules.

It has conceptions and standards for behaviour and decision-making, but it also has doctrines, modes of professional thought, and professional rules of art through which the precepts for behaviour and decision-making are applied and given effect. They represent experience, scientific formulations of experience, and logical development of the formulations, but also inventive skill in conceiving new devices and formulating their

* Associate Professor & HOD– Department of Law, PIMR, Indore, M.P.

requirements using a developed technique, similar to an engineer's formulae."

Thus, jurisprudence becomes a science of social engineering, implying a balancing of competing for societal interests. Pound assigns a commission to the jurist. He employs social engineering techniques that a judge would employ.

He must research the true social implications of legal institutions and legal principles, as well as the methods for making legal rules effective[3]. He must conduct a sociological study in preparation for law-making, as well as a study of judicial methods and sociological legal history.

Pound's theory is that the main subject of law is interest and that the act of law is the satisfaction of human wants and desires. It is the function of law to make a 'valuation of interests,' that is, to select and secure socially more valuable interests. All of this is merely an experiment. As a result, Prof. C.K. Allen refers to Pound's approach as "Experimental Jurisprudence."

The contribution of Roscoe Pound's sociological jurisprudence can be understood in the following ways:

1. Emphasis on functional aspects of Law
2. Pound's theory of Social engineering
3. Jural postulates of Roscoe Pound

Emphasis on functional aspects of Law : There is no agreement among scholars on the functions of law in terms of definition. Jurists have expressed varying perspectives on the purpose and function of the law. It is well understood that law is a dynamic concept that changes with time and place. It must evolve in tandem with societal changes. Law, in the modern sense, is regarded as a means to an end rather than an end in itself. The goal is to achieve social justice. Almost all theorists agree that law is a tool for ensuring justice.

The functional aspects of law, according to Roscoe Pound, include the rules, principles, conceptions, and standards of conduct and decisions, as well as the precepts of doctrines of professional rules of art. As a result, he regards law as a developed social technique and jurisprudence as social engineering.

According to Roscoe Pound, the four major functions of law are:

(1) maintaining law and order in society;
(2) maintaining the status quo in society;
(3) ensuring maximum freedom of individuals; and
(4) satisfying the basic needs of the people.

He sees law as a form of social engineering.

Theory of social engineering : Pound compared lawyers to engineers in his theory of social engineering; he believed that law, like any other scientific subject, is a body of knowledge and experience that social engineers like lawyers and advocates use to apply structure to society. He compared the law to engineering in the sense that, just as engineers use their knowledge to structure their finished products, the law can be used to

structure the finished product of happiness in society.

Indeed, Pound argued that the primary goal of the law is to create balance and harmony in society, as each individual prioritises their own interests. In simpler terms: Maximum Happiness with Minimal Friction among members of society when there is a conflict of interests. He argued that it is the duty and goal of the law to intervene and mediate in such conflicts between self-interest and community interest.

Aside from that, Pound emphasised that the interests of an individual and the community should be treated equally until and unless a conflict arises. Based on this, he established three areas of interest, which are as follows:

Individual interest : Which includes personal interests such as personality, substance interests such as occupation and property, and finally, domestic relations interests such as marriage, wife and child maintenance, and so on.

Public Interest : Which includes the political interests of a politically organised society, such as the preservation of the state and the protection of the state's natural resources.

• **Social Interest :** Which include an individual's or a community's own community interests, such as the fulfilment of social and religious life with economic stability in order to maintain a peaceful standard of living. In a nutshell, these interests revolve around the concept of religious beliefs security, economic stability, peace, morals, and so on.

The Jural Postulates that are given by Roscoe Pound : Based on the abovementioned boundaries of interests, Pound gave five postulates or interests that are needed to be protected during a conflict or clash of interests. The jural postulates are expressed as expectations, claims, or "rights" and are procured from the great substantive branches of the positive law including criminal law, the law of torts (especially negligence and liability without fault), property law, contract law, and the law of restitution. The first five jural postulates[4] for the domain of American law, at least, are articulated in Chapter IV of Social Control Through Law as follows :

1. In civilized society men must be able to assume that others will commit no intentional aggressions upon them.
2. In civilized society men must be able to assume that they control for beneficial purposes what they have discovered and appropriated to their own use, what they have created by their own labor, and what they have acquired under the existing social and economic order.
3. In civilized society men must be able to assume that those with whom they deal in the general intercourse of society will act in good faith and hence

(a) will make good reasonable expectations which their promises or other conduct reasonably create;

(b) will carry out their undertakings according to the expectations which the moral sentiment of the community attaches thereto;

(c) will restore specifically or by equivalent what comes to them by mistake or unanticipated situation whereby they receive, at another's expense, what they could not reasonably have expected to receive under the actual circumstances.

4. In civilized society men must be able to assume that those who are engaged in some course of conduct will act with due care not to cast an unreasonable risk of injury upon others.

5. In civilized society men must be able to assume that those who maintain things likely to get out of hand or to escape and do damage will restrain them or keep them within their proper bounds.

In recognition of the two main directions that juristic thinking was taking—

(1) concern for the concrete individual life rather than for the abstract individual will, and

(2) concern for civilization as distinct from and contrasted with politically organized society.

Pound, in **1959**, proposed two new jural postulates in the first volume of his Jurisprudence:

6, Everyone is entitled to assume that the burdens incident to life in society will be borne by society.

7, Everyone is entitled to assume that at least a standard human life will be assured him; not merely equal opportunities of providing or attaining it, but immediate material satisfactions.

As social-ethical principles, the jural postulates for law have a practical three-fold purpose. First, they are meant to identify and explain the substantial totality of actual human claims, demands, or interests of a given social order. Second, they express what the majority of individuals in a given society want the law to do. Third, and relatedly, the jural postulates are meant to guide the courts in applying the law. Pound asserts that the jural postulates are neither eternal, immutable, or exhaustive. Indeed, he regards them as principles that overlap, conflict, and are in continuous dynamic transition. Pound's position Pound does see a need for some connection, a mediating procedure, between the practical problems posed by the administration of justice and the jural postulates of the civilization of the time and place. This link consists of a set of interests which, like the jural postulates, also press for legal recognition and enforcement in that society. Pound rather ingeniously classifies certain claims of human beings to have things and do things by distinguishing between three ideal type interests: the individual, the public, and the social.

Pound, on the other hand, admitted that these postulates are not absolute and can vary depending on the situation. According to him, the social engineers' role is to apply the law to the structure of the case and bring the 'finished product' of justice and peace to society. The relative values of these postulates imply that they are the foundation of civil society, and if additional postulates are required to be added in accordance with

changing times, they will be added. Pound attempted to bring a more balanced interpretation of the Sociological School through these interests, giving the mostly idealistic school a more realistic interpretation that can be applied in real life.

Concluding Remarks : Despite his significant contribution to sociological jurisprudence and emphasis on studying the actual work of law in society, Pound's theory has some flaws. Pound's social engineering theory has been criticised on several fronts.

It has been argued that Pound's classification of interests is in the nature of a catalogue, with constant additions and changes that are neutral in relation to the value and priority relative to the neutral value. Pound's social engineering theory has been criticised for its use of the term engineering, which equates society to a factory or mechanism. Law is a social process, not a product of applied engineering.

It is also incorrect to compare society to a factory because the former is constantly changing and dynamic, whereas the latter is more or less stable. Pound's emphasis on engineering, once again, ignores the fact that law evolves and develops in society in response to social needs and wants, for which law can develop in society in response to social needs and for which either approval or rejection may occur in law.

A common criticism levelled at Pound's theory is his use of the word "engineering," which implies a mechanistic application of the theory to social needs. The term "engineering" is used by Pound as a metaphor to indicate the problems that law must face, the objectives to be met, and the method to be used.

References :

1. Roscoe Pound, Outlines of Lecture on Jurisprudence, Third Edition, Cambridge 1920
2. Roscoe Pound, Jurisprudence, Vol 1 , St. Paul, Minn. West Publishing Co. 1959
3. Roscoe Pound, An introduction to the philosophy of Law, Yale University Press, 1922
4. Roscoe Pound, Social Control Through Law, Third Print 2006, Transaction Publishers, New Brunswick, New Jersey.
5. Roscoe Pound, Jurisprudence, Vol- III, The Law Book Exchange Ltd, 2000
6. S.R. Myneni. Jurisprudence (Legal Theory), Asia Law Publishing, 3rd Edn, 2018

(Footnotes)

1 S.R .MYNENI, JURISPRUDENCE(LEGAL THEORY), 3rd Edn,, Asia Law House, Hyderabad, 2018

2 ROSCOE POUND, SOCIAL CONTROL THROUGH LAW, Third Print 2006, Transaction Publishers, New Brunswick, New Jersey

3 ROSCOE POUND, AN INTRODUCTION TO THE PHILOSOPHY OF LAW, Yale University Press, 1922

4 ROSCOE POUND, JURISPRUDENCE, VOL- III,2000, The Law Book Exchange Ltd.pg25 to 28

●

Alzheimer's Dementia among Elderly

Status, Challenges and Interventions

Mubina Sheikh*, Dr Tarun Kumar Sharma**

Abstract : Dementia is an issue of growing concern for public health as there are currently around 5 crores cases of dementia across the globe. Every year one crore new dementia cases are reported and this number is estimated to triple by 2050. The global burden of disease (GBD) of dementia is approximately 1.1% of the global gross domestic product for 2015. Dementia and it's most frequent type Alzheimer's dementia is causing disability and dependency among the elderly population worldwide. This paper is an attempt to discuss the status of dementia and Alzheimer's dementia, its types, and symptoms with the help of a case study. The paper also throws light on various challenges faced by the elderly who is affected with Alzheimer's dementia during the 7-stages of this disease. As there is no specific cure available for Alzheimer's dementia, the paper discusses in detail the interventions suggested by the World Health Organization for the proactive management of Alzheimer's dementia. These guidelines for managing various modifiable risk factors would be helpful in delaying the onset or further progression of dementia. The health care providers, governments, policy-makers should follow these guidelines for efficient management of dementia so that the risks of cognitive decline can be reduced through a public health approach.

Key words: Elderly, Dementia, Alzheimer's, Cognitive decline, Lifestyle

Dementia is a disorder which refers to a decline in the cognitive level which affect an individual's activities of daily living (ADL) and social functioning. Dementia is identified as one of the greatest global challenges in the 21st century both for health and the subsequent social care needed for the management of the emerging health issues.

According to the data by WHO and King's College London (2017), five crores people have been affected by dementia worldwide, as per the reports published in 2015. It means that approximately 5% of the global elderly population which is aged 60 years and above suffers from dementia. The cases of dementia are projected to rise to 8 crores by the year 2030 and to 15 crores by the year 2050. Every year one crore new cases of dementia are reported. The increasing cases of dementia are having impact so big that the total global cost to the society is estimated to be almost 1.1% of the

* Research Scholar– Department of Psychology, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Rajasthan)

** Assistant Professor– Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Rajasthan)

global gross domestic product (GDP) for the year 2015.

Dementia is such a big concern that the World Health Organization has included dementia risk reduction among the seven areas that are of specific concern for global health during the 17th World Health Assembly in 2017. (WHO, 2017a).

Mild, Moderate and Severe Dementia : Dementia has been classified into mild, moderate and severe dementia. In mild dementia, an individual forgets that a relative visited the home a couple of days back or forgets when he/she took the last dose of the medicine. In moderate dementia, the person starts forgetting the day, date, time and place. The person also uses wrong words while communicating with others. The severe dementia occurs when the patient cannot recognize the close family members, is unable to communicate, cannot perform self care routines such as bathing, dressing and feeding oneself. The person also expressed severe symptoms such as incontinent i.e. not being able to control urination and defecation and faces difficulty in swallowing.

Primary and Secondary Dementia : Dementia can be of two types; Primary dementia and Secondary dementia. In primary dementia, the decline in cognitive capabilities occurs due to degeneration in neural framework of an individual. Primary dementia includes Alzheimer's disease (AD), vascular dementia, dementia with Lewy bodies and fronto-temporal dementia. Alzheimer disease is the most common type of all types of dementias. Secondary dementia is caused by some other existing disease in the person. If the person has head injury, thyroid disorders, deficiency of vitamin B12, multiple sclerosis etc. due to which the person faces cognitive decline, it is termed as secondary dementia.

Alzheimer's Dementia : Alzheimer's disease is a condition that causes abnormal changes in the brain which affects memory and other mental abilities. Loss of memory is usual first symptom. Alzheimer's affects all cognitions. As the disease progresses, the loss of reasoning ability, language, decision making ability, etc. are also affected. These changes gradually make patient's day-to-day living impossible without the help of others. In the early stage of Alzheimer's, patients face mild memory loss but with late-stage Alzheimer's, individuals lose the ability to carry on a conversation and respond to their environment. It is a progressive disease, where dementia symptoms gradually worsen over a number of years. Alzheimer's disease is also called primary degenerative disease. It is also known as senile dementia of the Alzheimer's type.

The next three sections would discuss the status, challenges and interventions for Alzheimer's dementia.

(A) Status of Alzheimer's Dementia : Aging is one of the predominant causes of Alzheimer's dementia. There are various other types

of dementia also. According to Whalley, Breitner and John (2009) and 2020 Alzheimer's disease facts and figures (2020), at least 60-80% of dementia cases among elderly people are of Alzheimer's type dementia. The highest incidence of Alzheimer's disease is among 65 years and above age group people. This incidence of Alzheimer's dementia further increases in the age group of 70 years and above.

Alzheimer's disease is an issue of global concern for elderly people. Alzheimer's patients are also increasing not only in India but at world level too. There were 37 lacs Indians with dementia in 2010 which is projected to increase to 76 lacs by the year 2030. The total societal cost for 37 lacs dementia cases is worth Rs 14700 crores. (Alzheimer's & Related Disorders Society of India, 2010).

Guerchet, & Prince (2020) estimated that 62 lacs Americans age 65 and older are living with Alzheimer's dementia today. This number could grow to 1.38 crores million by 2060. Official death certificates recorded 121,499 deaths from Alzheimer's disease in 2019 making Alzheimer's the sixth-leading cause of death in the United States and the fifth-leading cause of death among Americans age 65 and older. Between 2000 and 2019, deaths from stroke, heart disease and HIV decreased, whereas reported deaths from Alzheimer's increased more than 145%.

Low and Middle Income Countries (LMIC) : According to the Prince et al (2015)'s World Alzheimer's Report 2015, the growth in the older aged population is estimated to increase by 239% in low income countries and 185% in the lower middle income countries in comparison to a 56% increase in high income countries. Dementia's 60% cases are from LMIC which is estimated to increase to 71% by the year 2050. At one end, these low and middle income countries will face the situation of having more elderly people in the entire population, whereas on the other end these countries are mostly developing countries. The developing countries lack the financial resources and effective social protection system in place to safeguard the older people against any health and social care emergencies. Due to lack of adequate income, these elderly people cannot spend enough on their health-related needs

(B) Challenges posed by Alzheimer's Dementia : Alzheimer's Dementia is a disease that not only affects the patient at the individual or personal level, but it also affects the entire family and friends. On a wider perspective, the dementia cases affect the whole society.

Global Burden of Disease (GBD) : Dementia has been studied on the parameter of 'Global Burden of Disease' (GBD). This global burden of disease is expressed in the form of disability caused by the disease due to which the individual's contribution in overall productivity of the world is assessed. GBD also includes the damage caused by the premature mortality

of people. Some indicators of GBD have been researched. DALY **(Disability Adjusted Life Years)** is such an indicator which includes both disability and premature mortality. DALY is the sum of **'Years Lived with Disability'** (YLD) and **'Years of Life Lost' (YLL).** Dementia accounts for 11.9% of the years lived with disability due to a non-communicable disease (NCD) worldwide. (Prince et al 2015)

According to the World Health Organization's estimates explained in World Alzheimer's Report (2015), dementia is among the top five causes contributing to DALY, following ischemic heart diseases, stroke, chronic obstructive pulmonary disease and visual impairment. On the basis of 'YLD' alone, dementia is the second leading cause.

Behavioural Challenges : Due to neural damage caused by accumulation of tangles and plaques, the size of the brain is decreased. Alzheimer's disease is reflected in the form of symptoms which are gradually reflected in an individual's behavioural deliberations. Even if the symptoms are reported, the person and the family consider these symptoms to be transient and are attributed the stressful life events, hectic works schedules, lack of adequate sleep etc.

Earlier symptoms include forgetfulness but the other cognitive functions and social skills are adequate. This leads the person to ignore these gradual changes in the cognitive functional patterns. Due to further progression of the disease, the symptoms start getting worsened. The person is unable to recall words, names and faces. The person also faces challenges related to motor functioning and is not able to handle, grasp physical objects properly. The person cannot handle affairs related to money exchange and cannot use the simple appliances. The language domain also gets severely affected in the later stages. The person exhibits nonsensical language pattern in one's speech. The person might wander for hours. At the more severe stages, the person needs assistance in activities related to daily living and cannot survive without a devoted caregiver. On the basis of symptoms, there are seven stages of Alzheimer's disease which are explained below which will help better understand the stage-wise challenges that an individual, the family and the principal caretaker faces.

Stages of Alzheimer's Dementia

- **Stage 1- No cognitive impairment :** In this stage doctor does not find any clear symptoms to diagnose Alzheimer's disease. In this stage brain functions are normal.
- **Stage 2- Very mild decline :** An individual forgets issues related to day to day familiar words, names, location of things like keys, and wrist watch etc. The disease cannot be diagnosed in this stage.
- **Stage 3- Mild cognitive decline :** This is known as Early-stage Alzheimer's. Its diagnosis is possible in some, but not among all. The

affected person's friends, relatives or co-workers start noticing certain deficiencies in memory. Clinical testing might result in diagnosing memory issues. Common difficulties include:

- Word- or name- finding problems
- Cannot remember new acquaintances names and faces
- Losing or misplacing some objects.
- Face difficulties in ability to plan or organize
- **Stage 4- Moderate cognitive decline :** At this stage, a careful medical interview identified specific deficiencies in the following areas:
- Inability to remember recent occasions or events.
- Reduced ability to perform some complex tasks, for e.g. paying bills and exchanging money, finances.
- Memory related previous personal events/issues is reduced.
- Exhibiting withdrawal behaviour in social situations
- **Stage 5- Moderately severe cognitive decline :** At this stage, the memory and deficits in cognitive function are affected majorly. The patient needs some assistance for daily activities. At this stage, individuals may:
- Not recall their current address, telephone number, college or schools details in which they studied.
- Get confused about the place where they are right now or about the date, day of the week or season.
- Face difficulties in selecting appropriate clothing as per the season or occasion.
- Usually retain knowledge about them regarding their own name, then names of close family such as spouse, children etc.
- Usually do not need assistance with using the toilet.
- **Stage 6- Severe cognitive decline :** Memory related problems are worsened along with certain personality changes. The patient needs more help with daily activities. At this stage, individual may:
- Not recall most of the recent experiences and events
- Recall their own names but not personal
- Sometimes forget the name of their spouse or primary caregiver yet can distinguish between familiar and unfamiliar persons.
- Need help with toileting.
- **Stage 7- Very severe cognitive decline :** This is final stage of the disease when individuals
- Do not respond to their environment, the ability to speak, the ability to control their own movement.
- Cannot produce recognizable speech, with occasional utterance of words or phrases.
- Cannot eat, drink, toilet without help
- Urine incontinence

- Cannot sit without support, even losing the ability to smile, and hold their head up.
- They chew the food but cannot swallow.

A Case of Advanced Alzheimer's disease : Chandra, Ahmed, Mailankody & Devaraj (2018) have reported a case of an old female, age 57 years, who initially faced problems related to memory. She was a government employee in Sikkim, India. Due to increasing issues that she was facing, she left her job saying that the job was very stressful. The noticeable symptoms included forgetting how to cut vegetables, light the gas, serve the food. She also, at times, used tooth paste to wash her face. She also could not identify the names and faces. Repeating the same question again and again due to her lack of comprehension, her inability to hold things properly also affected the other domains of functioning. Gradually, the symptoms got worsened. She used to forget where the toilet, kitchens were located in her house. She used to forget to dress herself, and used to pass urine at wrong places. She became fully dependent on her husband for the activities of daily living (ADL). The severity of disease is also related to the percentage of dependency on other for the ADL.

As a part of the intervention, her life history helped. As she was a good singer and dancer in her earlier life, she was exposed to 2-hour duration of music, once in morning and once in evening. During this time, she was provided with opportunity to listen her favourite songs that she used to enjoy and dance earlier. As a matter of surprise to the researchers, she started dancing and enjoying sang a few words with the song, although in discontinuity. She was able to remember the tune of the song and could hum the tune. As a result of this musical intervention, her verbal communication showed improvement. The researchers concluded that the music can be used to evoke emotions that can improve the autobiographical memories.

(C) Interventions by WHO : As of now, there is no cure for dementia; however, the progression of the disease can be delayed or slowed if the risk factors are managed. If the individual proactively manages certain modifiable risk factors than the occurrence of dementia also be addressed.

One of the strongest risk factor for dementia is ageing. Although, age is not the natural cause of ageing, if the person goes through a healthy ageing process, cognitive impairment is avoidable. Several researches have shown that the development of dementia occurs due to two types of factors; first the factors that are modifiable and second the factors that are non-modifiable. The modifiable factors due to which dementia can be controlled are life style related factors. The existence of modifiable risk factors of dementia shows that dementia can be prevented by certain ways.

The non-modifiable factors include the factors such as age, genetic factors, and family history of cognitive decline or related disease etc.

The World Health Organization has recommended the following life style modifications for controlling the menace of dementia in its report titled 'Risk reduction of cognitive decline and dementia' (2019).

Physical Activity : The elderly aged 65 years and above should follow an aerobic exercise routine with at least 150 minutes in a week, if the exercise is of moderate intensity. If the exercise is intense, at least 75 minutes per week are recommended. For more benefits, this duration can be doubled for both moderate and intense exercise. Such exercise should be aerobic in nature and should be followed in the bouts of at least 10 minutes duration. One should indulge in exercise on 3 or more days in a week. If the health conditions do not permit the physical exercise, the elderly people must remain physically active as their health conditions permit.

Stopping Tobacco Consumption : The consumption of tobacco in any form is found to be associated with various chronic ailments including dementia. People are being made aware of the ill-effects of consuming tobacco on health. The person's habit of consuming tobacco can be controlled with both pharmacological and non-pharmacological intervention. Some therapeutic and counseling approaches such as cognitive therapies, behavioral therapies, motivational techniques, aversive therapy have been found effective in controlling such addictions.

Dietary Recommendations : Certain foods are found to be associated with less chances of dementia. Jiang et at. (2017) have found that fruits and vegetables decrease the risk of cognitive decline. Zhang et at (2016) found that consumption of fish and fish-derived products results in less memory problems. Similarly, Solfrizzi et at. (2017) found that use of nuts, coffee and olive oil in one's diet decreases the risk of cognitive impairment. As some other researches on diet have not found the similar results, hence the findings are inconsistent and the recommendations are not very strong. However, the WHO recommends a healthy and balanced diet that includes nuts, whole grains, legumes, fruits and vegetables. The diet shall have less than 10% intake of total energy from free sugars. Unsaturated fats are preferred than saturated fats. The foods with saturated fats include butter, oil, cream, ghee, cheese etc. Trans-fat content foods such as fast food, frozen food should also be avoided. The use of iodized salt which is less than 5 gram per day is recommended.

Reduced use of Alcohol : The interventions with an aim of reducing the use of alcohol consumption or completely ceasing its use among the adults with normal cognitive functioning or with mild cognitive impairments have results in reduced risk of cognitive deterioration. The WHO recommends educating the person about the harmfulness of

addiction to alcohol. The people need to be advised to stop alcohol or to consume it at a non-harmful level, if it exists. Some pharmacological ways of reducing alcohol dependence are also recommended.

Cognitive training : According to Stern (2012), cognitive reserve reduces the risk of developing dementia. Cognitive reserve provides the coping ability for any kind of neurological and pathological damage to an individual's brain. This cognitive reserve is the result of an individual's involvement in cognitive tasks and protects the person against cognitive decline. Various researchers have found that the cognitive involvement reduces the risk of mild cognitive impairment and Alzheimer's disease. In cognitive training, the person takes some standardized tasks which have been designed to increase the level of cognitive functioning through cognitive involvement of individual in the tasks. It has been found that those elderly who are educated and remained involved in tasks or their work that require cognitive involvement have less chances of cognitive impairment and dementia.

With the process of ageing, people face decay in the functioning of the brain. Various cognitive processes such as attention, concentration, memory, language, learning ability get affected with the ageing process. This is termed as cognitive decline. This cognitive decline differs from cognitive impairment. Cognitive impairment is pathological which occurs to injury, disease or due to the excess, other than normal, cognitive decline.

Social Engagement : Social engagement is associated with the well-being of an individual. Fratiglioni et al (2004) have found that if the individual is socially disengaged and lonely then the individual has more risk of developing problems such as mild cognitive impairment and dementia. Some other researchers have also found the similar results; hence an individual's social engagement can also be used as an intervention to control such problems.

Chronic diseases' management : The researches have been conducted studying the relationship of some chronic diseases such as hypertension, diabetes etc with dementia. Some of these researchers have found that hypertensions in mid-life and late life diabetes have been found to be associated with increased risk of dementia.

Controlling Depression : Many researchers have found the link between the level of depression and cognitive deterioration and dementia. The World Alzheimer's Report 2014 included a meta-analysis of 32 studies in which Prince et al. (2014) studied the relationship of depression and dementia. The total sample size of these studies was 62568 participants. It was found that the presence of depression doubled the risk of developing dementia. .

However, among all the interventions discussed above, the diet and

physical activity combined together showed the best results for controlling cognitive impairment.

Conclusion : Dementia and Alzheimer's dementia will be a major public health threat with serious implications for the individual, family and the society. Dementia has its global economic and social burden also. Symptoms reflected in the disease are such that the individual is gradually dependent on other and cannot contribute in any way for the family and for the society and for th world. Dementia can be prevented by using certain life style modifications the guidelines for which have been prepared by the WHO and others. In this digital era, where the use of digital devices, mobiles phones, internet has immensely increased, the individual life styles are getting more lethargic and without physical activity. The dietary pattern and various other factors have resulted in various chronic diseases including dementia. As India and many other nations will face just reverse of the current demographic dividend (with younger people in the population), there will be more elderly people in future. The interventions such as physical activity, aerobic exercise, healthy and nutritional diet, cognitive training, social engagement are must for lessening the damage that dementia can cause to the global society

References

- Alzheimer's & Related Disorders Society of India (2010). The Dementia India Report: prevalence, impact, costs and services for Dementia. (Eds) Shaji KS, Jotheeswaran AT, Girish N, Srikala Bharath, Amit Dias, Meera Pattabiraman and Mathew Varghese. ARDSI, New Delhi. ISBN: 978-81-920341-0-2
- Chandra, S.; Ahmed, S.; Mailankody, P. & Devaraj, R. (2018). The women who sang and danced her answers: A patient with advanced Alzheimer's disease. Case Report.
- 2020 Alzheimer's disease facts and figures (2020) Alzheimer's Dement, 16: 391-460. https://doi.org/10.1002/alz.12068
- 2021 Alzheimer's disease facts and figures. (2021). *Alzheimer's & dementia : the journal of the Alzheimer's Association*, *17*(3), 327–406. https://doi.org/10.1002/alz.12328
- Fratiglioni L, Paillard-Borg S, Winblad B (2004). An active and socially integrated lifestyle in late life might protect against dementia. Lancet Neurology. 3(6):343–353. doi:https://doi.org/10.1016/S1474-4422(04)00767-7.
- Guerchet, M., & Prince, M. (2020). Numbers of people with dementia worldwide: An update to the estimates in the World Alzheimer Report 2015. Alzheimer's Disease International. https://www.alzint.org/resource/numbers-of-people-with-dementia-worldwide/
- Jiang X, Huang J, Song D, Deng R, Wei J, Zhang Z (2017). Increased consumption of fruit and vegetables is related to a reduced risk of cognitive impairment and dementia: meta-analysis. Frontiers in Aging Neuroscience. 9(18). doi:10.3389/fnagi.2017.00018.
- Risk reduction of cognitive decline and dementia: WHO guidelines. (2019)

Geneva: World Health Organization; 2019. Licence: CC BY-NC-SA 3.0 IGO.

- Prince, M., Wimo A., Guerchet M., Ali C.G., Wu Y.T. & Prina, M. (2015). World Alzheimer's Report 2015. The Global Impact of Dementia. London: Alzheimer's Disease International.
- Prince M, Albanese E, Guerchet M, Prina M (2014). World Alzheimer Report 2014. Dementia and risk reduction: an analysis of protective and modifiable risk factors. London: Alzheimer's Disease International.
- Solfrizzi V, Custodero C, Lozupone M, Imbimbo BP, Valiani V, Agosti P et al. (2017). Relationships of dietary patterns, foods, and micro- and macronutrients with Alzheimer's disease and late-life cognitive disorders: a systematic review. Journal of Alzheimer's Disease. 59(3):815–849. doi:10.3233/jad-170248.
- Stern Y (2012). Cognitive reserve in ageing and Alzheimer's disease. Lancet Neurology. 11(11):1006–1012. doi:10.1016/S1474-4422(12)70191-6.
- Whalley L, Breitner J., John C.C (2009). **Fast Facts: Dementia**. 2nd edition DOI: 10.1159/isbn.978-1-905832-71-2
- *What Are the 7 Stages of Alzheimer's Disease?* (2019). Alzheimers.net. https://www.alzheimers.net/stages-of-alzheimers-disease
- WHO & King's College London (2017). Global prevalence of dementia – updated figures 2017. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/dementia
- WHO (2017a). Global action plan on the public health response to dementia 2017–2025. Geneva: World Health Organization (https://www.who.int/mental_health/neurology/dementia/action_plan_2017_2025/en/, accessed 4 February 2019).
- WHO's Global recommendations on physical activity for health (2010) *http://www.who.int/dietphysicalactivity/publications/9789241599979/en/ in* 'Risk reduction of cognitive decline and dementia: WHO guidelines'. (2019) Geneva: World Health Organization; 2019. Licence: CC BY-NC-SA 3.0 IGO.
- WHO recommendations on a healthy diet *http://www.who.int/en/news-room/fact-sheets/detail/healthy-diet* in 'Risk reduction of cognitive decline and dementia: WHO guidelines' (2019) Geneva: World Health Organization; 2019.
- World Health Organization (2012). Dementia: a public health priority. Geneva: World Health Organization; 2012.
- Zhang Y, Chen J, Qiu J, Li Y, Wang J, Jiao J (2016). Intakes of fish and polyunsaturated fatty acids and mild-to-severe cognitive impairment risks: a dose-response meta-analysis of 21 cohort studies. American Journal of Clinical Nutrition. 103(2):330–340. doi:10.3945/ajcn.115.124081.

●

सदस्यता-फॉर्म का प्रारूप

'नमन'

शोध-पत्रिका

मानविकी एवं साहित्य

ISSN : 2229-5585

कृपया नवीनतम फोटोग्रॉफ चस्पा करें

क्रमांक ..... दिनांक .....

मैं शोध-पत्रिका **'नमन'** का व्यक्तिगत आजीवन/संस्थागत सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। इस हेतु चेक/बैंक ड्रॉफ्ट सं. ..... दिनांक ..... रु. ३५००/५०००/- 'नमन' पत्रिका के पक्ष में संलग्न कर रहा/रही हूँ अथवा नगद प्रेषित है।

नाम .....

वर्तमान पता (जिस पर पत्रिका भेजी जाय) .....

.....

स्थायी पता .....

.....

दूरभाष/मोबाइल .....

कृपया निम्न पते पर प्रेषित करें :

सम्पादक– 'नमन' हस्ताक्षर

प्रेम सदन, सी. ३३/१४७-३२ ए
आचार्य नरेन्द्रदेव नगर
चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२
उत्तर प्रदेश (भारत)
दूरभाष : ९४१५९८४९८३, ८४१८०७८१२३
E-mail : himanshusinghkvp@gmail.com